कृष्णदास संस्कृत सीरीज २४८

# वृद्ध-वसिष्ठसंहिता

पाठसंवादसंवलितः 'नारायणी' हिन्दीटीकासहितश्च


सम्पादकोऽनुवादकश्च
डॉ. चन्द्रमौलि रैणा

संशोधकः
प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय




द्वितीयो भागः


चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी

कृष्णदास संस्कृत सीरीज

२४८

***

# वृद्ध-वसिष्ठसंहिता

पाठसंवादसंवलितः 'नारायणी' हिन्दीटीकासहितश्च


सम्पादकोऽनुवादकश्च

**डॉ. चन्द्रमौलि रैणा**

असिस्टेन्ट प्रोफेसर, ज्योतिष

राष्ट्रिय संस्कृत संस्थान, जम्मू

संशोधकः

**प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय**

पूर्व अध्यक्ष, ज्योतिषविभाग

पूर्व प्रमुख, सं.वि.ध.वि.संकाय

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी


**द्वितीयो भागः**





चौखम्बा कृष्णदास अकादमी

वाराणसी

प्रकाशक : चौखम्बा कृष्णदास अकादमी, वाराणसी
मुद्रक : चौखम्बा प्रेस, वाराणसी
संस्करण : प्रथम, वि०सं० २०७४, सन् २०१७

ISBN : 978-81-218-0389-2 (द्वितीय भाग)
978-81-218-0390-8 (सेट)


के० ३७/११८, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० ११९८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
फोन : (०५४२) २३३३४५८ P.P. & २३३५०२०

**चौखम्बा संस्कृत सीरीज आफिस**
के० ३७/९९, गोपाल मन्दिर लेन
गोलघर (मैदागिन) के पास
पो० बा० नं० १००८, वाराणसी–२२१००१ (भारत)
(आफिस) (०५४२) २३३३४५८
(आवास) (०५४२) २३३५०२०, २३३४०३२
Fax : 0542 - 2333458
e-mail : cssoffice01@gmail.com
web-site : www.chowkhambasanskritseries.com

# पूर्वकथन

वृद्ध-वसिष्ठसंहिता का पूर्वभाग दो वर्ष पूर्व सन् २०१५ में प्रकाशित हुआ था। उत्तर भाग की प्रतीक्षा थी। कुछ अपरिहार्य कारणों से उत्तर भाग के प्रकाशन में विलम्ब हो गया। फिर भी प्रसन्नता का विषय है कि उत्तरभाग भी प्रकाशित हो गया तथा ग्रन्थ सम्पूर्ण हो गया। मैं इस अवसर पर ग्रन्थ के सम्पादक डॉ. चन्द्रमौलि रैणा को आशीर्वाद के साथ साधुवाद देता हूँ।

यद्यपि वृद्ध-वसिष्ठसंहिता का सम्पादन कार्य मेरे जम्मू प्रवास काल में ही प्रारम्भ हुआ था। मेरे काशी वापस आ जाने से कार्य की प्रगति में कुछ शिथिलता आ गई। शीघ्र ही तत्कालीन ज्योतिष विभाग के अध्यक्ष, अनेक शास्त्रों में निष्णात मेरे अनन्य मित्र डॉ. बिहारी लाल शास्त्री का समय-समय पर निर्देशन सम्पादक को मिलने लगा। परिणामतः सन् १९८६ में कार्य सम्पन्न हो गया। विगत कुछ वर्षों से इसके मुद्रण की जिज्ञासा हुई और उस दिशा में प्रयास हुआ। दुर्भाग्यवश इस प्रयास के कुछ वर्ष पूर्व ही डॉ. बिहारी लाल शास्त्री का महाप्रयाण हो गया। यदि इस ग्रन्थ का प्रकाशन भी उनके जीवन काल में हो गया होता तो उनको भी अत्यधिक प्रसन्नता होती। उनका स्नेह और आशीर्वाद रैना परिवार पर सदैव रहा है। अतः इस अवसर पर भी स्व. डॉ. बिहारी लाल शास्त्री वासिष्ठ का स्मरण करना आवयक प्रतीत हुआ। वे इस संसार में नहीं हैं; किन्तु इस ग्रन्थ की पूर्णता से उनकी आत्मा अवश्य प्रसन्न होगी।

हस्तलेखों के सम्पादन कार्य में अनेकों कठिनाईयाँ होती हैं। प्रमुख कठिनाई पाठ निर्धारण में आती है। सम्पादक अपनी दृष्टि से उचित पाठ ग्रहण करता है; किन्तु वह पाठ सर्वसम्मत हो यह आवश्यक नहीं। सम्पादन में हस्तलेखों से प्राप्त पाठान्तरों को भी देना आवश्यक होता है। इससे यह सुविधा भी उपलब्ध रहती है कि यदि गृहीत पाठ किसी पाठक को अनुपयुक्त प्रतीत हुआ तो वह पाठान्तरों से किसी अन्य उपयुक्त पाठ का चयन कर सकता है। इसलिए पाठान्तरों को भी देना आवश्यक होता है। पाठान्तर देने से दूसरा लाभ यह होता है कि ग्रन्थ के साथ-साथ हस्तलेख भी सुरक्षित हो जाते हैं।

प्रस्तुत संस्करण उत्तरार्द्ध में २४ वे अध्याय से अन्तिम ४६वें अध्याय तक का समावेश है। इससे पूर्व के २३ अध्याय पूर्व भाग में प्रकाशित हो चुके हैं। उत्तरार्द्ध में अनेक व्यवहारोपयोगी विषय होने से इसका महत्त्व बढ़ गया है। आधान से विवाह

पर्यन्त प्राय: प्रमुख संस्कारों से सम्बन्धित काल निर्णय इसी भाग में दिये गये हैं। कार्यानुसार उचित काल निर्णय ज्योतिषशास्त्र का महत्वपूर्ण प्रतिपाद्य विषय रहा है। काल के महत्व को बतलाते हुये संहिता के उत्तर भाग में लिखा है—

**काल एव ईश्वरः साक्षादीश्वरः काल एव सः।**
**विद्यते चेश्वरज्ञानी चेत्कालज्ञः स एव वै॥४१।१॥**

इस प्रकार काल के विभिन्न गुण एवं दोषों का विस्तृत निरूपण किया गया है। कुछ ऐसे महत्वपूर्ण योगों का वर्णन किया गया है तो अन्यत्र दुर्लभ हैं। यथा— वर्द्धमान, शंख, पद्म, अमृत, आनन्द आदि। ये सभी योग दिन और नक्षत्रों के योग के आधार पर वर्णित हैं। इसी प्रकार ग्रहों की स्थिति के अनुसार धूर्जटि, गुणभास्कर, गुणकौस्तुभ आदि अनेक योग बताये गये हैं। इनके अतिरिक्त राजाभिषेक, गजारिष्ट, अश्वारिष्ट, ग्रहण शान्ति आदि अनेक विषयों से सम्बन्धित पृथक्-पृथक् अध्याय हैं। मुझे आशा है इन विषयों का अवलोकन कर पाठक प्रमुदित होगें।

अन्त में ग्रन्थ के प्रकाशन हेतु चौखम्बा कृष्णदास अकादमी को तथा श्री सचिन गुप्ता एवं श्री कौशिक गुप्ता को साशीर्वाद धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने इस कार्य को सोत्साह सम्पन्न किया।

**रामचन्द्र पाण्डेय**

# हस्तलिखित ग्रन्थ की फोटो प्रति

ॐश्रीगणेशायनमः श्रीगुरुचरणकमलेभ्योनमः ॐब्रह्मांभोजन्मतातसोरें इनिकरस्फुर्यतिवीरोच्च
ल ज्योत्स्नालीढपदारविंदयुगलस्तत्त्वस्वरूपोरविः ब्रह्मांडोदरसंस्थिताखिलजगत ध्वांतस्य संघं सतो
यः कुर्वन्निखिलं जगत्यनुदिनं पर्येति कालात्मकः १ ज्योतिःशास्त्रसमस्त्रप्रथमप्रकृषतः सर्गारंभो
द्विदिता सर्वप्रलानयोपर्यखिलम्नानिराणप्रार्थनायश्चकार वन्यंदस्यप्रसन्नंस्फुटपदानिकरे गु
प्रमथ्यात्मरूपं शास्त्रादिस्वप्रकाशं ग्रहचरितविदां निर्मलज्ञानचक्षुः २ सोदद्वयंशक्तिविचित्रमर्थम्
गंभीरमाद्यावधुनायदुक्ता तत्संहितास्कंधमिदंत्रितीयं वक्ते जगन्मोहननामधेयं ३ मात्तक्रियार्थे
श्रुतयः प्रवृत्ताः कालाश्रयास्तेकृतवो निरुक्ताः शास्त्रात्तदस्मात्किलकालबोधो वेदांगतामस्य तताः प्रसि
ज्ञः ४ छंदः पादौशब्दशास्त्रं च वक्त्रं कल्पः पाणी ज्योतिषं चक्षुषी च शिक्षाघ्राणं श्रोत्रमुक्तं निरुक्तं वेदस्या
गान्याङ्गरेतानिषड् ५ वेदस्य चक्षुः किलशास्त्रमेतत्प्रधानतांगेषु ततोस्यजाता अंगैर्युतोन्यैः परिपूर्णमूर्तिः
चक्षुर्विहीनः पुरुषो न किंचित् ६ यथ्येतदध्यान्नणोरेव तस्मा ज्योतिःशास्त्रं पुण्यमेतद्रहस्यं एतद्बुद्ध्या सम्य
गाप्नोति यस्मादर्थं धर्मं मोक्षमग्र्यं यशश्च ७ श्रुतिस्मृतिज्ञः पदुरर्थशास्त्रे शाक्तोपदिष्टः कुशलः कलासु
त्रिस्कंधविज्ज्योतिषकः सवेदकलीसुहृत्सत्यवादः सुशीलः ८ शास्त्रस्वरूपग्रहचारमानसन्त्येकपञ्चाङ्ग
सुतत्त्वगणस्या गोचारसंक्रांतितिथिपाप्य तएवलोपस्वदग्रहकेंद्रभस्य ९ आधानपुंसवनमष्टमसीमगले
यत्संज्ञातिकर्मवरनामनयान्नभुक्तिः चूडाविधिव्रतविवाहनृपाभिषेकयात्राप्रवेशनववास्तुस्वरशांति छ

प्रमातः केतवो दीर्घप्रदो भवति ६ ऐन्द्रदिशानास्तत्रूपमूलानिभे सार्द्धभीतिदः सम्यक् वङ्गमिश्रिताभिरन्
लाविद्युत्मागित्तारा हिमानिभाः ७ अपुरेन्द्रदृशो ईपपामहोत्वेनदगीशानो ध्रुकमृत्यवेधुनिभावेव
वह्निसतस्पर्णशासेनिभाकृत्ताः ८ दृषपंतेयद्यनलादिशीतावेतस्लाथिशीभयदाः मृत्युसताम्रकाशिरत्ना
•से• कृष्णाः रत्ताः प्रहरणाकाराः ९ दृश्यंतेयाम्ययोदिशिजन्मकरेभयप्रदा स्लोपि । तितितननयेदात्रिंश
१ सर्द्दर्शनेसदृश्यास्तत्पक्षयोविशिरतो १० सात्तरयासास्मिरस्कायमतननयाम्रत्युराख्यतेलनिभाः सपीतन
याः क्रमसमानभाः केदेङुंत्लीरराजितनिभाः ११ उत्तरभागोशीरविनोजेतृनोभुमित्तकरः त्रिशीस्वास्विव
र्णयुक्तोग्रलदंडनिभाः १२ अग्निपतरिवसप्रभवोमोकोकरीवालदंडाख्याः पानितनयानरास्याप्
काञ्चनवज्रवचारव्याः १३ दृश्यंतेदिविदिनेः धुम्ररोमासेष्वरुरुभयदाः नावत्तनाविकचारव्याःसु
क्रास्तारात्रिनाम्निग्धाः १४ याम्यायांदिशिसेस्याहिपरावत्तवास्तेपाधास्तनते उथततनयोभ्योरास्थाः
भुक्तात्तत्वार्यथेष्टदिक्षभवाः १५ अग्रभवदासततेजेतृनोपेचपेचाशात् जजततयाका—कपाल
तत्जानलत्ताम्निमाश्चिष्फलयदाः १६ याम्यायांदिशिसेस्याहिपराःपश्चिसेरव्याताः ताम्रणकीलकस्ते
ताराङ्कस्तनात्वर्यमेङ्लेटषाः १७ तेषांनाम्निरविलफलेसभ्यक्षणेतेचतुर्यवारेपि। घरत्स्यास्याप्या
मानिमाभ्रजातताविविधदृपसेकोसां। १९ शस्त्रतुल्यभयदास्तेसमोत्तरसप्ततेभ्यसंख्याकाः मो
ङलसंज्ञाचाष्टौलाजासदृश्यासलायतेत्तनयाः २० दिशमाग्निशोत्तरशीतावधिकाः पापप्रदाविधत्रि
सताः चरणमयाकेकाख्याद्वात्रिंशद्दशाजवशिनिभाः २१ पाशीयत्प्रभातेमेजाएजान्तत्रेमवे




GOVERNOR
JAMMU & KASHMIR



RAJ BHAVAN
JAMMU-180001

I am happy to learn that Prof. Chander Mauli Raina is bringing out another volume of 'Shri Vridh Vasishta Samhita' which reflects on Vasishta Rishi's valuable contributions to Indian Astrolgy.

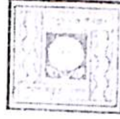
I believe that Prof. Raina's scholarship shall make significant contribution towards the promotion of Indian Astrology and also in enhancing knowledge of the subject.

I compliment Prof. Raina for his academic endeavours and wish him high success in all his future work.

13th December, 2016
Jammu.

**(N.N. Vohra)**

**Prof.Ramanuja DEVANATHAN**
**PRINCIPAL**



RASHTRIYA SANSKRIT SANSTHAN
Deemed to be University
Under MHRD, Govt. of India
Accredited by NAAC with 'A' Grade

**SHRI RANBIR CAMPUS, KOT-BHALWAL, JAMMU – 181 122 (Jammu & Kashmir)**

# भूयाज्जगद्धितम्



अस्य शास्त्रस्य सम्बन्धो वेदाङ्गमिति चोदितः।
अभिधेयञ्च जगतां शुभाशुभनिरूपणम्।
इज्याध्ययनसङ्क्रान्तिग्रहषोडशकर्म्मणाम्।
प्रयोजनञ्च विज्ञेयं तत्तत्कालविनिर्णयः।।

इति नारद आह। प्रत्यक्षमिदं शास्त्रं प्रथते। किञ्च श्रूयते इदमपि—

सिद्धान्तसंहिताहोरारूपस्कन्धत्रयात्मकम्।
वेदस्य निर्म्मलं चक्षुर्ज्योतिःशास्त्रमकल्मषम्।
विनैतदखिलं श्रौतं स्मार्त्तं कर्म्म न सिध्यति।
जस्माज्जगद्धितायेदं ब्रह्मणा निर्म्मितं पुरा।
अतएव द्विजैरेतदध्येतव्यं प्रयत्नतः।।

एवञ्च ज्योतिषं जगद्धिताय प्रवृत्तमिति सिद्धमसंशयेन। यो ज्योतिषं जानाति स एव यागादीन् जानाति नान्यः तादृशं महत्त्वमस्य शास्त्रस्य। ''ज्योतिर्ज्ञानन्तु यो वेद स याति परमां गतिम्'' इत्यभिहितत्वान्मुक्तिमार्गोपदेष्ट्रपि साक्षादङ्गं राजते वेदानाम्।

तत्रापि संहिताग्रन्थस्य प्राधान्यं वर्तते। सम्यक् हितं प्रतिपाद्यं यस्या इति संहिता। अतः लोकहितप्रतिपादकेषु शास्त्रेषु संहिताया महत्त्वं सुतरां विद्यते।।

प्रकृतोऽपि संहिताग्रन्थोऽपर्वोऽनुपमश्च। एतस्य द्वितीयभागस्य बहुतरं वैशिष्ट्यमस्ति। एतस्य ग्रन्थस्य सम्पादकाः परम्परया समधीतज्योतिषविद्याः स्वाध्यायप्रवचनकर्मणि सततमभिरताः सत्यभाषा विदुषामग्रगण्या आचार्या विद्यावारिधिचन्द्रमौलिरैणावर्या राजन्ते। एतेषामुत्तरोत्तराभिवृद्धिमाशास्महे।। अशेषविघ्नशमनोऽनीकेश्वरोऽव्यादिति शम्।।

स्वस्तिश्रीसौम्य-मार्गशिर-कृष्णैकादशी
(२५-११-२१०६)

(रामानुजदेवनाथः)

**Ph:** 0191-2623533, **Fax:** 0191-2623090, **E-mail:** ranbirjmu@gmail.com,
**Web Site:** www.rsksjmu.ac.in

# विषयानुक्रमणिका:



***

।।श्रीः।।

वाचां दैवतमद्भुताक्षरमयं सारस्वताख्यं महः
साक्षात्सन्दधतं गणेशमनिषं ह्यन्तस्तमोवारकम्।।
चन्द्रालङ्कृतशेखरं षिवमथो गौरीं च विघ्नेश्वरं
नत्वा पूज्यवसिष्ठसारकलितामास्वादये संहिताम्।।

नानोपाधियुतान् नमाम्यविरतं श्रीरामचन्द्रान् गुरून्
पाण्डेयाभिधया प्रसिद्धयशसो विद्वद्वराग्रेसरान्।
येषां पुण्यकृपामवाप्य सुधियां मध्येऽद्य निष्किञ्चन–
–ऽप्युत्साहेन वृणोमि शोधनधिया टीकां हि नारायणीम्।।

सश्रद्धं प्रणतोऽस्मि पुण्यपितरौ श्रीशान्तिरामेश्वरौ
श्रीदैवज्ञ बिहारिलालचरणान् धन्यान् वदान्यान् भुवि।
साष्टाङ्गं प्रणिपत्य वै मुहुरहो ध्यायामि विद्यागुरून्
येभ्यः किञ्चिदधीत्य पङ्क्तिविधुरोऽप्यस्म्यत्र धन्यो भुवि।।

# अथाऽऽधानाध्यायः

### स्त्री पुरुष संज्ञा

**सोमात्मिकाः स्त्रियः सर्वाः पुरुषा भास्करात्मकाः।**
**तस्माच्चन्द्रवशात्तासां तेषां सर्वं हि सूर्यतः॥१॥**

सभी स्त्रियाँ सोमात्मिका एवं सभी पुरुष सूर्यात्मक होते हैं इसलिये चन्द्रमा के कारण स्त्रियों में रज तथा सूर्य के कारण पुरुषों में वीर्य होता है॥१॥

### रजोधर्म प्रारम्भ काल

**अर्कान्मुक्तः शशी यद्वद्द्वादशांशादुदेष्यति।**
**रजोदर्शनमप्यासां द्वादशाब्देश्च जन्मतः॥२॥**

जिस प्रकार सूर्य से बारह अंश आगे जाने पर चन्द्रमा उदय होता है उसी प्रकार जन्म से बारहवें वर्ष में स्त्रियों में रजोधर्म प्रारम्भ होती है॥२॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

प्राप्ते च द्वादशे वर्षे याता कन्या रजस्वला।
वर्षाद्द्वादशकादूर्ध्वं यदि पुष्पं वहिर्नहि
अन्तः पुष्पं भवत्येव पनसोदुम्बरादिवत्॥

—(कश्यपः पी.यू.धा. टीका मु.चि. ५ प्रकारण, प्रथम श्लोक)

### रजोधर्म का कारण

**अत ऊर्ध्वं प्रतिमासं भवति रजो भौमयोगतस्तासाम्।**
**अनुपचयस्थे चन्द्रे धरणिसुतवीक्षणाद्वापि॥३॥**

इसके ऊपर अर्थात् त्रयोदश वर्ष से प्रत्येक मास में स्त्रियों को रजोधर्म (मासिकधर्म) चन्द्र और मङ्गल के योग से होता है। अनुपचय (१, २, ४, ५, ७, ८, ९, १२) स्थान में चन्द्रमा की स्थिति होने पर मङ्गल की दृष्टि हो तो स्त्रियों में मासिक धर्म होता है॥३॥

### अश्विन्यादि नक्षत्रों में प्रथम रजोदर्शन का शुभाशुभ फल

**प्रथमरजोदर्शनतः शुभाशुभं भवति सर्ववनितानाम्।**
**तस्मात्प्रतिधिष्ण्यफलं वक्ष्ये दस्त्रादितः क्रमशः॥४॥**

प्रथम रजोदर्शन से सभी स्त्रियों का शुभाशुभ फल होता है। इसलिये प्रत्येक नक्षत्रानुसार अश्विनी आदि नक्षत्रों का फल कहते हैं।।४।।

**बहुसुतधनसंपच्छीलसौभाग्ययुक्ता ।**
**विगतनिखिलदोषा दस्रभे पुष्पिणी या।।**
**सुरगुरुपतिभक्ता मानिनी गीतनृत्य-।।**
**प्रवरकुसुमवस्त्रैर्भूषणैर्भूषिता स्यात्।।५।।**

अश्विनी नक्षत्र में प्रथम वार जो स्त्री मासिक धर्म (रजोधर्म) को प्राप्त होती है वह बहुत सन्तान, धन सम्पत्ति शील एवं सौभाग्य से युक्त हो कर सभी दोषों को नष्ट करती है। देवता गुरु एवं पति की भक्त, गीत-नृत्य में माननीय, श्रेष्ठ, वस्त्र, पुष्प तथा आभूषणों से सुशोभित होती है।।५।।

**क्रमागतः-**

**ज्योतिर्निबन्धे-**

सहिता धनपुत्राभ्यामश्विन्यां चेद्रजस्वला।
दोषयुक्ता भरण्यां तु कृत्तिकायां सुपुत्रिणी।।
रोहिण्यां धनसंयुक्ता मृगे स्यात्सुतशालिनी।।
आर्द्रायां भर्तृनिरता निर्वैरा च भवेत्सती।
पतिव्रता पुनर्वसौ पुष्ये च व्यालभद्वये।।
पूर्वाद्वये च युवती भारिका च करद्वये।।

—(१०६, पृ. १-३ श्लोक)

**परपुरुषपरा स्याद्दुर्भगा याम्यधिष्ण्ये।**
**विविधचपलभाषा भूषणासृक्स्त्रवार्ता।।**
**नियतमनतवाक्यत्रस्तविद्वेषिणी सा।**
**कुलजनगुणहीना छत्रपापा खला स्यात्।।६।।**

जिस स्त्री का प्रथम रजोदर्शन भरणी नक्षत्र में होता है वह स्त्री पर पुरुष में आसक्त, दुर्भाग्ययुक्त, विविध प्रकार से चपला, अनर्गल भाषण देने वाली, भूषणों सहित, परन्तु कठोर वार्त्ता करने वाली, झूठे वचनों से भयभीत करने वाली, विद्वेषिणी, कुलीन लोगों जैसे गुणों से हीन, छिपकर पापकर्म करने वाली दुष्टा होती है।।६।।

**वैश्वानरर्क्षे बहुमित्रपुत्रधनान्विता सत्यपरा गुणाढ्या।**
**विकीर्णकामा प्रियवादिनी च नारी सहोत्थप्रवरा कलाज्ञा।।७।।**

कृत्तिका नक्षत्र में प्रथम रजोदर्शन हो तो स्त्री अधिक मित्र, पुत्र तथा धन

से युक्त, सत्य बोलने वाली, गुणवती, विविध कामनाओं वाली, प्रियवादिनी, अपने कुल में श्रेष्ठा तथा कलाओं को जानने वाली होती है।।७।।

क्रमागतः-

अश्विन्यादिषु बोद्धव्यं फलं च प्रथमार्तवे
पुत्राढ्या दुर्भगासाध्वी धनाढ्या सुतशालिनी।।
समशीला सुपुत्राढ्या पुत्रिणी निधनाधना।
सुभगा चार्थिनी विज्ञाश्रीयुता पतिवल्लभा।।
धनिनी निर्धनाभाग्या दुःशीला क्लेश कारिणी।
सुभगा श्रीयुतार्थढ्या निर्धना कलहप्रिया।।
सुशीला धनपुत्राढ्या क्रमेणैवमुदाहृतम्।
कृत्तिकादित्यरौद्रेऽपि मघा ज्येष्ठा रजस्वला।।
आदिपादे शुभं प्रोक्तं सा कन्या मङ्गलप्रदा
द्विपादे चेद्रजो दृष्टं पञ्चविंशति भोजनम्
त्रिपादे च चतुष्पादे शान्तिं कुर्याद्यथा विधि।।

—(वृहद्दैवज्ञ रञ्जनम् पृ.सं. ६६८-७०)

**पितामहर्क्षे सुगुणा सुवृत्ता पतिप्रिया सत्यवती धनाढ्या।**
**बन्धुप्रिया मानरता सुरूपा प्रहृष्टचित्ता प्रविकीर्णकामा।।८।।**

रोहिणी नक्षत्र में प्रथम रजोदर्शन हो तो स्त्री सुन्दर गुणों वाली, शुद्ध आचरण युक्त, पतिप्रिया, सत्य बोलने वाली, धनी, बन्धुओं में प्रिय सम्मान में लगी हुई, सुरूपा, चिन्ता रहित, अनेक इच्छाओं वाली होती है।।८।।

**सदा मृगे भाग्यवती सुवृत्ता कलानुरक्ता विपुलार्थयुक्ता।**
**पतिप्रिया मानवती बहुज्ञा प्रजावती बन्धुजनैः सुमान्या।।९।।**

मृग्शिरा नक्षत्र में प्रथम रजोदर्शन हो तो स्त्री सदैव भाग्यवती, श्रेष्ठ आचरण वाली, कलाओं में अनुरक्त, प्रचुर धनवती, पति प्रिया, सम्माननीया बुद्धिमती, बहुत सन्तानों से युक्त तथा बन्धुजनों में सम्मानित होती है।।९।।

**महेशभे पुष्पवती विशीला मृषानुरक्ता परकार्यसक्ता।**
**पत्युज्झिता प्रेष्यवती विनिःस्वा परप्रिया दुःखवती विपुत्रा।।१०।।**

आर्द्रा नक्षत्र में प्रथम रजोदर्शन हो तो स्त्री शील रहित, झूठी बातों में अनुरक्त अर्थात् मूर्खों में आसक्ति रखे और दूसरे के कार्यों में आसक्त रहे, पति से त्यक्ता, भृत्या, निर्धना, पर प्रिया, दुःखों को झेलने वाली और पुत्रों से रहित होती है।।१०।।

**मायाविनी कार्पटिका विशीलाऽदित्याख्यधिष्ण्ये कुचरित्रयुक्ता।**
**वन्ध्या पुनर्भूः परसद्मसक्ता दुश्चेष्टिता पुष्पवती कलाढ्या॥११॥**

पुनर्वसु नक्षत्र में प्रथम वार रजोधर्म होने पर स्त्री मायाविनी, कपटनी, शील रहित, दुष्ट चरित्रा, बाँझ, पुनः विवाह करने वाली, दूसरे के घर में आसक्त, बुरी चेष्टाओं से युक्ता एवं कलाओं में निपुणा होती है॥११॥

**सुगन्धपुष्पाम्बरभूषणेषु सदा कलागीतनिबद्धचित्ता।**
**पुष्ये त्वगम्यागमना गतार्ता प्रजावती दुःप्रतिभान्विता सा ॥१२॥**

पुष्य नक्षत्र में प्रथम वार पुष्पवती होने पर सुगन्धित पुष्प, वस्त्र भूषणों से युक्ता, गीतावाद्यादि कलाओं में चित्त लगाने वाली, अगम्य गमन करने वाली, रोग रहित, पुत्रों से युक्त, किन्तु दुष्ट प्रतिभा से युक्त होती है॥१२॥

**क्रमागतः–**

**ज्योतिर्निबन्धे–**

स्वातीद्वये धनवती विधवास्यात् परद्वये।
मूलद्वये नित्ययुक्ता सुभगास्यात्परद्वये॥
धनिष्ठायां स्वैरिणी च सती शतभिषद्वये।
अहिर्बुध्न्यद्वये नारी सुभगा भर्तृतत्परा॥

—(ज्योतिर्निबन्धे १०६, पृ. ४-५ श्लोक)

**ऋषिगर्गः–**

पतिव्रता नित्यं सुपुत्रा कष्टचारिणी।
स्वकर्मनिरता हिंस्रा पुत्रपौत्रादिसंयुता॥
नित्यं धनकथा सक्ता पुत्रधान्य समन्विता।
मूर्खार्थाढ्या गुणवती दस्रक्षीदेक्रमात फलम्।

—(मु.चि.मणि ५ प्र. १ श्लोक पी.यू.धा. टीका)

**खला पुनर्भूर्बहुदोषसक्ता भौजङ्गभे पुष्पवती विशीला।**
**मायापटुर्लम्पटिकार्थहीना स्वच्छन्दगा व्याधिकटी कलाज्ञा॥१३॥**

आश्लेषा नक्षत्र में प्रथम रजोदर्शन होने पर दुष्टा, दूसरा विवाह करने वाली, बहुत से दुष्कर्मों में आसक्त, शील रहित, मायावी, लम्पटिका, धन से वञ्चित, स्वछन्द गमन करने वाली, कटी भाग में रोग परन्तु कलाओं को जानने वाली होती है॥१३॥

**पतिप्रिया पुष्पवती मघायां प्रजावती सा कुलटा तथापि।**
**सिंहीव योषिद्वरवृन्दमध्ये प्रभाति खद्योतवदम्बरेऽपि॥१४॥**

मघा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री पति की प्रिया, सन्तान से

युक्त होते हुए भी कुलटा होती है। शेरनी की तरह सभी श्रेष्ठ स्त्रियों के मध्य में वैसे सुशोभित होती है जैसे आकाश पर जुगनू होता है।।१४।।

**भाग्ये भाग्यवती बहुव्ययपरा पानप्रसक्ता वृता।**
**सत्स्वीर्ष्या कुलटा कलासु निपुणा नीरुक्च भग्नव्रता।।**
**दुःपुत्रा कुलपांसिनी खलरजा भग्नोद्यमा पांशुला।**
**दुःखा पापरता विधर्मनिरता षण्ढप्रिया संततम्।।१५।।**

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर स्त्री भाग्यवती, बहुत खर्चा करने वाली, पान प्रक्रिया में आसक्त वृत्ति वाली, सज्जनों से ईर्ष्या करने वाली, कुलटा, कलाओं में निपुणा, रोगों से रहित, नष्ट व्रता, दुष्ट पुत्रों से युक्त, रक्तप्रदरादि दोषयुक्त, भग्न उद्यम वाली, अपने सम्मान को धूलि में मिलाने वाली (पांशुला संज्ञा विशेष है), कुल कलंकिनी, पापाचरिणी, धर्म से विमुख एवं नपुसंकों की प्रिया होती है।।१५।।

**कुलद्वयानंदकरी विभक्तकार्या कलाढ्या विनिगृह्यचित्ता।**
**विकीर्णकामा रुचिरा सुवृत्ता श्लक्ष्णार्यमर्क्षे विगताऽरिवैरा।।१६।।**

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो दोनों कुलों को आनन्दित करने वाली, कार्यों को विभक्त करे, कलाओं में निपुण, अपने चित्त को नियन्त्रित रखने वाली, अनेक इच्छाओं वाली, सुन्दर सुशीला, अच्छे चरित्र वाली तथा शत्रुओं से वैर न करने वाली होती है।।१६।।

**सम्भोगशीला परकार्यकारिणी वन्ध्वर्चिता श्रेष्ठगुणानुरक्ता।**
**गताभ्यसूया विगतारिवर्गा हस्तेंऽगना पुष्पवती विलोला।।१७।।**

हस्त नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री भोगशीला, दूसरे के कार्य को करने वाली, भाई-बन्धुओं से पूज्या, श्रेष्ठ गुणों में अनुरक्त, ईर्षा एवं शत्रु वर्ग रहिता तथा लोलुप्ता रहित होती है।।१७।।

**त्वाष्ट्रे प्रियालुः सुरतप्रियोद्यद्वैरा निगृह्यात्महिते नियुक्ता।**
**निवृत्तवैरामयपीडिताङ्गी संगीतविद्यानिपुणा कलासु।।१८।।**

चित्रा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो अपने प्रिय (पति) द्वारा चाही जाने वाली, सुरत प्रिया, वैर, शत्रुता में लोगों को पिछाड़ कर अपने हित को करने वाली, वैर एवं रोग से निवृत्त परन्तु पीड़ित अङ्गों वाली, संगीत, विद्या तथा कलाओं में निपुणा होती है।।१८।।

**दृढव्रता सत्यपरा सुवृत्ता निवृत्तरागा पररन्ध्रगोप्त्री।**
**गजाभिगामिन्यनिलाह्वयर्क्षे प्रमोदिनी मंगलकार्यवृन्दे।।१९।।**

स्वाती नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री कठोर व्रती, सत्य भाषिणी, सुन्दर आचरण वाली वैरागी, पर दोषों को छुपाने वाली, हाथियों की सवारी करने वाली तथा मङ्गल कार्यों में प्रमोद वर्धिनी होती है।।१९।।

क्रमागतः-

कश्यपः-

मानिनी श्रीयुतासाध्वी सुभगाबन्धु पूजिता।
सौख्यन्विता पुत्रवती पतिभक्ता च दस्रभे।।१।।
काकबन्ध्या पर प्रेष्या दुःशीला स्वैरिणीरवला।
स्वगर्भपातरता याम्यभे बहुभाषिणी।।२।।
मृतप्रजा पर प्रेष्या पर सन्तान सञ्युता।
परपुंसितरताभोग्या मान युक्ता च वह्निभे।।३।।
सुरुपा सुभगा मान्या पतिभक्ता सुपुत्रिणी।
श्रीसंयुता स्थिरा धीरा मन्दगा स्याद्विधातृभे।।४।।
पतिव्रता सुपुत्राढ्या नारी सर्वसहासती।
भोगान्विता धर्मरता चान्द्रभेशीघ्रगामिनी।।५।।
चलव्रता खला कष्टा रजोगुण समन्विता।
बन्ध्या पितृगृहसक्ता व्यसिनीरौद्रभे तदा।।६।।
कुलाचाररता मान्या पतिभक्ता सुपुत्रिणी।
सुभगाधनिनी भोग्या कुटिला द्वितिभे सती।।७।।
प्रचण्डकामाऽपि सती सुपुत्रा भातृमोदिनी।
यशस्विनी धनोपेता वहुव्यय परेज्यभे।।८।।
अलसा निर्धनाकामा पुंश्चली कोपिनीखला।
दुःसन्तानवती दुष्टा परकार्यरताऽहिभे।।९।।

—(कश्यपसंहिता अध्याय २३, श्लोक संख्या १-९)

**द्विदैवभे पुष्पवती प्रवृत्ता विचित्तमोघामयवैरिसंघा।**
**विवादशीला विपुलप्रतापा सम्भोगमाप्नोति शुनीव शश्वत्।।२०।।**

विशाखा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री चंचल चित्त वाली, असत्य में तत्पर, शत्रु समूह के बिना विवादशीला, बहुत पराक्रमी परन्तु निरन्तर कुतिया की भान्ति भोग प्राप्ति करती है।।२०।।

**मैत्रे विमित्रा सगदाङ्गहीना विवादशीला विगुणा सवैरा।**
**प्रवृत्तरागा प्रविकीर्णकामा स्वगर्भसंस्त्रावपरा विरक्ता।।२१।।**

अनुराधा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री मित्र रहित, रोगयुक्त, अङ्गहीना, विवादशीला, गुणों से रहित, वैरयुक्ता, राग-अनुराग में प्रवृत्त, विखरी हुई

इच्छाओं वाली, अपने गर्भ को स्वयं नष्ट करने वाली तथा दूसरों से विरक्त होती है॥२१॥

**पौरन्दरे पुष्पवती विमर्षा विनिंदिताऽतिव्यसनी सुगूढा।**
**परंतपा प्रव्रजितेरतात्मा परप्रजासूयवती सपापा॥२२॥**

ज्येष्ठा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री सहनशीलता (धैर्य) हीना, निन्दिता, छुपछुपा कर अत्यधिक व्यसन करने वाली, दूसरे को कष्ट दे, निरन्तर घूमने की चाह रखे, दूसरे की सन्तान के साथ द्वेषी तथा पापिनी होती है॥२२॥

**मूले प्रकामाऽधिकसत्वहीना व्यसुर्वुभुक्षोद्धृतदोषचित्ता।**
**निरन्तरं दूषितकर्मवृत्ता प्रजावती गोगजगामिनी च॥२३॥**

मूल नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन हो तो स्त्री कामनाओं सहित, अधिक सत्त्वहीना, पर प्राणों की भूखी, उद्धृत दूषित चित्तवती, निरन्तर दूषित कर्मों में प्रवृत्त, सन्तान युक्त, हाथी अथवा गाय की भान्ति चलने वाली होती है॥२३॥

**पानीयभे पुष्पवती विवादशीला कलाकर्मणि दुष्टचित्ता।**
**परानुरक्ता वनशैलसक्ता प्रच्छन्नपापाऽद्भुतकर्मरक्ता॥२४॥**

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र में प्रथम वार पुष्पवती हो तो स्त्री विवादशीला, कला कार्यों में संलग्न, दुष्ट चित्त वाली, पर पुरुष में अनुरक्त, वन-पर्वतों में घूमने में आसक्ति, छुपाकर पाप कर्मों में रत तथा अद्भुत (विचित्र) कार्यों में संलग्ना होती है॥२४॥

**वैश्वे सती पुष्पवती सुवृत्ता महागुणैरुन्नतिमातनोति।**
**चित्तानुरक्ता स्वपतेरुदारा युक्ता विवैरा विनिवृत्तदोषा॥२५॥**

उत्तराषाढ़ा नक्षत्र में प्रथमवार रजोदर्शन होने पर स्त्री सुन्दर आचरण युक्ता, बहुत गुणों से उन्नति प्राप्त, अनुरक्त चित्त से पति के लिये उदार, शत्रु रहित तथा दोष रहित आचरण वाली होती है॥२५॥

**वहुसुतधनधान्यप्रोल्लसद्भूषणाढ्या ।**
**प्रचुरगुणगणाद्यैर्भर्त्तुरानन्ददा स्यात्॥**
**युवतिजनमता सा विष्णुधिष्ण्ये विचित्रा।**
**प्रवरनटनगीतातोद्यवाद्ये ह्यभिज्ञा॥२६॥**

श्रवण नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर स्त्री बहुत पुत्र, धनधान्यादि तथा सुन्दर भूषणों से सुशोभित, कई प्रकार के गुणों से पति को अनन्दित करने

वाली, युवतियों में विचित्रा अर्थात् श्रेष्ठा एवं अग्रगण्या नृत्य-गीतादि तथा वाद्यों को जानने वाली होती है।।२६।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

मानिनी लास्यनिपुणा गेयज्ञा शत्रु सूदिनी।
पितृवेश्मरता साध्वी पितृभक्ता च पितृभे।।१०।।
कृशा क्लेश सहा वन्ध्या परकार्यरता खला।
निशान्धा पुंश्चली क्रुद्धा दुर्भाग्याभग दैवते।।११।।
बन्धुपूज्या पुत्रवती धर्मसक्ता दृढ़व्रता।
पितृमातृजनैर्युक्ता विवैरार्यमभे सती।।१२।।
बहुपुत्र बहुधना निर्दोषा भोगभागिनी।
व्यवहार कलाभिज्ञा भर्तृपूज्या हस्तभे।।१३।।
आढ्या वाणिज्यकुशला निपुणा चित्रकर्मसु।
कामभोगपरा दक्षा सुशीला चित्रभे सती।।१४।।
पुत्रपौत्रवतीसाध्वी कलाभिज्ञा धनान्विता।
साधुप्रिया धर्मसक्ता भोगिनीरुक्च वायुभे।।१५।।
परपुंसरता दुष्टा नीचकर्मरता खला।
दुष्पुत्रा मलिना रुष्टा द्विदैवर्क्षे च दुर्भगा।।१६।।
पतिपक्षार्चिता कान्ता सुपुत्रासुभगा गुणैः।
स्वकुलाचार निरतागुणढ्या मित्रभे सती।।१७।।
दुष्पुत्रा दुर्भगा क्लेशा दुश्चारिभिरताऽव्यसुः।
इन्द्रभे रोगसंयुक्ता नीचकर्मपराव्यया।।१८।।

—(कश्यप संहिता अध्याय २३, श्लोक संख्या १०-१८)

**अतिवसुधनभाक्स्यान्मानिनी सच्चरित्रा।**
**विगतभयकुवृत्ता सन्नतांगी गुणाढ्या।।**
**पतिहितनिरता स्याद्बन्धुवर्गैः प्रपूज्या।**
**प्रियहितकरकर्मण्युत्सुका प्रोष्ठपद्याम्।।२७।।**

धनिष्ठा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर स्त्री अत्यन्त भोगी, धनवती, भाग्यशालिनी, माननीया, श्रेष्ठ चरित्रवती, अपने पति के साथ निर्भय एवं निर्लज्ज व्यवहार करने वाली, गठे हुए शरीर वाली, गुणवती, पति हित रता, अपने भाई-बन्धुओं में पूज्या, प्रिय एवं हितकर कार्यों को करने में उत्सुक तथा पररूपा होती है।।२७।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

परदुःखोपशमनी स्वार्कानिरतासती।
पुत्रारोग्यवती भोग्या नैऋत्यर्क्षे विपुत्रिणी॥१९॥
क्रूरकर्मरतादुष्टा छन्नपापाखलालसा।
दीर्घकामाऽति दुष्पुत्रा तोयर्क्षे दुर्मता जड़ा॥२०॥
भोग सौभाग्य संयुक्ता सुपुत्र सुभगासती।
कुशलाऽखिल कार्येषु वैश्वभेपतिपूजिता॥२१॥
धनधान्य सुपुत्राढ्या मानिनी भोगभागिनी।
पतिप्रिया बन्धुपूज्या धर्मज्ञा श्रवणे सती॥२२॥
धनधान्यागमपरा सुपुत्राबन्धु पूजिता।
साध्वीसर्वगुणोपेता वसुभेपतिमोदिनी॥२३॥
बहुपुत्रा गुणवती धनिर्ना मानिनी सती।
स्वकुलाचार निरता शत गे भोगदायिनी॥२४॥
शिल्पकार्यरता क्रोधा निपुणाद्यूत कर्मणि।
बन्धकी बन्धुभि द्वेष्या पूर्वाभाद्रपदे खला॥२५॥
पुत्रसौभाग्य संयुक्ता पतिभक्तादृढ़व्रता।
बन्ध्वर्च्या धर्मनिरताऽहिर्बुध्न्ये धनिनी सती॥२६॥
धनधान्यकुलासाध्वी कामिनी बहुपुत्रिणी।
पतिभक्ता बन्धुपूज्या गुणैर्युक्ता च पौणभे॥२७॥

—(कश्यप संहिता अध्याय २३, श्लोकसंख्या १९-२७)

निखिलवरकलाढ्या नृत्यगीतानुरक्ता।
विविधगुणगणाढ्या मानिनी भाग्ययुक्ता।
विविधपरिवरौघैः संवियुक्ता शतर्क्षे।
पतिकुलजनमान्या पुष्पवत्यंगना सा॥२८॥

शतभिषा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर स्त्री समस्त श्रेष्ठ कलाओं में धन्या, नृत्य-गीतादि में अनुरक्त, विविध प्रकार के गुणों से युक्ता, सम्मान को प्राप्त एवं भाग्यशालिनी, मिले-जुले परिवार से युक्ता, पतिकुल में सभी सदस्यों में मान्या होती है॥२८॥

शुभगुणगणहीना कर्कशा भाग्यहीना।
त्वनृतपरुषमन्त्रैर्दुर्जनान्तर्जयन्ती ॥
विचरति गुणमध्ये दुर्भगा वाजपादे।
जनकसदनवासा नष्टकामाऽद्यरूपा॥२९॥

पूर्वाभाद्रपदा में प्रथम वार पुष्पवती होने वाली स्त्री शुभगुणों से हीना, कर्कश स्वभाव वाली, भाग्यहीना, असत्य कठोर मन्त्रणाओं से दुष्टों को तारने वाली, गुणों के मध्य में विचरण करती हुई, दुर्भाग्य के कारण पिता के घर में निवास करने वाली, नष्ट कामनाओं वाली तथा सामान्य रूप वाली होती है।।२९।।

**गुणसुतसुखसंपद्भूषितांगी त्वभिज्ञा।**
**अभिभवति सपत्नान्सज्जनान्मानयन्ती।।**
**मृदुमधुरसुवाचा गीतनृत्योद्यता सा।**
**प्रवरबहुकलाज्ञा चोत्तराभाद्रपादे।।३०।।**

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर गुण, सुख, पुत्र तथा सम्पत्ति से युक्ता, सुशोभित अङ्गों वाली, सब कुछ समझने वाली, पतित लोगों को पीड़ा देती हुई सज्जनों को मान-सम्मान देने वाली, सुन्दर मधुर वचन कहने वाली, नृत्य गीतादि में रूचि रखे तथा अनेक प्रकार की कलाओं में धन्या होती है।।३०।।

### अनिष्टप्रद प्रथम रजोदर्शन

**पौष्णे विशीला बहुदुःखशोका विवादशीला पितृवेश्मसंस्था।**
**पराभितप्ता पतिपुत्रदूरा नीचैरता कापटिका च कन्या।।३१।।**

रेवती नक्षत्र में प्रथम वार रजोदर्शन होने पर स्त्री शील रहित, अत्यन्त दुःख एवं शोक से युक्ता, विवादशीला, पिता के घर में वास करे, दूसरों से दुःखी, पति एवं पुत्र से दूर, नीच लोगों में रत, कपट करने वाली होती है।।३१।।

### वार क्रम से प्रथम रजोदर्शन

**रिक्तासु पर्वस्वथ कार्तिकेयहर्योः क्षयाहे व्यतिपातविष्ट्याम्।**
**एकार्गले पारिघवैधृतेषु चोत्पातसन्ध्यासु रजोऽप्यनिष्टम्।।३२।।**

रिक्ता तिथियों (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी), पर्वतिथियों (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या, पूर्णिमा, संक्रान्ति), षष्ठी तिथि, द्वादशी तिथि, क्षय तिथि, व्यतीपात, भद्राकाल, एकर्गल, परिघ, वैधृति योगों में, त्रिसन्ध्या काल में प्रथम रजोदर्शन अनिष्टप्रद होता है।।३२।।

**सदा गदार्त्ता सुपतिव्रता सा वंध्या प्रजावत्यतुलार्थयुक्ता।**
**आनन्दकर्त्री त्वसती च पुष्पवती क्रमाद्भास्करवासरेषु।।३३।।**

वार क्रम से कन्या का प्रथम रजोदर्शन फल– रविवार प्रथम रजोदर्शन हो तो सदैव रोग से युक्ता, सोमवार को पतिव्रता, मङ्गलवार बन्ध्या, बुधवार सन्तान वाली, गुरुवार प्रचुर धनवती, शुक्रवार आनन्द करने वाली तथा शनिवार को दुष्टा होती है।।३३।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

रोगिनी रविवारे तु सोमवारे पतिव्रता।
दुःखिता भौमवारे तु बुधे सौभाग्य संयुता॥
श्रीसंयुता गुरोर्वारे पतिभक्ता भृगोर्दिने।
मलिना मन्दवारे तु रात्रावपि तथैव च॥

शुभाशुभ ग्रहों का प्रथम रजोदर्शन पर प्रभाव

आरोग्यसौभाग्यवती च सौम्यवर्गेषु सा पुष्पवती च कन्या।
दुःखा तथानर्थविवादशीला वर्गेष्वसौम्येषु च दुर्मतिः स्यात्॥३४॥

लग्न में शुभ ग्रहों का चन्द्रमा, बुध, गुरु, शुक्र का वर्ग हो तो प्रथम वार पुष्पवती होने पर कन्या आरोग्य एवं सौभाग्य को प्राप्त करती है। इसी प्रकार पाप ग्रहों का (सूर्य, मङ्गल, शनि) वर्ग हो तो दुःखी, रोगिनी, अनर्थ करने वाली, विवादशीला एवं दुष्ट बुद्धि वाली होती है।॥३४॥

रजोदर्शन का शुभाशुभ फल

नक्षत्रवारतिथियोगदिनार्द्धकाल ।
षड्वर्गसंकथितमिष्टमनिष्टमेतत् ॥
ज्ञात्वाल्पदोषमथ भूरि गुणं च पश्चाद्
वृद्धान् गुणोत्तमपरं शुभकर्म कार्यम्॥३५॥

नक्षत्र, वार, तिथि दिनार्धकाल ये सभी षड्वर्ग में कहे गये फल के अनुसार ही शुभाशुभ फल देते हैं। अतः अल्प दोषों को समझ कर बाद में प्रचुर गुणों को समझते हुए बड़े-बुजुर्गों को गुणों के अधिक समय में शुभ कार्य करने चाहिए।॥३५॥

प्रभूतदोषं यदि दृश्यते तत्पुष्पं तदा शान्तिककर्म कार्यम्।
विवर्जयेदेव तदेकशय्यां यावद्रजोदर्शनमिष्टमग्रे॥३६॥

यदि प्रथम वार रजस्वला काल में अत्याधिक दोष प्रतीत हों तो पहले शान्तिक कर्म करने चाहिए। तत्पश्चात् जब तक इष्ट रजोदर्शन न हो, तब तक एक शय्या से कन्या को भिन्न करना चाहिए।॥३६॥

चाण्डाली पतितासमाथ रजकी शूद्रा दिनादिक्रमात्।
शुद्धा पुष्पवती च पंचमदिने हव्येषु कव्येषु च॥
चेद्दृष्टेऽह्नि नवोदकुंभसलिलौ सन्मंत्रितैरौषधैः।
स्नानं पापनुदं सपंचकलशैः कार्यं समृद्‌भिर्जलैः॥३७॥

रजस्वला कन्या प्रथम दिन चण्डाली, दूसरे दिन पतिता, तीसरे दिन रजकी (धोविन), चौथे दिन शूद्रा तथा पाँचवें दिन देवताओं एवं पितरों के पूजन के लिए शुद्ध हो जाती है। यदि पाँचवें दिन क्रूरवार आ जाए तो शुद्ध (नवीन) कलश के जल से अथवा मन्त्रित, औषधियों से पाँच भरे हुए कलशों के जल से स्नान करने से सभी पाप नष्ट हो जाते हैं।।३७।।

**क्रमागतः-**

**प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी।**
**तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽह्नि शुद्ध्यति।।**

—(मु.चि. मणि ५ प्र. ६ श्लोक पी.यू.धा.टी.)

**ईशानतो गोमयमण्डले च परिसृतेऽग्नौ जुहुयात्सदूर्वाम्।**
**युग्मां घृताक्तां च समित्प्रमाणां गायत्रिकांसाष्टसहस्त्रसंख्याम्।।३८।।**

ईशान कोण में गाय के गोबर से लिप्त मण्डल बना कर स्थापित अग्नि में समिधा प्रमाण से धीमें में लिप्त युग्म दुर्वाओं से आठ हज़ार संख्या में गायत्री होम करे।।३८।।

**शतप्रमाणामथवाऽघहंत्री शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च।**
**ततः सुरान्भूमिसुरान्पितृंश्च सन्तर्पयेदन्नसुवर्णवस्त्रैः।।३९।।**

शतप्रमाण अथवा अभी नष्ट होने वाली अग्नि हो तो पवित्र जौ तथा तिल मिश्रित करके व्याहृतियों के साथ होम करके देवताओं भूदेवताओं अर्थात् ब्राह्मणों को तथा पितरों को अन्न, वस्त्र एवं स्वर्ण दान करके तृप्त करना चाहिए।।३९।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

**दोषाल्पत्वे गुणाधिक्ये सेककर्म समाचरेत्।**
**निंद्यार्क्षे तिथिवारेषु यत्रपुण्यं प्रदृश्यते।।**
**तत्रशान्तिः प्रकर्त्तव्या घृतदूर्वातिलाक्षतैः।**
**प्रंत्येकमष्टशतं च गायत्र्या जुहुयात्ततः।।**
**स्वर्ग गोभूतिलान्दद्यात्सर्वदोषापवुत्तये।**
**भर्ता तस्यापि गमनं वर्जयेद्रक्त दर्शनात्।।**

—(ना.सं.अ. १५, श्लोक ३२-३४)

## आधनम् निर्णय

**पौष्णद्वये पित्र्यमयाम्यसार्पविष्णुद्वये नेधनजन्मभेषु।**
**उत्पातपापग्रहदूषितेषु न कार्यमाधानमनिष्टलग्ने।।४०।।**

रेवती, अश्विनी, मघा, भरणी, आश्लेषा, श्रवण, धनिष्ठा, लग्न तथा

अष्टम स्थानों में, उत्पात सहित पापग्रहों द्वारा दूषित तथा अनिष्ट लग्न में आधान कार्य नहीं करना चाहिए।।४०।।

**उपप्लवे वैधृतिपातयोश्वच विष्ट्यां दिवा पारिघपूर्वभागे।**
**संध्यासु पर्वस्वपि मातृपित्रोर्मृतेऽह्नि पत्नीगमनं विवर्ज्यम्।।४१।।**

उपद्रव, वैधृति, व्यतीपात योग भद्राकाल में दिवा, परिघ योग का पूर्व भाग त्रिसन्ध्या काल, पर्व तिथियों (चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस, पूर्णिमा एवं संक्रान्ति) में, माता-पिता के श्राद्ध दिवस में पत्नी से सम्भोग करना विवर्जित है।।४१।।

## पुत्र-पुत्री प्राप्ति योग

**दिनेषु युग्मेषु च वक्ष्यमाणयोगैः सुतार्थी स्वसतीमुपेयात्।**
**दिनेष्वयुग्मेषु च कन्यकार्थी हित्वा च गण्डांस्तिथिलग्नभानाम्।।४२।।**

बताये हुए योगों में सम दिनों में अर्थात् रजोदर्शन से (चतुर्थ, षष्ठ, अष्ट, दशम, द्वादश चतुर्दश षोडश) दिनों में पुत्र की कामना रखने वाले व्यक्ति को अपनी सद्भार्या के साथ सहवास करना चाहिए। इसी प्रकार कन्या की इच्छा रखने वाले व्यक्ति को गण्डान्त तिथि, लग्न एवं नक्षत्रों को त्याग कर अयुगम दिनों में (पञ्चम, सप्तम, नवम, एकादश, त्रयोदश, पंचदश) दिनों में गर्भाधान करना चाहिए।।४२।।

**आधानलग्ने विषमांशराशौ जीवेंदुजाभ्यां युतवीक्षिते वा।**
**नान्यैः सुपुत्रस्त्वथ पापखेटैः पापी च मिश्रैर्बलिभिर्विमिश्रः।।४३।।**

आधान लग्न में, विषम राशि नवांश में, गुरु एवं बुध का युति सम्बन्ध या दृष्टि सम्बन्ध होने पर पुत्र प्राप्ति होती है। अन्य योगों में पाप ग्रहों से या शुभाशुभ ग्रह मिश्रित होने से पुत्र प्राप्ति नहीं होती।।४३।।

**युग्मांशलग्ने बलयुक्तशुक्रनिशाकराभ्यां युतवीक्षिते वा।**
**नान्यैः सुकन्या त्वथ पापरूपा पापैस्त्वशेषं तु विचिंत्य वाच्यम्।।४४।।**

समनवांश या लग्न में बलशाली चन्द्र शुक्र का युति सम्बन्ध अथवा परस्पर दृष्टि सम्बन्ध हो तो सुन्दर कन्या प्राप्ति होती है। यदि पाप लग्न एवं नवांश हो अथवा पापग्रहों से युत या दृष्ट हो तो सुन्दर कन्या का जन्म नहीं होता विधिपूर्वक विचार करके ही फल कहना चाहिए।।४४।।

**ओजर्क्षांशे लग्नगे वीर्ययुक्ते जीवेन्द्वर्कैरोजराश्यंशकस्थैः।**
**पुंजन्म स्याद्व्यत्यये कन्यका स्यान्मिश्रैः षण्ढो द्व्यंगगैर्द्वित्रिजन्म।।४५।।**

विषम नवांश, लग्न या विषम नक्षत्र में बलशाली बृहस्पति, चन्द्रमा तथा सूर्य विषम नवांश राशियों में हों तो पुत्र का जन्म होता है। इसके विपरीत होने पर कन्या जन्म होता है। मिश्रित ग्रहों की स्थिति आ जाने पर नपुंसक, दो या तीन बच्चे भी होते हैं।।४५।।

**ओजांशकर्क्षाद्विषमर्क्षसंस्थः पुंजन्मकारी रविसूनुरेकः।**
**विचार्य्य वीर्यं पुरुषग्रहाणां वाच्योऽथ पुत्रस्त्वथ पुत्रिका वा।।४६।।**

विषम नवांश, विषम नक्षत्र में सूर्य पुत्र शनि एक पुत्र को देने वाला होता है। पुरुष ग्रहों का बल विचार करके ही पुत्र एवं कन्या जन्म के सन्दर्भ में कहना चाहिए।।४६।।

**चन्द्रार्कपुत्रक्षितिजैः स्ववर्गैर्बृहस्पतौ धर्मविलग्नपुत्रगे।**
**योगेष्वपत्यं भवतीहनिश्चयादमी च योगा विफला विवीजिनाम्।।४७।।**

चन्द्रमा, सूर्य पुत्र शनि तथा मङ्गल अपने-अपने नवमांशों में स्थित हों, बृहस्पति नवम में, लग्न में या पञ्चम में हो तो यह योग अमी योग कहलाता है इस योग में निश्चित पुत्र प्राप्ति होती है, परन्तु विबीजिनाम् अर्थात् नपुंसकों के लिये यह योग विफल हो जाता है।।४७।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

**अयुग्मे दिवसे भार्या कन्यार्थी कामयेत्पतिः।**
**निर्वीजानामिमे योगाः सर्वदा निष्फलप्रदाः।।**

—(अध्याय १६ श्लोक ८)

**कश्यपः–**

**पुंग्रहैर्वीक्षिते युग्मतिथौ पत्नीं च कामयेत्।**
**पुंजन्म व्यत्यये स्त्रीस्थान्मिश्रे षण्ढत्व सम्भवः।।**
**निर्वीजानाममी योगा विदूशामिव निष्फलाः।**
**कान्ताकटाक्षदृक्पाता वशीकृतजगत्त्रया।।**

—(अध्याय २३, श्लोक ४२-४३)

**क्रमागतः–**

**ज्योतिषसारे–**

**रात्रौ चतुर्थ्यां पुत्रः स्यादल्पायुर्धनवर्जितः।**
**पञ्चम्यां पुत्रिणी नारी षष्ठ्यां पुत्रस्तु मध्यमः।।**
**सप्तम्याप्रजायोषिदष्टम्यामीश्वरः पुमान्।**
**नवम्यां सुभगानारी दशम्यां प्रवरः सुतः।।**

एकादश्यामधमा स्त्री द्वादश्यां पुरुषोत्तमः।
त्रयोदश्यां सुतापापा वर्णसङ्करकारिणी॥
धर्मजश्च कृतज्ञश्च आत्मवेदो दृढव्रतः।
प्रजापते चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां पतिव्रता॥
आश्रयः सर्वभूतानां षोडश्यां जायते पुमान्॥
—(पृ. ५५, १-५ श्लोक)

**न च दशमनिशाविवर्जनं प्रकुर्यादृतुसमये पुरुषः स्त्रियः कदाचित्।**
**ऋतुरपि दशषड्वासराणि प्रथमनिशात्रितयं न तत्र गम्यम्॥४८॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्ध वसिष्ठ विरचितायां संहितायां आधानाध्यायश्चतुर्विंशः॥२४॥**

पुरुष को स्त्री के ऋतु समय से दशम रात्रि तक कदाचित् विवर्जित नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऋतु सोलहा दिन तक ही रहती है। इसमें प्रथम तीन रात्रियों में स्त्री से सम्भोग नहीं करना चाहिए॥४८॥

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के आधानाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥२४॥

**पाठान्तरम्**

०१.(अ) वा. सम्पूर्णश्लोकस्यलोप: ज२-सोमात्मिकाया: (सोमात्मिका)
(अ) ज१, ज२ द्वादशांश: प्रदृश्यते (यद्वद्द्वादशांदुदेष्यति)
०२.(ब) वा. मु.पु. द्वादशांशैश्च (द्वादशाब्देश्च)
०४.(ब) ज२-द्वस्रादिश: (दस्रादित:)
०५.(ब) दोशा (दोषा)
(ब) ज१, ज२, सुन्वराणीया (पुष्पिणीया)
०६.(ब) ज१, वयार्ता, ज२, श्रुवार्ता (सृक्स्रवार्ता)
(द) ज१, ज२, कुलजनहीना (कुलजनगुणहीना)
०७.(अ) ज१, बहुपुत्रमित्रधना, ज२, बहुपुत्रमित्रधनान्वती (वहुमित्रपुत्रधनान्विता)
(अ) ज१, सत्यव्रतीगुणाढय, ज२, सत्यवतीगुणाढ्या (सत्यपरागुणाढ्या)
(ब) ज१, प्रियवोदिनी (प्रियवादिनी), ज१, २, मानीसहोर्य (नारी सहोत्थप्रवरा)
०८.(अ) वा. पीतामहर्क्षे (पितामहर्क्षे)
(अ) ज१, २-पतिव्रता (पतिप्रिया)
(ब) ज१, ज२-मानवती (मानरता), ज१, ज२-मदृष्टविंशा वा-प्रहुष्टचित्त (प्रहृष्टचित्ता), ज१, ज२-प्रकीणाकामा वा.-वकीणमिुन्नकामां (प्रविकीर्णकामा)
०९.(अ) वा-विपुलाथोद्रपा (विपुलार्थयुक्ता)
१०.(अ) वा. पुष्यवतीविशीला, मु.पु. पुष्पवतीविशाला (पुष्पवतीविशीला)
(ब) ज१-प्रत्यंन्फिता, ज२-प्रत्यग्रिता, वा.-पत्युसिता (पत्युज्झिता), ज१-पेव्यवतीविधाश्च,

जर-प्रेव्यतीविशाश्वा, वा.-मेवतीविनिखा (प्रेष्यवती विनि:स्वा)

११.(अ) ज१, ज२-कापरिका (कार्पटिका), ज१, ज२-विशीलादिव्यस्थधिष्ण्ये, वा. विशापादिमाख्यधिष्ण्यं, मु.पु. विशालाऽदिव्याख्यधिष्ण्ये (विशीलाऽदित्याख्यधिष्ण्ये)

(ब) ज१-पुष्यावती, ज२-पुत्रवती (पुष्पवती)

१२.(अ) ज१-मृषिणिपु (भूषणेषु)

१३.(ब) ज१-मायापटलापाटिकार्य, ज२-मायापटुलापटिकार्थ, वा.-मायापटुर्लमटिकार्थ (मायापटुर्लम्पटिकार्यहीना)

१४.(अ) वा. प्रणवती (पुष्पवती)

(ब) ज१-षयोतवंदचरेपि, ज२-खद्योतवदंचरेपि (खद्योतवदम्बरेऽपि)

१५.(ब) ज१-साव्या (सत्यस्वीर्ष्या), ज१-नीरूक्त, ज२-ग्वीरूक (नीरूक्च)

(स) ज१, ज२-दुर्वृता (दु:पुत्रा), ज१, ज२-कुलपांसिनीसरलता (कुलपांसिनीखलरजा)

(द) ज१, ज२-दु:खीमानरता (दु:खापापरता)

१६.(अ) करत्रविनिगात्प्रवृत्ता, ज२-कलत्रविनिगात्प्रवृत्ता (कलाढ्याविनिगृह्यचित्ता)

(ब) ज१-सुचिरासुवृत्ता, ज२-सुचिरानुवृत्ता (रूचिरासुवृत्ता)

१७.(अ) ज१, ज२-संभोगलीला (सम्भोगशीला)

१८.(अ) ज१, ज२-कृपालु (प्रियालु:), ज१-सुरतप्रियाचवैरि, ज२-सुरताप्रियाचवैरिग्नि (सुरतप्रियोद्यद्वैरा), ज१, ज२-निगृह्यत्मयुते (निगृह्यात्महिते)

(ब) ज१, ज२-अपिपंडितांगी (पीडिताङ्गी)

१९.(अ) ज१, ज२-सत्यवती (सत्यपरा), ज१-पररंप्रगोष्ठी, ज२-पररंघ्रगोष्ठी (पररन्ध्रगोत्त्री)

(ब) ज१, ज२-राजाभिगामी (गजाभिगामिन्य), ज१, ज२-निखिलानिलर्क्षे (निलाह्वयर्क्षे)

२०.(अ) ज१, ज२-प्रसक्ता, पी.यू.धा. टीका प्रमत्ता (प्रवृत्ता), ज१,ज२-कृत्येवमोघामयवैरिसंघा, पी.यू.धा.टी.-कृत्यैवमोघामयवैरिसंघा (विचित्तमोघामयवैरिसंघा)

(ब) ज१-मुनिवशाखात्, ज२-मुनीवशाखात (शुनीव शश्वत्)

२१.(अ) ज१, मैत्रैमित्रा, ज२-मैत्रे च मित्रा (मैत्रे विमित्रा)

(ब) ज१, प्रवृत्तकोमा, ज२-प्रवृत्तकामा (प्रवृत्तरागा), ज१, ज२-संस्ताचपारींधभक्ता (स्वगर्भसंस्त्रावपरा विरक्ता)

२२.(अ) ज१, ज२-व्यमर्ष (विमर्षा), ज१, ज२-समूढा (सुगूढा)

(ब) ज१-परतयापाव्रजतेरतात्मा, ज२-परतापापाच्चजतेरतात (परंतपा प्रव्रजितेरताम्मा)

२३.(ब) ज१-गोजंगंगामिनीच, ज२-गोजगामिनी च (गोगजगामिनी च)

२४.(अ) ज१-पानीयधिष्ण्यष्वसती (पानीयभेपुष्पवती), ज१, ज२-विवादविशीर्णा (विवादशीला), ज१, ज२-कर्मापर (कलाकर्मणि)

(ब) ज१-वनसैलसक्ता, ज२-मनसैलसुक्ता (वनशैलसक्ता), ज१-प्रसन्नपापा, ज२-प्रछनयापा (प्रच्छन्नपापा)

२५.(ब) ज१, ज२-विज्ञानयुक्ता (चित्तानुरक्ता)

(ब) ज१, ज२-प्रवरगुणा (प्रचुरगुण)

(द) जर१, जर२-नगात्रागंपवाधैरमिज्ञा (गीतातोद्यवाद्ये ह्यभिज्ञा)

२७.(अ) जर१-अतिवस्त्रधन, जर२-अतिधनवसु (अतिवसुधनभाक्), जर१, जर२-भोगीमानिनी (स्यान्मानिनी)

(ब) जर१, जर२-विगतत्मय (विगतभय)

२८.(अ) मु.पु. नीत्य (नृत्य)

(स) जर१-सवर्गे, जर२-सवर्ते (शतर्क्षे)

२९.(ब) जर१, जर२-अनृतवचममर्षादुर्मगातज्जयंती (त्वनृतपरुषमन्त्रैर्दुजनान्तर्जयंती)

(स) जर१, जर२-विभवति (विचरति), जर१-चाजयादे (वाजपादे)

(द) जर१, जर२-सदनलासा (सदनवासा)

३०.(अ) जर१, जर२-भूषणैर्भूषिताङ्गी (भूषितांगीत्वभिज्ञा)

(ब) जर१, जर२-सज्जनान्मासपत्नी (सज्जनान्मानयन्ती)

(स) जर१, जर२-गीतनृव्याधवासा (गीतनृत्योद्यता सा)

३१.(अ) जर१-पौषण्येविशाला (पौष्णेविशीला)

(ब) जर१-पतिरूषदूरा, जर२-पतिपरुषदूरा (पतिपुत्रदूरा), जर१, जर२-निचेरता (नीचैरता)

३२.(अ) जर१, जर२-कार्तिके (कार्तिकेयहर्यो:), जर१, जर२-विष्टयो: (विष्ट्याम्), (ब) जर१-रजोपिरिष्टम्, जर२-रजोऽप्यरिष्टं (रजोऽप्यनिष्टम्)

३३.(ब) जर१, जर२-वासराधै (वासरेषु)

३४.(ब) जर१, जर२-मयामर्थ (तथानर्थ), जर१, जर२-वर्गेष्ट, मु.पु. वर्गेषुसौम्येषु (वर्गेष्वसौम्येषु), जर१, जर२-वरवारिनाणां (चदुर्मति:स्यात्)

३५.(स) जर१, जर२-भूरिगुणांश्चपश्चाद् (भूरिगुणं च पश्चाद्)

३६.(अ) जर१, जर२-पुष्पंतत: (तत्पुष्पंतदा)

(ब) जर१, जर२-रजोदर्शनधस्ते, पी.यू.धा.टी.-रजोदर्शनमन्यधस्रे (रजोदर्शनमिष्टमग्रे)

३७.(अ) जर१, जर२-पतिकावाशमाधाय (पतितासमाथ), जर१-शूद्रादिकाम, जर२-शूद्रादिकादि (शूद्रादिनादिक्रमात्)

(ब) जर१, जर२-छूद्रापुष्पवती (शुद्धापुष्पवती)

३७.(स) जर१, जर२-चेदुष्टेह्नि (चेद्दृष्टेऽह्नि), जर१, जर२-सलिले (सलिलौ)

(द) जर१, जर२--पंचक्लिशै: (सपंचकलशै:), जर१, जर२-समृद्रीजकै: (समृद्भिर्जलै:)

३८.(अ) मु.पु.-ऐशान्यतो (ईशानतो)

(ब) जर१-कृताक्ता, जर२-घृताका (घृताक्तां), जर१, जर२-समिक्प्रमाणं (समित्प्रमाणां), जर१, जर२-गोयत्रिचाष्टेनसहस्रसंख्यं (गायत्रिकांसाष्टसहस्रसंख्याम्)

३९.(अ) जर१, जर२-शरप्रवाणामथघहंत्री (शतप्रमाणामथवाऽघहंत्री), जर१, जर२-शुभविध्यहूितिभिस्तलाश्च (शुभैर्यवैर्व्याहृतिभिस्तिलैश्च)

(ब) जर१, जर२-तत:शुभान् (तत:सुरान्)

४०.(अ) जर१, जर२-पैतृभ, मु.पु. पैतृभ (पित्र्यम), मु.पु. सार्थ (सार्प)

(ब) मु.पु.-उत्पातपात (उत्पातपाप), ज१, ज२-नकार्यमोनामतिषिद्रलग्नं (कार्यमाधानमनिष्टलग्ने)

४१.(अ) ज१-दिवरिपपूर्वभागे (दिवापारिघपूर्वभागे)

(ब) ज१-पितृपित्रग्रेह्नि (मातृपित्रोर्मृतेऽह्नि)

४३.(अ) ज१-युतेवीक्षिते, ज२-युतिवीक्षिते (युतवीक्षिते वा)

४४.(अ) ज१, ज२-युग्मेशलग्ने (युग्मांशलग्ने)

(ब) ज१, ज२-पापसौम्य (पापरूपा)

४५.(अ) ज१, ज२-उपर्क्षांशे (ओजर्क्षांशे)

४६.(अ) ज१-पुंजन्मकारो (पुंजन्मकारी)

४७.(ब) ज१, ज२-योगेएत्यं (योगेष्वपत्यं)

४८.(अ) ज१, ज२-नवखदशतवीक्षितामिकुयति (न च दशमनिशाविवर्जनं प्रकुर्याद्)

(ब) ज१-गव्यम् (गम्यम्)

पुष्पिका: ज१-इतिश्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायामार्तवमाधान स्वमलक्षणां नाम चतुर्विशतमोध्याय:।।२४।।

ज२-इतिश्री वृद्धवासिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायामार्तवमाधान स्वरूप लक्षणं नाम चतुर्विशतितमोध्याय:।।२४।।

***

# अथ पुंसवन सीमन्ताध्यायः

## पुंसवन संस्कार विधान

कुर्यात्पुंसवनं प्रसिद्धविषये गर्भे तृतीयेऽथवा।
मासि स्फीततनौ तुषारकिरणे पुष्येऽथ वा वैष्णवे॥
हित्वा कर्कटकं नृयुग्ममबलामन्येऽप्यरिक्ते तिथौ।
शुद्धे नैधनधाम्नि शुक्रशशभृद्विन्मंत्रिणां वासरे॥१॥

गर्भ पुष्टि के अनन्तर पुंसवन संस्कार में प्रयुक्त नक्षत्र मासादि में अथवा तीसरे महीने में बलशाली शुभ लग्न में, पुष्य एवं श्रवण में चन्द्रमा विद्यमान होने पर कर्क, मिथुन, कन्या लग्न एवं रिक्ता तिथियों को छोड़कर, अष्टम भाव शुद्ध होने पर अर्थात् अष्टम भाव प॰ क्रूर ग्रहों की युति या दृष्टि न होने पर चन्द्र, बुध, गुरु तथा शुक्रवारों में पुंसवन संस्कार करना चाहिए।।१।।

## पुरुष संज्ञक नक्षत्र

पुंनाम्नि श्रवणं तिष्यः स्वाती हस्तः पुनर्वसुः।
मूलं प्रोष्ठपदं चानुराधा मृगशिरोऽश्विनी॥२॥

श्रवण, पुष्य, स्वाती, हस्त, पुनर्वसु, मूल, रेवती, अनुराधा, मृग्शिरा एवं अश्विनी ये सभी पुरुष संज्ञक नक्षत्र हैं।।२।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः संप्रवक्ष्यामि सीमन्तोन्नयनं शुभम्।
व्यक्तगर्भे पुंसवनं कृत्वा कार्यं यथा विधिः।
मासे चतुर्थे षष्ठे वा कर्तव्यन्त्वष्टमेऽपि वा।
शुक्लपक्षादि दिवसं रिक्तां पक्षस्य मध्यमाम्॥
तिथिं त्यक्तार्कभूसूनुसुरेज्यानां च वासरे॥
पापैरसंयुतं क्षिप्र चराचरमृदुडूषु॥
पञ्चाङ्ग शुद्धि दिवसे चन्द्रतारा बलान्विते।
मासेश्वरे बलोपेते नास्तगे न पराजिते॥
आधानतो मासपाः स्युः शुक्रारेज्यार्क रात्रियाः।
सौरज्ञाऽऽधानलग्नेशचन्द्रार्कास्तद्दशात्फलम्॥
ओजांशेश्वोजराशौ च शुभग्रहायुतेक्षिते।
न नैधने तयोर्लग्ने नैधने शुद्धिसंयुते॥

पंचभिश्च चतुर्भिर्वा सूर्येन्दुगुरूपूर्वकैः।
ग्रहैरिष्टैश्शुभेलग्ने राशावपि न नैधने॥
केन्द्रत्रिकोणदुश्चिक्य धनायेषु शुभग्रहाः
शुभदास्त्रिषडायस्थाः क्रूराश्चैव शुभप्रदाः॥

—(कश्यप संहिता, अध्याय २४, श्लोक १-८)

### लग्नस्थ चन्द्रमा का फल

**चन्द्रे लग्नेऽतिसंपत्स्याच्छुभवीक्षितसंयुते।**
**सीमंतस्यापि संपत्स्यादिष्टः पुंसवनस्य यः॥३॥**

सीमन्त एवं पुंसवन संस्कार में लग्नस्थ चन्द्रमा यदि शुभ ग्रहों से युक्त या दृष्ट हो तो ऐसा चन्द्रमा प्रचुर सम्पत्ति का द्योतक होता है॥३॥

### सीमन्तोन्नयन संस्कार

**कृतसवनसतीनामाद्यगर्भे प्रसक्ते।**
**विहितमथ चतुर्थे मासि षष्ठाष्टमे वा॥**
**उडुनि शशिनि वीर्ये मासपे वीर्ययुक्ते।**
**बहुगुणयुतघस्त्रेऽप्येव सीमन्त कर्म॥४॥**

पतिव्रता स्त्रियों का प्रथम गर्भ में पुंसवन संस्कार करने के पश्चात् चतुर्थ, षष्ठ या अष्टम मास में, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र, मासाधिप बलवान हों तो ऐसे समय में सीमन्तोनयन करवाने से अत्यन्त गुण सम्पन्न सन्तान प्राप्ति होती है॥४॥

### गर्भ रक्षा विधान

**मासे मासे मासपादिग्रहाणां शांतिं कुर्याच्छांतिवाक्यैर्जपैश्च।**
**होमैर्दानैः सज्जनानां च वाक्यैर्गर्भं सम्यग्रक्षयेत्पुत्रकामी॥५॥**

प्रत्येक मास में मासों के अधिपति ग्रहों की शान्ति सूक्तों द्वारा अथवा जप, होम, दान तथा सत्पुरुषों के आशीर्वचनों का अनुपालन करते हुए पुत्र की कामना करने वाला भलीभान्ति गर्भ की रक्षा करे॥५॥

### सीमन्त का मुहूर्त्त

**ऋक्षेषु साधारणदारुणोग्रवर्ज्येषु सूर्येज्यमहीसुतानाम्।**
**वारेष्वरिक्ताक्षयपंचपर्वदिनेषु पुंलग्ननवांशकेषु॥६॥**

साधारण संज्ञक (कृत्तिका, विशाखा) दारुण संज्ञक (आर्द्रा, आश्लेषा, ज्येष्ठा, मूल), उग्र संज्ञक (भरणी, मघा, पू.फा., पू.षा., पू.भा.) नक्षत्रों को छोड़कर रवि, मङ्गल एवं गुरुवार को रिक्ता तिथियाँ (४, ९, १४) क्षय तिथि तथा

पञ्चपर्वों (कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावस, पूर्णिमा, सूर्य संक्रान्ति) को त्यागकर पुरुष संज्ञक लग्न एवं नवांश में यह संस्कार करना चाहिए।।६।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

**चतुर्थेमासि षष्ठे वाप्यष्ठमे वा तदीश्वरे।**
**बलसम्पन्नदंपत्योश्चन्द्रतारा बलान्विते।।**
**अरिक्ता पर्वदिवसे कुजजीवार्कवासरे।**
**तीक्ष्णमिश्रोग्र वर्जेषु पुंसंज्ञकभांशके शशी।**
**शुद्धेऽष्टमे जन्मलग्नात्तयोर्लग्ने न नैधने**
**शुभग्रहयुते दृष्टे पापखेटयुतेक्षिते।**
**मासेऽष्टके चतुर्भिर्वा दृष्टेऽर्के बीजपूरकैः**
**स्त्रीणां तु प्रथमे गर्भे सीमन्तोन्नयनं शुभम्।।**
**शुभग्रहेषु धीधर्म केन्द्रेष्वरिभवे त्रिषु।**
**पापेषु सत्सु चन्द्रेऽन्त्य निधनाद्यारि वर्जिते।।**
**क्रूरग्रहाणामेकोऽपिलग्नादंत्यात्मजाष्टगाः।**
**सीमन्तिनीनां सद्गर्भं बलोहन्ति न संशयः।।**

—(नारदसंहिता, अध्याय १८ श्लोक १-६)

## सीमन्त संस्कार का समय

**न नैधने नैधनशुद्धलग्ने शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा।**
**इष्टैः सदा पंचभिरर्कचंद्रसुरेज्यपूर्वैरथवा चतुर्भिः।।७।।**

निधनतारा, अष्टम स्थान पापाक्रान्त, पापग्रहों से युक्त, पापग्रहों से दृष्ट न होने पर अष्टम स्थान शुभग्रहों से युक्त व दृष्ट हो, सूर्य-चन्द्र, गुरु के अनुकूल होने पर चतुर्थ या पञ्चमास में सीमन्तोनयन संस्कार करना चाहिए।।७।।

**केन्द्रत्रिकोणत्रिधनायसौम्यैर्दुश्चिक्यलाभारिगतैश्च पापैः।**
**षडष्टलग्नांत्यविवर्जितेन्दौ सीमंतकार्यं शुभदं सदैव।।८।।**

केन्द्र, त्रिकोण, तीसरे, दूसरे, ग्यारहवें स्थानों में शुभ ग्रह हों, तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थानों में पापग्रह हों षष्ठ, अष्टम तथा लग्नांतक चन्द्रमा को छोड़कर सीमन्त संस्कार करना शुभ होता है।।८।।

**व्ययेऽष्टमे वा सुतभे विलग्ने चैकोऽपि पापोऽथ नभश्चराणाम्।**
**सीमंतिनीनाशकरस्त्ववश्यं करोति गर्भस्य च वा विनाशम्।।९।।**

व्यय, अष्ट, पाँचवें अथवा लग्न में एक भी पाप ग्रह विद्यमान हो तो सीमन्तनी गर्भिणी स्त्री को अथवा उसके गर्भ को अवश्य नष्ट करता है।।९।।

## गर्भमासाधिपति

**सिताऽऽवनेयामरपूज्यसूर्यचन्द्रार्किसूर्योदयपेंदुसूर्याः।**
**मासाधिपाः स्युः क्रमशो दशैते निपीडितो नाशयति स्वमासि॥१०॥**

गर्भमासेश्वराः– प्रथममास का स्वामी शुक्र, दूसरे का मङ्गल, तीसरे का देवगुरु, चौथे का सूर्य, पाँचवें का चन्द्रमा, षष्ठ का शनि, सातवें का बुध, अष्टम का लग्नेश, नवमें का चन्द्रमा और दशमे का सूर्य स्वामी होता है। मासीय स्वामी ग्रह अपने मास में यदि पीड़ित होता है तो गर्भ को दुःखी करता है॥१०॥

## गर्भ पुष्टि के लिए विष्णु पूजा

**रोहिण्यां वा वैष्णवे पूर्वपक्षे द्वादश्यां या सप्तमे वा तिथौ वा।**
**मध्याह्ने वा पूर्वभागेऽनुकूले विष्णोः पूजां कारयेद्गर्भपुष्ट्यै॥११॥**

रोहिणी या श्रवण नक्षत्र में शुक्लपक्ष द्वादशी या सप्तमी तिथि को मध्याह्न या पूर्वार्द्ध में शुभ समय विचारकर गर्भ पुष्टि के लिये श्री विष्णु पूजा करनी चाहिए॥११॥

**पीताम्बरं कृष्णवर्णं शंखचक्रगदाम्बुजम्।**
**वैकुण्ठवासिनं विष्णुं मृत्कुंभे विन्यसेत्ततः॥१२॥**

पीतवस्त्रधारी, श्यामवर्ण शंख, चक्र, गदा एवं पद्मधारी वैकुण्ठ निवासी श्री विष्णु जी को मृन्मय कलश पर स्थापित करना चाहिए॥१२॥

**विष्णोः स्वरूपं कनकेन कृत्वा तल्लिङ्गमन्त्रैरथ गन्धपुष्पैः।**
**वस्त्राक्षतैर्गुग्गुलगन्धदीपैर्नैवेद्यतांबूलफलैश्च सम्यक्॥१३॥**

श्रीविष्णु भगवान् की स्वर्णमयी मूर्ति बनाकर श्रीविष्णुचिह्न एवं मन्त्रों द्वारा गन्ध, पुष्प, वस्त्र, अक्षत, गुग्गल, गन्धदीप, ताम्बूल, नैवद्य एवं फलों द्वारा–॥१३॥

**विष्णुं च देवतापूज्यं गर्भाणां रक्षणाय च।**
**ब्राह्मणेभ्यः प्रदातव्या प्रतिमा वस्त्रसञ्युता॥१४॥**

गर्भों की रक्षा के लिए भगवान् श्रीविष्णु की पूजा करके स्वर्णमूर्ति को वस्त्रों सहित ब्राह्मणों को दे देनी चाहिए॥१४॥

## भगवान् विष्णु के द्वादश नाम

**चैत्रादिमासनामानि वैकुंठोऽथ जनार्दनः।**
**उपेन्द्रो यज्ञपुरुषो वासुदेवस्त्रिविक्रमः॥१५॥**

चैत्रादि मासों के नाम क्रमशः वैकुण्ठ, जनार्दन, उपेन्द्र, यज्ञपुरुष, वासुदेव, त्रिविक्रम–॥१५॥

**योगीशः पुण्डरीकाक्षः कृष्णोऽनन्तोऽच्युतस्तथा।**
**चक्रधारीति चैतानि क्रमादाहुर्मनीषिणः॥१६॥**

योगीश, पुण्डरीकाक्ष, कृष्ण, अनन्त, अच्युत एवं चक्रधारी चैत्रादि मासों के नाम ऋषियों द्वारा कहे गये हैं॥१६॥

**तद्व्यक्षरं वा चतुरक्षरं वा विवर्जयेच्चान्त्यलकाररेफम्।**
**तन्मासनामादिकमेव चिन्त्यं स्फुटं वदेद्दक्षिणकर्णरन्ध्रे॥१७॥**

**इतिश्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**पुंसवनसीमन्ताध्यायः पञ्चविंशः॥२५॥**

द्वयक्षर अथवा चतुरक्षर, लकारें एवं रेफ युक्त नामोच्चारण न करके जातक के जन्ममासानुसार विचार करके भलीभान्ति जातक के दक्षिण कान के छिद्र में नाम उच्चारण करें॥१७॥

वृद्धवसिष्ठ संहिता के पुंसवनसीमन्ताध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूण॥२५॥

**पाठान्तरम्**

०१(द) जश-नैधनधात्रि, ज२-नैधनधन्य (नैधनधाम्नि), ज१, ज२-शुकशशिमृद् (शुक्रशशभृद)
०२(अ) ज१-पुंसास्त्रि, ज२-पुत्राम्नि (पुंनाम्नि), ज१, ज२-पुष्यस्वाता (तिष्यः स्वाती)
(ब) ज१-मृगशिराश्विनी, ज२-मृगाश्विनी (मृग्शिरोऽश्विनी)
०३(अ) ज१, ज२-भृगुवीक्षित (शुभवीक्षित)
(ब) ज१-संपत्स्याविष्टः, ज२-संपत्स्यादृष्टः (संपत्स्यादिष्टः)
०४(अ) ज१-कृतवस्त्रनवसतिनाम, ज२-कृतवसुनवसतीनां (कृतसवनसतीनाम्), ज१-प्रसवंस्वन, ज२-प्रवेशं वंखन (प्रसक्ते)
(ब) ज१-विहितापर, ज२-निहितापर (विहितमथ)
(स) ज१-उद्गुनि (उडुनि)
(द) ज१-बहुगुणयुतमासेण्येव, ज२-वहुगुणयुतमासेसौम्ये (बहुगुणयुतघस्नेऽप्येव)
०६(ब) ज१-लग्नेनतांसकेवा (पुंलग्नवांशकेषु)
०७(ब) ज१-चतुर्मिः (चतुर्भिः)
०९(अ) ज१, ज२-पापश्च (पापोऽथ)
(ब) ज१, ज२-गर्भत्वथवा (गर्भस्य च वा)
१०(अ) ज१, ज२-सितावनेयामर (सिताऽऽवनेयामर)
(ब) ज१-स्वमास, ज२-स्वमासे (स्वमासि)
११(अ) ज१, ज२-वैष्नवा (वैष्णवे)
(ब) ज१-मध्येचाहुः, ज२-मध्येनाहूः (मध्याह्ने), ज१, ज२-कुजाः कारयेद् (पूजां कारयेद्), ज१, ज२-गर्भपुष्टी (गर्भपुष्ट्यै)

१२(ब) ज.मो. चिन्तयेततत: (विन्यसेत्तत:)

१३(अ) ज.मो. विष्णोश्चरूपं (विष्णो: स्वरूपं)

१४(अ) ज१, ज२-विष्णोवद्देवतां पूजां (विष्णुं च देवता पूज्यं)

१६(अ) ज१, ज२-पुंडरीकाक्षो (पुण्डरीकाक्ष:)

(ब) ज१-क्रमांद्रम्भनीषिणा:, ज२-क्रमादाद्धर्म्भनीषिणां (क्रमादाहुर्मनीषिण:)

१७(ब) ज१-दक्षिणार्णरन्ध्रे (वदेद्दक्षिणकर्णरन्ध्रे)

पुष्पिका: ज१-इतिश्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां पुंसवनं सीमंतस्वरूपलक्षणं नाम पंचविंशतमोध्याय:।।२५।।

ज२-इतिश्री वृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महांसहितायां पुंसवनसीमन्त स्वरूप लक्षणं नाम पंचविंशतमोध्याय:।।२५।।

***

२६

# अथ जातकर्मनामकर्माध्यायः

## जातकर्म विधान

**यस्मिन्मुहूर्ते जनितः कुमारस्तस्मिन्विधेयं खलु जातकर्म।**
**विनिर्गते वाऽप्यथ सूतकेऽपि तस्मिन्दिने तस्य च नामधेयम्॥१॥**

जिस मुहूर्त्त में बालक का जन्म होता है, उसी मुहूर्त्त में जातक कर्म करना चाहिए अथवा सूतक की निवृत्ति हो जाने पर नामकरण के साथ करना चाहिए॥१॥

**संतर्प्य देवान्सपितृन्द्विजांश्च सुवर्णगोभूतिलधान्यवस्त्रैः।**
**गुडाज्यरौप्यैर्लवणैश्च होमैरक्षोघ्नमन्त्रैः सह जातकर्म॥२॥**

देवताओं एवं पितरों का तर्पण करके ब्राह्मणों को स्वर्ण, गौ, भूमि, तिल, धान्य, वस्त्र, गुड़, घी, चान्दी तथा नमक का दान देकर 'रक्षोघ्न' मन्त्रों के साथ जातकर्म करना चाहिए॥२॥

क्रमागतः–

नारदः–

तस्मिन्जन्म मुहूर्तेऽपि सूतकान्तेऽपि वा शिशोः।
जातकर्म प्रकर्त्तव्यं पितृपूजनपूर्वकम्॥१॥

—(ना.सं. १९ अ. श्लोक १)

कश्यपः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि जातकर्म शिशोस्तथा।
जन्मकालेऽपि कर्त्तव्यं सूतकान्तेऽपिवा ततः॥

—(क.सं., अ. २५, श्लोक १)

## जातकर्म का विशेष मुहूर्त्त

**अतीतकार्य्याण्यखिलानि तानि कार्याणि सौम्यायनगे दिनेशे।**
**सिते गुरौ वाप्यथ दृश्यमाने तदुक्तपञ्चाङ्गदिनेऽप्यखण्डे॥३॥**

जातककर्मादि जो कार्य किसी कारणवश नहीं हो सके हों ऐसे शुभ मङ्गल कार्यों को सूर्य उत्तरायण आने पर शुक्लपक्ष में, बृहस्पति एवं शुक्र उदित हों, क्षय तिथि को छोड़कर पञ्चाङ्गस्थ शुभ मुहूर्त्त में करना चाहिए॥३॥

## जातकर्म नामकरण में प्रयुक्त नक्षत्र

**मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु चारिक्तपर्वाख्यादिनेषु कार्यम्।**
**शुभग्रहाणां दिनलग्नवर्गे तज्जातकर्म त्वथ नामधेयम्॥४॥**

इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां जातकर्म नामकर्माध्यायः षड्विशः॥२६॥

मृदु संज्ञक नक्षत्रों में (रेवती, चित्रा, मृगशिरा अनुराधा), ध्रुवसंज्ञक (रोहिणी, उ.फा., उ.षा., उ.भा.), क्षिप्रसंज्ञक, चरसंज्ञक (पुष्य, अश्विनी, हस्त, अभिजित्) पर्वदिनों (कृष्णाष्टमी, चतुर्दशी, अमावस, पूर्णिमा एवं सूर्य संक्रान्ति), रिक्ता तिथियों (४, ९, १४) को छोड़कर शुभग्रहों के वारों, लग्न तथा वर्ग में जातक कर्म एवं नामकरण करना चाहिए।।४।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

**चरस्थिर-मृदुक्षिप्र नक्षत्रे शुभवासरे।**
**चन्द्रताराबलोपेते दिवसे च शिशोः पिता।।**
**शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते।**
**लग्नेन्त्यनैधने सौम्ये संयुते वा निरीक्षिते।।**

—(ना.सं.अ.२०, श्लोक ३-४)

**कश्यपः-**

**शुभलग्ने शुभांशे च शुभेऽह्नि शुभवासरे।**
**चन्द्रतारा बलोपेता नैधनोदय वर्जिते।**
**पूर्वाह्ने क्षिप्रनक्षत्र चरस्थिरमृदूडुषु**
**नाम मङ्गलघोषैश्च रहस्यं दक्षिणेश्रुतौ।।**

—(क.सं.अ. २५ श्लोक ५-६)

**वृद्धवसिष्ठ संहिता के जातकर्म नामकर्माध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।२६।।**

**पाठान्तरम्**

१(अ) जर, जर-अस्मिन्मुहूर्त्ते (यस्मिन्मुहूर्त्ते), ज१, ज२-जनिते (जनितः), ज१, ज२-कुमारे (कुमारः)

१(ब) ज१, ज२-विभागेवामेऽप्यथ, ज.मो. विनिर्गमेवाप्यथ (विनिर्गतेवाऽप्यथ)

२(अ) ज१-मूतिलकां, ज.मो. मूतिलकांस्थवस्त्रैः (भूतिलधान्यवस्त्रैः)

२(ब) ज१, ज२-कुंडाज्य (गुडाज्य)

३(अ) ज१, ज२-दिनेशः (दिनेशे)

३(ब) ज१, ज२-चाप्यत्रवास्तमाने (वाप्यथदृश्यमाने)

३(ब) मु.पु. खण्डम् (खण्डे)

४(अ) मु.पु. मैत्रध्रुव (मृदुध्रुव), ज१, ज२-मूलेमेष्वष्वरिक्तापर्वा च दिनेषु (भेषुचारिक्तपर्वाख्यदिनेषु)

पुष्पिकाः - ज१- इति श्री वृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां जातकर्म स्वरूपलक्षणं नाम षड्विंशतमोऽध्यायः।।२६।।

ज२-इतिश्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां जातकर्म्म स्वरूपलक्षणं नाम षड्विंशोध्यायः।।२६।।

***

# अथान्नप्राशनाध्यायः

## अन्नप्राशन का समय

**युग्मेषु मासेषु च षष्ठमासात्संवत्सरे वा नियतं शिशूनाम्।**
**अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसंप्राशनमिष्टमेतत्।।१।।**

छः मासों के पश्चात् सममासों में वर्ष पर्यन्त बालकों का तथा कन्याओं का विषम मासों में अन्नप्राशन करना कल्याणप्रद होता है।।१।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

अथातः संप्रवक्ष्यामि नवान्नप्राशनं शिशोः।
मासे षष्ठाष्टमे वाऽपि दशमे वाऽपि वत्सरे।।
द्वादश्यामाष्टमी रिक्तानन्दाचैव दिनक्षयम्।
सूर्यार्कि भौमवारश्च त्यक्तान्य वासरे।।
चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रेषु शुभेदिने।
अदुर्दिने च पूर्वाह्ने चन्द्रतारा बलान्विते।।
शुभलग्ने शुभांशे च दशमे शुद्धि संयुते।
जन्मराशि विलग्नाभ्यां नैधनेऽशे विवर्जिते।।

नारदः–

षष्ठेमास्यष्टमेवापि पुंसां स्त्रीणां तु पञ्चमे।
सप्तमे मासि च कार्यं नवान्नप्राशनं शुभम्।।
रिक्तां दिनक्षयं नन्दा द्वादशीमष्टमीममाम्।
त्यक्त्वान्य तिथयः श्रेष्ठाः प्राश्ने शुभवासरे।।
चरस्थिरमृदुक्षिप्रनक्षत्रे शुभनैधने।
दशमे शुद्धिसञ्युक्ते शुभलग्ने शुभांशके।।
पूर्वाह्ने सौम्यखेटेन सञ्युक्ते वीक्षितेऽपि वा।
त्रिषष्ठलाभगैः क्रूरैः केन्द्रधीधर्मगैः शुभैः।।

—(ना.सं.अ. २१, श्लोक १-४)

गर्गः–

युग्मेषुमासेषु च षट्सु पुंसां संवत्सरे वा नियतं शिशुनाम्।
अयुग्ममासेषु च कन्यकानां नवान्नसंप्राशनमिष्टमेतत्।।
षष्ठादियुग्ममासेषु शिशूनामन्नभोजनम्।
कन्यानां पञ्चमान्मासादयुग्मेभोजनंस्मृतम्।।

—(वृहद् दैवज्ञरञ्जनम् पृ.सं. ११६, अ. ६३, श्लोक ८-९)

### अन्नप्राशन मुहूर्त्त

मृदुध्रुवक्षिप्रचरेषु भेषु वारेषु शुक्रज्ञसुरार्चिताभ्याम्।
धर्मार्कगौरीद्विहिधातृकामदिनेषु तारेन्दुबलान्वितेषु॥२॥

मृदुसंज्ञक, ध्रुवसंज्ञक, क्षिप्रसंज्ञक एवं चरसंज्ञक नक्षत्रों में शुक्रवार, बुधवार, बृहस्पति वारों में दशमी, सप्तमी, तृतीया, पूर्णिमा, पञ्चमी, द्वितीया, त्रयोदशी तिथियों में चन्द्रताराबल अनुकूल होने पर बालक-बालिकाओं को अन्नप्राशन करवाए॥२॥

शुभग्रहाणां भवने विलग्ने नवांशके पूर्वदले दिनस्य।
पूर्णेन्दुवारेऽप्यथवा विलग्ने नवांशके वाप्यथवा नु तस्य॥३॥

शुभग्रहों की राशि या नवांश लग्न में हों, दिन के पूर्वार्द्ध में, पूर्ण चन्द्रमा के दिन (पूर्णिमा), या पूर्ण चन्द्रमा लग्न या नवांश में हो तो अन्नप्राशन संस्कार कल्याणप्रद होता है॥३॥

न नैधने कर्मविशुद्धियुक्ते दोषैर्विहीनैः शुभदृष्टियुक्ते।
नोत्पातपापग्रहदूषितर्क्षे वैनाशिकाद्यर्क्षविवर्जितेषु॥४॥

निधन तारा को त्याग कर, दशम स्थान शुद्ध एवं दोष रहित होने पर, दशम स्थान पर शुभग्रहों की दृष्टि एवं युति सम्बन्ध होने पर, उत्पात रहित, पापग्रहों द्वारा दूषित नक्षत्र न होने पर, आदि वैनाशिक नक्षत्रों से रहित—॥४॥

चौलान्नभुक्तौ व्रतबंधने च राज्याभिषेके खलु जन्मधिष्ण्यम्।
शुभं त्वनिष्टं सततं विवाहसीमन्तयात्रादिषु मंगलेषु॥५॥

चूड़ाकर्म, अन्नप्राशन, व्रतबन्ध, राजाभिषेक में जन्मनक्षत्र प्रशस्त होता है, परन्तु विवाह सीमन्त यात्रा इत्यादि मङ्गल कार्यों में निरन्तर अनिष्टप्रद होता है॥५॥

शुभाशुभेषु त्रिधनायकेन्द्रत्रिकोणगेष्वायरिपुत्रिगेषु।
अषष्ठरिष्फाष्टगते हिमांशौ बालान्नभुक्तिः शुभदा च तेषाम्॥६॥

शुभाशुभ ग्रह जब तीसरे, दूसरे, लाभ केन्द्रस्थान, त्रिकोण स्थान अथवा सभी ग्रह लाभ, छठे या तीसरे गये हुए हों, चन्द्र छठे, बारहवें तथा आठवें में न हो तो बालकों के लिए अन्नप्राशन शुभप्रद होता है॥६॥

### अन्नप्राशन में सूर्यादि ग्रहों का प्रभाव

कुष्ठी लग्नगते सूर्ये क्षीणे चंद्रे च भिक्षुकः।
सत्रदः पूर्णचन्द्रे च कुजे पित्तरुजार्दितः॥७॥

अन्नप्राशन संस्कार में सूर्य लग्न में हों तो कुष्ठि रोग। चन्द्रमा निर्बली हो

तो भिखारी, पूर्ण चन्द्रमा हो तो उत्तम अन्न की प्राप्ति तथा मङ्गल हो तो पित्त रोग से पीड़ित करता है।।७।।

**बुधे ज्ञानी गुरौ भोगी दीर्घायुर्भोगवान् सिते।**
**वातरोगी शनौ राहौ केतौ चान्नविवर्जितः।।८।।**

बुध लग्न में हो तो ज्ञानी, गुरु हो तो भोगी, शुक्र हो तो दीर्घायु तथा भोगप्राप्ति, शनि होने पर वायु विकार, राहु या केतु होने पर अन्न से रहित होता है।।८।।

**चन्द्रमा की संज्ञा**

**संपूर्णेदूभयाष्टम्योर्मध्येन्दुः पूर्णसंज्ञकः।**
**विनष्टेंदूभयाष्टम्योर्मध्येऽसौ क्षीणसंज्ञकः।।९।।**

पूर्णिमा तिथि के दोनों ओर अष्टमी पर्यन्त चन्द्रमा पूर्ण संज्ञक, अमावस के दोनों ओर अष्टमी पर्यन्त क्षीण संज्ञक होता है।।९।।

**षष्ठाष्टमांत्यगश्चन्द्रो भोक्तुश्च निधनप्रदः।**
**केन्द्रत्रिकोणगो मन्दस्तस्यान्नमपहारकः।।१०।।**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां अन्नप्राशनाध्यायः सप्तविंशः।।२७।।**

चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में हो अन्नप्राशन वाले बच्चे के लिए मृत्युप्रद, केन्द्र त्रिकोण में बैठा शनि अन्न अपहरण करता है।।१०।।

वृद्धवसिष्ठसंहिता के अन्नप्राशनाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।२७।।

**पाठान्तरम्**

१(अ) जर१, जर२-षष्ठपुंसां (षष्ठमासात्)
२(ब) जर१-कर्मदिनेषु, जर२-कर्म्मदिनेषु (कामदिनेषु)
३(अ) जर१, जर२-भुवने (भवने)
३(ब) जर१, जर२-तदंशके (नवांशके), जर१, जर२-पूर्वदलेदिनस्थ (वाप्यथवा नु तस्य)
४(ब) जर१, जर२-वैनासिकावृक्षे (वैनाशिकाद्यर्क्ष)
५(अ) जर१, जर२-वालान्नमुक्ते (चौलान्नभुक्तौ)
५(ब) जर१, जर२-विवाहे (विवाह)
७(अ) जर१-कुष्टे, जर२-कुष्ठ (कुष्ठी)
७(ब) जर१, जर२-कुजेपैत्तरूजार्दितः (कुजे पित्तरूजार्दितः)
८(ब) जर१-चान्नविवजित, जर२-चार्न्नविवर्जितः (चान्नविवर्जितः)
१०(अ) जर१, जर२-षष्टाष्टमास्यगान्चन्द्रो (षष्ठाष्टमांत्यगश्चन्द्रो)
पुष्पिका :- जर१-इतिश्रीवृद्धवासिष्ठब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां अन्नप्राशनलक्षणं नाम सप्तविंशतमोध्यायः।।२७।।
जर२-इतिश्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायांमन्नप्राशनलक्षणं नाम सप्तविंशतमोध्यायः।।२७।।

***

२८

# अथ चौलाध्यायः

## चौल कर्म विधान

**तृतीये पंचमेऽब्दे वा स्वकुलाचारतो हितम्।**
**चौलं शिशूनां यत्नेन स्वगृह्योक्तविधानतः॥१॥**

तीसरे या पाँचवें वर्ष में तथा कुल परम्परा के अनुसार बालकों का मुण्डन (चौल) संस्कार हितकर होता है। बालकों का मुण्डन-संस्कार प्रयत्नों से अपने-अपने ग्रहसूक्तों के विधान से ही करवाना चाहिए॥१॥

**आधानतो जन्मतो वा सप्तमेऽब्देऽपि कारयेत्।**
**कृत्वाभ्युदयिकं कर्म पश्चात्सर्वं समाचरेत्॥२॥**

गर्भाधान से अथवा जन्म से सातवें वर्ष में भी मुण्डन-संस्कार करवाना चाहिए। हर प्रकार से उन्नतिपरक पूजा विधान के पश्चात् मुण्डन सम्बन्धी सभी कृत्यों को करना चाहिए॥२॥

**क्रमागतः-**
**नारदः-**

---

तृतीये पंचमाब्दे स्वकुलाचारतोऽपिवा।
बालानां जन्मतः कार्यं चौलमावत्सरत्रयात्।
सौम्यायने नास्तगयोरसुरासुरमंत्रिणैः।
अपर्वरिक्ता तिथिषु शुक्रेज्ञेज्येन्दुवासरे॥

**कश्यपः-**

—(ना.सं.अ. २२, श्लोक १-२)

अथातः संप्रवक्ष्यामि वालानां चौलकर्म यत्।
तृतीयेवत्सरे वाऽपि पञ्चमाब्देऽपिजन्मतः॥
स्वकुलाचारतः कार्यमुत्तरायने रवौ।
असुरेज्ये सुरेज्ये नास्तगे न च वृद्धगे॥
पञ्चपर्व तिथिरिक्ता व्यक्तान्यदिवसेषुच
चन्द्रज्ञजीवशुक्राणां वार लग्नांशकेषु च॥
सौम्यायने गुरौ शुक्रे दृश्यमाने शुभे दिने।
चन्द्रताराबलोपेते शुभलग्ने शुभांशके॥३॥

सूर्य उत्तरायण में हो, बृहस्पति शुक्र उदय हों, शुभ दिन में चन्द्रताराबल अनुकूल होने पर शुभलग्न अथवा शुभ नवांश में मुण्डन कर सकते हैं।।३।।

### माता गर्भवती होने पर मुण्डन विचार

**गर्भे मातुः कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म च।**
**पञ्चमासादधः कुर्यात्तदूर्द्ध्वं न च कारयेत्।।४।।**

माता पुनः गर्भवती हो तो पहले बालक का चौलकर्म नहीं करना चाहिए, परन्तु गर्भ यदि पाँच महीनों से कम हो तो मुण्डन कर सकते हैं। पाँच मासों से गर्भ अधिक हो तो मुण्डन नहीं करने चाहिए।।४।।

**गृहनिर्माणमुदधिस्नानं चौलं सुतस्य च।**
**तीर्थयात्रा न स्वश्मश्रु न कुर्याद्गर्भिणीपतिः।।५।।**

गृहनिर्माण, समुद्र स्नान, अपने बालक का मुण्डन-संस्कार, तीर्थ यात्रा तथा दाढ़ी-बाल बनवाने का कार्य गर्भणी के पति को नहीं करना चाहिए।।५।।

**पुत्रचूडाकृतौ माता गर्भिणी यदि वा भवेत्।**
**विपद्यते गुरुश्चैव दम्पती शिशुरब्दतः।।६।।**

पुत्र के चौल-संस्कार में यदि माता गर्भवती होती है तो गुरु, दम्पती एवं शिशु को एक वर्ष के भीतर विपत्ति होती है।।६।।

**गर्भिण्यां मातरि शिशोश्चौलकर्म न कारयेत्।**
**शताभिषेकेऽप्येवं स्यात्काले वेदकृतेष्वपि।।७।।**

गर्भिणी माता को अपने शिशु का चौलकर्म नहीं करवाना चाहिए। सौ वार रुद्राऽभिषेक के साथ-साथ वेदोक्त सम्पूर्ण विधियों के करने पर भी मुण्डन नहीं होने चाहिए।।७।।

### सभी वर्णों के लिए चूड़ाकर्म

**सर्वेषामेव वर्णानां चूडाकर्मविधिः स्मृतः।**
**केशमूलं पिता ज्ञेयः केशाग्रं जननी तथा।।८।।**

सभी वर्णों के लिए चूड़ाकर्म विधि कही गई है। केशों का मूल पिता तथा अग्रभाग माता को समझना चाहिए।।८।।

### मुण्डन-संस्कार की महत्ता

**चौलेनैवायुषो वृद्धिःकेशेनैवायुषः क्षयः।**
**तस्माच्चौलं प्रयत्नेन कारयेद्बुद्धिसत्तमः।।९।।**

मुण्डन-संस्कार आयु वृद्धिप्रद है। गर्भकेश रखने से आयुक्षय भी होता है अतः यह मुण्डन-संस्कार बुद्धिजीवियों को विधिपूर्वक श्रद्धा से आयुवृद्धि के लिए करना चाहिए।।९।।

## मुण्डन में प्रयुक्त तिथियाँ एवं नक्षत्र

**पञ्चमी सप्तमी चैव दशम्यैकादशी तथा।**
**त्रयोदशी तृतीया च चौलकर्मणि शोभना।।१०।।**

पञ्चमी, सप्तमी, दशमी, एकादशी, त्रयोदशी एवं तृतीया तिथियाँ चौलकर्म (मुण्डन) में श्रेयस्कर हैं।।१०।।

**विधातृद्वितये सार्पात् त्रितये च चतुष्टये।**
**अदितिद्वितये पौष्णाद्वितये श्रवणत्रये।।**
**धर्मादर्शदिने चौलमश्रेष्ठं कृष्णाद्यवासरे।**
**हस्ताच्च त्रितये शाक्रे सेन्दवे चौलमीरितम्।।११।।**

रोहिणी, मृग्शिरा, आश्लेषा, मघा, पू.फा., उ.फा., पुनर्वसु, पुष्य, रेवती, अश्विनी, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाति तथा ज्येष्ठा नक्षत्र में चन्द्रमा होने से चौल कर्म शुभफलप्रद है, परन्तु दशमी, अमावस एवं कृष्ण प्रतिपदा चौल कर्म में शुभ नहीं।।११।।

क्रमागतः-

नारदः-

दस्रादितीज्य चन्द्रेन्द्रपूषा भानि शुभान्यतः
चौलकर्माणि हस्तर्क्षात्त्रीणि च विष्णुभात्।।
पट्टबन्धनचौलान्नप्राशने चौपनयने।
शुभदं जन्मनक्षत्रमशुभंत्वन्यकर्मणि।।

—(ना.सं.अ. २२, श्लोक ३-४)

कश्यपः-

दस्रेन्ददिति पुष्येन्द्रभेषु हस्तत्रयेषु च।
विष्णुत्रयेषु पौष्णे च चौलकर्मशुभप्रदम्।।
पञ्चाङ्गशुद्धि दिवसे चन्द्रताराबलान्विते।
नैधने शुद्धि संयुक्ते लग्नराशौ न नैधने।
षष्ठाष्टान्त्यगे चन्द्रे पापेष्वायत्रिशत्रुषु
चतुष्ट्य त्रिकोणेषु संशुद्धि द्वित्रिषु शुभेषु च।।

—(क.सं.अ. २७, श्लोक ४-६)

चंद्रशुक्रगुरुज्ञानां वारलग्नांशका: शुभा:।
एवं सम्यग्विचार्याथ चौलकार्यं च कारयेत्॥१२॥

इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्ध वसिष्ठ विरचितायां संहितायां चौलाध्यायोऽष्टविंश:॥२८॥

सोम, शुक्र, बृहस्पति तथा बुधवार शुभ लग्न एवं नवांश का विचार करके मुण्डन करवाना चाहिए॥१२॥

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के चौलाध्याय की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥२८॥

**पाठान्तरम्**

१(अ) जर१, जर२-स्वकुलाचारमोहितं (स्वकुलाचारतो हितम्)
२(ब) जर१, जर२-कृत्वाभ्युदैकं कर्माधं (कृत्वाभ्युदयिकं कर्म)
४(अ) जर१-तथालंसूनौप्रेतस्यवाहनं-पाठभेदोऽस्ति, जर२-गर्भेमातुकुमारस्य न नकुर्याच्चैलं कर्म च (गर्भे मातु: कुमारस्य न कुर्याच्चौलकर्म च)
४(ब) जर१-पाठोनास्ति, जर२-कुर्यदितर्ध्वे न कारयेत् (कुर्यात्तदूर्द्ध्वं न च कारयेत)
५(अ-ब) पाठोनास्ति
व, ज.मो. नरवश्मश्रु ( न स्वश्मश्रु)
६(अ) प्र.पा.-पुत्रचूडाकर्मिणी (पुत्रचूडाकृतौ)
६(ब) जर१, जर२-शिशुरावृत: (शिशुरब्दत:)
७(अ) जर१, जर२-राजभिषेकप्येवं (शताभिषेकेऽप्येवं)
७(ब) जर१-वेदश्चतेष्वपि, जर२-वेदश्चतेश्वपि, ज.मो. वेदव्रतेष्वपि (वेदकृतेष्वपि)
८(अ) जर१-केशग्री, जर२-केशाग्नी, ज.मो. केशाग्रि (केशाग्रं)
९(अ) केसेनवायुषो, जर२-केशैनवायुशो मु.पु. चौलेनैवायुष: (केशेनैवायुष:)
१०(अ) जर१, जर२-पंचमेसप्ते (पञ्चमी सप्तमी)
१०(ब) जर१, जर२-चौलकर्मशुभावहा (चौलकर्मणि शोभना)
११(अ) जर१, जर२-विधानृद्धितपे (विधातृद्वितये)
११(स) जर१-श्रवणत्रयं (श्रवणत्रये)
११(द) मु.पु.-चौलं श्रेष्ठं (चौलमश्रेष्ठं)
१२(अ) जर१-चन्द्रशुक्रगुरुक्षानां (चंद्रशुक्रगुरुज्ञानां)

पुष्पिका:- जर१- श्रीवृद्ध वसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां चौलकर्मविधिनामाष्टाविंशतमोध्याय:॥२८॥
जर२-इतिश्री वृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां चालकर्म विधिनामष्टाविंशतमोध्याय:॥२८॥

***

# २९

# अथोपनयनाध्यायः

### उपनयन में लग्न शुद्धि ज्ञान

**श्रुतिस्मृतीनां पदमुत्तमं द्विजस्तदुत्तमत्वं व्रतबन्धलग्नतः।**
**तस्माद्विजानां तदवाप्तिकारणं तल्लग्न शुद्धिं कथयामि शास्त्रतः॥१॥**

### नारायणी टीका

वेदों एवं स्मृतियों में ब्राह्मण का स्थान सर्वोत्तम है और उससे भी उत्तम व्रतबन्ध (जनेऊ यज्ञोपवीत) होता है! व्रतबन्ध लग्न यदि शुद्ध हो तो व्रतबन्ध और भी उत्तम हो जाता है। इसलिए ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत की प्राप्ति के कारण ज्योतिष शास्त्रानुसार यज्ञोपवीत धारण करने के लिए लग्नशुद्धि का वर्णन कर रहा हूँ॥१॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि चोपनयनमुत्तम्।
द्विजत्वकरणं श्रौतस्मार्तकर्म प्रसाधनम्॥

*—(क. सं. अ. २८ श्लोक १)*

### मौंजीबन्धन में समय विशेष

**मौंजीबन्धः शस्यते ब्राह्मणानां गर्भाधानाज्जन्मतो वाष्टमेऽब्दे।**
**भूमीशानामेवमेकादशाब्दे वैश्यानां च द्वादशे वेदविद्भिः॥2॥**

ब्राह्मणों का व्रतबन्ध गर्भ से या जन्म से आठवें वर्ष में, क्षत्रियों का एकादश वर्ष में, वैश्यों का बारहवें वर्ष में होना चाहिए ऐसा वेद को जानने वालों का मत है॥२॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

आधानादष्टमे वर्षे जन्मतो वाग्रजन्मनाम्।
राज्ञामेकादशे मौञ्जी बन्धनं द्वादशे विशाम्।
आजन्मात्पञ्चमे वर्षे वेदशास्त्रविशारदः।
उपनीतो यतःश्रीमान् कार्यं तत्रोपनायनम्॥

*—(नारद संहिता, अध्याय २४, श्लोक १-२)*

**कश्यपः–**

गर्भाष्टमेऽब्दे विप्राणां जन्मतो वा महीभुजाम्।
एकादशे वैश्यानां द्वादशे व्रतबन्धनम्॥

ऋतुवशात् उपनयनम्

**विप्राणामुपनयनं वसन्तसमये धराधिनाथानाम्।**
**ग्रीष्मर्तौ शरदिविशां मासाः साधारणाः पञ्च माघाद्याः।।३।।**

ब्राह्मणों का उपनयन-संस्कार बसन्त ऋतु में, क्षत्रियों का ग्रीष्म ऋतु में, वैश्यों का शरद् ऋतु में, साधारण लोगों का माघादि पाँच मासों में करना चाहिए।।३।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

शरद् ग्रीष्म वसन्तेषु व्यतक्रमात्तु द्विजन्मनाम्।
मुख्यं साधारणं तेषां तपो मासादि पंचसु।।

*—(ना. सं. अध्याय २४, श्लोक -५)*

**कश्यपः-**

ऋतौ वसन्ते विप्राणां ग्रीष्मे राज्ञां शरद्यथा।
विशांमुख्यश्च सर्वेषां द्विजानां चोपनायनम्।।
साधारणं च मासेषु माघादिषु च पञ्चसु।
प्रशस्तं शुक्ल पक्षेऽपि कृष्णे प्रतिपदादिषु।।
चतुर्थीं सम्परित्यज्य दिवसेषु च पंचसु।
द्वितीया च तृतीया च पंचमी सप्तमी तथा।।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्तास्तिथयो व्रते।
द्वादश्येकादशी षष्ठी कृष्णे युताश्च मध्यमाः।।

*—(क. सं., अ. २८, श्लोक ८-११)*

शाखेश निर्णय

**ऋग्यजुः सामशाखेशा गुरुशुक्रधरात्मजाः।**
**अथर्वणस्य वेदस्य शाखेशश्चन्द्रनन्दनः।।४।।**

ऋग्वेद शाखा का स्वामी देवगुरु बृहस्पति, यजुर्वेद शाखा का स्वामी शुक्र, सामवेद शाखा का स्वामी मङ्गल तथा अथर्वण शाखा का स्वामी चन्द्र नन्दन बुध है।।४।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

जीवशुक्रकुजज्ञाश्च ऋग्वेदाद्याधियाः क्रमात्।
सौम्यायनेऽति शस्तं वच्चैत्रे मीनस्थिते रवौ।।

*—(क. सं., अ० २८, श्लोक ७)*

**शाखेशगुरुशुक्राणां प्रौढ्ये वाल्ये च वार्द्धके।**
**नैवोपनयनं कार्यं वर्णेश दुबलेऽपि च।।5।।**

शाखा का स्वामी, बृहस्पति और शुक्र जब प्रौढ़ बाल्य या वार्धक्य अवस्था में हों तथा वर्णेश भी दुर्बल हो तो उपनयन संस्कार नहीं करना चाहिए।।५।।

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

दृश्यमाने गुरौशुक्रे दिनेशे चोत्तरायणे।
वेदानामधिपा जीवशुक्रभौमबुधः क्रमात्।।

*—(ना. सं. अ. २४, श्लोक ४)*

### उपनयन में बृहस्पति विचार

**शाखेश्वरस्ववर्णेशगुरूणां बलपूर्वकम्।**
**ततोऽप्येषां गुरुबलं मुख्यमाचार्य शिष्ययोः।।6।।**

उपनयन में शाखा का स्वामी, वर्णों का स्वामी एवं बृहस्पति का बल विचार आवश्यक है। इनमें भी सर्वाधिक गुरु के प्रधानाचार्य एवं शिष्य दोनों बल का विचार आचार्य एवं शिष्य दोनों के लिए महत्वपूर्ण है।

### उक्त एवं अनुक्त वर्षों में ग्रहों का बलाबल

**उक्तेऽपि वर्षे न गुरुर्बली चेच्छान्त्या प्रशस्तं व्रतबन्धकर्म।**
**अनुक्तवर्षेऽपि बलप्रदोऽपि न वै तयोरब्दबलो बलीयान्।।७।।**

उक्त वर्षों में अर्थात् कहे गये वर्षों में बृहस्पति बलशाली न हो तो शान्तिक उपायों से व्रतबन्ध (जनेऊ) श्रेष्ठ होता है। अनुक्त वर्षों में अर्थात् जो वर्ष निषिद्ध है, उन वर्षों में गुरु के बलप्रदा होने पर भी व्रतबन्ध नहीं करना चाहिये; क्योंकि वर्ष का बल अधिक बलवान माना गया है।

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

बालस्य बलहीनोऽपि शान्त्या जीवो बलप्रदः।
यथोक्तवत्सरे कार्यमनुक्ते नोपनायनम्।।

*—(ना. सं., अ. २४, श्लोक ३)*

**कश्यपः—**

जन्मान्त्य निधनस्थोऽपि पूज्या शुभदो गुरुः।
उक्तेऽब्दे चेदनुक्ते तु न शस्तो बलवानपि।।

*—(क.सं., अ. २८. श्लोक ७)*

### शाखेश, गुरु एवं शुक्र का फल

**शाखेशगुरुशुक्राणामेकस्मिञ्छत्रुनिर्जिते।**
**विद्याव्रतार्थिभिस्तत्र न कार्यं चोपनायनम्।।8।।**

शाखा का अधिपति तथा गुरु एवं शुक्र इनमें से एक भी यदि शत्रु द्वारा पराजित हों तो विद्या एवं व्रतबन्ध की इच्छा रखने वालों को उपनयन संस्कार नहीं करवाना चाहिए।।८।।

**शाखेशे वा गुरौ शुक्रे स्वनीचगृहसंस्थिते।**
**तदोपनीतः स शिशुर्विद्यावृत्तिविवर्जितः।।9।।**

शाखा अधिपति, बृहस्पति एवं शुक्र यदि अपनी-अपनी नीच राशियों में हों तो उस समय उपनीत बालक विद्या एवं वृत्ति से विवर्जित होता है। अर्थात् व्रतबन्ध निष्फल होता है।।९।।

**नीचांशसंस्थिते शुक्रे शाखेशे वा बृहस्पतौ।**
**स्वकुलाचारविच्छ्रेष्ठो नीच कर्म रतो व्रती।।१०।।**

शुक्र, शाखेश अथवा बृहस्पति यदि नीच राशि के नवांश में स्थित हो तो अपने कुलाचार में श्रेष्ठ व्रती भी नीचकर्म में रत रहता है।।१०।।

**नीचर्क्षनीचांशकसंस्थितेऽपि शाखेश्वरे वास्फुजितीन्द्रपूज्ये।**
**व्रती शिशुर्हीनकुलप्रसक्तः शस्त्रोपजीवी स्वकुलं विसृज्य।।११।।**

नीच राशि, नीचांश में स्थित शाखेश, बृहस्पति एवं शुक्र में व्रती हीनकुल वाला, शस्त्रों से जीविका चलाने वाला, अपने कुल का त्याग करने वाला होता है।।११।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

स्वनीचगे तदंशे वा स्वारिभे वा तदंशके।
गुरौ भृगौ च शाखेशे कुलशील विवर्जितः।।
स्वाधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशस्थेऽथवाब्रती।
शाखेशे वा गुरौ शुक्रे महाघातककृद्भवेत्।।

*—(ना. सं., अध्याय-२४, श्लोक १५-१६)*

**स्वारिनीचगते जीवे शाखेशे वा भृगोः सुते।**
**उपनीतस्तदा बालः क्षिप्रादन्त्यज सेवकः।।१२।।**

अपने शत्रु की राशि तथा नीचराशि में बृहस्पति, शाखेश अथवा शुक्र हों तो उस समय उपनीत बालक शूद्र का सेवक होता है।।१२।।

**शाखेशगुरुशुक्राणामेकस्मिञ्छत्रुराशिगे।**
**परदारासु निरतश्चोपनीतस्तदा शिशुः।।१३।।**

शाखेश, बृहस्पति तथा शुक्र इनमें से एक भी शत्रु राशि में हो तो इस समय उपनीत बालक परस्त्री रत रहता है।।१३।।

**शाखेशगुरुशुक्राणां मध्ये शत्रुनवांशगे**
**एकस्मिन्नुपनीतो यस्तदा मूर्खः खलो भवेत्।।१४।।**

शाखा का स्वामी, बृहस्पति तथा शुक्र इनमें से कोई भी शत्रु नवांश में हो तो इस समय उपनीत बालक मूर्ख एवं दुष्ट होता है।।१४।।

**शत्रुराशौ तदंशस्थे चैकस्मिन्खचरे व्रती।**
**शाखेशगुरुशुक्राणां महापातककृद्भवेत्।।१५।।**

शत्रु राशि एवं शत्रु नवांश में शाखेश बृहस्पति तथा शुक्र हों तो ऐसे समय में उपनीत बालक महापातक करने वाला होता है।।१५।।

**स्वनीचस्वारिषड्वर्गसंस्थे जीवेऽथ वा सिते।**
**शाखेशे वा तदा बालो महापातककृद्व्रती।।१६।।**

अपनी नीच राशि एवं शत्रु षड्वर्ग में बृहस्पति, शुक्र एवं शाखेश हों तो व्रती बालक महापातक करने वाला होता है।।१६।।

**अधिशत्रुगृहस्थे वा तदंशस्थे गुरौ भृगौ।**
**शाखेशे वा व्रती बालस्तदा चांडालसेवकः।।१७।।**

अधिशत्रु गृह में अथवा अतिशत्रु के नवांश में बृहस्पति, शुक्र एवं शाखेश हों तो उपनीत बालक चण्डाल सेवक होता है।।१७।।

**शत्रुनीचाधिशेवृक्षे स्वांशे वा स्वोच्च भागगे।**
**शाखेशे वा गुरौ शुक्रे च नीचफलमश्नुते।।१८।।**

शत्रु, नीच, अतिशत्रु राशि नवांश तथा अपने स्वोच्च भाग में शाखेश अथवा बृहस्पति शुक्र न हों तो उपनीत बालक को नीच फल मिलता है।।१८।।

**स्वमित्रराशिसंस्थे वा स्वमित्रांशे च संस्थिते।**
**गुरौ भृगौ वा शाखेशे व्रती विद्यायुतस्तदा।।१९।।**

अपने मित्र की राशि एवं स्वमित्रांश में स्थित बृहस्पति शुक्र एवं शाखेश हों तो उपनीत बालक विद्या से युक्त अर्थात् सुशिक्षित होता है।।१९।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

मित्रराशिगते जीवे तदंशे वा स्वराशिगे।
शुक्रे वाचार्यसंयुक्ते तदा तत्र व्रतीशिशुः।।
स्वमित्रगृहस्थे वा तस्योच्चस्थे तदंशके।।
गुरौ भृगौवा शाखेशे विद्याधन समन्वितः।।

*—(ना. सं., अ. २४, श्लोक १९-२०)*

**स्वमित्रगेहे मित्रांशे संस्थे भार्गवनन्दने।**
**गुरौ शाखाधिपे वापि विद्यायुक्तो भवेद्व्रती॥२०॥**

अपने मित्र गृह, मित्रांश में शुक्र बृहस्पति तथा शाखाधिप हो तो उपनीत बालक विद्वान होता है॥२०॥

**स्वाधिमित्रगृहस्थे वा स्वाधिमित्रांशगेऽपि वा।**
**गुरौ शाखाधिपे वापि वित्तविद्याधिको व्रती॥२१॥**

अधिमित्र के गृह में अथवा अधिमित्र के नवांश में बृहस्पति तथा शाखेश हों तो उपनीत बालक वित्तविद्या (अर्थशास्त्र) में निपुण होता है॥२१॥

**स्वाधिमित्रगृहे स्वाधिमित्रांशकगते व्रती।**
**गुरौ भृगौ वा शाखेशे तत्र विद्याविशारदः॥२२॥**

अपने मित्र गृह में, अधिमित्र के नवांश में बृहस्पति शुक्र एवं शाखेश हों तो ऐसे समय में उपनीत बालक विद्या में पराङ्गत होता है॥२२॥

**तुङ्गस्थे वा तदंशस्थे गुरौ शाखाधिपे सति।**
**उपनीतस्तदा बालो विद्यावान्धनवान्भवेत्॥२३॥**

बृहस्पति एवं शाखेश अपने उच्च में अथवा अपने नवांश में हों ऐसे समय में उपनीत बालक विद्वान एवं धनवान होता है॥२३॥

**स्वतुङ्गतुङ्गांशगते शाखेशे वा गुरौ सिते।**
**व्रती शिशुर्धनायुष्य व्रतविद्याविशारदः॥२४॥**

अपने उच्च, अपने उच्च नवांश में शाखेश, बृहस्पति एवं शुक्र हों तो व्रती बालक धनी, आयुष्यमान तथा व्रत विद्या में पराङ्गत होता है॥२४॥

**सूर्यांशकगते चन्द्रे महापातककृद्व्रती।**
**पण्योपजीवी स्वांशस्थे नीचो निःस्वः खलो भवेत्॥२५॥**

सूर्य के नवांश में चन्द्रमा हो तो व्रती बालक महापातकी होता है। अपने अंश में अथवा नीच राशि में स्थित हो तो बालक व्यापार से जीविका चलाने वाला दरिद्र तथा दुष्ट प्रवृत्ति वाला होता है॥२५॥

### नवांशगत चन्द्रमा का फल

**श्रवणादिति कर्कांश संस्थिते यदि शीतगौ।**
**विद्यावान्धनवाञ्छ्रीमान्व्रतवान्भोगवान्व्रती॥२६॥**

श्रवण, पुनर्वसु तथा कर्क राशि के अंश में यदि चन्द्रमा हो तो उपनीत बालक विद्वान, धनवान, श्रीमान, व्रतवान एवं भोगवान होता है॥२६॥

क्रमागतः-

नारदः-

श्रवणादिति नक्षत्रे कर्क्यंशस्थे निशाकरे।
सदाव्रती वेदशास्त्रधनधान्यसमद्धिमान्।।

—(ना. सं. अ० २४ श्लोक २३)

**कुजांशकगते चन्द्रे शस्त्रजीवो खलो व्रती।**
**बुधांशकगते चन्द्र वेदवादी भवेद् वटुः।।२७।।**

मङ्गल के नवांश में यदि चन्द्रमा हो तो उपनीत बालक शस्त्रों से जीविका चलाने वाला दुष्ट आचरणयुक्त होता है। यदि चन्द्रमा बुध के नवांश में हो तो व्रती वटुक वेदवादी होता है।।२७।।

**जीवांशकगते चन्द्रे साङ्गवेदविशारदः।**
**शुक्रांशगे धनी दाता विद्यावित्तविशारदः।।२८।।**

देवगुरु बृहस्पति के नवांश में चन्द्रमा हो तो व्रती वटुक वेदवेदाङ्गों का ज्ञाता होता है। शुक्र के नवांश में यदि चन्द्रमा हो तो वटुक धनवान, दानी तथा वित्तविद्या (अर्थशास्त्र) में निपुण होता है।।२८।।

**क्षिप्रोद्वाही यज्ञकृत्स्यात्सत्रदो भोगवान्भवेत्।**
**सौरांशकगते चन्द्रे सदा चाण्डालसेवकः।।२९।।**

शनि के नवांश में चन्द्रमा हो तो व्रती वटुक शीघ्र विवाह करने वाला, यज्ञ करने वाला, भोगवान् तथा चण्डाल का सेवक होता है।।२९।।

**पापांशकगते चन्द्रे स्वाधि नीचस्थितेऽपि च।**
**अनध्यायोपनीतश्च पुनः संस्कारमर्हति।।३०।।**

पापग्रहों के नवांश में चन्द्रमा हो अथवा अपनी अधिनीच स्थिति में हो तो अनध्यायी, उपनीत बालक पुनः जनेऊ संस्कार के योग्य होता है।।३०।।

**उपनयन में काल शुद्धि निर्णय**

**नैमित्तिकमनध्यायं कृष्णे च प्रतिपद्दिने।**
**मेखलाबन्धनं शस्तं चौले वेदव्रतेष्वपि।।३१।।**

नैमित्तिक, अनाध्याय, कृष्णपक्ष प्रतिपदा दिन में मेखलाबन्धन, मुण्डन वेदव्रत में भी शुभ माना गया है।।३१।।

**प्रशस्ता प्रतिपत्कृष्णा न पूर्वपरसंयुता।**
**चातुर्मास्य द्वितीयायां तृतीया चाक्षये तिथी।।३२।।**

कृष्णपक्ष की प्रतिपदा पूर्वापर संयुत न हो तो प्रशस्त मानी जाती है। चातुर्मास की द्वितीया एवं तृतीया तथा अक्षय तिथि में उपनयन संस्कार शुभ होता है।।३२।।

**उपनीतो यतः श्रीमान्विद्यावान्धनवान्भवेत्।**
**व्रते हि पूर्वसन्ध्यायां वारिदो यदि गर्जति।**
**तद्दिनं स्यादनध्यायं व्रतबन्धे विवर्जयेत्।।३३।।**

विधिपूर्वक उपनयन संस्कार हो जाने से व्रती वटुक श्रीमान्, विद्यावान तथा धनवान होता है। व्रतबन्धन की पूर्व सन्ध्या में यदि मेघ गर्जना हो तो उस दिन अनध्याय होता है। अतः मेघ-गर्जन व्रतबन्ध में वर्जित है। इस प्रकार के उपनयन संस्कार का त्याग करना चाहिए।।३३।।

क्रमागतः–

नारदः–

स्फूर्जितं केन्द्रगेभानौ व्रतिनो वंश नाशनम्।
कूजितं केन्द्रगे भौमे शिष्याचार्य विनाशनम्।।

*—(ना. सं. अ० २४ श्लोक ३१)*

### अष्टविध गलग्रह

**कृष्णपक्षे चतुर्थी च सप्तम्यादि दिनत्रयम्।**
**त्रयोदशी चतुष्कं च अष्टावेते गलग्रहाः।।३४।।**

कृष्णपक्ष की चतुर्थी, सप्तमी, अष्टमी, नवमी, त्रयोदशी, चतुर्दशी, अमावस एवं प्रतिपदा ये आठ तिथियाँ गलग्रह कही गयी हैं।।३४।।

क्रमागतः–

नारदः–

त्रयोदश्यादि चत्वारि सप्तम्यादि दिनत्रयम्।
चतुर्थी चैकतः प्रोक्ता ह्यष्टावेते गलग्रहाः।।

*—(ना. सं., अ० २४, श्लोक ३५)*

### उपनयन में श्रेष्ठा तिथियां एवं वार

**विधातृ 2 गौरी 3 फणि 5 षण्मुखा 6 द्रि यमाः 10 सकामास्तिथयः प्रशस्ताः।**
**मध्येऽर्करुद्रेऽपि च ते प्रशस्ते सुहृत्स्वतुङ्गर्क्षगते शशांके।।35।।**

द्वितीया, तृतीया, पञ्चमी, षष्ठी, दशमी तथा त्रयोदशी इत्यादि तिथियां श्रेष्ठ होती हैं। यदि चन्द्रमा अपने मित्रगृह अथवा उच्च में हो तो मध्ये (अष्टमी), द्वादशी एवं एकादशी तिथियां भी श्रेष्ठ होती हैं।।३५।।

**त्यक्त्वा चतुर्थीमपि कृष्णपक्षे त्वाद्यं त्रिभागं शुभदं व्रते च।**
**शस्ता सितेज्येन्दुजवासरास्ते रवीन्दुवारौ खलु मध्यमौ तौ।।३६।।**

कृष्णपक्ष की चतुर्थी को छोड़कर पहले तीन भाग अर्थात् प्रतिपदा, द्वितीया तथा तृतीया तिथियां व्रतबन्ध जनेऊ में शुभफलप्रद होती हैं। शुक्र, बृहस्पति एवं बुधवार व्रतबन्ध (जनेऊ) में शुभ कहे हैं। रवि एवं सोमवार ये दोनों वार मध्यम कहे हैं।।३६।।

### उपनयन में प्रयुक्त नक्षत्र

**हस्तत्रये च श्रवणत्रये च धातृद्वये त्र्युत्तरमैत्रभेषु।**
**पौष्णद्वये चादितिभद्वये च शस्तं द्विजानां खलु मौञ्जिकर्म।।३७।।**

हस्त से तीन हस्त, चित्र, स्वाती, श्रवण से तीन श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा रोहिणी से दो, रोहिणी मृगशिरा, तीनों उत्तरा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपदा, अनुराधा रेवती से दो—रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु से दो—पुनर्वसु, पुष्य इन नक्षत्रों में ब्राह्मणों के लिए उपनयन (जनेऊ) संस्कार प्रशस्त होता है।।३७।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

मैत्रे विष्णुत्रये हस्तत्रयर्क्षेषुत्तराजये।
धातृद्वयादितीज्जान्त्य दस्रर्क्षेषूत्तममव्रतम्।।

—(क. सं., अ० २८, श्लोक १२)

### दिन के तीन भागों में कृत्य

**दिवसस्य त्रिभागे तु पूर्वाह्णे कर्म दैविकम्।**
**द्वितीये मानुषं कर्म तृतीये पैतृकं च तत्।।३८।।**

दिन के तीन भाग (पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न) में, पूर्वाह्न में देवकार्य, दूसरे (मध्याह्न) में मानुष कर्म तथा तीसरे भाग (अपराह्न) में पितरों का कर्म श्रेष्ठ होता है।।३८।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

विज्ञेयौ वासरा तत्र मध्यमौ चन्द्रसूर्ययोः।
विभज्याह्नः प्रमाणं यत् तत्राद्यांशे च दैविकम्।।
द्वितीये मानुषं कार्यं तृतीयांशे तु पैतृकम्।
अनुक्त वर्षकालेषु चोपनीतो विनश्यति।।

—(क. सं., अ० २८, श्लोक)

### उपनयन में विशेष तिथियां

**या चैत्रवैशाखसिततृतीया माघस्य सप्तम्यपि फाल्गुनस्य।**
**कृष्णद्वितीयोपनये प्रशस्ताः प्रोक्ता भरद्वाजमुनीन्द्रमुख्यैः।।३९।।**

चैत्र एवं वैशाख शुक्ल तृतीया, माघशुक्ल सप्तमी तथा फाल्गुन कृष्ण द्वितीया उपनयन (जनेऊ) के लिए प्रशस्त हैं ऐसा भारद्वाज इत्यादि मुनियों ने कहा है।।३९।।

### उपनयन में ग्राह्य लग्न

**लग्नादिसौम्यग्रहराशयो ये ग्रहा न पापग्रहराशयो ये।**
**ग्राह्याश्चतेऽपि प्रबलैश्च सौम्यैरधिष्ठिताश्चापि निरीक्षिता वा।।40।।**

लग्न शुभग्रह एवं राशियों से संयुक्त, शुभ ग्रहों से अधिष्ठित अथवा शुभग्रहों से देखा जा रहा हों तो उस लग्न में उपनयन संस्कार (जनेऊ) ग्राह्य हैं, परन्तु पाप राशियां एवं पापग्रह ग्राह्य नहीं हैं।।४०।।

### उपनयन में त्याज्य लग्न

**दोषैस्तुदृष्टः सततं हि कालस्तेभ्योऽपि मार्ष्ठु गुरुरप्यशक्तः।**
**दोषैर्न चाद्याः सगुणैर्गुणाद्यास्तस्मात्सकालः शुभदः शुभेषु।।41।।**

दूषित ग्रहों द्वारा निरन्तर देखा जाने वाला लग्नकाल बृहस्पति के बलशाली होने के कारण शुद्ध नहीं होता, परन्तु गुणों से युक्त लग्न काल सर्वदा शुभ कार्यों में शुभ ही होता है।।४१।।

**एवं तत्समयं वीक्ष्य शोभनं च समाचरेत्।**
**मङ्गले दिवसे तस्मिंश्चन्द्रताराबलान्विते।।४२।।**

इस प्रकार समय को देखकर शुभ दिन में जब चन्द्रताराबल अनुकूल हो तो शुभ कार्य करना चाहिए।।४२।।

### उपनयन में नवांश वशात शुभाशुभ फल

**कुलीरकांशं परिहृत्य सौम्यनवांशका मौंजिविद्यौ प्रशस्ताः।**
**ते निन्दताः क्रूरनभश्चराद्याश्चेदष्टमांशा अपि मानवस्य।।४३।।**

कर्क राशि के नवांश को त्यागकर सौम्य अर्थात् शुभग्रहों के नवांश में यज्ञोपवीत संस्कार श्रेष्ठ होता है। क्रूर ग्रहों के नवांश में अथवा अष्टमांश युक्त लग्न हो तो मानवों के लिए निन्दित होता है।।४३।।

**न नैधनं नैधनशुद्धलग्नं न नैधनर्क्षं न च तन्नवांशम्।**
**न नैधनेशं न तदंशकेशं लग्ने प्रशस्तं न च रात्रिनाथः।।४४।।**

निधन तारा न हो, लग्न से अष्टम स्थान शुद्ध हो, अष्टम राशि, अष्टम राशि का नवांश न हो, अष्टमेश न हो, अष्टमेश का नवांश भी नहीं हो, चन्द्रमा लग्न में न हो तो उपनयन-लग्न श्रेष्ठ होता है।।४४।।

क्रमागतः–

नारदः–

शुभलग्ने शुभांशे च नैधने शुद्धिसंयुते।
लग्नेत्वनैधने सौम्यैः संयुक्ते वा निरीक्षिते।।
दृष्टेर्जीवाके चन्द्राद्यैः पञ्चभिर्वलिभिर्ग्रहै।
स्थानादिबलसम्पूर्नैश्चतुर्भिर्वा समन्विते।।

*—(ना. सं., अ० २४, श्लोक २४-२५)*

उपनयन में चन्द्रमा का शुभाशुभफल

**प्रालेयरश्मौ यदि लग्नसंस्थे बलक्षपक्षेऽपि भवेत्सरोगी।**
**व्रती च सौम्य ग्रहवर्गगेऽपि खलोऽति निःस्वःश्रुतिकर्महीनः।।४५।।**

चन्द्रमा लग्न में स्थित हो तथा कृष्णपक्ष भी हो तो व्रती वटुक रोगी रहता है, शुभग्रहों के वर्ग में चन्द्रमा हो तो व्रती बालक दुष्ट प्रवृत्ति वाला एवं वैदिक कर्मों से हीन होता है।।४५।।

उपनयन में लग्न शुद्धि

**इष्टाः पञ्च ग्रहा यस्य राशेस्तद्गृहसंज्ञके।**
**रविचन्द्रेज्य मुख्यास्ते चत्वारो वा बलान्विताः।।४६।।**

जिस लग्न में पाँच ग्रह इष्ट हों, राशियां भी उन ग्रहों की हों सूर्य, चन्द्रमा तथा बृहस्पति ये चारों बलवान हों तो उपनयन, यज्ञोपवीत के लिए लग्न शुद्ध होता हैं।।४६।।

ग्रहों का लग्न में शुभाशुभफल

**नीच स्थिताः शत्रुगृहस्थिताश्च पराजिताश्चास्तमिता ग्रहेन्द्राः।**
**लग्ने ग्रहास्ते स्वफलं प्रदातुं क्षमा न किञ्चिद् रिपुदृष्टदेहाः।।४७।।**

नीच राशि में, शत्रु राशि में, पराजित अस्तङ्गत शुभ ग्रह लग्न में होने पर भी शुभफलप्रद नहीं होते अथवा लग्न पर शत्रु ग्रहों की दृष्टि होने पर भी अपना फल देने में असमर्थ समझना।।४७।।

साम्य एवं क्रूर संज्ञक ग्रह

**सूर्यभौमशनिराहुकेतवः क्रूर संज्ञखचराः क्षयेन्दुना।**
**पूर्णचन्द्रगुरुशुक्रसोमजाः सर्वकर्मसु हि सौम्यखेचराः।।४८।।**

सूर्य, मङ्गल, शनि, राहु तथा केतु, क्षीण चन्द्रमा ये सभी क्रूर संज्ञक ग्रह कहे गये हैं। पूर्णचन्द्रमा, बृहस्पति, शुक्र एवं बुध सभी शुभ कार्यों में सौम्य संज्ञक हैं।।४८।।

### सूर्यादि ग्रहों का शुभाशुभफल

**रवौ लग्नादिकेन्द्रस्थे दोषाः स्फूर्जितसंज्ञकाः।**
**तत्रोपनीतस्य शिशोः कलनाशो भवेत्तदा॥४९॥**

सूर्यादि पापग्रह लग्न से केन्द्र में स्थित हों तो यह स्फूर्जितसंज्ञक (इन्द्र के वज्र के समान) दोष में उपनीत बालक का स्वर नाश होता है॥४९॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

वर्धमानोऽपि वा चन्द्रः पूर्णो वा यदि तुङ्गगः।
निःस्वं करोति व्रतिनं लग्नगः क्षयरोगिणम्॥
व्रतबन्धन लग्नात्तु केन्द्रगो यदि भास्करः।
कुजितोऽयं महादोषः करोति कुलनाशनम्॥
कुजश्चेत् कुपितो दोषः शिष्याचार्य विनाशनम्।
मन्दश्चेद्बधिरो दोषः करोति महदागदम्॥
राहौरन्ध्राह्वयो दोषः शिशोर्मातृ विनाशनम्।
केतौ केन्द्रेतूग्रदोषो विद्यावित्तविनाशनम्॥
द्वादशस्थं रविभौमः पश्येदाचार्यमनधकृत्।
सम्यग्बलाबलं चिन्त्यं वदेद् दोष निरूपणम्॥

*—(क. सं., अ० २८, श्लोक ३४-३८)*

**कुजे लग्नादि केन्द्रस्थे दोषा स्फूर्जितसंज्ञकाः।**
**तत्रोपनीतं कौमारं हन्ति वर्षान्न संशयः॥५०॥**

मङ्गल लग्नादि से केन्द्र में हो तो स्फूर्जित संज्ञक दोष में उपनीत बालक का वर्ष में मरण होता है इसमें संशय नहीं॥५०॥

**शनौ लग्नादि केन्द्रस्थे दोषो रुधिरसंज्ञकः।**
**करोति महतीं पीडां व्रतिनो वा गुरोश्च वा॥५१॥**

शनि लग्नादि से केन्द्र में हो तो रुधिर संज्ञक दोष में उपनीत बालक के लिए बहुत पीड़ाप्रद अथवा गुरु के लिए भी कष्टप्रद होता है॥५१॥

**राहौ लग्नादि केन्द्रस्थे दोषो रन्ध्राह्वयो भवेत्।**
**व्रतिनो जननीं हन्ति चार्थं वा न च संशयः॥५२॥**

राहु लग्नादि से केन्द्रस्थ हो तो रन्ध्र नामक दोष में उपनीत बालक की माता के लिए मृत्युप्रद अथवा धनहानि होती है इसमें संशय नहीं॥५२॥

**केतौ लग्नादि केन्द्रस्थे दोषश्च उग्रसंज्ञकः।**
**समग्रं व्रतिनो वित्तव्रतविद्या विनाशनम्॥५३॥**

केतु लग्नादि से केन्द्र में हो तो उग्रसंज्ञक दोष में व्रती वटुक का धन, व्रत, विद्या सब कुछ नाश हो जाता है॥५३॥

**लग्नषष्ठाष्टमान्त्यस्थः करोति च निशाकरः।**
**व्रतिनो रोगमधनं निर्धनं दुःख सञ्चयम्॥५४॥**

लग्न, षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में स्थित चन्द्रमा व्रती वटुक को रोगी, धनरहित, निर्धनी तथा दुःखों का सञ्चय करवाता है॥५४॥

### व्रतविद्यापराङ्गत योग

**बुधो लग्नगतो जीवः शुक्रो वाप्यथ शाखपः।**
**करोति व्रतिनं नूनं व्रत विद्या विशारदम्॥५५॥**

बुध लग्न में, बृहस्पति या शुक्र अथवा शाखेश लग्न में हो तो व्रती बालक को निश्चित तौर पर व्रत, विद्या में पराङ्गत करता है॥५५॥

### द्वितीय स्थान में शुभाशुभ ग्रहों का फल

**द्वितीयस्था ग्रहाः सौम्याः सौख्यारोग्यबलप्रदाः।**
**तत्र पापग्रहाः सर्वे नूनं तत्फल नाशदाः॥५६॥**

द्वितीय स्थान में शुभ ग्रह हों तो व्रती बालक के लिए सुख, आरोग्य तथा बल देने वाले होते हैं, परन्तु द्वितीय स्थान में पापग्रह हों तो निश्चित तौर पर सम्पूर्ण शुभफल को नाश करते हैं॥५६॥

### तृतीय, चतुर्थ स्थान में रिक्त ग्रहों का फल

**तृतीयस्थाः शुभाः पापा व्रतविद्याधनप्रदाः।**
**चतुर्थस्थानगाः सौम्याः सम्पद् धनभागप्रदाः॥५७॥**

तृतीय स्थान में शुभाशुभ दोनों प्रकार के ग्रह हों तो उपनीत बालक के लिए व्रत, विद्या एवं धनप्रद होते हैं; किन्तु चतुर्थ स्थान में स्थित शुभ्रगह ही सम्पत्ति, भोग एवं धन प्रदान करते हैं॥५७॥

### पञ्चम स्थान में शुभाशुभग्रहों का फल

**पञ्चमस्थानगाः सौम्या नृपपूजार्थसिद्धिदाः।**
**तत्र पाप ग्रहाः सर्वे सदा सत्फल नाशदाः॥५८॥**

पञ्चम स्थान में शुभग्रह हों तो व्रती बालक राज पूजित और धन की सिद्धि वाला होता है; परन्तु पञ्चम स्थान में पापग्रह हों तो सर्वदा शुभफल का नाश होता है॥५८॥

### षष्ठ स्थान में स्थित शुभाशुभ ग्रहों का फल

**षष्ठस्थाः खचरा सौम्या दुःखशोक भयप्रदाः।**
**तत्रस्थाः क्रूरखचराः सदा तत्फलनाशदाः॥५९॥**

षष्ठ स्थान में शुभग्रह हों तो व्रती बालक के लिए दुःख, शोक एवं भयप्रद होते हैं; परन्तु षष्ठ स्थान में यदि पाप ग्रह हों तो दुःख, शोक एवं भयप्रद नहीं होते॥५९॥

### सप्तम-अष्टम स्थान में ग्रहों का फल

**लग्नात्सप्तमगाः सौम्या व्रतविद्यासुखप्रदाः।**
**सर्वे ग्रहाश्चाष्टमस्था निधनाधनशोकदाः॥६०॥**

लग्न से सप्तम स्थान में शुभ ग्रह हों तो व्रत, विद्या एवं सुखप्रद होते हैं। यदि अष्टम में सभी ग्रह स्थित हों तो मृत्यु, धनहीनता तथा शोकप्रद होते हैं॥६०॥

### नवम स्थान में शुभाशुभ ग्रहों का फल

**नवमे सौम्यखचरा वित्तायुष्य शुभप्रदाः।**
**तत्र पापाः सौम्यखेटकृततत्फलनाशकाः॥६१॥**

नवम स्थान में शुभग्रह हों तो धन, आयुष्य एवं शुभफलप्रद होते हैं; किन्तु नवम स्थान में पापग्रह हों तो शुभग्रहों द्वारा दिये गये शुभफल को नाश करते हैं॥६१॥

### दशम-एकादश स्थान में शुभाशुभ ग्रहों का फल

**सौम्याः कुर्वन्ति दशमे वृत्तिविद्याधनान्वितम्।**
**सर्वे ग्रहाश्च लाभस्थाः कुर्वंत्यभिमतं फलम्॥६२॥**

दशवें स्थान में स्थित शुभग्रह जीविका, विद्या एवं धनवान बनाते हैं, जबकि एकादश स्थान में शुभाशुभ ग्रह अभीष्ट (मनचाहा) फल देते हैं॥६२॥

### व्ययस्थान में शुभाशुभ ग्रहों का फल

**व्ययस्थानस्थिताः सर्वे कुर्वन्ति व्ययशीलिनम्।**
**खलं नीचं पापरतं बुद्धिहीनं विदेशगम्॥६३॥**

व्यय स्थान में स्थित शुभाशुभ ग्रह खर्चा करवाते हैं। दुष्टता, नीचता, पाप में आसक्ति बुद्धिहीनता तथा विदेश गमन करवाते हैं॥६३॥

### आचार्य का नेत्रहीन योग

**द्वादशस्थं रविभौमः पश्यन्नाचार्यनेत्रहा।**
**बलिनं बलवान्नूनमचिरात्तु न संशयः॥६४॥**

द्वादश स्थान में सूर्यमङ्गल यज्ञोपवीत संस्कार में नियुक्त आचार्य को नेत्र हीन करते हैं; क्योंकि बली ग्रह बलवान होने पर निश्चित रूप में प्रतिकूल फल देते हैं, इसमें संशय नहीं॥६४॥

### गुणदोष निरूपण

**दोषोऽप्येको गुणान्हन्ति तद्विरोधी गुणे न चेत्।**
**पञ्चगव्ययुतं पूर्णं कुम्भं मद्यलवो यथा॥६५॥**

एक दोष भी गुणों को नष्ट करता है, यदि उसका विरोधी कोई गुण न हो जैसे पञ्चगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोबर, मूत्र) से पूर्ण कलश में मदिरा (शराब) की एक बून्द पड़ जाए तो सम्पूर्ण पञ्चगव्य कलश को दूषित कर देती है॥६५॥

लग्नं सर्वगुणोपेतं दोषेणैकेनदूषितम्।
त्यजेत्तदंगुलमिव ह्युरगक्षतदूषितम्॥६६॥

लग्न सर्वगुण सम्पन्न हो, परन्तु एक ही दोष से दूषित हो जाए तो उसे वैसे ही त्याग देना चाहिए। जैसे सर्पदंश से दूषित (सर्प द्वारा काटी जाने वाली) अङ्गुली को काट दिया जाता है॥६६॥

### दूषित लग्न का फल

दोषोऽप्येको निहन्त्येव सकलं गुणसञ्चयम्।
लग्नोत्थं शुभखेटोत्थमनृतं सुकृतं यथा॥६७॥

लग्न में एक ही दोष समस्त शुभ ग्रहों द्वारा सञ्चित सद्गुणों को समाप्त करता है, जैसे एक झूठ सारे पुण्य को नष्ट कर देता है॥६७॥

पञ्चाङ्गलग्नलग्नांश शुभग्रहकृतान्गुणान्।
दोषोऽप्येको गुणान्हन्ति स्वैरिणी स्वजनानिव॥६८॥

पञ्चाङ्ग, लग्न, लग्न का नवांश और शुभग्रहों द्वारा कृत गुणों को एक ही दोष वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे स्वच्छन्दचारिणी स्त्री अपने जनों को नष्ट करती है॥६८॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

एकस्मिन्केन्द्रगे जीवे शुक्रे वा यदि केन्द्रगे।
दोषा विनाशमायान्ति पापं भागीरथी जलैः॥
मित्रराशि गते जीवे शुक्रे वा केन्द्रगे बुधे।
दोषा नाशयन्ति पापाद्याः प्राणायामेन ते यथा॥
अधिमित्रनवांशस्थे शाखाधीशे त्रिकोणगे।
दोषा विनाशमायान्ति ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥
यद्येकादशगः सूर्यश्चन्द्रो वा मित्रराशिगः।
हन्तिलग्नोद्भवं दोषं पूतनामिव केशवः॥
अधिमित्रर्क्षगः समर्थश्चन्द्रो वाप्यनुकूलगः।
दोषा विनाशमायान्ति स्वधाद्यं विष्णुचिन्तनात्॥
एकोदोषो गुणान् लक्षान् हन्ति तद्बाधको गुणः।
नास्ति चेत् पावनं पञ्च गव्यमद्य लवो यथा॥

—(क. सं., अ० २८, श्लोक ३९-४४)

निहन्ति सिद्धामृतयोगजातान्पञ्चाङ्गजातानपि लग्नजातान्।
शुभग्रहोत्थानखिलान्गुणौघानेकोऽपि दोषो हि यथा वृकोऽजान्॥६९॥

सिद्धियोग, अमृतयोग, पञ्चाङ्ग एवं लग्न द्वारा उत्पन्न योगों, शुभग्रहों द्वारा उत्पन्न समस्त गुणों को एक ही दोष ऐसे नष्ट करता है, जैसे बकरियों को भेड़िया नष्ट करता है॥६९॥

गुणाननेकाञ्छुभखेटजातान् पञ्चाङ्गलग्नामृतयोगजातान्।
एकोऽपि दोषः सुतरां निहन्ति सुपुण्यराशीनिवकूटसाक्षी॥७०॥

शुभ ग्रहों द्वारा उत्पन्न अनेक योगों को, पञ्चाङ्ग, लग्न, अमृतयोगों को एक ही दोष वैसे नष्ट करता है, जैसे सुन्दर श्रेष्ठ पुण्य समूह को कूटसाक्षी (झूठी गवाही देने वाला) नष्ट कर देता है॥७०॥

एकस्मिन् कूटगे दोषे नाशयत्यखिलान्गुणान्।
शरीरस्थे क्षये रोगे यथा द्राक्सप्त धातवः॥७१॥

एक ही बुरा दोष समस्त गुणों को नष्ट कर देता है, जैसे शरीर में विद्यमान क्षयरोग शारीरिक सात धातुओं को नष्ट कर देता है॥७१॥

**लग्न में बृहस्पति का फल**

सर्वानिमानतिबलाः स्फुरदंशुजालो लग्नोपगः प्रशमयेत्सुरराजमन्त्री।
एको वहूनि दुरितानि सुदुस्तराणि भक्त्या प्रयुक्त इव शूलधरे प्रणामः॥७२॥

समस्त मानति बल एवं किरण समूहों से युक्त लग्न में स्थित देवगुरु बृहस्पति समस्त दोषों को वैसे नष्ट करते हैं, जैसे अनेकों भयंकर पाप भगवान् शङ्कर को भक्तिपूर्वक प्रणाम करने से नष्ट हो जाते हैं॥७२॥

**लग्न में शुभग्रह का फल**

एकोऽपि केन्द्रगः सौम्यः सकलं दोषसञ्चयम्।
विनाशयति धर्मांशुरूदितस्तिमिरं यथा॥७३॥

एक ही शुभ ग्रह केन्द्र में हो तो समस्त सञ्चित दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् सूर्य के उदय होने पर अन्धकार नष्ट हो जाता है॥७३॥

**उच्चस्थ शुभग्रह का फल**

शुभग्रहः स्वोच्चसंस्थो लग्नं पश्यति चेद्यदा।
तदा दोषलयं प्राप्ता ग्रीष्मे कुसरितो यथा॥७४॥

शुभ ग्रह अपने उच्च स्थान में हो तथा लग्न का देखता हो तो सम्पूर्ण दोष वैसे नष्ट हो जाते हैं, जैसे गर्मी के दिनों में छोटी नदियां॥७४॥

मित्र राशि में शुभग्रह का फल

निरीक्ष्यमाणे लग्ने तु मित्रसंस्थे शुभग्रहे।
दोषालयं ययुः सर्वे लग्नलग्नांश सम्भवा॥७५॥

मित्र राशि में स्थित शुभ ग्रह लग्न को देखते हों तो लग्न एवं लग्नांश में सम्भव समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं॥७५॥

उच्च, उच्चांश में शुभग्रह का लग्न में फल

स्वोच्चांशगे शुभे लग्ने दृष्टे युक्ते तदा तदा।
लग्नलग्नांशसम्भूताः सर्वदोषो लयं गताः॥७६॥

अपने उच्च, उच्चांश में शुभग्रह लग्न में स्थित हो, शुभग्रहों द्वारा युक्त या दृष्ट हो तो लग्न, लग्नांश से सम्भव समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं॥७६॥

स्वाधिमित्रस्थ शुभग्रह का फल

एकोऽपि सौम्यखचरः स्वाधिमित्रगृहस्थितः।
आलोकयति चेल्लग्नं सर्वदोष विनाशकृत॥७७॥

एक ही शुभग्रह, अपने अधिमित्र गृह में स्थित होकर यदि लग्न को देखे तो समस्त दोषों का नाश करता है॥७७॥

मित्राधिमित्र-शुभग्रहों का फल

मित्राधिमित्रस्वक्षेत्र संस्थे सति शुभग्रहे।
वीक्ष्यमाणे यदा लग्ने तदा दोषा लयं ययुः॥७८॥

मित्र, अधिमित्र, स्वक्षेत्र में स्थित शुभ ग्रहों द्वारा लग्न पर दृष्टि हो तो समस्त दोषों का नाश हो जाता है॥७८॥

देवगुरु बृहस्पति का शुभफल

ये पापखेटप्रभवाश्च दोषा विलग्नलग्नांशक सम्भवा ये।
केन्द्रे गुरुस्तान्विमलान्करोति फलं यथांभः कतकद्रुमस्य॥७९॥

इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायामुपनयनाध्याय एकोनत्रिंशः॥२९॥

पाप ग्रहों द्वारा उत्पन्न दोष, लग्न या लग्नांश से उत्पन्न दोषों को बृहस्पति नष्ट करके निर्मल बना देता है, जैसे कतक वृक्ष का फल जल द्वारा धुल जाता है॥७९॥

वृद्धवसिष्ठ संहिता के ''उपनयनाध्याय'' की
'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥

पाठान्तरम्

०२. (अ) ज१, ज२-वाष्टमाब्दे (—वाष्टमेऽब्दे)
(ब) ज१, ज२-तद्वदेव (—वेदविद्भिः)
०५. (अ) ज१-मौढैयेल्पे च खार्द्धके, ज२-मौज्येल्प च वार्द्धिके (—प्रौढये वाल्ये च वार्द्धके)
(ब) ज१, ज२-दुर्वलेसति (—दुर्बलेऽपिच)
०६. (अ) ज१-शाखेशचराधिवसेशिगुरुणां, ज२-शाखेश्वराधिवर्णेशगुरुणां (—शाखेश्वरस्वस्वर्णेशगुरुणां)
०७. (अ) ज१-न वलीगुरुस्तेछात्प्रशस्तं, ज२-न बलीगुरुस्वेच्छात्प्रशस्तं (—न गुरूर्बलीचेच्छन्त्या प्रशस्तं)
(ब) ज१, ज२-अनुक्तवर्षेसु (—अनुक्तवर्षेऽपि)
०८. (ब) ज१-विद्यावृत्ताथिचिस्तत्र, ज२-विद्यावृत्तर्थिविस्तत्र (—विद्याव्रतार्थिभिस्तत्र)
०९. (अ-ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-तदेवनीत: (—तदोपनीत:)
१०. (ब) ज१, ज२-स्वकुलाचारविभ्रष्टो (—स्वकुलाचारविच्छ्रेष्ठो)
११. (अ) ज१-वास्फुजिर्देदवेज्य: (—वास्फुजितीन्द्रपूज्ये)
(ब) ज१, ज२-स्वकुजं (—स्वकुलं)
१२. (अ) ज१, ज२-स्वारिर्नीचमगे (—स्वारिनीचगते)
(ब) ज१, ज२-वालोक्षिप्रदंत्यसेवक: (—बाल: क्षिप्रादन्त्यसेवक:)
१३. (अ) ज१, ज२-स्वारिराशिगं (—शत्रुराशिगे)
१४. (अ) शुक्रनवांशगे ज१, ज२- (—शत्रुनवांशके)
१५. (अ) ज१-तदोसंस्थे, ज२-तदासंस्थौ (—तदंशस्थे)
ज१ ज२-चैकस्मिन् खेचरी, (—चैकस्मिन्खचरे)
१८. (अ) ज१, ज२-स्वप्तीव्याधोचभागगं (—स्वांशे वा स्वोच्चभागगे)
(ब) ज१, ज२-स्वनीचफलमश्रुते (—न नीचफलमश्नुते)
१९. (अ) ज१, ज२-स्वमित्रांशकसंस्थिते (—स्वमित्रांशे च संस्थिते)
२०. (ब) ज१, ज२-विषविद्यायुतोव्रती (—विद्यायुक्तो भवेद्व्रती)
२१. (अ) ज१, ज२-स्वमित्रांशकेपि वा (—स्वाधिमित्रांशगेऽपि वा)
(ब) ज१, ज२-चित्रविद्याधिको (—वित्तविद्याधिको)
२३. (अ) ज१, ज२-सिते (—सति)
(ब) ज१, ज२-वाले (—वालो)
२४. (ब) ज१, ज२-वृत्तविद्या (—व्रतविद्या)
२५. (ब) ज१-पुण्योपसेवी, ज२-पुण्योपवि (—पण्योपजीवी)
२६. (ब) ज१, ज२-वृक्षवान् (—व्रतवान्)
२७. (अ) ज१, ज२-कुंमांशकगते (—कुजांशकगते)

(ब) ज१-विदवेदी, ज२-वेदवेदी (—वेदवादी)
२८. (अ) मु. पु. यज्वा (—चन्द्रे)
३१. (अ) ज१-माध्यायं (—अनाध्यायं)
ज१, ज२-प्रतिपाद्दिनं (—प्रतिपद्दिने)
३२. (अ) ज१, ज२-प्रतिपत्कृष्णे) (—प्रतिपत्कृष्णा)
(ब) ज१-वाक्षयेतथा, ज२-चक्षयेतथा (—चाक्षये तिथी)
३३. (अ) ज१, ज२-व्रतं तत्र विवर्जयेत् (—व्रतबन्धे विवर्जयेत्)
३४. (ब) ज१-अष्टविते, ज२-अष्टाविते (—अष्टावेते)
३५. (ब) ज१, ज२-मध्येकरुद्रापि (—मध्येऽर्करुद्रेऽपि)
३६. (ब) ज१, ज२-शस्त: ज. मो. शस्ता: (—शस्ता)
३७. (ब) ज१-मौरिकर्म (—मौञ्जिकर्म)
३८. (अ) ज१, ज२-यस्तस्मिन्नधेषु (—तु पूर्वाह्ले कर्म)
३९. (ब) ज१, ज२-कृष्णतृतीयापमया (—कृष्णाद्वितीयोपनयने)
४०. (अ) ज१, ज२-लग्नायसौम्य (—लग्नादिसौम्य)
(ब) ज१-निरीक्षितो (—निरीक्षिता)
४१. (अ) ज१, ज२-दोषेस्तुद्रष्ट: मु. प. शेषैः सुदुष्ट: (—दोषैस्तु दृष्ट:)
४३. (अ) ज१, ज२-परिकृत्य (—परिहृत्य)
(ब) ज१-ते विंदिता: (—ते निन्दिता:)
ज१, ज२-क्रूरनभश्चरास्थाजेदष्टमांसा (—क्रूरनभश्चराद्याश्चेदष्टमांशा)
४६. (अ) ज१, ज२-राश्येल्लग्नसंज्ञकं (—राशेस्तद्गृहसंज्ञके)
(ब) ज१, ज२-रविचन्द्रार्क (—रविचन्द्रेज्य)
४७. (अ) ज१, ज२-पराजिताश्चास्तमपागताश्च (—पराजिताश्चास्तमिता)
४८. (अ) ज१, ज२-क्षयचन्द्र: (क्षयेन्दुना)
४९. (अ) ज१, ज२-स्फुरितसंज्ञका (स्फूर्जितसंज्ञका:)
५०. (अ) ज१, ज२-कुजितसंज्ञक: (—स्फूर्जितसंज्ञका:)
(ब) ज१, ज२-सिसोहतिवर्षन्नसंशय: (कौमारं हन्ति वर्षान्नसंशय:)
५१. (अ) ज१-दोषोवुजित, ज२-दोषोकुंभित (—दोषोरूधिरसंज्ञक:)
(ब) ज१, ज२-गुरोस्तथा (—गुरोश्च वा)
५२. (ब) ज१-स्त्वथवानसंघयं, ज२-स्त्वथवाधनुसंचयं (—चार्थं वा न च संशय:)
५३. (ब) ज१, ज२-चित्तवृत्तविद्या (वित्तव्रतविद्या)
५४. (अ) ज१, ज२-करोत्येवनिशाकर: (—करोति च निशाकर:)
(ब) ज१-रोगमतिसन्निर्धनं, ज२-रोगमनिसनिधनं (—रोगमधनं निर्धनं)
५५. (अ) ज१, ज२-विधौलग्नगतेजीवे (—बुधोलग्नगतो जीव:)
ज१, ज२-शुक्रोवाप्यथवास्थिते (—शुक्रोवाप्यथ शाखप:)
(ब) ज१, ज२-वृत्तविद्याधनान्वितं (—व्रतविद्याविशारदम्)

५६. (अ) ज१-ग्रस्था: (—ग्रहा:)
ज१, ज२-सौख्य-सौम्यफलप्रदा: (—सौख्यारोग्यबलप्रदा:)

५७. (अ) ज१, ज२-वित्तभोगकरा: सदा (—व्रतविद्याधनप्रदा:)
(ब) ज१, ज२-सम्पद्भोगसुखपदा: (—सम्पद्भोगधनप्रदा:)

५८. (ब) ज१-तत्फलहानिद: (—तत्फलनाशदा:)

६०. (अ) ज१, ज२-वृत्तविद्या (—व्रतविद्या)
(ब) ज१-निर्धनाधन, ज२-निधनाय (—निधनाधन शोकदा:)

६१. (अ) ज१, ज२-वृत्तपुण्यसुखप्रदा: (—वित्तायुण्यशुभप्रदा:)

६४. (अ) ज१, ज२-द्वादशस्था (—द्वादशस्थं)

६५. (ब) ज१, ज२-पंचगव्यमतं (—पञ्चगव्ययुतं)

६६. (अ) ज१, ज२-कुर्वगुणोपेतं (—सर्वगुणोपेतं)
(ब) ज१, ज२-दूषकं (—दूषितम)

६७. (अ) ज१, ज२-पुण्यसंचयम् (—गुणसञ्चयम्)
(ब) ज१-लग्नोल्वे, ज२-लग्नेष्वे (—लग्नोत्थं)
ज१-शुभषेपेच्छमनृतं, ज२-शुभषेपेहमवृतं (—शुभखेटोत्थमनृतं)

६८. (ब) ज१-गुणान्यान्ति, ज२-गुणान्यानि (—गुणान्हन्ति)

६९. (ब) ज१, ज२-वृकोजात् (—वृकोऽजान्)

७०. (ब) ज१-एकापिदोष:, ज२-टण्कोऽपिदोषो (—एकोऽपि दोष:)
ज१-सुतरात्रिहन्ति, ज२-सुतरान्निहन्ति (—सुतरां निहन्ति)
ज१, ज२-स्वपुष्य (—सुपुण्य)

७१. (अ) ज१, ज२-लग्नगते (—कूटगे)

७२. (अ) मु. पु. सर्वानिमानतिबल: (—सर्वानिमानितबला:)

७३. (ब) ज२-विनासयति (—विनाशयति)

७४. (ब) ज१-यान्तिग्रीष्मेर्क: सरिदे, ज२-यान्तिग्रीष्मेक: सरदे
(—प्राप्ता ग्रीष्मे कुसरितो यथा)

७६. (अ) ज१, ज२-स्वोच्चांशके (—स्वोच्चांशगे)
(ब) ज१, ज२-ययु: (—गता:)

७९. (अ) ज१, ज२-प्रभवा: (—प्रभवाश्च)
(ब) ज१, ज२-गुरूस्तान्विमलि (—गुरूस्तान्विमलान्)
(ब) ज१, ज२-कुटुकद्रुमस्य (—कतकद्रुमस्य)
पुष्पिका ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ विरचितायां महासंहितायामुपनयन विधिस्वरूपलक्षणं नाम एकोनत्रिंशतमोध्याय:॥२९॥
ज२-इति श्री वृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायामुपनयन विधिस्वरूपलक्षणं नाम एकोनत्रिंशतमोध्याय:॥२९॥

## ३०

# अथ समावर्त्तनाध्यायः

समार्वन की आवश्यकता

**अधीत्य वेदांश्च तदर्थशास्त्राण्यभ्यस्य लब्ध्वा स्वगुरोरनुज्ञाम्।**
**कुर्यात्समावर्त्तनकर्म पश्चाद्गोदानतः पाणि निपीडनात्प्राक्॥१॥**

यज्ञोपवीत संस्कार के पश्चात् वेदों का अध्ययन करके, अनेक अर्थ बतलाने वाले शास्त्रों का अभ्यास करके और अपने गुरु की आज्ञा प्राप्त करके विवाह से पूर्व गोदानपूर्वक समावर्त्तन कर्म करना चाहिए॥१॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि समावर्तनमण्डनम्।
गुर्वनुज्ञात शिष्याणां द्विजानां नियतात्मनाम्॥
सौम्यायने देवपूज्य शुक्रयोर्दश्यमानयोः।
चैत्र मास विवर्ज्येषु मघादिषु पञ्चसु॥
अष्टमीमवमां रिक्तां सामाद्यामन्तिमां तिथिम्॥
हित्वान्यदिवसे जीव सौम्यभार्गव वासरे॥

—(क. सं., अ० २९, श्लोक १-३)

समावर्तन का शुभमुहूर्त

**सौम्यायने निर्मलयोः सुरेज्यदैत्यज्ययोर्व्योम्नि बलक्षपक्षे।**
**संत्यज्य रिक्तामवमाष्टमीं च वैनाशिकाख्याखिलऋक्षवृन्दम्॥२॥**

उत्तरायण में बृहस्पति एवं शुक्र के उदित रहते हुए शुक्लपक्ष में चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी, अमावस अष्टमी तिथियों तथा वैनाशिक संज्ञक सभी नक्षत्रों को त्याग कर समावर्त्तन करना चाहिए॥२॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

अथोत्तरायणे शुक्रजीवयोदृश्य मानयोः।
द्विजातीनां गुरोर्गेहान्निवृत्तानां यतात्मनाम्॥
चित्रोत्तरादितीज्यान्त्य हरिमैत्रेंदुभात्रिषु।
भेष्वर्केन्द्वीज्य शुक्रज्ञ वार लग्नांशकेषु च॥
अथवा वस्त्र नक्षत्रवार लग्नांशकेष्वपि।
प्रतिवत्सर्वरिक्तामा अष्टमी च दिनत्रयम्॥

हित्वान्य दिवसे कार्यं समावर्तन मंडनम् *

—(ना. सं., अ० २७, श्लोक १-३)

**समावर्तन मुहूर्त्त में प्रयुक्त नक्षत्र**

**करादिपञ्चस्वदितिद्वयाश्विविष्णुत्रये त्र्युत्तरधातृभेषु।**
**सपौष्णचान्द्रेषु शुभग्रहर्क्षवारेषु यत्स्नातक कर्म शस्तम्॥३॥**

**इति ब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां समावर्तनाध्यायस्त्रिंशः॥३०॥**

हस्त से पाँच नक्षत्र, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा और अनुराधा, पुनर्वसु से दो, पुनर्वसु पुष्य, अश्विनी, श्रवण से तीन, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा, उत्तराभाद्रपद, रोहिणी, रेवती एवं मृगशिरा नक्षत्रों में शुभग्रहों के वारों एवं राशियों में स्नातक कर्म (समावर्तन) प्रशस्त होते हैं॥३॥

वृद्धवसिष्ठ संहिताके ''समावर्त्तनाध्याय'' की नारायणी
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥३०॥

क्रमागतः–

कश्यपः–

उत्तरात्रयमैज्य हरीन्द्वदिति धातृषु।
पौष्णाहस्तेषु ऋक्षेषु समावर्तनमीरितम्॥
शास्त्रोक्त वारधिष्ण्येषु यद्वा लग्नांशगे शुभे।
सर्वेषु मङ्गलेष्वादावङ्कुरार्पणमिष्यते॥
पर्वतो नवमे सप्त दिवसे पञ्चमेऽपि वा।
पञ्चाङ्ग शुद्धि दिवसे जीव नक्षत्र संयुते॥

—(क. सं., अ० २९, श्लोक १-३)

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१, ज२-अधीतवेदाश्च (—अधीत्यवेदांश्च)
ज१-लपू, ज२-लघू (—लब्ध्वा)
(ब) ज१-पश्चाद् गोधानती, ज२-पश्चाद् गोदानकर्मतः (—पश्चाद् गोदानतः)
०३. (अ) ज१, ज२-त्रयुत्तरवानृतेषु (—त्र्युत्तराधातृभेषु)
पुष्पिकाः ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां समावर्त्तनस्वरूपलक्षणं नाम त्रिंशतमोध्यायः॥३०॥
ज२-इति श्री वृद्धवसिष्ठ विरचितायां समावर्तनस्वरूपलक्षणं नाम त्रिंशतमोध्यायः॥३०॥

***

* 'मुंडनम्' इति पीयूषधारायाम

# ३१

# अथ विवाहप्रश्नाध्याय

**शुभे दिने दैवविदं त्वभिज्ञं ताम्बूलपुष्पाक्षतपूर्णपाणिः।**
**कर्त्ता च गत्वा प्रणिपत्य पृच्छेन्निवेद्य तस्मै वरकन्योर्मे।।१।।**

ताम्बूल पुष्पाक्षत अपने हाथों में लेकर प्रश्नकर्त्ता ज्योतिषी के पास शुभदिन में स्वेच्छा से जाकर प्रणाम पूर्वक निवेदन करके अपने वर एवं कन्या के सन्दर्भ में प्रश्न पूछे।।१।।

क्रमागतः–

नारदः–

पुण्येऽह्नि लक्षणोपेतं सुखासीनं सुचेतसम्।
प्रणम्य देववत्पृच्छेदैवज्ञं भक्तिपूर्वकम्।।
ताम्बूलफलपुष्पाद्यैः पूर्णाञ्जलिरूपाग्रतः।
कर्त्तानिवेद्य दंपत्योर्जन्मराशिं स जन्मभम्।।
पृच्छकस्य भवेलग्नादिंदुः षष्ठाष्टगोऽपि वा।
दम्पत्योर्मरणं वाच्यमष्टमर्क्षान्तरे यदि।।

—(ना. सं., अ० २७, श्लोक ३-५)

चन्द्रमा का शुभाशुभफल

**प्रष्टुर्विलग्नात्प्रबलः शशाङ्कः शत्रुस्थितो मृत्युग्रहस्थितो वा।**
**यथाष्टमाब्दात्परतो विवाहं करोति मृत्युं वरकन्योश्च।।२।।**

प्रश्नकर्त्ता के लग्न से प्रबल चन्द्रमा षष्ठाष्टम स्थित हो तो ऐसे समय में किया गया विवाह आठ वर्षों के पश्चात् वर कन्या के लिए मृत्युप्रद होता है।।२।।

क्रमागतः–

नारदः–

यदि लग्नगतश्चन्द्रस्तस्मात्सप्तमगः कुजः।
विज्ञेयं भर्तृमरर्णत्वष्टमेऽब्दे न संशयः।।
लग्नात्पंचमगः पापः शत्रुदृष्टः स्वनीचगः।
मृतपुत्रा तु सा कन्या कुलटा न तु संशयः।।

—(ना. सं., अ० २७, श्लोक ६-७)

पापग्रहों का पापफल

**एकोऽपि लग्नोपगतश्च पापः पापस्ततोऽन्यः खलुः सप्तमस्थः।**
**आसप्तमाब्दान्निधनं वरस्य बलान्वितौ तौ कुरुतस्त्ववश्यम्।।२।।**

एक भी ग्रह लग्न में स्थित हो तथा अन्य पाप ग्रह सप्तम स्थान में विराजमान हों तो सात वर्षों के भीतर वर की मृत्यु हो जाती है। यदि पापग्रह बलशाली हो तो अवश्य ही उक्त फल घटित होता है।।२।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

पञ्चाङ्गशुद्धि दिवसे सुखासीनं सुचेष्टितम्।
भक्त्या प्रणम्य दैवज्ञं पृच्छेदेवं यथाविधि।।
ताम्बूलफल पुष्पाद्यैः पूर्णाञ्जलिमुपागतः।
दम्पत्योर्जन्मभं राशिं तस्मै कर्त्ता निवेदयेत्।।
चन्द्रः षष्ठाष्टमगतो बलवान् पृच्छकोदयात्।
वेदाष्टमाब्दात्परतो दम्पत्योर्मरणं भवेत्।।
एको लग्नगतः पापः पापोऽन्यः सप्तराशिगः।
आसप्तमाब्दान्मरणं पुरुषस्य न संशयः।।
यदि चन्द्रो लग्नगतस्तस्मात्सप्तमगः कुजः।
विवाहतस्त्वष्टमाब्दात्कुरूते निधनं पतेः।।

—(क. सं., अ० ३०, श्लोक ४-८)

**आठवें वर्ष में वर या कन्या मृत्युयोग**

**प्रालेयरश्मौ यदि लग्नसंस्थे तस्मात्कुजः सप्तमराशि संस्थः।**
**तदाष्टमाब्दात्कुरुतस्त्ववश्यं वरस्य मृत्युंत्वथ वाङ्गनायाः।।३।।**

यदि चन्द्र लग्न में स्थित हो, लग्न से सप्तम मङ्गल हो तो आठवें वर्ष में वर या कन्या की मृत्यु अवश्य हो जाती है।।

**सप्तम स्थान स्थित पापग्रहों का फल**

**स्वनीचगः शत्रुनिरीक्षितश्च पापो विलग्नाद्यदि सप्तमस्थः।**
**विवाहिता सा मृतपुत्रिणी स्याद्वन्ध्याऽथवाभर्तृविवर्जिता वा।।४।।**

अपने नीच में, शत्रु ग्रह द्वारा देखा गया पाप ग्रह यदि लग्न से सप्तम स्थान में हो तो विवाहित स्त्री मृतक पुत्रों वाली, वन्ध्या अथवा पति द्वारा त्यक्ता होती है।।४।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

स्वनीचगः शत्रुदृष्टः पापः पंचमगो यदा।
मृतपुत्रां करोत्येव कुलटां वा न संशयः।।
लग्नाद्दुश्चिक्य वृद्धास्त कर्मलाभगतः शशी।
गुरूदृष्टस्तयोरेव सम्बन्धं कुरू ते सदा।।

—(क. सं., अ. ३०, श्लोक ९-१०)

### चन्द्र, गुरु दृष्टि का फल

**लग्नात्त्रिपञ्चास्तदशायगेषु हिमद्युतिर्जीव निरीक्षितश्च।**
**तयोस्तु सम्बन्धकरस्तदानीं नार्कांशुलुप्तो न च नीचगश्चेत्।।५।।**

लग्न से तीसरे, पाँचवें, सातवें, दशमें तथा एकादश भाव में गए हुए चन्द्रमा पर गुरु दृष्टि हो परन्तु गुरु सूर्यांशों में लुप्त न हो तथा नीच न हो तो वर कन्या का सम्बन्ध करवाने वाला वहीं पर होता है।।५।।

### कन्यालाभ योग

**विलग्नगा गोघटकर्कटाश्च हिमांशुदैत्येज्य समन्वितास्ते।**
**संवीक्षिता वा यदि कन्यकाया लाभं भवेदत्र च पृच्छकस्य।।६।।**

वृष, कुंभ एवं कर्क राशियां लग्न में हों तथा चन्द्रमा, शुक्र भी वहाँ स्थित हों या देखते हों तो प्रश्न कर्त्ता को कन्या लाभ अवश्य होता है।।६।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

शुक्रेन्दू युग्मराशिस्थौ युग्मांशकगतौ तदा।
बलिनौ वीक्षितौ लग्नं कन्या लाभो भवेत्तदा।।
स्त्रीनिवासो युग्म लग्नं यदि चेत्स्यात्समागमः।
वीक्षितश्चन्द्र शुक्राभ्यां कन्या लाभो भवेत्तदा।।
अयुग्म राशिगौ चेत्तौ शुक्रेन्दू बलिनौ तथा।
पश्यतो लग्नमेतौ चेद्वरलाभो भवेत्तदा।।

—(ना. सं., अ० २७, श्लोक १०-१२)

### अजीवनसुखप्रदयोग

**अनोऽन्यराश्यंगतौ सितेन्दू निरीक्षितौ तौ बलिनौ विलग्नम्**
**तस्योस्तदानीं कुरुतस्त्ववश्यं सम्बन्धमाजीवित शर्मदं स्यात्।।७।।**

चन्द्रमा एवं शुक्र परस्पर एक-दूसरे के राश्यांश में गये हों, बलवान होकर लग्न को देखते हों तो दोनों का अर्थात् वर-कन्या का सम्बन्ध अवश्य होता है और यह सम्बन्ध आजीवन सुखप्रद होता है।।७।।

### कन्या का वर प्राप्तियोग

**अयुग्मराश्यंशगते विलग्ने निरीक्षिते पुंखचरैर्दृकाणे।**
**तथाविधे तस्य वरस्य लाभं वदेत्तदानीं खलु कन्यकायाः।।८।।**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**विवाह प्रश्नाध्याय एकत्रिंशः।।३१।।**

विषम राश्यांश लग्न को पुरुष ग्रहों द्वारा देखा जाता हो अथवा द्रेष्काण में पुरुष ग्रह स्थित हों तो उसी विधि से कन्या को वर का लाभ होता है, ऐसा कहना चाहिए।।८।।

वृद्धवसिष्ठसंहिता के ''विवाहप्रश्नाध्याय'' की ''नारायणी'' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।

**पाठान्तरम्**

०१. (ब) ज१-वरकन्योर्म, ज२-वरकन्यायोम, ज.मो. वरकन्योर्मय मु. पु. वरकन्योश्च (—वरकन्योर्मे)

०२. (अ) मु. पु. नास्ति—(अ) ज१, ज२-प्रवराशशांक: (—प्रबल: शशाङ्क:)
(ब) ज१, ज२-यचष्टमाब्दाभ्यान्तरतो (यथष्टमाब्दात्परतो)

०३. (ब) ज१-वरस्थ, ज. मो.-नरस्य (—वरस्य)

०४. (अ) ज१, ज२, ज.मो. पञ्चमस्थ: (—सप्तमस्थ:)
(ब) ज१-मृतपुत्रेणौ (—मृतपुत्रिणी)
ज१, ज२-मर्त (—भर्तृ)

०५. (ब) ज. मो. नीचगस्ते (—नीचगश्चेत्)

०७. (अ) ज१, ज.मो. (अतोजराश्यंशगतौ, ज२-अनोजराशांश्यगतौ (—अनोऽन्यराश्यंशगतौ)
ज. मो.-विलग्ने (—विलग्नम्)

०८. (अ) ज१-तयोरीक्ष्यते (—निरीक्षिते)
(ब) ज. मो.- तत्र (—तस्य)
पुष्पिका ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां विवाहप्रश्नस्वरूपलक्षणा नाम एकत्रिंशतमोध्याय:।।३१।।
ज२-इति श्री वृद्धवसिष्ठ विरचितायां विवाहप्रश्नस्वरूपलक्षणं नाम एकत्रिंशतमोध्याय:।।३१।।

***

## ३२

# अथविवाहाध्याय:

**कश्चिद् गृहाश्रमसमो न परोऽस्ति धर्मः।**
**सोऽपि स्थितः सुगुणवृत्तयुतांगनासु॥**
**उद्वाहलग्नवशतो गुणवृत्तलब्धि-**
**स्तासां तथाविधसुलग्नमतः प्रवच्मि॥१॥**

**नारायणी टीका**

गृहस्थ आश्रम के समान दूसरा कोई भी आश्रम धर्म नहीं है और उसमें यदि श्रेष्ठ गुणों से युक्त सुन्दर आचरण सम्पन्न गृहिणी हो तो विवाह लग्न के अनुसार गुणवृत्ति लब्धि प्राप्त होती है। अत: विवाह समय में स्त्री के सुन्दर आचरण के लिए सुन्दर विवाह लग्न को कहता हूँ॥१॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

सर्वाश्रमाणामाश्रेयं गृहस्थाश्रममुत्तमम्।
यतस्तदपि योषायां शीलवत्यां स्थितस्ततः॥
तस्यास्तच्छीललब्धिस्तु सुलग्न वशतः खलु।
पितामहोक्तां संवीक्ष्य लग्नशुद्धिं प्रवच्म्यहम्॥

*—(ना. सं., अ. २७, श्लोक १-२)*

व्यास:

गृहाश्रमात्परो धर्मों नास्ति नास्ति पुनः पुनः।
यज्ञैर्हिर्दक्षिणावद्भिर्वह्निश्रूषया तथा॥
गृहीस्वर्गमवाप्नोति तथा चातिथिपूजनात्।

—(वृहद्दैवज्ञरञ्जनम् पृ. सं. २००)

**अब्देषु युग्मेष्वपि कन्यकानां स्वजन्मवर्षाच्छुभदो विवाहः।**
**अयुग्मवर्षेषु शुभो नराणां विपर्यये दुःखगदप्रदः सः॥२॥**

जन्म से सम वर्षों में कन्या का विवाह शुभफलप्रद होता है तथा विषम वर्षों में पुरुषों का विवाह शुभफलप्रद होता है। इसके विपरीत अर्थात् कन्याओं का विषम वर्षों में तथा पुरुषों का सम वर्षों में विवाह दुःख एवं रोग देने वाला होता है॥२॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

युग्मेब्देजन्मतः स्त्रीणां प्रीतिदंपाणिपीडनम्।
एतत्पुंसामयुग्मेऽब्दे व्यत्यये नाशनं तयोः॥

—(ना. सं., अ. २९, श्लोक १)

पराशरः

युग्मेब्दे सम्पदः सौख्यविद्याधर्मायुषः सदा।
भर्तृदुष्टा भवत्योजे निषेकान्नात्र संशयः।।

—(पी.यू.धा. टी. ६ प्र० १२ श्लोक)

कश्यपः–

विवाहो जन्मतः स्त्रीणां युग्मेब्देपुत्रपौत्रदः।
अयुग्मे श्रीप्रदः पुंसां विपरीते तु मृत्युदः।।

—(पी.यू.धा. टी. ६ प्र० १२ श्लोक)

मन्वर्थमुक्तावल्याम्

अयुग्मे दुर्भगा नारी युग्मे च विधवा भवेत्।
तस्माद् गर्भान्विते युग्मे विवाहे सा पतिव्रता।।

—(पी.यू.धा. टी. ६ प्र० १२ श्लोक)

**दिनाधिपे मेषवृषालिकुम्भनृयुङ्मृगाख्येषु गृहेषुसंस्थे।**
**माघद्वये माधवशुक्रयोस्तु मुख्योऽथवा कार्त्तिकसौम्ययोश्च।।३।।**

सूर्य मेष, वृष, वृश्चिक, कुम्भ, मिथुन एवं मकर राशियों में हो तो विवाह होता है। माघ, फाल्गुन, वैशाख, ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष कार्त्तिक तथा आषाढ़ मास—।।३।।

क्रमागतः–

नारदः–

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः।
मध्यम कार्त्तिको मार्गशीर्षो वै निन्दिताः परे।।

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-२)

### विवाह में शुभाशुभ तिथियां

**शुक्ले द्वितीयादित एव कृष्णपक्षे दशम्यन्तगताः शुभाः स्युः।**
**तास्वष्टमीस्कन्दगणेशदुर्गा चतुर्दशी चापि तिथिर्विवर्ज्याः।।४।।**

विवाह में शुक्लपक्ष की द्वितीया से कृष्णपक्ष की दशमी पर्यन्त तिथियां शुभ होती हैं। उनमें अष्टमी, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी इत्यादि तिथियां वर्जित हैं।।४।।

### पक्ष अनुसार चन्द्रफल

**दिने दिने वृद्धिमुपागतत्वाद्बली हि चन्द्रः शुभं एव शुक्ले।**
**तथैव कृष्णे विलयं गतत्वात्पक्षापराद्धात्खलु पाप एव।।५।।**

शुक्लपक्ष में दिन-प्रतिदिन वृद्धि को प्राप्त होता हुआ चन्द्रमा शुभ होता है। इसी प्रकार कृष्णपक्ष में घटता हुआ चन्द्रमा अशुभ समझें तथा पक्षान्त तक निश्चित पापी हो जाता है।।५।।

**वाराः प्रशस्ताः शुभखेचराणां सूर्यार्किवारौ खलु मध्यमौ तौ।**
**त्याज्यः सदा भूमिसुतस्य वारः कामार्कतिथ्योरपि तौ प्रदोषौ।।६।।**

शुभ ग्रहों के वार विवाह मुहूर्त्त के लिए शुभ होते हैं। रविवार एवं शनिवार ये दोनों वार मध्यम कहे गये हैं। मङ्गलवार सदैव त्याज्य करना चाहिए। त्रयोदशी एवं सप्तमी इन दोनों तिथियों का प्रदोषकाल त्याज्य है।।६।।

**तिस्त्रोत्तरामूलमघान्त्यमैत्रप्राजेशचन्द्रार्कसमीरभेषु ।**
**सदा प्रशस्तः खलु कन्यकायाः पाणिग्रहो वेधविवर्जितेषु।।७।।**

तीनों उत्तरा (उत्तरा फाल्गुनी, उ.षा., उ.भा.) मूल, मघा, रेवती, अनुराधा, रोहिणी, मृगशिरा, हस्त एवं स्वाति नक्षत्रों में कन्या का विवाह वेधविवर्जित होने के कारण शुभ होता है।।७।।

**रेखाश्चोर्द्धाः पञ्च तिर्यक् च पञ्च द्वे द्वे रेखे कोणयोरत्र चक्रे।**
**क्रमान्न्यसेच्छंभुकोणे द्वितीये रेखायां भान्यग्निभात्साभिजिच्च।।८।।**

पाँच रेखाएं ऊर्ध्व, पाँच रेखाएं तिरछी, दो, दो और कोण में बना कर द्वितीय रेखा पर क्रम से ईशान कोण में कृत्तिका नक्षत्र को स्थापित करके अभिजित् नक्षत्र सहित प्रदक्षिणा क्रम में सभी नक्षत्रों को लिखने से पञ्चशलाका चक्र बनता है।।८।।

**क्रमागतः-**

**विवाहवृन्दावने-**

याम्योत्तराप्रागपराश्च पञ्चद्वेद्वे च रेखे स्वयेद्विदिक्षु।
विदिग्द्वितीयार्गलिताग्नितारः सहाभिजित्तत्रभवेद् भवर्गः।।

—(वि. वृ., अ. ११, श्लोक-६)

**चक्रे तस्मिन्नेकरेखास्थितेन तद्विद्धयर्क्षं खेचरेण प्रदिष्टम्।**
**क्रूरैर्विद्धं सर्वधिष्ण्यं विवर्ज्यं सौम्यैर्विद्धं नाखिलं पादमेव।।९।।**

पञ्चशलाका चक्र में एक रेखा में स्थित ग्रह के द्वारा नक्षत्र विद्ध हो जाता है। यदि पाप ग्रहों द्वारा विद्ध हो तो सम्पूर्ण नक्षत्र का त्याग करना, यदि शुभग्रहों द्वारा विद्ध हो तो सम्पूर्ण नक्षत्र को न छोड़कर केवल मात्र नक्षत्र का अन्तिम चरण छोड़ना चाहिए।।९।।

**क्रमागतः-**

मूलादित्योः श्रवणमघयो सौम्य विश्वाद्वयोश्च।
पौष्णार्यम्णोर्वरूनमरुतोर्मैत्रयाम्यर्क्षयोश्च।।
अहिर्बुध्न्याभिधर विभयो रोहिणी साभिजिच्च।
वेधोयंवै मुनिभिरूदितः पाणिसम्बन्धकाले।।

—(वृ. दै. र., अ. ७१, श्लोक-७३६)

**आर्द्रोदयादूर्द्धमिनस्य कार्यं नक्षत्रवृन्दे दशके कदाचित्।**
**मासोक्तकर्मान्तरमङ्गलाद्यं न बोधनेऽह्नि प्रकटं मुरारेः॥१०॥**

सूर्य के आर्द्रा नक्षत्र में उदय के पश्चात् दश नक्षत्रों तक अर्थात् स्वातिनक्षत्र तक, जब सूर्य चल रहा हो तो विवाहादि मङ्गल कार्य नहीं करने चाहिए। पहले बताये गये मासों में विवाहादि मङ्गल कार्यों को भगवान् श्री विष्णु के जागृत होने के पूर्व (हरिप्रबोधिनी एकादशी पूर्व) नहीं करने चाहिए॥१०॥

क्रमागतः–

नारदः–

न कदाचिद्दशर्क्षेषु भानोरार्द्रा प्रवेशनात्।
विवाहं देवतानां च प्रतिष्ठां चोपनायनम्॥

*—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-३)*

अप्रबुद्धो हृषीकेशोयावत्तावन्न मङ्गलम्।
उत्सवे वासुदेवस्य दिवसे नान्यमङ्गलम्॥

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-७)

**आर्द्रादिक स्वातिविरामकाले नक्षत्रवृन्दे दशके तथैव।**
**विवाहचौलव्रतबन्धनाद्यं सुरप्रतिष्ठा न च कार्यमेव॥११॥**

आर्द्रा नक्षत्र से स्वाति नक्षत्र तक सूर्यचार में उसी प्रकार विवाह, चौल, व्रतबन्ध तथा देवताओं की प्रतिष्ठा इत्यादि कार्यों को भी नहीं करना चाहिए॥११॥

**शुक्र का बाल्यत्व-वृद्धत्व दोष**

**प्रागुद्गतोऽहस्त्रितयं शिशुः स्याद्वृद्धो दशाहं दिशि तत्र शुक्रः।**
**पश्चाद्दशाहं शिशुरत्र वृद्धः पञ्चाहमार्योभयतस्तु पक्षम्॥१२॥**

पूर्व दिशा में शुक्रोदय होने पर तीन दिन तक बाल्यत्व दोष तथा दश दिन पर्यन्त वृद्धत्व दोष होता है। पश्चिम दिशा में उदय होने पर दश दिन तक बाल्यत्व दोष एवं पाँच दिन तक वृद्धत्व दोष रहता है; किन्तु आर्यों (श्रेष्ठ विद्वानों) ने पन्द्राह-पन्द्राह दिन तक बाल्यत्व एवं वृद्धत्व कहा है॥१२॥

क्रमागतः–

नारदः–

नास्तंगते सितेजीवे न तयोर्बालवृद्धयोः।
न गुरौ सिंहराशिस्थे सिंहांशक गतेऽपि वा॥
पश्चात् प्रागुदितः शुक्रः पञ्चसप्तदिनं शिशुः।
अस्तकाले तु वृद्धत्वं तद्वदेव गुरोरपि॥

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-४-५)

### चन्द्रमा का बाल्यत्व-वृद्धत्वं दोषफल

**वृद्धत्वमिन्दोस्त्रिदिनं दिनार्द्धं बालत्वमस्तत्वमहर्द्वयं च।**
**अस्ते विधौ मृत्युमुपैति कन्या वालेऽन्यसक्ता विधवा च वृद्धे॥13॥**

चन्द्रमा का तीन दिन तक वृद्धत्व, आधा दिन बाल्यत्व और दो दिन तक अस्तकाल होता है। चन्द्रमा के अस्तङ्गत होने पर विवाह हो तो कन्या मृत्यु को प्राप्त होती है। बाल्यत्व दोष होने पर परपुरुष आसक्ति और वृद्धत्व दोष में वैधव्यता होती है॥१३॥

### चन्द्रमा बाल्यत्ववृद्धत्वखण्डन

**येनोक्तमेकं दिवसं शिशुत्वमित्येतदिन्दोस्तदयुक्तमत्र।**
**महत्वशीघ्रत्वसुधामयत्वाद्दिनार्द्रमित्यब्जजनिष्ठितत्वात्॥१४॥**

जिन आचार्यों ने चन्द्रमा का बाल्यत्व एक दिन का कहा है। यह कथन युक्तिसंगत नहीं; क्योंकि चन्द्रमा की महत्ता, शीघ्रगति और अमृतमयी किरणें सूर्य में प्रतिष्ठित होने के कारण दिन के आधे भाग में ही ये सब प्राप्त हो सकते हैं॥१४॥

### विवाहमुहूर्त्तनिर्णयः

**स्वजन्ममासर्क्षतिथिक्षयेषु वैनाशिकाद्व्यृक्षगणेषु भेषु।**
**नोद्वाहमात्माभ्युदयाभिलाषी नैवाद्यगर्भं द्वितयं कदाचित्॥१५॥**

अपने जन्ममास, जन्मनक्षत्र एवं क्षय तिथियों में वैनाशिक आदि नक्षत्र द्वय में अपने अभ्युदय की अभिलाषा रखने वाला कभी विवाह न करे और न ही आद्यगर्भ अर्थात् प्रथमगर्भ से उत्पन्न पुत्र का ज्येष्ठमास में विवाह न करे॥१५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

न जन्ममासेजन्मर्क्षे न जन्मदिवसेपि च।
नाद्यगर्भसुतस्याथ दुहितुर्वा करग्रहम्॥
नैवोद्वाहो ज्येष्ठपुत्रीपुत्रयोश्च परस्परम्।
ज्येष्ठमासजयोरेक ज्येष्ठे मासे हिनान्यथा॥

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-७-८)

### नक्षत्र एकपाद में विवाह मुहूर्त्त निर्णय

**दम्पत्योर्जन्मभे चैक्ये राशौ च निधनं तयोः।**
**एकस्य च तथोद्वाहे किञ्चिद् भेदेऽपि वा न च॥१६॥**

दोनों पति-पत्नी का जन्म नक्षत्र एक हो, राशि भी एक हो, परस्पर विवाह में कुछ भी भेद न हो तो दोनों की मृत्यु होती है॥१६॥

क्रमागतः-

जगन्मोहने—

एकर्क्षे चैकराशौ च विवाहस्त्वशुभः स्मृतः।
संकोचे तु तदा कार्यो भिन्नपादे यदा तयोः।।

*—(मु.चि. ६ प्र० ३६ श्लोक पी. टी.)*

गर्गः

एक राशिं विना नाडीयोमादौ विवर्जयेत्।
न दोषस्त्वेक राशिस्थे भकूटेन्ये तु भृव्युदः।।

—(मु.चि. ६ प्र० ३६ श्लोक पी. टी.)

नारदः-

एकराशौपृथक् धिष्ण्ये दम्पत्योः पाणिपीडनम्।
उत्तमं मध्यमं भिन्नराश्यैकर्क्षगयोस्तयोः।।

—(मु.चि. ६ प्र० ३६ श्लोक पी. टी.)

### ज्येष्ठ, द्विज्येष्ठ, त्रिज्येष्ठ सूर्यचन्द्रग्रहण विचार

**ज्येष्ठे मासे ज्येष्ठयोर्वा नृनार्योनैवोद्वाहो नोपरागाद्भुतेषु।
सर्वग्रासे सप्तरात्रं तदर्द्धं खण्डे त्याज्यं चाद्भुते सप्तरात्रम्।।१७।।**

वर एवं कन्या यदि अपने-अपने माता-पिता की प्रथम सन्तान हों तो ज्येष्ठमास में विवाह नहीं करना चाहिए। त्रिज्येष्ठ विवाह के उपयुक्त नहीं। सर्वग्रास ग्रहण (सूर्य एवं चन्द्रग्रहण) होने पर सातरात्रि पर्यन्त, खण्डग्रास होने पर साढ़े तीन तथा अद्भुत उत्पाद (भूकम्प आदि) होने पर सातरात्रि तक विवाहादि मङ्गलकार्य नहीं करने चाहिए।।१७।।

क्रमागतः-

नारदः-

उत्पात ग्रहणादुर्ध्वं सप्ताहमखिलग्रहे।
नाखिले त्रिदिनं मात्र तदा नेष्टं ऋतुत्रयम्।।
ग्रस्तास्ते त्रिदिनं पूर्वं पश्चात् ग्रस्तोदये तथा।
सन्ध्याकाले त्रित्रिदिनं निःशेषे सप्त सप्त च।।

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-९-१०)

### सूर्यचन्द्रग्रहण का फल

**ग्रस्तोदये चोर्द्धमनिष्टमादौ ग्रस्तास्तमानेऽप्युडुमासषट्कम्।
नाड्यश्चतस्त्रस्तिथिऋक्षयोगे सन्धिर्द्विपादं करणस्य सन्धिः।।18।।**

सूर्य, चन्द्रमा के ग्रस्तोदये ग्रहण हो जाएं तो आधा अनिष्ट होता है। ग्रस्तास्त

ग्रहण हो जाए तो २७ दिन अथवा छः मास तक दोष होता है। तिथि, नक्षत्र और योग इत्यादि सन्धि होने पर चार घटी तक तथा करण की सन्धि होने पर दो चरण तक दोष होता है॥१८॥

### पापयोग विचार

**पक्षोऽब्दसन्धिस्त्रिदिनं च माससन्धिस्त्रिनाड्योभयसन्ध्ययोश्च।**
**सवैधृता विष्टिरथाष्टमेन्दुःसपापयोगः परिघार्द्धमाद्यम्॥१९॥**

पक्ष, मास एवं वर्ष की सन्धि में तीन दिन तक, दोनों सन्ध्याओं में तीन घटी तक, वैधृति योग, भद्रा तथा अष्टम चन्द्रमा तथा परिघ योग का आधा भाग पाप योग कहलाता है॥१९॥

**तिस्रोऽष्टकाश्चोक्तनिसर्गदोषाः सर्वत्र वर्ज्याः खलु मङ्गलेषु।**
**निमित्तसंयोगनिसर्गजानां मध्ये महादोषचयं ब्रवीमि॥२०॥**

पहले कहे गए सभी स्वभाविक दोषों में तीन या आठ घटी पर्यन्त सभी मङ्गल कार्यों में त्याग करना चाहिए। नैमित्तक संयोग तथा स्वभाविक होने वाले महादोष समूहों को अब मैं कहता हूँ॥२०॥

### महादोषसमूह कथन

**पञ्चाङ्गदोषो रविसंक्रमश्च ससंग्रहः कर्तरिकांशदोषौ।**
**चन्द्रोऽरिरिष्फाष्टमपापवर्गौ कुजोऽष्टमस्थो भृगुः षट्कसंस्थः॥21॥**

पञ्चाङ्ग दोष, सूर्य सङ्क्रमण, ससंग्रह, कर्त्तरीदोष, नवांशदोष, चन्द्रमा की षष्ठाष्टम द्वादश स्थिति, पापवर्ग की स्थिति, मङ्गल का अष्टमस्थ दोष तथा षष्ठस्थान में शुक्र होने का दोष—॥२१॥

**गण्डान्त खार्जूरिकवारदोषविषाख्यनाड्योऽष्टमलग्नराशी।**
**तस्मिन्महादोषचयेऽपि कार्यं कृतं च तन्नाशमुपैत्यवश्यम्॥२२॥**

गण्डान्त दोष, खार्जूरिक दोष, वारदोष, विषनाड़ी दोष, अष्टमराशि एवं अष्टमलग्न दोष इत्यादि महादोषों का समूह कहा—इन दोषों में जो भी विवाहादि मङ्गल कार्य किये जाते हैं, उन कार्यों का अवश्य नाश हो जाता है॥२२॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

उदयास्त शुद्धिहीनो द्वितीयः सूर्यसंक्रमः।
तृतीयः पापषड्वर्गो भृगुः षष्ठे कुजोऽष्टमे॥
गण्डान्तः कर्तरीरिःफषडष्ठेन्दुश्च संग्रहः।
दम्पत्योरष्टमं लग्नं राशिर्विषघटी भवः॥

दुर्मुहूर्तो वारदोषः खाजुरीकः समांघ्रिजः।
ग्रहणोत्पातभं क्रूरविद्धर्क्षं क्रूरसंयुतम्।।
कुनवांशो महापातो वैधृतिश्चैकविंशतिः।
तिथिवारर्क्षयोगानां करणस्य च मेलनम्।।
पञ्चाङ्गमस्य संशुद्धिः पञ्चाङ्गं समुदाहृतम्।
यस्मिन्पञ्चाङ्ग दोषोस्ति तस्मिन्लग्नं निरर्थकम्।।

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-२२-२६)

**अकालवृष्टिः कुमुहूर्तदोषो महाव्यतीपातज वैधृतोत्थः।**
**लग्नास्तजाता ग्रहणर्क्षजाता पापर्क्षविद्धर्क्ष समुद्भवा ये।।२३।।**

अकाल वृष्टि, कुमुहूर्त्तदोष, महाव्यतिपाद एवं वैधृति से उत्पन्न दोष, लग्न के अस्त होने का दोष, सूर्यचन्द्र ग्रहण नक्षत्र दोष, पाप ग्रहों से विद्ध नक्षत्र दोष।।२३।।

**उत्पातभोल्कामहदाख्यदोषाः सर्वेषु देशेषु सदा विवर्ज्याः।**
**एकोत्तरा विंशतिरत्र दोषाः स्वसंहितायां च पितामहेन।।२४।।**

उत्पातदोष, नक्षत्रदोष, उल्कापातदोष, महद नामक दोष सभी देशों में विवर्जित हैं। इक्कीस प्रकार के दोषों को पितामह ब्रह्मा ने अपनी संहिता में लिखा है।।२४।।

**उपग्रहोलत्तभयातितर्क्षे उग्रहैर्विद्धविदूषितं यत्।**
**विरुद्धयोगेषु विरुद्धनाड्यो द्युराशयश्च ग्रहजन्मधिष्ण्यम्।।२५।।**

उपग्रह दोष, लत्ता दोष, भय, अतिनक्षत्र उपग्रह से विद्ध तथा विरुद्ध योगों में, विरुद्ध नाड़ी में द्विराशि तथा ग्रहजन्म नक्षत्र।।२५।।

**या मासदग्धास्तिथयो विलग्नान्यन्धानि शून्यानि च वाधिराणि।**
**द्युदग्धलग्नानि सपङ्गुकाण ज्वालामुखोद्बन्धन मासतिथ्यः।।26।।**

एवं मास दग्ध तिथि, लग्नान्ध, शून्य, वधिर, द्युदग्धलग्न, पङ्गु, काण, ज्वालामुख, बन्धन मासादि तिथियां।।२६।।

**प्रत्यर्कनीहारमहेन्द्रचापविद्युत्वता भूभ्रमणाभ्रदोषाः।**
**मरुत्प्रचारः परिवषेकम्पः प्रतीन्दुवैवर्णमथेन्दुभान्वोः।।२७।।**

प्रत्यर्क (प्रतिसूर्य) निहार, महेन्द्र, चाप, विद्युत वायु, भूमिभ्रमण, अभ्रदोष, मरुत्प्रचार, परिवेष, कम्प, प्रतीन्दु, वैवर्ण तथा सूर्यचन्द्र दोष।।२७।।

**द्युवारवारर्क्षजमृत्युघातहालाहलोत्था तु महानलाद्याः।**
**एतेऽल्पदोषाः क्रमशस्तथैषां देश व्यवस्था क्रियते सुसम्यक्।।28।।**

द्युवार एवं वार नक्षत्र से उत्पन्न दोष, मृत्यु, घात तथा हालाहल (शराब

मदिरा) से उत्पन्न दोष एवं महानल इत्यादि दोष क्रम से अल्प संज्ञक है। अत: इन दोषों को देश व्यवस्था के अनुसार कहते हैं॥२८॥

**उपग्रहर्क्षं कुरुबाह्लिकेषु कलिङ्गवङ्गेषु च पातितं भम्।**
**सौराष्ट्र शाल्वेषु च लत्तितं भं देशेषु वर्ज्यंशुभविद्धभं च॥२९॥**

उपग्रहनक्षत्रदोष कुरुदेश और बाह्लीक देश में, कलिङ्ग एवं बङ्ग देशों में पातित नक्षत्र दोष, सौराष्ट्र एवं शाल्व देशों में लत्तादोष तथा सभी देशों में अशुभग्रहों द्वारा विद्धनक्षत्र दोषों को समझना चाहिए॥२९॥

**निषिद्धयोगद्युनराशिजाता निषिद्धनाड्यो ग्रहजन्मभं च।**
**निशासु वार प्रभवादिदोषास्त्याज्याः सदा कौङ्कणसंज्ञदेशे॥30॥**

निषिद्धयोग एवं सप्तम राशि से उत्पन्न दोष, निषिद्ध नाड़ी ग्रह, जन्म नक्षत्र, रात्रि में वार प्रभवादि दोषों को कौंङ्कण नामक देश में सदैव त्यागना चाहिए॥३०॥

**ये मासदग्धादिदशैव दोषा विवर्जनीया खलु मध्यदेशे।**
**दुःस्वप्नदुर्दर्शनदुर्निमित्तं दुःशाकुनाद्यास्त्वपि यत्र तत्र॥३१॥**

जो मासदग्धादि दस दोष हैं, उनको मध्यदेश में त्याग देना चाहिए। दु:स्वप्न, दुष्ट दर्शन, दुर्निनिमित्तादि अपशकुन हैं, उनको जहाँ-तहाँ त्याग कर देना चाहिए॥३१॥

**प्रत्यर्कपूर्वा दशपूर्वदोषास्त्याज्याः सदा मागधगौडयोश्च।**
**नानाभिधानास्तिथिवारजाता नक्षत्रवारप्रभवाश्च दोषाः॥३२॥**

प्रतिसूर्य प्रत्यर्कपूर्वक दश पूर्व दोषों को सदैव मगध एवं गौड़दशों में, त्याग देना चाहिए। नाना प्रकार के तिथिवारों एवं नक्षत्रवारों से उत्पन्न दोषों को॥३२॥

**ते हूणवङ्गाङ्गखशेषु वर्ज्याः शेषेषु देशेषु न ते निषिद्धाः।**
**तस्मात्तु तेष्वेव विवर्जितास्ते देशेषु चान्येषु न दोषदाः स्युः॥33॥**

हूण, बङ्ग, अङ्ग, खश इत्यादि देशों में वर्जित करना चाहिए। शेष देशों में ये दोष निषिद्ध नहीं। अत: उन-उन देशों में उक्त दोषों को त्यागना चाहिए; किन्तु अन्य देशों में ये दोषप्रद नहीं होते॥३३॥

**कृत्वाधुनैषां विषयव्यवस्थां तान्पूर्वशास्त्रानुसरेण सम्यक्।**
**ततो महादोष निरूपणं च फलं तथा विस्तरतोऽभिधास्ये॥३४॥**

वर्त्तमान में इन दोषों के देश काल की व्यवस्था के अनुरूप करके पूर्व शास्त्र कथनानुसार अच्छी तरह व्यवस्थित करके एक बार फिर महादोषों का निरूपण तथा फलों को विस्तारपूर्वक कहूँगा॥३४॥

### पञ्चाङ्ग परिचय

**क्रमशस्तिथिवारर्क्षं योगतिथ्यर्द्धसंज्ञकम्।**
**तत्पञ्चाङ्गमिति प्रोक्तं पुण्यमर्केन्दुसम्भवाः॥३५॥**

क्रमशः तिथि, वार, नक्षत्र, योग एवं करण इत्यादि पाँच संज्ञाओं को पञ्चाङ्ग कहा गया है और यह पुण्यरूपी पञ्चाङ्ग सूर्य एवं चन्द्रमा से सम्भव होती है॥३५॥

**पञ्चाङ्गस्थ उत्पन्न दोषों का विचार**

**पञ्चाङ्गसंज्ञात्प्रभवः सदोषस्तस्मिन्कृतं मङ्गलसञ्चयं यत्।**
**दहत्यमोघं निखिलं च यद्वद्दावानलो विस्तृतकाननं यत्॥३६॥**

पञ्चाङ्ग (तिथिवारनक्षत्रयोगकरण) द्वारा उत्पन्न दोषों में किये गये मङ्गलकार्य अथवा कल्याणप्रद चीजों का सञ्चय पूर्णरूपेण उसी प्रकार भस्म से हो जाता है, जैसे विस्तृत जङ्गल को दावानल भस्म कर देती है॥३६॥

**संक्रमण कालनिर्णयः**

**विषुवतोऽयनतोऽपि दिनत्रयं हरिपदे षडशीतिमुखेषु च।**
**पूर्वतोऽपि परतोऽपि सङ्क्रमान्नाडिकाश्च खलु षोडश षोडश॥37॥**

विषुव दिन तथा अयन (उत्तरायण, दक्षिणायण) में भी तीन दिन विष्णुपदी (छयासी घटी) और सूर्य संक्रमण से सोलह-सोलह घटी तक संक्रमण काल रहता है॥३७॥

**सूर्य सङ्क्रान्ति का त्याग**

**सङ्क्रान्ति दोषे त्वचिरात्कृतं यदुद्वाह पूर्वाखिलमङ्गलौघम्।**
**लाक्षासमूहं ज्वलिताग्निमध्ये विलीयते यद्वदशेषकोटिः॥३८॥**

सङ्क्रान्ति दोष में अचिरात् किये गए विवाहादि समस्त मङ्गल कार्य वैसे ही नष्ट हो जाते हैं, जैसे लाक्षासमूह में जली हुई अग्नि में करोड़ों शेष विलीन हो जाते हैं॥३८॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

त्याज्या सूर्यस्य संक्रान्तिः पूर्वतः परतः सदा।
विवाहादि कार्येषु नाड्यः षोडश षोडश॥

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-२९)

**संक्रमण में नाड़ी त्याग**

**यदा यत्र प्रवेशः स्यात्तदा तद्राशिसंक्रमः।**
**तस्मिन्नपि तदा त्याज्या नाड्यः षोडश षोडश॥३९॥**

जब यहाँ जिस राशि में सूर्य प्रवेश होता है, तब वही राशि संक्रमण काल कहलाता है। उस में भी सोलह-सोलह नाड़ियों का आगे तथा पीछे त्याग करना चाहिए॥३९॥

संग्रहदोष

आदित्यभूमिपुत्राद्यः सञ्युक्तश्चन्द्रमा यदा।
संग्रहाख्यो महादोषो हालाहल विषोपमः॥४०॥

सूर्य एवं मङ्गल का जब युतिसम्बन्ध हो जाता है तो संग्रह नामक दोष हालाहल विष के समान होता है॥४०॥

संग्रहदोषफल

यः पापखेटोद्भवसंग्रहाख्यो दोषः सलग्नोत्थगुणान्समस्तान्।
निहन्ति मत्तेभगणाननेकानेकोऽपि सिंहः प्रबलश्च यद्वत्॥४१॥

जो पाप ग्रहों द्वारा उत्पन्न संग्रहदोष लग्न से उत्पन्न सभी गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे मत्त गजसमूह को एक प्रबल शेर नष्ट कर देता है॥४१॥

क्रमागतः–
नारदः–

शशाङ्के ग्रहसंयुक्ते दोषः संग्रहकारकः।
तस्मिन्संग्रहदोषे तु विवाहं नैव कारयेत्॥

—(मु. चि. ६ प्र० ४५श्लोक पी. टी.)

चन्द्रयुतिफल

दारिद्र्यं रविणा कुजेन मरणं सौम्येन न स्युः प्रजाः।
दौर्भाग्यं गुरुणा सितेन सहिते चन्द्रे समापत्न्यकम्।
प्रव्रज्यार्कसुतेन सेन्दुजगुरौ वाच्छन्ति केचिच्छुभम्।
व्याध्यैर्मृत्युरसद्ग्रहैः शशियुतैर्दीर्घः प्रवासः शुभैः॥४२॥

चन्द्रमा-सूर्य के साथ होने पर दरिद्रता, मङ्गल से मृत्यु, बुध से सन्तान रहित, बृहस्पति से भाग्यहीनता, शुक्र से पत्नी से वैमनस्य या शत्रुता, शनि से संन्यास होता है; किन्तु कुछ आचार्यों के मत से बुध एवं बृहस्पति से युक्त चन्द्रमा शुभ कहा गया है। पाप ग्रहों से सञ्युक्त चन्द्रमा रोगप्रद एवं मृत्युप्रद होता है। यदि शुभग्रहों से युक्त हो तो लम्बा प्रवास होता है॥४२॥

क्रमागतः–
नारदः–

तस्मिन्संग्रहदोषे तद्विवाहं नैवकारयेत्।
सूर्येणसंयुते चन्द्रे दारिद्र्यं भवतिध्रुवम्॥
कुजेनमरणं व्याधिर्बुधेन त्वनपत्यता।
दौर्भाग्यं गुरूणाचैव सापत्न्यं भार्गवे न तु॥
प्रव्रज्या रविपुत्रेण राहुणा कलहः सदा।
केतुना संयुतेचन्द्रे नित्यं कष्टं दरिद्रता॥

पापद्वय युतेचन्द्रे दम्पत्योर्मरणं भवेत्।
पापग्रहयुते चन्द्रे नीचस्थे राहुराशिगे।।
—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-४७-५०)

***नोट : पीयूषधारा टीका में भी पाठ उपलब्ध है।***

भूपादभयं रिपुभयं व्यसनं प्रवासं,
वित्तक्षयं विदरणं च शुभक्रियासु।।
कर्त्तुः करोति शशभृत्क्रमशोर्क,
पूर्वैरिकग्रहैः सह विशन्नुडुमेकराशौ।।
—(वृ. दै. र. अ. ७१ श्लोक ७४१, ज्यो. नि. ७२, पृ. २२ श्लोक)

यस्मिन्नृक्षः स्थितः खेटस्तदृक्षं युतिसंज्ञकम्।
तस्मिन्विवाहिताकन्या पुंश्चली जायते ध्रुवम्।।
युति यामित्रगो नित्यं राहूकेतु फलप्रदौ।
व्यासशौनकयोर्वाक्यमस्मिन्नर्थे च लिख्यते।।
भास्कर युते चन्द्रे भवति धनैर्वर्जिता दुराचारा।
भौमेसाहसयुक्ता गात्रच्छेदं समाप्नोति।।
स्वसुतयुते रजनीकोसत्यवती धर्मशीला स्यात्।
सुरगुरूणा पतिदयितासधना नियता च पुत्रणी साध्वी।
शुक्रे विपन्नशीला नित्यं वशगा च सपत्न्याः।
सौरिण युता विधवां प्रवज्यां वा करोति विगतभया।।
राहुसमेते चन्द्रे प्राप्ते पाणिग्रहणं तुया।
परपुरुषसक्तहृदयानीचैरपि याति संसर्गम्।।
केतुयुते हिमरश्मौ कन्या पाणिग्रहणं तु या गच्छेत्।
धारयति सा सुतीव्रं नृकपालं सोमसिद्धान्तवित्।।
—(वृ. दै. र. अ. ७१ श्लोक ८४२, ४४-४८ *)

## युतिदोष का अपवाद

**नारदः–**

स्वक्षेत्रगः स्वोच्चगो वा मित्रक्षेत्रगतो विधुः।
युतिदोषाय न भवेद् दम्पत्योः श्रेयसे तदा।।

**कश्यपः–**

तुङ्गमित्रस्वराशिस्थशुभयुक्तः शुभप्रदः।
एवंविधः क्रूरयुतः सम्पूर्णफलदः शशी।।

वर्गोत्तमगतश्चन्द्रः स्वोच्चे वा मित्रराशिगः।
युतिदोषश्च न भवेद्दम्पत्योः श्रेयसी सदा।।
—(वृ. दै. र., अ. ७१, श्लोक-८५१-५३)

कर्त्तरीयोग लक्षण

**लग्नऽस्य पृष्ठाग्रगयोरसाध्वोः सा कर्त्तरी स्याद् ऋजुवक्रगत्योः।**
**तावेव शीघ्रौ यदि वक्रचारै न कर्त्तरी चेति पितामहोक्तिः।।४३।।**

विवाहलग्न से पीछे व आगे अर्थात् बारहवें व दूसरे पाप ग्रह होने से कर्त्तरी दोष होता है, चाहे वो मार्गी वक्री हों तथा वही दूसरे बारहवें शीघ्रगामी एवं वक्री हो तो कर्त्तरी दोष नहीं होता, ऐसा पितामह ब्रह्माजी ने कहा है।।४३।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

लग्नस्य पृष्ठाग्र गयोरसाध्वोः।
साकर्तरी स्यादृजुवक्रगत्योः।।
तावेव शीघ्रं यदि वक्रचारौ,
नो कर्तरीति न्यगदन्मुनीन्द्रैः।।
लग्नाभिमुखयोः पापग्रहयोरुभयस्थयोः।
साकर्तरीति विज्ञेया दम्पत्योर्मृतिकर्तरी।।
—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-४२-४३)

**ज्योतिःसागरे–**

पापमध्यगतेचन्द्रे पापसंसर्गगेपि वा।
शुभकर्म न कर्त्तव्यं तथा लग्ने कदाचन।।
व्यये मार्गगतिः क्रूरो वक्री क्रूरो धने यदि।
तौ च लग्नांशतुल्यौ चेत्तदा घोराख्य कर्त्तरी।।
महाविघ्नप्रदा ज्ञेया विवर्ज्या शुभकर्मसु।
क्रूरयोः कर्तरी नेष्टामहाविघ्नप्रदाध्रुवम्।।
—*(वृ. दै. र., अ. ७१, श्लोक १०३५-३७)*

**यः कर्त्तरी नाम महान्हि दोषो लग्नोद्भवानेकशुभग्रहोत्थान्।**
**गुणान्निहन्ति प्रबलानशेषान्व्याघ्रो यथा गोसमितिं समस्ताम्।।44।।**

जो कर्त्तरी नामक महान दोष है लग्न से उद्भव हुए अनेक तथा शुभग्रहों से उत्पन्न प्रबल गुणों को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे व्याघ्र गायों के समूह को नष्ट कर देता है।।४४।।

क्रूरग्रहों के मध्य लग्न एवं चन्द्रस्थितिफल

**क्रूरग्रहमध्यगते लग्ने चन्द्रेऽथवा करग्रहणम्।**
**ये यमसदनाभिमुखं गमनं चेच्छन्ति कन्यायाः।।४५।।**

क्रूर ग्रहों (पापग्रहों) के मध्य में लग्न अथवा चन्द्रमा की स्थिति हो तो ऐसे समय में यदि विवाह हो तो कन्या की इच्छा करने वाला वर यम मन्दिर की ओर गमन करता है अर्थात् वर की मृत्यु हो जाती है।।४५।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

तल्लग्नं वर्जयेद्यत्नाञ्जीवशुक्रसमन्वितम्।
उच्चगे नीचगे वापि मित्रगे शत्रु राशिगे।।
अपि सर्वगुणोपेतं दम्पत्योर्निधनप्रदम्।
शशांके पापा संयुक्ते दोषः संग्रह संज्ञकः।।

—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-४५-४६)

**पापयोः कर्त्तरीकर्त्रोर्नीचशत्रुगृहस्थयोः।**
**यदा चास्तगयोर्वापि कर्त्तरी नैवदोषदा।।४६।।**

कर्त्तरी कारक दो क्रूर ग्रह शत्रु घर में स्थित हों या अपनी नीच राशि में अथवा दोनों अस्तङ्गत हों तो ऐसी स्थिति में कर्त्तरी दोष नहीं होता।।४६।।

### लग्नादि राशियों पर शुभग्रहों का प्रभाव

**लग्नादि सर्वे खलु राशयश्च शुभेक्षिताश्चाथ युताः शुभाः स्युः।**
**नवांशकास्तौलिनृयुग्मवत्यश्चापार्द्धभागः शुभदो न चान्ये।।४७।।**

लग्नादि सभी राशियां, शुभग्रहों द्वारा देखी जाए तथा शुभग्रहों से युक्त हों तो शुभफलप्रद हो जाती हैं। तुला, मिथुन एवं धनुराशि का पूर्वार्द्ध भाग का नवांश विवाह में शुभफलप्रद होता है दूसरे कार्यों में नहीं।।४७।।

### राशिनवांशवश शुभाशुभफल

**द्विभर्तृका मेषनवांशके स्याद् वृषांशके सापि सुशीलयुक्ता।**
**धनान्विता पुत्रवती तृतीये कुलीरकांशे कुलटाप्यजस्त्रम्।।४८।।**

मेष राशि के नवांश में विवाह हो तो कन्या दो पतियों वाली, वृष नवांश हो तो उत्तम चरित्रवाली, मिथुन नवांश में धनवती एवं पुत्रवती कर्क नवांश में निरन्तर कुलटा होती है।।४८।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

तुलामिथुनकन्यांशधनुराद्यर्द्धसंयुता ।
एते नवांशाः शुभदाः यदि नान्त्यंशका खलु।।

—(वृ. दै. र., पृ. सं. ३३६)

शौनक–

सुन्दरी सौभाग्यवती प्रहसित वदना च मीनांशे।

—*(वृ. दै. र., पृ. सं. ३३६)*

कश्यपः–

अन्त्यांशका अपि श्रेष्ठा यदि वर्गोत्तभाह्वयाः।
अनुक्तांशास्तु न ग्राह्या यतस्ते कुनवांशकाः।।

—*(वृ. दै. र., पृ. सं. ३३६)*

श्रीपतिः–

कोदंडतौलिमिथुन प्रमदा नवांशे प्राप्नोति सौख्यमतुलं दयिता च।
शेषेषु सत्स्वपि तथा च्यवनोज्झिता च चापाधिके भवति कृच्चवदन्ति।।

—(वृ. दै. र., पृ. सं. ३३६)

**सिंहांशके सा पितृमन्दिरस्था कन्यांशके वित्तयुतासुशीला।**
**तुलांशके सर्वगुणास्पदा सा कीटांशके निःस्वतरा विशीला।।49।।**

सिंह के नवांश में पिता के घर में रहने वाली, कन्या के नवांश में धनवती एवं सुशीला होती है। तुला के नवांश में सर्वगुणसम्पन्ना तथा वृश्चिक के नवांश में विवाह हो तो निर्धना एवं शीलरहित होती है।।४९।।

**चापांशकाद्ये धनिनी द्वितीये भागेऽन्यसक्ता मलिनो गदाढ्या।**
**निःस्वा मृगांशे विगुणा घटांशे विभर्तृका योगरता विशीर्णा।।५०।।**

धनु राशि के पूर्वार्द्ध नवांश में विवाह होने पर धनवती, धनुराशि के द्वितीय भाग के नवांश में विवाह होने पर दूसरे में आसक्त, मलिन चित्तवाली और रोगिनी होती है। मकर के नवांश निर्धना एवं गुणों से रहिता, कुंभ के नवांश में स्वामी रहिता, योग करने में तत्पर तथा मुर्झाये शरीर वाली होती है।।५०।।

**मीनांश में विवाह फल**

**मीनांशके भर्तृसुतार्थहीना शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षितेऽपि।**
**तस्मात्सदैवोक्त नवांशकेषु कुर्याद्विवाहं गुणसम्प्रवृद्ध्यै।।५१।।**

मीनांश में विवाह होने पर चाहे शुभग्रहों से युक्त या देखे जाने पर भी कन्या पति, पुत्र एवं धनहीना होती है। अतः सर्वदा कहे गये उक्त नवांशकों में गुणों की वृद्धि के लिए विवाह करना चाहिए।।५१।।

**अन्त्यांशकश्चेद्विशुभांशकानां मध्ये य एको न शुभप्रदः सः।**
**स एव वर्गोत्तमसंज्ञितश्चेच्छुभप्रदश्चाखिल मङ्गलेषु।।५२।।**

यदि अन्तिम नवमांश हो अथवा द्विस्वभाव राशि का नवमांश हो तो इनके मध्य में विवाह हो तो शुभफलप्रद नहीं होता। यदि वही वर्गोत्तम संज्ञक हो तो विवाहादि समस्त मङ्गल कार्यों में शुभफलप्रद होता है।।५२।।

### वर्गोत्तम नवांश के गुण

**वर्गोत्तमं विनान्त्यांशो विवाहे न शुभप्रदः।**
**वर्गोत्तमश्चेदन्त्यांशः पुत्रपौत्राभिवृद्धिदः॥५३॥**

वर्गोत्तम नवमांश को छोड़कर अन्य किसी भी लग्न के अन्तिम नवमांश में विवाह-संस्कार शुभप्रद नहीं होता। यदि वर्गोत्तम नवमांश के अन्तिम नवांश में विवाह-संस्कार हो तो पुत्र-पौत्रों की अभिवृद्धि करता है। (जैसे मिथुन लग्न में अन्तिम-नवमांश मिथुन ही होता है। अतः ऐसी स्थिति में वर्गोत्तम नवमांश में अन्तिम नवांश विवाह संस्कार में शुभ होता है अन्यथा अशुभ)॥५३॥

### नवांशदोषफल

**नवांशदोषः सकलं गुणौघं लग्नोत्थ सौम्यग्रह सम्भवं च।**
**दत्तं निहन्तीव वृकोऽजसंघं षट्वर्गजं सौम्यवियच्चराणाम्॥54॥**

लग्न से उत्पन्न, सौम्य ग्रहों से सम्भव हुए समस्त गुणों को नवांश दोष वैसे नष्ट कर देता है, जैसे बकरियों के समूह को भेड़िया नष्ट कर देता है। षड्वर्ग से उत्पन्न सौम्य ग्रहों में—॥५४॥

**विधोस्तु षष्ठाष्टमरिष्फदोषः करोति नाशं विविधं गुणौघम्।**
**लग्नांशसौम्यग्रहजं च तद्वत्सुरालवः पावन पञ्चगव्यम्॥५५॥**

चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश स्थान में दोषकारक होते हुए विविध गुणों का नाश करता है तथा लग्नांश तथा सौम्य ग्रहों द्वारा उत्पन्न गुणों को भी वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पवित्र पञ्चगव्य को मदिरा की एक बून्द॥५५॥

### षष्ठाष्टमद्वादश चन्द्र का फल

**षष्ठाष्टमद्वादशके शशांके स्थिते ग्रहा वर्द्धयितुं न शक्ता।**
**विवाहमुत्पन्नजमित्रमुच्चैर्वत्सं यथा वत्सलवत्सकीयम्॥५६॥**

षष्ठ, अष्टम तथा द्वादश में स्थित चन्द्रमा ग्रहों के बल में वृद्धि नहीं करता। विवाह लग्न में यदि तीन मित्र अथवा तीन उच्च ग्रहों की स्थिति हो तो उसी प्रकार दोष उत्पन्न नहीं होता जैसे वात्सल्यता में गौ अपने बछड़े को प्रेम करती है॥५६॥

**क्रमागतः-**

**अत्रिः—**

**चन्द्रो द्विपंचनवमेषु शुभः प्रदिष्टः शुक्लेथ कष्टफलदः खलु कृष्णपक्षे।**
**तुर्येष्ठमे व्ययगतोपि नरस्यनाशं कुर्यात्सचेच्छुभमिहोच्चनिजर्क्षपूर्णः॥**
**स्वर्क्षे स्वोच्चेथ मित्रर्क्षे पूर्णे वा रजनीपतिः।**
**गोचरे शुभमादत्ते निंद्योप्यावश्यके विधौ॥**

—(वृ. दै. र., अ. ७१, श्लोक-५४७-४८)

### पाप षड्वर्ग का फल

**यः पापषड्वर्गमहान्सदोषः पञ्चाङ्गसौम्य ग्रहलग्नजातम्।**
**गुणौघमम्भोधिममोघवाणः शुष्यत्यशेषंत्विवराघवस्य॥५७॥**

जो पाप षड्वर्ग में ग्रह होते हैं, वे महादोष कारक होते हैं। इस प्रकार के दोष पञ्चाङ्ग, शुभग्रह तथा लग्न से उत्पन्न गुणों को वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे भगवान् राम जी का अमोघ बाण समुद्र को सुखा देता है॥५७॥

**पाप षड्वर्गजो दोषो सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्ति यद्वदघानीक हरिरिव्यक्षरद्वयम्॥५८॥**

पाप षड्वर्ग से उत्पन्न दोष समस्त सञ्चित गुणों को वैसे ही नष्ट कर देते हैं, जैसे भगवान् के दो अक्षर "हरि" सभी पापों को नष्ट कर देते हैं॥५८॥

### मङ्गलदोष का प्रभाव

**लग्नस्थभौमाष्टमसंस्थदोषो निहन्ति तत्सर्वुणान्विशिष्टान्।**
**यथाऽनृतं धर्मचयानशेषानतः परं किं च बधूवरौ च॥५९॥**

लग्न में स्थित अथवा लग्न से आठवें मङ्गल के होने का दोष समस्त विशिष्ट गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे झूठ समस्त धर्म परायन समुदाय को नष्ट कर देता है तो फिर वरबधु के लिए क्या कहें अर्थात् विवाह लग्न में पापग्रह एवं विवाह लग्न से अष्टम मङ्गल सदैव वर्जित हैं॥५९॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

कुजाष्टमो महान् दोषो लग्नादष्टमगे कुजे।
शुभत्रययुतं लग्नं त्यजेत तुङ्गे यदि॥

—(मु. चि. प्र. ६ श्लोक ८४ पी. टी.)

### अष्टम मंगलदोष

**लग्नात्कुजाष्टमो दोषो नाशयत्यखिलान्गुणान्।**
**यथा लग्नांश सम्भूतान्कलुषं धर्मसञ्चयम्॥६०॥**

लग्न से अष्टम मङ्गल दोष समस्त गुणों का नाश करता है, जैसे लग्नांश से उत्पन्न पाप धर्मसमूह को नष्ट कर देता है॥६०॥

**तनुंजातान्गुणनिचयान्निहन्ति भौमाष्टदोषः सः।**
**दम्पत्योरपि मरणं करोति यद्वत्परांगना योगः॥६१॥**

लग्न से उत्पन्न गुण समूहों को अष्टम मङ्गलदोष नष्ट कर देता है और पति-

पत्नी की मृत्यु का कारण बनता है। यदि पति की मृत्यु न हो तो दूसरी पत्नी का कारण भी बनता है॥६१॥

षष्ठशुक्रदोष

**विलग्नराशेर्भृगुषट्कदोषः करोति नाशं विविधान्गुणौघान्।**
**आधिः क्रमाद्यद्वदशेषधातून् मित्राधिमित्रग्रहजान शेषान्॥६२॥**

लग्न से और राशि से छठे शुक्र दोषप्रद होता है। ऐसा शुक्र विविध गुण समूहों को नष्ट करता है। मानसिक रोग के कारण क्रम से सभी धातुएँ नष्ट हो जाती हैं। वैसे ही मित्र, अधिमित्र ग्रहों के द्वारा उत्पन्न समस्त गुण भी नष्ट हो जाते हैं॥६२॥

**भृगुषट्काख्यो दोषो वरवध्वोर्द्राग्वियोगकृन्नूनम्।**
**कन्यां विवाहितां तां भर्तृघ्नीं वा करोत्यचिरात्॥६३॥**

छठे शुक्र को दोष निश्चित तौर पर वर-बधु का वियोग करवाता है। विवाहित कन्या शीघ्र ही पति की मृत्यु का कारण बनती है॥६३॥

नक्षत्रसन्धि या नक्षत्रगण्डान्त योग

**यदन्तरालं पितृसार्पधिष्ण्ये मूलेन्द्रयोरश्विनपौष्णयोश्च।**
**भसन्धिगण्डान्तमिति द्वयं तन्नाड्यः प्रमाणं शुभकर्म हन्ति॥६४॥**

मघा एवं आश्लेषा, मूल एवं ज्येष्ठा, अश्विनी एवं रेवती; इन नक्षत्रों के अन्तराल को नक्षत्र सन्धि या नक्षत्र गण्डान्त कहा जाता है, इन नक्षत्रों का नाड़ी प्रमाण दो घटी तक होता है और ये सभी शुभकृत्यों को नष्ट करता है॥६४॥

**अहिवासवपौष्णानामन्त्ययामार्द्धमृक्षसन्धिः स्यात्।**
**पितृमूलाश्विभानामादौ यामार्द्धमृक्षगण्डान्तम्॥६५॥**

आश्लेषा, धनिष्ठा, रेवती इनका अन्तिम भाग यामार्द्ध एवं नक्षत्र सन्धि के रूप में कहा गया है। इसी प्रकार मघा, मूल, अश्विनी; इन तीन नक्षत्रों का आद्य भाग यामार्द्ध तथा नक्षत्र गण्डान्त कहा जाता है॥६५॥

प्रहरार्द्धकालनिर्णय

**पुनः पुनः पञ्चमषष्ठतिथ्योर्यदन्तरालं प्रहरार्द्धकालः।**
**तल्लग्नजातं गुणसञ्चयं यत्क्ष्वेडं यथाहन्तिनरं हि नूनम्॥६६॥**

तत्पश्चात् पञ्चमी एवं षष्ठी तिथियों का जो अन्तराल है, उसे प्रहरार्द्धकाल कहा जाता है। यह योग लग्न से उत्पन्न गुण सञ्चय को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे गन्ने के डन्डे को मनुष्य निश्चित ही नष्ट कर देता है॥६६॥

### घटिकार्द्धिनिर्णय

**लग्नान्तरालं घटिकार्द्धमेतत्कुलीरहर्योरलि चापयोश्च।**
**मीनाजयोः सर्वगुणान्निहन्ति लोभो यथा सर्वगुणान्नरस्य।।६७।।**

लग्नों को जो अन्तराल होता है, उसे घटिकार्द्ध संज्ञा दी गई है। यह कर्क, सिंह, वृश्चिक धनु, मीन एवं मेष राशियों में घटित होता है। यह समस्त गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे लालच मनुष्य के सभी गुणों को नष्ट करता है।।६७।।

### खार्जूर चक्र का समांघ्रिदोष

**खार्जूर चक्रस्य समांघ्रिदोषो विलग्नसम्भूतगुणानशेषान्।**
**शुभग्रहोत्थानपि तान्निहन्ति दारिद्र्यमेकं गुणसंहतिं यत्।।६८।।**

खार्जूर चक्र का समांघ्रि दोष (नक्षत्रचरणभेद दोष) लग्न से उत्पन्न समस्त गुणों को तथा शुभग्रहों द्वारा उत्पन्न गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे एक गरीबी समस्त गुणसमुदाय को नष्ट कर देती है।।६८।।

**पादेन पादं विनिहन्ति तस्य राशेर्नवांशं हि नवांशकेन।**
**ग्रहोऽपि पादेन न कृत्स्नधिष्ण्यं नवांशकेनापि न कृत्स्नधिष्ण्यम्।।६९।।**

पाद के द्वारा पाददोष नष्ट होता है और राशि नवांश दोष नवांशक से नष्ट हो जाता है। ग्रह भी पाद के द्वारा समस्त नक्षत्रों का और नवांश के समस्त नक्षत्र दोषों को नष्ट नहीं करता।।६९।।

**न सर्वराशेरुदयो विलग्नं वेधो न सर्वर्क्षभवः कदाचित्।**
**इष्टांशकं लग्नमुशन्ति तज्ज्ञा विरुद्धपादा अपि भस्य शस्ताः।।70।।**

सभी राशियों का उदय और लग्न का वेध कभी भी सभी नक्षत्रों के गुणों को नष्ट नहीं करता। इष्ट नवांश और लग्न से उत्पन्न विरुद्धपाद भी नक्षत्रों के प्रशस्त होते हैं।।७०।।

### पाददोष, नक्षत्रदोष प्रभाव

**पादेन दूष्यं सकलं च धिष्ण्यं चेद्धिष्ण्यदोषाद्भगणं च कृत्स्नम्।**
**गणस्य दोषात्सकलं च दूष्यामिति प्रसङ्गस्थित पाद एव।।७१।।**

पाद दोष से सम्पूर्ण नक्षत्र और नक्षत्र दोष से सम्पूर्ण भगण दूषित होता है। गणदोष से सभी दूषित होते हैं! अतिप्रसङ्ग में नक्षत्र पाद को मानना चाहिए।।७१।।

**विषप्रदग्धेन हतस्य पत्रिणा मृगस्य मांसं शुभदं क्षतादृते।**
**तथैव पादो न शुभोऽवशिष्टाः पादाः शुभाश्चेति पितामहेन।।७२।।**

विष प्रदग्ध बाण से मृत मृग का मांस उसी स्थान पर विकृत होता जहाँ बाण

लगता है सम्पूर्ण मांस नहीं। इसी प्रकार ग्रह से दग्ध नक्षत्र चरण दोषयुक्त होता है। सभी चरण नहीं। यह पितामह ब्रह्मा का कहना है।।७२।।

**अतोऽन्त्यपादमादिगो द्वितीयगस्तृतीयम्।**
**तृतीयगो द्वितीयकं चतुर्थगस्तु चादिमम्।।७३।।**

इसलिये अन्त्यपाद का आदिम पाद से, द्वितीय चरण का तीसरे से, तृतीय चरण का द्वितीय चरण से, चतुर्थ का प्रथम चरण से वेध होता है।।७३।।

**भिनत्ति वेधकृद्ग्रहो न चाऽन्यपादमादरात्।**
**असम्भवाच्छशीनयोर्दृशोः समत्वमत्र वै।।७४।।**

वेध करने वाले ग्रह अन्य चरणों से वेधित नहीं होते, सूर्य एवं चन्द्रमा इन दोनों के कारण असम्भव होने पर भी समत्व जानना चाहिए।।७४।।

**पाद एव न शुभः शुभ ग्रहैर्विद्ध इत्यखिलशास्त्रमतं हि।**
**क्रूरविद्धमशुभं न शोभनं शोभनेषु सकलं न पादतः।।७५।।**

शुभग्रहों द्वारा विद्ध होने पर एक चरण शुभ नहीं होता। यह पूर्णतया शास्त्र सम्मत है, क्रूर ग्रह द्वारा विद्ध व पाप ग्रह से युक्त नक्षत्र सम्पूर्ण शुभ नहीं होता, न कि एक चरण अशुभ होता है।।७५।।

**खार्जूरक, यमघण्टक इत्यादि दोषों का फल**

**खार्जूरं यमघंटकश्च कुलिकश्चेत्येव वारोद्भवा।**
**दोषा लग्नतदंश सौम्य खचरप्रोद्भूतसर्वान्गुणान्।**
**निघ्नन्त्येव यथा शरीरमखिलं दोषत्रयः प्रोत्कटा-**
**श्चान्योऽन्यागुणसञ्चयानपि महान्यामार्द्धतुल्याः पृथक्।।७६।।**

खार्जूरक, यमघण्टक, कुलिक तथा वार से उत्पन्न दोष, लग्न, लग्नांश, शुभग्रहों द्वारा उत्पन्न सभी गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे शरीर में विकृत हुए तीनों दोष (वात, पित्त, कफ) शरीर को नष्ट करते हैं। परस्पर सञ्चित गुणों का समूह यामार्द्ध सदृश भिन्न ही होता है।।७६।।

**निधनं प्रहरार्द्धेषु निःसत्वं यमघण्टके।**
**कुलिके सर्वनाशः स्याद्रात्रावेते न दोषदाः।।७७।।**

प्रहरार्द्ध में निधन, यमघण्टक में गरीबी, कुलिक दोष में सर्वनाश; परन्तु ये तीनों दोष रात्रिकाल में दोषप्रद नहीं होते।।७७।।

**सकल नक्षत्रों में विषघटीज्ञान**

**खाक्षा ५० जिना २४ व्योमगुणा ३० खवेदा ४०।**
**इन्द्राः १४ कुदस्राः २१ खगुणा ३० नखाश्च २०।।**

दन्ताः ३२ खरामाः ३०खयमाः २० पुराणाः १८।
क्ष्माबाहवो २१ विंशति २० रब्धिचन्द्राः १४॥७८॥
इन्द्रा १४स्तु काष्ठा १० मनवः १४ षडक्षा ५६।
वेदाश्विनो २४ व्योमभुजा२० दशा १०ऽऽशाः १०॥
नागेन्दवो १८ भूपतयो १६ऽब्धिदस्रा २४।
व्योमाग्नयो ३० दस्रमुखर्क्षकाणाम्॥७९॥

पचास, चौबीस, तीस, चालीस, चौदह, इक्कीस, तीस, बीस, बत्तीस, तीस, बीस, अट्ठारह, इक्कीस, बीस, चौदह, चौदह, दस, चौदह, छप्पन, चौबीस, बीस, दस, दस, अट्ठारह, सोलह, चौबीस, तीस क्रम से अश्विनी नक्षत्र के शुरू से॥७८-७९॥

**क्रमागतः–**
**नारदः–**

तयोरूपचयस्थाने तदा लग्नं गतं शुभम्।
खमार्गणा वेदपक्षाः खरामाः शून्यसागराः॥
वार्द्धिचन्द्रा रूपद्रसाः खरामा व्योमवाहवः।
द्विरामा खाग्नयः शून्यदस्रकुंजरभूमयः॥
—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-५६-५७)

आभ्यः परस्ताद्विषनाडिकाख्यास्त्याज्याश्चतस्रः खलु शोभनेषु।
विषाख्यनाडीषु कृतं शुभं यद्विनाशमायात्यचिराच्च सर्वे॥८०॥

नक्षत्रों के उपर्युक्त कथित घटियों के ऊपर विषनाड़ी कही गई हैं! चार नाड़ी तक शुभ कार्यों में त्याज्य है। विषसंज्ञकनाड़ी में किये गए समी शुभ कार्यों का नाश शीघ्र ही होता है॥८०॥

**क्रमागतः–**
**नारदः–**

रूपपक्षा व्योमदस्रा वेदचन्द्राश्चतुर्दश।
शून्यचन्द्रा वेदचन्द्राः षट्पंचवेदवाहवः॥
शून्यदस्राः शून्य चन्द्राश्शून्य चन्द्रा गजेन्दवः।
तर्कचन्द्रा वेदपक्षाः खरामाश्चाश्विनी क्रमात्॥
आभ्यः परास्युश्चतस्रो नाडिका विषसंज्ञिकाः।
विवाहादिषु कार्येषु वर्ज्यास्ता विषनाडिका॥
—(ना. सं., अ. २१, श्लोक-५८-६०)

**कुर्वन्ति नाशं विषनाडिकास्ता लग्नाश्रितानंशगुणान्विशेषान्।**
**जन्तून्यथा कुष्ठभङ्गदरार्श व्याघातशूलक्षयवातरोगा:।।८१।।**

ये विषनाड़िकाएं लग्न से आश्रित अंश गुणों को विशेषरूप से नष्ट कर देती हैं। जैसे कुष्ठ, भगन्दर, अर्श (बवासीर), व्याघात, शूल, क्षय एवं वातरोग मनुष्यों को नष्ट कर देते हैं।।८१।।

**क्रमागत:–**

**कश्यप:–**

वियदवाणा वेददस्रा खरामा व्योमसागरा:।
वेदचन्द्राश्चन्द्रदस्रा खरामा व्योमबाहव:।।
नेत्राग्नयो व्योमगुणा: शून्यदस्रा गजेन्दव:।
क्ष्माबाहवो वियद्दस्रा: शक्राश्चन्द्रा: खभूमय:।।
वेदचन्द्रास्तर्कवाणा वेददस्रा खबाहव:।
व्योमेन्दवो व्योमचन्द्रा धृतयस्तर्कभूमय:।।
वेदाश्विन: खरामा: स्युर्दास्रर्क्षाद्घटिका क्रमात्।
आभ्य परस्तात्क्रमशश्चतस्रो विषनाडिका:।।

—(मु. चि. ६, प्र० ४७-४९ श्लोक, पी. टी.)

**स्पष्टार्थ सारिणी**

| नक्षत्र | अश्वि. | भरणी | कृ. | रोहि. | मृग् | आर्द्रा | पुन | पुण्य | आश्लेष |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| घटी के | ५० | २४ | ३० | ४० | १४ | २१ | ३० | २० | ३२ |
| पश्चात् तक | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| नक्षत्र | मघा | पू.फा. | उ.फा. | हस्त | चित्रा | स्वा. | विशा. | अनु. | ज्येष्ठा |
| घटी के | ३० | २० | १८ | २१ | २० | १४ | १४ | १० | १४ |
| बाद तक | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |
| नक्षत्र | मूल | पू.षा. | उ.षा. | श्र. | धनि. | शत | पू.भा. | उ.भा. | रेवती |
| घटी के | ५६ | २४ | २० | १० | १० | १८ | १६ | १४ | ३० |
| अनन्तर तक | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ | ४ |

**नारद:–**

विवाहव्रतचूडासु गृहारम्भप्रवेशयो:।
यात्रादिशुभकार्येषु विघ्नदा विषनाडिका:।।

—(पी. टी. मु. चि. प्र. ६ श्लोक ४७)

यात्राविवाहादिषुमङ्गलेषु सर्वेषु नूनं विषनाडिकाश्च।
कुर्वन्ति कतुर्मरणं हि शीघ्रं कृतप्रमाणायुष एव धात्रा।।

—(ज्यो. नि. ७४, पृ. १४ श्लोक)

विषघटियों का परिहार

विषनाड्युत्थितं दोषं हन्ति सौम्यर्क्षगः शशी।
नेत्रदृष्टोथवा स्वीयवर्गस्थोः लग्नगोऽपि वा।।
चन्द्रो विषघटी दोषं हन्ति केन्द्रत्रिकोणगः।
लग्नं विना शुभैदृष्टं केन्द्रे वा लग्नपस्तथा।।

*—(वृ. दै. र. प्र. ३७ श्लोक ७१३, १४, ज्यो. नि., पृ. ७४)*

**कुर्वन्त्युद्वाहितां कन्यां विधवां वत्सरत्रयात्।**
**अन्यस्मिन्मङ्गले ताश्च निधनं वाऽथनिर्धनम्।।८२।।**

पूर्व कथित विषनाड़ियां विवाहित कन्या को तीन सालों के अन्दर विधवा बना देती हैं। अन्य मङ्गल कार्यों में मृत्यु अथवा निर्धनता को देने वाली होती हैं।।८२।।

**क्रमागतः-**

**मुहूर्त्तगणपतिः—**

"खवाणाश्च जिनास्त्रिंशत् खवेदा मनवः क्रमात्।
स्वर्गास्त्रिशन्नखा दन्ताः खरामा विंशतिर्धृतिः।।
भूनेत्राः खयमाः शक्राः रूद्राः काष्ठश्चतुर्दश।
षट्पञ्चाशज्जिनाश्चैक विंशतिः ककुभो दिशः।।
धृतिर्भूया जिनास्त्रिंशदश्विभाद् घटिकाः स्मृताः।
आभ्यश्चतुष्ट्य त्याज्यं घटिकानां विषभिधम्।।"

—(प्र० १५, श्लोक-१८७-८९)

लग्न, लग्नेश, राशि, राशीश्वरफल

**यस्यास्तु लग्ने तदधीश्वरे वा राशौ तदीशेऽथ विलग्नगे वा।**
**स मृत्युमाप्नोति तदा मनोजस्त्रिनेत्रभालाम्बकवह्निनेव।।८३।।**

जिसके लग्न में लग्नेश अथवा राशि में राशीश हो और राशीश लग्न में हो तो जातक मृत्यु को वैसे ही प्राप्त होता है, जैसे भगवान् शङ्कर जी के मस्तक के तृतीय नेत्र को अग्नि से कामदेव भस्म होता है।।८३।।

**द्वादशं भवति जन्मलग्नतो लग्नेशमर्थहरमत्र योषिताम्।**
**अष्टमं पुनरतोऽपि मृत्यवे राशितोऽपि फलमेतदेव च।।८४।।**

लग्नेश जन्मलग्न से द्वादश में हो तो स्त्रियों का धन लूटने वाला और

लग्नेश अष्टम स्थान में हो तो मृत्युप्रद होता है, ऐसे ही फलकथन राशि से भी करना चाहिए॥८४॥

**जन्मोदयर्क्षान्निधने विलग्ने तदीश्वरेणोपगतेऽथवा स्यात्।**
**कृतो विवाहो भयमृत्युकारी त्रातुं विधाताऽपि न तां समर्थः॥85॥**

जन्मलग्न और जन्मराशि लग्न से अष्टम हो अष्टमेश लग्न में हो इस मुहूर्त्त में विवाह हो तो भयप्रद एवं मृत्युकारक होता है, इससे स्वयं ब्रह्मा भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होते॥८५॥

**त्याज्यं तयोर्नैधनभं विलग्नं तदंशके वाऽथ तदीश्वरं च।**
**तस्मात्स्वजन्मर्क्षनवांशयोश्च लग्नांशकौ नैधनगौ विवर्ज्यौ॥८६॥**

वर-कन्या दोनों के लग्न से अष्टम राशि, राश्यांश तथा स्वामी के दोष को त्याज्य करना चाहिए और इसी प्रकार अपने जन्मनक्षत्र, राशि नवांश, लग्नांशक अष्टम में हों तो भी त्याज्य करना चाहिए॥८६॥

### लग्नेश-अष्टमेश का मित्रत्वेन फल

**जन्मेशाष्टमलग्नेशौ मिथो मित्रे व्यवस्थितौ।**
**जन्मराश्यष्टमर्क्षोत्थदोषो नश्यति भावतः॥८७॥**

जन्म लग्नेश तथा अष्टमेश परस्पर मित्र व्यवस्था में हों तो जन्मराशि, अष्टम राशि से उत्पन्न दोषों को स्वभावत: नष्ट कर देता है॥८७॥

### अकालवृष्टि से उत्पन्न दोष

**अकालवृष्टिः प्रभवः सदोषः करोति मृत्युं शुभकार्यकर्तुः।**
**त्रातुं यथा सर्वगुणास्त्वशक्तास्तां बन्धुवर्गा विषवह्निदग्धम्॥88॥**

अकाल वृष्टि से उत्पन्न दोष कार्य करने वाले के लिए मृत्युप्रद होता है। जैसे सर्वगुणसम्पन्न, सशक्त, व्यक्ति भी अपने बन्धुवर्ग जो विष एवं अग्नि से दग्न हों तो उनको बचा नहीं सकता॥८८

**अकालवृष्टिप्रभवः स दोषः करोति मृत्युं वरकन्योश्च।**
**सीतावियोगप्रभवः सुदीर्घः कोपो यथा दाशरथेर्दशास्यम्॥८९॥**

असमय वृष्टि से उत्पन्न दोष वरवधू के लिए मृत्युप्रद होता है। जैसे सीता के वियोग से उत्पन्न बहुत गहरे क्रोध से श्रीराम ने दशमुखवाले रावण का विनाश कर दिया॥८९॥

### कुमुहूर्त्तदोष

**करोति निःस्वं कुमुहूर्त्तदोषः कुमारमुद्वाहितमाशु नूनम्।**
**सप्ताङ्गराज्योद्धतराजरत्नं नलं यथा द्यूतमिवात्मकर्म॥९०॥**

कुमुहूर्त्तदोष निश्चय से विवाहित कुमार को शीघ्र ही निर्धन करता है। जैसे सप्ताङ्ग राज्य से उद्धत राजरत्न राजा नल भी जुआ (द्यूत) को अपना कर्म मानकर निर्धन हो गये॥९०॥

**वरस्य लक्ष्मीं निखिलं निहन्ति संवत्सरार्द्धात्कुमुहूर्त्तदोषः।**
**दुर्वाससः शाप इव प्रमत्तमहेन्द्रलक्ष्मीमसमां समग्राम्॥९१॥**

वर की सम्पूर्ण लक्ष्मी (धन) को संवत्सरार्द्ध का कुमुहूर्त्त दोष वैसे ही नष्ट करता है, जैसे दुर्वासा ऋषि के शाप से मदमत्त देवराज इन्द्र की सम्पूर्ण लक्ष्मी नष्ट हो गई थी॥९१॥

**अर्यम्णो भानुवारे शशधरदिवसे राक्षसब्रह्मसंज्ञौ।**
**पित्रग्नी द्वौ कुजाहे शशिसुतदिवसेऽथाभिजित्संज्ञकः सः।**
**जीवाहे राक्षसाख्यो भृगुसुतदिवसे ब्रह्ममैत्रावहीशौ।**
**सौरावेते विवर्ज्यास्त्वधननिधनदा मङ्गले दुर्मुहूर्त्ताः॥९२॥**

रविवार अर्यमा, सोमवार ब्रह्मराक्षस संज्ञक, पितर एवं अग्नि मङ्गलवार, बुधवार अभिजित् संज्ञक, बृहस्पतिवार राक्षस संज्ञक, शुक्रवार का ब्रह्म मैत्रसंज्ञक, शनिवार को सार्प संज्ञक होने से निर्धनता एवं मृत्युप्रद दुर्मुहूर्त्तों में मङ्गलकार्य विवर्जित करने चाहिए॥९२॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

अर्यम्णोर्के तुहिनकिरणे राक्षस ब्राह्मसंज्ञौ।
पित्राग्नेयौ क्षितिसुतदिने चन्द्रपुत्रोभिजिच्च॥
पितृब्राह्मौ भृगुसुतदिने राक्षसाप्यौ च जीवे।
भौजङ्गेशौ सवितृतनये वर्जनीयौ मुहूर्त्तौः॥

—(वृ. दै. र., अ. ३०, श्लोक-५)

**व्यतिपात-वैधृति योगों का फल**

**दोषो महापात इति प्रसिद्धः स वैधृतो हन्ति बधूं वरं च।**
**तं रक्षितुं लग्नगुणा अशक्ताः स्वबान्धवास्तेऽशनिनोपघातम्॥93॥**

व्यतिपात एवं वैधृति योग दोनों प्रसिद्ध हैं। इन योगों में विवाह हो तो वरबधू दोनों के लिए विनाश होता है। उनकी रक्षा करने के लिए लग्न के गुण वैसे ही असमर्थ हैं, जैसे अपने बन्धु-बान्धव वज्रपात होने पर रक्षा नहीं कर सकते॥९३॥

**क्रमागतः—**

"वैधृति व्यतिपाताख्यौ सम्पूर्णौ वर्जयेच्छुभे।
वज्रविषकम्भयोश्चैव घटिकात्रयमादिकम्॥

परिघार्धं पञ्चशूले व्याघाते घटिका नव।
गण्डाति गण्डयोः षट् च हेयाः सर्वेषु कर्मसु।।

—(मुहूर्त्त गणपति, प्र. ५, श्लोक-५२)

सूर्यसिद्धान्ते–

व्यतीपातः प्रसिद्धोऽस्ति संज्ञाभेदेन वैधृतिः।
स कृष्णो दारुणवपुर्लोहिताक्षो महोदरः।।
यच्छुमानां विनाशाय नदन्निव पतत्ययम्।
विनाशयति पातोऽस्मिल्लोकानामसकृद्यतः।।
सर्वानिष्टकरो रौद्रो भूयोभूयोऽभिजायते।।

—(१० प्र., श्लोक ४)

**शास्त्रात्समानीतमहातिपातः सवैधृतो हन्तिबधूं वरं च।**
**त्रिसप्तवाराणि च जामदग्न्यो क्रोधोऽचिरात्क्षत्र कुलं समस्तम्।।94।।**

शास्त्र में प्रतिपादित व्यतिपात-वैधृति इत्यादि योग वरवधू को तीन या सात वारों में नाश करते हैं। जैसे जामदग्नि ऋषि के क्रोध से शीघ्र ही सम्पूर्ण क्षत्रियकुल नाश हुआ।।९४।।

**लग्नास्तशुद्धिस्तु महान्सदोषः करोति मृत्युं वरकन्ययोश्च।**
**त्रातुं यथा लग्नगुणास्त्वशक्तास्तं बन्धुवर्गा इव सर्पदष्टम्।।९५।।**

लग्न की अशुद्धि एक महान दोष है, जो वरबधू दोनों के लिए मृत्युदायक होता है। लग्न के गुण रक्षा करने में वैसे ही असमर्थ होते हैं, जैसे साँप के काटने पर बन्धुवर्ग असमर्थ होता है।।९५।।

उदयास्तशुद्धिः

**इष्टोदयांशे निजपत्यदृष्टे वरस्य मृत्युस्तदसञ्युते वा।**
**अस्तांशकेऽप्येवमदृष्ट युक्ते स्वस्वामिना नाशमुपैति कन्या।।९६।।**

अभीष्ट लग्न का नवांश यदि अपने नवांशपति द्वारा नहीं देखा जाए या नवांशपति से असञ्युत हो तो वर की मृत्यु होती है। अस्तांशक लग्न में अपने स्वामी द्वारा अदृष्ट या असञ्युत हो तो कन्या की मृत्यु होती है।।९६।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

लग्नलग्नांशकौ स्वस्वपतिना वीक्षितौ युतौ।
न चेद्वान्योन्यपतिना शुभमित्रेण वा तथा।।
वरस्य मृत्युः स्यात्ताभ्यां सप्तसप्तोदयांशके।
एवं तौ वीक्षितयुतौ मृत्युर्वध्वाः करग्रहे।।

—(मु. चि. ६ प्र. ७७ श्लोक पी. टी.)

वराहः-

शुद्धिस्त्विहस्यान्न यदोदयांशो लग्ने न चास्तांशमुपैति सिद्धिम्।
तदा सुहृत्सौम्य निरीक्षितो यः शुभाय स स्यात्प्रवदन्ति सन्तः।।

—(मु. चि. ६ प्र. ७८ श्लोक पी. टी.)

कश्यपः-

राश्यंशौ मित्रसौम्येन वीक्षितौ वाप्यसंयुतौ।
उदयास्तांशयोः शुद्धिस्त्रिविधा मंगलप्रदा।।

—(मु. चि. ६ प्र. ७८ श्लोक पी. टी.)

**उदयांशः स्वनाथेन मित्रसैम्येन सञ्युतः।**
**प्रेक्षितो वा तथास्तांशो दम्पत्योः पुत्रपौत्रदः।।९७।।**

उदित लग्नांश अपने स्वामी, मित्रग्रह या शुभग्रह से सञ्युत अथवा देखा जाता हो तो लग्न अस्तांश होने पर भी दम्पति के लिए पुत्र-पौत्र प्रद होता है।।९७।।

**उत्पातभोपप्लवभोग्रखेटविद्धर्क्षतद्धं वर कन्ययोस्तु।**
**विनाशदं लग्नगुणास्त्वशक्तास्त्रातुं यथा पातकिनं स्वकीयाः।।98।।**

उत्पात संज्ञक नक्षत्र भूकम्प संज्ञक नक्षत्र, उग्र संज्ञक ग्रह से वेधित नक्षत्र वर-कन्या के लिए विनाश प्रद होते हैं। लग्न के गुण उसकी रक्षा करने में वैसे ही असमर्थ होते हैं, जैसे अपनी रक्षा में पापी व्यक्ति असमर्थ होता है।।९८।।

**उत्पातभं ग्रहणभं क्रूरविद्धं स्थितं च भम्।**
**दहतीव शुभं कर्म राघवाग्निशरोऽम्बुधिम्।।९९।।**

उत्पात नक्षत्र, ग्रहण नक्षत्र, पापीग्रहों से वेधित या पापग्रहों के साथ स्थित नक्षत्र शुभ कर्मों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् श्रीराम के अग्नि बाण से समुद्र सूख गया।।९९।।

### महादोष दूषित लग्न विचार

**लग्नं महादोष विदूषितं यन्न तद् गुणास्त्राण विधौ समर्थाः।**
**राज्ञा धृतं तं पुरुषं च यद्वदन्ये जना बन्धुजनाश्च सर्वे।।१००।।**

लग्न को महादोष दूषित करे तो लग्न के गुण रक्षा करने में असमर्थ होते हैं। जैसे कानून में समर्थ राजा से अपराधी पकड़े जाने पर अन्य लोग तथा उसके बन्धुजन लोग रक्षा नहीं कर पाते।।१००।।

**लग्नस्थजीवज्ञसितप्रयाता गुणाः परित्रातुमशंकुरेव।**
**लग्नं महादोषविदूषितं यद्भ्रष्टं द्विजं बन्धुजना यथैव।।१०१।।**

लग्न में स्थित बृहस्पति, बुध एवं शुक्र द्वारा आगे बड़े हुए लग्न के गुणों को शंकु के विना ही बचाने में समर्थ होते हैं, ऐसी परिस्थिति में यदि लग्न महादोष से

दूषित हो तो लग्न के गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भ्रष्ट ब्राह्मण की उसके भाई-बन्धु रक्षा नहीं कर सकते॥१०१॥

**लग्नांशसौम्यग्रहवर्गजा ये गुणा समर्था न च रक्षितुं तत्।**
**लग्नं महादोष विदूषितं यच्छूद्रार्थयज्ञा इव यायजूकम्॥१०२॥**

लग्नांश के सौम्य ग्रहों के वर्ग में जो गुण हैं, उन सभी गुणों की रक्षा लग्न महादोष से दूषित होने पर वैसे ही नहीं होती जैसे शूद्र की तरह यज्ञ में आचार्य॥१०२॥

**मित्रादिमित्रौच्चगृहांश जाता गुणास्त्वशक्ताः परिरक्षितुं यत्।**
**लग्नं महादोष विदूषितं यद्धर्मा यथाऽधर्मपरं द्विजेन्द्रम्॥१०३॥**

मित्र, अधिमित्र, उच्च गृहांश से उत्पन्न सभी महादोष से दूषित लग्न की रक्षा करने में उसी प्रकार असमर्थ हैं, जिस प्रकार धर्म-अधर्म में रत ब्राह्मण की रक्षा नहीं कर सकता॥१०३॥

**वर्गोत्तमांशोद्भवचन्द्रजाता गुणास्तदुर्द्धर्त्तुमिवासमर्थाः।**
**लग्नं महादोषविदूषितं यद्गुणा यथा निर्गुणिनं च सर्वे॥१०४॥**

वर्गोत्तमांश (वर्गोत्तम नवांश) तथा चन्द्रमा से उत्पन्न सभी गुण महादोष से दूषित लग्न का उद्धार करने में वैसे ही असमर्थ हैं, जैसे पूर्णतया गुणरहित व्यक्ति की रक्षा गुण नहीं कर सकते॥१०४॥

**लग्नं महादोषविदूषितं यद्वाप्य सौम्यग्रहकेन्द्र जाताः।**
**व्यर्था गुणाः पूर्णसुधाकरस्य करा जनानन्दकरा इवान्धम्॥१०५॥**

महादोष से दूषित लग्न को शुभ ग्रह केन्द्र में आने से जो गुण होते हैं, वे वैसे ही लग्न की रक्षा करने में असमर्थ हैं, जैसे पूर्ण चन्द्रमा की किरणों का आनन्द अन्धे व्यक्ति के लिए व्यर्थ होता है॥१०५॥

**अवाप्यवन्ध्याः सुगुणास्तदग्धं लाभस्थखेटस्य गृहोच्चजाताः।**
**लग्नं महादोषविदूषितं यत्कटाक्षपाता इव सुन्दरीणाम्॥१०६॥**

उच्चस्थ ग्रहों तथा लाभस्थान में स्थित ग्रहों द्वारा उत्पन्न श्रेष्ठ गुण वन्ध्या स्त्री के लिए अन्धकार दूर नहीं करते। वैसे ही महादोष से दूषित लग्न की रक्षा उस प्रकार नहीं हो सकती जैसे सुन्दर स्त्रियों के कटाक्षपातों को अन्धा व्यक्ति नहीं समझता॥१०६॥

**धनत्रिकोणस्थ शुभग्रहोत्थगुणा निरर्थास्तदवाप्य सर्वे।**
**लग्नं महादोष विदूषितं यद्विबीजिनं यद्वदपत्ययोगः॥१०७॥**

महादोष से दूषित लग्न के लिए द्वितीय स्थान एवं लग्न, पञ्चम नवम स्थान स्थित शुभग्रहों से उत्पन्न सभी गुण वैसे ही निरर्थक हो जाते हैं, जैसे वीर्यरहित पुरुष के लिए सन्तान योग॥१०७॥

**अयं गुणो दोषममुं निहन्तीत्युक्तं हि यत्रोभयनामपूर्वम्।**
**गुणः स एवान्यगुणो न शक्तो दोषोऽपि तद्वद् गुणघातुकः सः॥१०८॥**

यह गुण उस दोष को विनष्ट करता है, ऐसा संज्ञापूर्वक दोनों विधियों से कहा है, वही गुण अन्य गुणों द्वारा सभी दोषों को गुणघातक होने के कारण रक्षा करने में असमर्थ होता है॥१०८॥

**चन्द्रमा उपभोग से शुभफल**

**गन्तव्यधिष्ण्यं खलु मुक्तभं यत्क्रूरैर्महोत्पात विदूषितं तत्।**
**चन्द्रोपभोगादमलं तदानीं शुभेषु कार्य्येषु शुभप्रदं च॥१०९॥**

गन्तव्य नक्षत्र से विमुक्त नक्षत्र जो पापग्रहों द्वारा अथवा महोत्पातों से दूषित दोषयुक्त होने पर भी चन्द्रमा के उपभोग से पवित्र हुए तत्क्षण ही शुभकार्यों में शुभफलप्रद हो जाते हैं॥१०९॥

**द्युरात्रिमध्यमखिलमङ्गलेषु यदार्द्धकालः परिवर्जनीयः।**
**तदाऽभिजिद्ब्राह्ममुहूर्त्तकत्वाद्दोषदः सोऽपि शुभप्रदः सः॥११०॥**

समस्त मङ्गल कार्यों में द्विरात्रि के मध्य में जो अर्द्धकाल होता है, उसका त्याग करना चाहिए। तथापि अभिजित् एवं ब्रह्ममुहूर्त्त में दोष होने पर भी शुभफलप्रद हो जाता है॥११०॥

**उक्ताखिलं दोषनिरूपणं यन्निरूपणं स्वल्पमहागुणानाम्।**
**वक्ष्येऽन्य पक्षस्य विदूषणार्थं स्वपक्षसंस्थापन निर्णयार्थम्॥१११॥**

जो समस्त दोष निरूपण तथा स्वल्प महागुणों का निरूपण जो पूर्व कर चुके हैं। अब अन्यपक्ष को दूषित करने वाले तथा अपने पक्ष की संस्थापना करने वाले निर्णयार्थ को कहते हैं॥१११॥

**मित्राधिमित्र ग्रहों का शुभफल**

**मित्राधिमित्रस्वगृहोच्चमूलत्रिकोणवर्गोत्तमगग्रहोत्थाः।**
**तदंशकेन्द्रोपचयत्रिकोणमहादशाधीशबलाधिकोत्थाः॥११२॥**

मित्राधिमित्र, स्वक्षेत्री, स्वोच्च, मूलत्रिकोण वर्गोत्तम में गए हुए ग्रह तथा उनसे उत्पन्न नवांश, केन्द्र, उपचय स्थान, त्रिकोण एवं महादशा के स्वामी अत्यन्त बलशाली होते हैं॥११२॥

**लग्नांशकाधीशशुभावलोकसंयोगतद्वर्गजतद्गुणोत्थाः ।**
**ये सिद्धयोगामृत सिद्धयोगास्थिति प्रयाताश्च महागुणाः स्युः॥113॥**

लग्न नवांश का स्वामी शुभ ग्रहों द्वारा दृष्ट अथवा सञ्युत उस वर्ग से उत्पन्न गुण तथा सिद्धयोग, अमृत सिद्धयोगों की स्थिति महागुणों को अग्रसर करती है॥११३॥

**ये चान्यसामान्यगुणाः सदैव स्वभावसंसिद्धगुणा यदास्ते।**
**किं चाल्पदोषानपि लग्नजातान्हन्तुं न शक्ताश्च कदाचिदेव॥११४॥**

जो अन्य सामान्य गुण सदैव अपने स्वभाव से सिद्ध गुण लग्न के स्वल्प दोषों को भी नष्ट करने में कभी भी सशक्त नहीं होते हैं॥११४॥

**लग्न से उत्पन्न दोषों का नाश**

**मित्रर्क्षगो मित्रनवांशगो वा शुभग्रहस्तेन निरीक्षितो वा।**
**यदा विलग्नोपगतः स खेटश्चेद् हन्तिदोषानपि लग्नजातान्॥११५॥**

मित्र राशि अथवा मित्रराशि के नवांश में स्थित ग्रहों को शुभग्रह देखते हो अथवा जन्मलग्न में गये हुए वे ग्रह लग्न से उत्पन्न दोषों को भी नष्ट कर देते हैं॥११५॥

**लग्नगत दोषसमूहों की निवृत्ति**

**शुभोऽधिमित्रर्क्षगतस्तदंशसंस्थोऽपि वा तेन निरीक्षितो वा।**
**सलग्नगो दोषचयं निहन्ति रामो यथा रावणदैत्यवृन्दम्॥११६॥**

शुभग्रह, अपने मित्र राशि, मित्र नवांश में स्थित हों या देखे जाते हों तो लग्नगत दोष समूहों को वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे भगवान् श्रीराम ने रावण के राक्षस समूहों को नष्ट किया था॥११६॥

**क्रमागतः–**

**लल्लः—**

क्रूरैर्लग्नयुतं त्याज्यं मङ्गलेष्वखिलेष्वपि।
जन्माङ्गादष्टमं क्रूरं लग्नगं सन्त्यजेच्छुभे॥

**नारदः–**

भृगुः षष्ठाह्वयो दोषो लग्नात्षष्ठगते सिते।
उच्चगे शुभसंयुक्ते तल्लग्नं सर्वदा त्यजेत॥

**कश्यपः–**

कुजाष्टमो महादोषो लग्नादष्टमगे कुजे।
शुभत्रययुतं लग्नं त्येत्तुङ्गगतं यदि॥
षडष्टेन्दुर्महादोषो लग्नादष्टमषष्ठगे।
चन्द्रस्योच्चेऽथवा पूर्णे मृत्युकारी समङ्गले॥

—(वृ. दै. र., अ. २९, श्लोक ५२-५४)

**स्वक्षेत्रगः स्वस्य नवांशमो वा शुभग्रहः सौम्यनिरीक्षितो वा।**
**सलग्नगो यत्र निहन्ति दोषान्पञ्चाननो यद्वदिभेन्द्रवृन्दान्॥११७॥**

स्वक्षेत्री, स्वनवांश में स्थित शुभग्रह अथवा शुभग्रहों से देखे जाते हुए वे

लग्न में आ जायें तो दोषों को वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे पञ्चानन देव इन्द्रवृन्द को॥११७॥

लग्न के समस्त दोषों की समाप्ति

**उच्चस्थितः स्वोच्चनवांशगो वा शुभः स्वमित्रेण निरीक्षितो वा।**
**स केन्द्रगो यत्र निहन्ति दोषान्हरिस्मृतिर्यद्वदशेषपापान्॥११८॥**

उच्चस्थ, स्वोच्चनवांश में शुभग्रह अपने मित्र ग्रहों द्वारा देखे जाते हों तथा केन्द्र में हों तो लग्न के समस्त दोषों को वैसे ही दूर करते हैं, जैसे हरिस्मरण से पाप दूर होते हैं॥११८॥

**मूलत्रिकोणर्क्षगतस्तदंश संस्थः शुभो वाप्यथ मित्रदृष्टः।**
**लग्नगो यत्र निहन्ति दोषान्पापं यथा चन्द्रधरे प्रणामः॥११९॥**

मूलत्रिकोण राशि में अथवा उनके नवांश में स्थित शुभग्रह यदि अपने मित्रग्रहों से दृष्ट हों तथा लग्न में हो तो वैसे ही दोषों को विनष्ट करते हैं, जैसे भगवान् शिव को प्रणाम करने से पाप नष्ट हो जाते हैं॥११९॥

वर्गोत्तम में शुभग्रहों का फल

**वर्गोत्तमस्थ-शुभखेचर-सञ्युतं वा।**
**लग्नं च तेन खचरेण निरीक्षितं यत्॥**
**तत्सर्वदोषनिंचयं विनिहन्ति सद्य-**
**स्तार्क्ष्यः समस्तमहिसंघमिव प्रतापात्॥१२०॥**

वर्गोत्तम में स्थित, शुभग्रहों से सञ्युत लग्न शुभग्रहों द्वारा देखा जाता हो तो निश्चय से लग्न के समस्त दोषों को वैसे ही दूर करता है, जैसे गरुड़ जी अपने प्रताप से शीघ्र ही सांपों के समूह को नष्ट कर देते हैं॥१२०॥

**लग्नं स्वनाथशुभमित्रनवांशगं च।**
**तस्याधिमित्र-शुभखेटनवांशगं वा॥**
**तत्तुङ्गसंज्ञितनवांशकगं यदा वा।**
**हन्तीव दोषनिचयं कुलिशं नगौघम्॥१२१॥**

लग्न अपने स्वामी शुभग्रह, मित्रनवांश में हो अथवा अधिमित्र शुभग्रह नवांश में हो, अपने उच्चसंज्ञक नवांशक में हो तो समस्त दोष समूहों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे इन्द्र का वज्र पर्वत समूहों को॥१२१॥

लग्नेश का केन्द्र त्रिकोण में शुभफल

**लग्नेशसौम्यखचरोऽस्तग्रहं विहाय।**
**केन्द्रस्थितो यदि गतोऽखिलदोष वृन्दम्॥**

एकोऽपि हन्त्युपचयोपगतस्त्रिकोण-
संस्थोऽपि यद्वदनिलोऽभ्रचयं समस्तम्॥१२२॥

अस्त ग्रह को छोड़कर लग्न का स्वामी ग्रह केन्द्र में स्थित हो तो समस्त दोष समूह को नष्ट कर देता है। एक भी उपचय स्थान या त्रिकोण स्थान में गया हुआ ग्रह समस्त दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बादलों को तेज हवा नष्ट करती है॥१२२॥

पापीलग्नेश का शुभफल

पापोऽपिलग्नाधिपतिस्त्रिषष्ठ-
लाभस्थितः स्थानबलाधिकश्च॥
लग्नोत्थदोषान्निखिलान्निहन्ति।
पापानि यद्वत्परमाक्षरज्ञः॥१२३॥

पापी होकर भी लग्नेश तीसरे, षष्ठ एकादश स्थान बल से युक्त हो तो लग्न से उत्पन्न सभी दोषों को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे प्रणव का ज्ञाता समस्त दोषों को नष्ट कर देता है॥१२३॥

त्यक्त्वास्तकेन्द्रे स्थित सौम्यखेटस्त्रिकोणगो वाप्यथलाभसंस्थः।
दोषानशेषानुदयांशजातान्निहन्ति यद्वत्तिमिरं दिनेशः॥१२४॥

ग्रह अस्तङ्गत न हों, केन्द्र, त्रिकोण एवं लाभस्थान में हों तो लग्न के समस्त दोषों को वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे सूर्यनारायण अन्धकार को॥१२४॥

बलवान शुभग्रहों का फल

बलाधिकाः सौम्यनभश्चरो यः कुटुम्ब संस्थोऽपि निहन्ति दोषान्।
लग्नोद्भवं विष्णुपदाब्जतोयं यथाघसंघं शुभवर्गगोऽपि॥१२५॥

बलवान होकर शुभग्रह धनस्थान में स्थित अथवा शुभवर्ग में गए हुए ग्रह लग्न से उत्पन्न सभी दोषों को वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे भगवान् विष्णु के चरणों से छुआ हुआ जल समस्त पाप समूहों को नष्ट करता है॥१२५॥

सिद्धि-अमृत योगों का फल

यः सिद्धियोगो विनिहन्ति दोषान्पापेक्षितोपग्रहलत्तपातान्।
लग्नेन्दुजामित्रधनप्रचारनीहार-विद्युत्-परिवेषजांश्च॥१२६॥

यह सिद्धियोग दोषों को समाप्त करता है। पाप ग्रहों द्वारा दृष्ट होना, लता एवं पात दोषों को नष्ट कर देता है। लग्न, चन्द्रमा, जामित्र, धन प्रचार, नीहार, विद्युत और परिवेश—॥१२६॥

**दोषानशेषानमृताख्ययोगो निहन्ति लोभो गुणवृन्दमेकः।**
**प्रत्यर्कयोगर्क्षतिथीन्द्र चापकुवार पंगवन्धवांश्च तद्वत्॥१२७॥**

इत्यादि सम्पूर्ण दोषों को अमृत संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे लोभ सभी गुण समूहों को नष्ट कर देता है। प्रत्यर्क योग, नक्षत्र, तिथि, इन्द्रचाप कुवार, पङ्गु, अन्ध इत्यादि योग—॥१२७॥

### सिद्धा तिथि द्वारा दोषों का नाश

**सिद्धा तिथिर्हन्ति समस्तदोषान्यान्मासशून्यानपि मासदग्धान्।**
**दिनप्रदग्धानपि चान्यदोषानेकादशी यद्वदशेष पापान्॥१२८॥**

सिद्धा तिथि मासदग्ध, मासशून्य आदि समस्त दोषों को नष्ट करती है। दिन प्रदग्ध इत्यादि अन्य दोषों को वैसे ही नष्ट करती है, जैसे एकादशी व्रत करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं॥१२८॥

### लग्न में बलवान सूर्य-चन्द्रमा का फल

**एकार्गलोपग्रहपातलत्ताजामित्रकर्त्तर्युदयादिदोषाः ।**
**नश्यन्ति चन्द्रार्कबलोपपन्ने लग्ने यथार्काभ्युदये तु दोषाः॥१२९॥**

एकार्गल दोष, उपग्रह, पात, लत्ता, जामित्र, कर्त्तरी, उदयादि दोषों को लग्न में चन्द्रमा एवं सूर्य बलवान हों तो वैसे ही दोषों को नष्ट करता है, जैसे सूर्योदय होने से रात्रि नष्ट होती है॥१२९॥

### लग्नस्थ बृहस्पति फल

**ये लग्नदोषाः कुनवांशदोषाः पापग्रहैर्दृष्टिनिपातदोषाः।**
**लग्ने गुरुस्तान्विमली करोति फलं यथाम्भः कतकद्रुमस्य॥१३०॥**

जो लग्न दोष, कुनवांश दोष, पापग्रहों का दृष्टि निपात इत्यादि दोषों को लग्न में स्थित बृहस्पति वैसे ही शुद्ध करता है, जैसे जल को रीठा शुद्ध करता है॥१३०॥

क्रमागतः—

नारदः—

दोषा विनाशमायान्ति पापानीव हरिस्मृतेः।
गुरूर्बली त्रिकोणस्थः सर्वदोष विनाशकृत्॥
निहन्ति निखिलं पापं प्रणाममिव शूलिनः।
मुहूर्त्तपाप-षडवर्गकुनवांश-ग्रहोत्थिताः॥
ये दोषास्तान्निहन्त्येव यत्रैकादशगः शशिः।
नाशयत्यखिलान्दोषान्यत्रैकादशगो रविः॥

गङ्गायाः स्नानतो भक्त्या सर्वपापनिवाचिरात्।
वायूपसूर्यनीहारमेघगर्जन सम्भवाः।।
दोषानाशं ययुः सर्वे केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ।
ये दोषा मासदग्धास्तिथिलग्न समुद्भवाः।।
ते सर्वे विलयं यान्ति केन्द्रस्थाने बृहस्पतौ।
बलवान केन्द्रगो जीवः परिवेषोत्थ दोषहा।।
—(ना. सं., अ. २९, श्लोक ११०-११५)

**गुणाधिकं दोष विहीनकालं ज्ञात्वा विलग्नेशनवांशपस्य।**
**बलाबलं खेचरिणां सुसम्यग्विचार्य लग्नं प्रवदेदभिज्ञः।।१३१।।**

गुणों से अधिक, दोष हीन समय में जानकर लग्नेश तथा नवांशेशों के स्वामी, ग्रहों का बलाबल भलीभान्ति विचार करके ज्योतिषी विवाहलग्न के सन्दर्भ में कहे।।१३१।।

क्रमागतः–
नारदः–

एकादशस्थः शुक्रो वा बलवाञ्धुभवीक्षितः।
त्रिविधोत्पातजान् दोषान् हन्ति केन्द्रगतो गुरुः।।
स्थानादि बलसम्पूर्णाः पिनाकी त्रिपुरं यथा।
लग्न लग्नांश सम्भूतान बलवान केन्द्रगो गुरु;।।
—(ना. सं., अ. २९, श्लोक ११६-११७)

### विवाह मुहूर्त्त में सूर्य गुरु ताराबल प्राधान्य

**बलेनृनार्योरिनजीवयोश्च तारेन्दुवीर्ये सुदिने सुलग्ने।**
**पञ्चेष्टकेऽर्केन्दुसुरेज्यमुख्ये जामित्रशुद्धौ हिमदीधितेश्च।।१३२।।**

स्त्री एवं पुरुष के विवाह मुहूर्त्त में सूर्य तथा गुरु का बल, चन्द्रतारा बल, शुभदिन, शुभलग्न में पञ्चेष्ट मुहूर्त्त प्राप्त करके, सूर्य-चन्द्रमा एवं गुरु बल प्रधानता के साथ-साथ सप्तम स्थान एवं चन्द्रमा की शुद्धि—।।१३२।।

### सूर्यगुरुपूजा विधान

**यत्रार्कगुर्वोरपि नैधनान्त्यजन्मादिदुस्थानगयोर्द्वयोर्वा।**
**एकस्य पूजामपि तत्र कृत्वा पाणिग्रहं कार्यगतः सुसम्यक्।।१३३।।**

होने पर यदि सूर्य तथा गुरु अष्टम-द्वादश, लग्न में अथवा खराब स्थान में गये हों तो इनमें एक की पूजा करके भलीभान्ति विवाहकार्य सम्पन्न करना चाहिए।।१३३।।

### लग्न में अस्तङ्गत ग्रह का फल

**स्वनीचगाः शत्रुगृहस्थिताश्च तदंशगाश्चास्तमिता ग्रहेन्द्राः।**
**दातुं न शक्ताः स्वफलं विलग्ने दष्टुं भुजङ्गा इव मन्त्रविद्धाः।।१३४।।**

अपनी नीच राशि में स्थित, शत्रु राशि में स्थित, शत्रु के नवांश में, अस्तङ्गत ग्रह लग्न में अपना शुभफल देने में वैसे ही असमर्थ होते हैं, जैसे मन्त्र द्वारा विद्ध सर्प काटने में असमर्थ होता है॥१३४॥

### षड्वर्ग ज्ञान

**लग्नं तदर्द्धं च ततस्त्रिभागो नवांशकश्च द्विरसांशकश्च।**
**त्रिंशांशकश्चेति हि वर्गषट्कं शुभाशुभं व्योम चराधिपत्यम्॥१३५॥**

लग्न और लग्नार्द्ध (होरा) उसका तीसरा भाग (द्रेष्काण) नवांश, द्वादशांश एवं त्रिशांश ये षड्वर्ग आकाश पर चलने वाले ग्रहों के लिए शुभाशुभ कहे गये हैं॥१३५॥

### मङ्गल कार्यों में सूक्ष्मकालज्ञान

**शास्त्रोक्तमार्गेण सुलग्नकालं स्फुटं समानीय जलादियन्त्रैः।**
**संलभ्य तन्मङ्गलसूक्ष्मकालं संवीक्षयेत्तत्र मिथोर्द्धदृष्ट्या॥१३६॥**

शास्त्र द्वारा कहे गये मार्ग से जलादि यन्त्रों से स्पष्ट लग्न काल भलीभान्ति समझ कर मङ्गल कार्यों में मङ्गलसूक्ष्म काल को प्राप्त करके परस्पर तिर्यग् दृष्टि से देखना चाहिए॥१३६॥

### सूक्ष्म लग्नज्ञान के लिए घटी यन्त्रनिर्माण

**अर्द्धोदयं चास्तमिनस्य वीक्ष्य यन्त्रं प्रदद्याज्जलपूर्णपात्रे।**
**अलङ्कृते गन्धसुपुष्पवस्त्रफलाक्षतैर्दैवविदं च पूज्य॥१३७॥**

अर्द्धोदय सूर्य एवं सूर्यास्त को देखकर यन्त्र में जल भर कर पूर्णपात्र को गन्ध, सुन्दर फूलों से, वस्त्र, फल, अक्षत इत्यादि से अलङ्कृत करके ज्योतिषी की पूजा करके—॥१३७॥

**षडंगुलोत्सेधसमं सुवृत्तं कृतं मुखं सद्विरसाङ्गुलं यत्।**
**पलैस्तु शुल्वैर्दशभिर्जलस्य पूर्णं पलैः षष्टिभिरम्बुयन्त्रम्॥१३८॥**

दशपल अर्थात् ४० तोला, छः अङ्गुल ऊँचाई के बराबर कलश बनाकर जिसका मुख बारह अङ्गुल विस्तार (व्यासपूर्ण) वाला हो, जिसमें ६० पल अर्थात् २४० तोला जल परिपूर्ण हो जाए, इस विधि से निर्मित यह पात्र जल में रखने से एक अहोरात्र (२४ घण्टे) में ६० बार डूबे—॥१३८॥

क्रमागतः–

नारदः–

षडङ्गुलमितोत्सेधं द्वादशाङ्गुलमायतम्।
कुर्यात्पालवत्ताम्रपात्रं तद्दशभिः पलैः॥

पूर्णं षष्टिर्जलपलैः षष्टिर्मज्ञति वासरे।।
माषमात्रत्र्यंशयुतं स्वर्णवृत्तशलाकया।
चतुर्भिरङ्गुलैरापस्तथा विद्धं परिस्फुटम्।।
कार्येणाभ्यधिकः षड्भिः पलैस्ताम्रस्य भाजनम्।
द्वादशं मुखविष्कम्भ उत्सेधः षड्भिरङ्गुलैः।।
स्वर्णमासेन वै कृत्वा चतुरङ्गुलात्मकः।
मध्यभागे तथा विद्धा नाडिका घटिका स्मृता।।
—(ना. सं., अ. २९, श्लोक ८६-९०)

**यत्त्र्यंशमाद्यत्रय एव वृत्तां शलाकया मध्यभागविद्धाम्।**
**समुद्रसंख्याङ्गुलदीर्घपात्रे दद्यान्मयूरं नरवानराद्यम्।।१३९।।**

तो पहले तृतीयांश भाग तुल्य शलाका (सलाई) से मध्य भाग में छिद्र करके सात अङ्गुल दीर्घपात्र में पहले मयूर, नर एवं वानर के चित्र बनाकर—।।१३९।।

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

ताम्रपात्रे जलैः पूर्णे मृत्पात्रे वाऽथवा शुभे।
गन्धपुष्पाक्षतैः सार्द्धैरलङ्कृत्य प्रयत्नतः।।
तन्दुलस्थे स्वर्णयुते वस्त्रयुग्मेन वेष्टिते।
मण्डलार्द्धोदयं वीक्ष्य रवेस्तत्र विनिःक्षिपेत।।
मन्त्रेणानेन पूर्वोक्त लक्षणं यन्त्रमुत्तमम्।
मुख्यं त्वमसि यन्त्राणां ब्रह्मणानिर्मितं पुरा।।
भावाभवाय दम्पत्योः कालसाधनकारणम्।
द्वादशोङ्गुलकं प्रोक्तमिति शङ्कुप्रमाणकम्।।
—(ना. सं., अ. २९, श्लोक ९१-९४)

**व्यासाङ्गुलत्त्रिगुणमायतमिष्टशंकोर्वृतं तदेव परिधिश्च तदेव तस्य।**
**व्यासाङ्गुलार्द्धदलमङ्गुलमानमिष्टं सर्वत्र शंकुपरिकल्पनमेवमेव।।१४०।।**

शङ्कुयन्त्र से लग्न निर्णय करना—समतल भूमि पर द्वादशाङ्गुल परिमित एक शङ्कु (खूँटी) गाड़ना चाहिए। वहीं पर व्यास की त्रिगुण परिधि आयताकार रूप में निर्मित करनी चाहिए! व्यास का अर्द्धदल एक अङ्गुल होता है और सर्वत्र शङ्कु प्रमाण में वांछित होता है; इसलिए शङ्कु की परिकल्पना हर जगह करनी चाहिए।।१४०।।

**क्रमागतः—**

**केशवार्कः—**

वेदिकां विरचयेद्यथातथं स्यादियं प्रविशतस्तु दक्षिणे।
स्युर्जनाश्रययवोप्तिवर्णिकाः षड्भवत्रिदिवसेषु नाग्रतः।।
—(वि. वृ., अ. १४, ३१ श्लोक )

**तुल्यां समन्ताद् गृहवामभागे हस्तोच्छ्रितायुक्त शुभाययुक्ताम्।**
**समण्डपां प्राक् प्रवणामुदग्वासोपानरम्यां निविडां ककुप्सु॥१४१॥**

घर के वाम भाग में समान रूप में चारों ओर एक हाथ ऊँचा मण्डप शुभ होता है। शुभ मण्डप में वेदी के चारों ओर पूर्व से पश्चिम की ओर अथवा उत्तर की ओर सुन्दर सोपान निर्मित करें॥१४१॥

**क्रमागतः—**
**नारदः—**

हस्तोच्छ्रितां चतुर्हस्तै चतुरस्रां समन्ततः।
स्तम्भैश्चतुर्भिः सुलक्षणैर्वामभागे स्वसद्मतः॥
समण्डपां चतुर्दिक्षु सोपानैरूपशोभिताम्।
प्रागुदक् प्रवणां रम्भास्तम्भहंसशुकादिभिः॥
विचित्रितां चित्रकुंभैश्चित्रितैस्तोरणाङ्कुरैः।
एवं विधां समारोहेन्मिथुनं साग्निवेदिकाम्॥

—(ना. सं., अ. २९, श्लोक ११०-११५)

**विचित्रितामङ्कुरचित्रकुम्भवितानानाविधतोरणाद्यैः।**
**भृङ्गारपुष्पाङ्गणविप्रपीठपुण्याङ्गनानृत्यसुगीतवाद्यैः॥१४२॥**

बहुत रङ्गों वाले अङ्कुरित चित्रित कुम्भ, वितान (चन्दोवा) तथा अनेक प्रकार के तोरण, भृङ्गार पुष्पों से सज्जित विप्र पीठ, श्रेष्ठ स्त्रियों (सौभाग्यवती स्त्रियों) के नृत्य, गीत एवं वाद्यादि द्वारा—॥१४२॥

**ताम्बूलपुष्पाक्षतगन्धवस्त्रमाङ्गल्यसूत्रैः फलपूर्णपात्रैः।**
**धान्याकहारिद्रगुडैः सलाजैर्दीपैरनेकैर्नयनाभिरामाम्॥१४३॥**

ताम्बूल, फूल, अक्षत, सुगन्धित वस्त्र, माङ्गलिकसूत्र, फल एवं पूर्णपात्र, धान्य, हल्दी, गुड़, लाजा (फुल्लियां) नयनों को सुन्दर लगने वाले अनेक प्रकार के दीपों से—॥१४३॥

**क्रमागतः—**
**सप्तर्षिमते विवाहपटले—**

मङ्गलेषु च सर्वेषु मण्डपोगृहमानतः।
कार्यः षोडशहस्तो वा द्विषड्हस्तो दशावधिः॥
स्तम्भैश्चतुर्भिरेवात्र वेदी मध्ये प्रतिष्ठिता।
शोभिता चित्रिता कुंभैरासमन्ताच्चतुर्दिशम्॥

*—(मु. चि. ६ प्र. ९५ श्लोक पी. टी.)*

## त्याज्य वेदी

द्वारविद्धा बली विद्धा कूपवृक्षव्यधा तथा।
न कार्या वेदिका तज्ज्ञैः शुभमंगल कर्मणि॥

—(वृ. दै. र. ७१ अ. श्लोक ११५८)

सवेणुवीणामधुरस्वरेण मनोरमां मङ्गलवेदघोषैः।
प्रदक्षिणप्रक्रमणाद्युपेतां तामारूरोहेन्मिथुनं च वेदीम्॥१४४॥

वंशी, वीणा आदि के मीठे स्वरों से, सुन्दर माङ्गलिक वेद ध्वनियों के द्वारा प्रदक्षिणा क्रम से वर एवं कन्या को वेदी में बैठावें॥१४४॥

लग्नादि द्वादश भावों में सूर्यफल

मृत्युर्नैःस्वं बहुविधधनं भातृहानिः प्रजानाम्।
व्याधिः सौख्यं बहुविधमनो भर्तृहानिश्चिरायुः॥
श्रेयो हानिर्भवति हृदये व्याधिरर्थागमश्च।
भानौ स्त्रीणामतिशयरुजा लग्नभावादि संस्थे॥१४५॥

लग्नादि द्वादश भावों में सूर्य स्थित होने पर स्त्रियों में क्रमशः मृत्यु, निर्धनता, बहुविधधन, भातृ एवं पुत्र की हानि, व्याधि, विभिन्न प्रकार का सुख, स्वामी की हानि, दीर्घायु, श्रेयहानि, हृदय में रोग, धनागम तथा अत्यधिक रोग होता है॥१४५॥

लग्नादि द्वादश भावों में चन्द्रफल

नाशः सम्पद्बहुविधयशो बन्धुवृद्धिः प्रजार्तिः।
शस्त्रान्मृत्युर्भवति न चिराद्दीर्घसापत्न्यबाधा॥
प्रव्रज्यत्वं दुहितृजनितात्वं धनं भोगभाक्त्वम्।
दास्यं स्त्रीणां तुहिनकिरणे लग्नभावादिसंस्थे॥१४६॥

लग्नादि द्वादश भावों में चन्द्रमा स्थित होने पर स्त्रियों में क्रमशः सम्पत्ति नाश, बहुविध यशप्राप्ति, भाईयों की वृद्धि, सन्तान कष्ट, शस्त्र से मृत्यु, पत्नी से बाधा, प्रव्रज्या योग, पुत्री की प्राप्ति, धनागम, भोग प्राप्ति तथा स्त्रियों की दासता होती है॥१४६॥

लग्नादि द्वादश भावों में मङ्गलफल

मृत्युः शोको बहुविधधनं भातृवैरं कुबुद्धि-
र्लक्ष्मीप्राप्तिर्भवतिमरणं चोभयोर्वित्तनाशः॥
स्त्रीणां द्वेष्यं व्यसननिरतिः पुत्रपौत्रार्थसिद्धि-
र्भीतिर्भूमेर्बलिनि तनये लग्नभावादि संस्थे॥१४७॥

लग्नादि द्वादश भावों में मङ्गल स्थित होने पर स्त्रियों के लिए क्रमशः मृत्यु, शोक, बहुविधधन, भाई से शत्रुता, कुबुद्धि (खोटी बुद्धि), लक्ष्मी प्राप्ति, मृत्यु, दोनों का धननाश, स्त्रियों से द्वेषे, व्यसन में प्रवृत्ति, पुत्र-पौत्र तथा धन की सिद्धि तथा भय होता है॥१४७॥

### लग्नादि भावों में बुध का फल

प्रीतिर्बुद्धिः सुगुणनिरतिर्बन्धुपूजासुताप्ति-
निर्वैपक्ष्यं तनयरहितत्वं तनुत्यागचिन्ता॥
धर्मे बुद्धिर्भवति धरणीलाभमत्यन्तवृद्धि-
र्हानिः स्त्रीणां हिमकरसुते लग्नभावादिसंस्थे॥१४८॥

लग्नादि द्वादश भावों में बुध की स्थिति होने पर स्त्रियों के लिए क्रमशः प्रीति, बुद्धि, श्रेष्ठगुण, भाईयों में प्रेम अथवा आसक्ति, पुत्रप्राप्ति, शत्रु से विमुक्त, पुत्ररहित, शरीर त्यागने की चिन्ता, धर्म में बुद्धि, भूमिलाभ, अत्यन्त वृद्धि तथा हानि होती है॥१४८॥

### लग्नादि भावों में बृहस्पति का फल

लक्ष्मीप्रीतिर्भवति सुयशः प्रीतिन्योन्यवृद्धि-
रिष्टावाप्ति बहुविधभयं चाश्रमाणां विरक्तिः॥
पापासक्तिः सुकृतनिरतिर्भूरिलाभः सुरेज्ये।
स्त्रीणां सौख्यं रिपुकृतभयं लग्नभावादिसंस्थे॥१४९॥

लग्नादि द्वादश भावों में बृहस्पति की स्थिति होने पर स्त्रियों के लिए क्रमशः लक्ष्मी की प्राप्ति, प्रीति, श्रेष्ठयश, परस्पर प्रेम में वृद्धि, इष्ट की प्राप्ति, बहुविधभय, आराम से विरक्ति, पाप में लगाव, पुण्य में लगाव, प्रचुर लाभ, सौख्य तथा शत्रु से भय होता है॥१४९॥

### लग्नादि द्वादश भावों में शुक्र का फल

भोगप्राप्तिर्विविधविभवः स्वैरवृत्तिर्महत्वम्।
पुण्याधिक्यं भवति निधनं सर्वनाशो व्यसुत्वम्॥
पत्युः प्रीतिर्बहुविधगुणः सर्वसम्पत्समृद्धि-
रस्वं स्त्रीणामुशनसि तदा लग्नभावादिसंस्थे॥१५०॥

लग्नादि द्वादश भावों में शुक्र की स्थिति स्त्रियों के लिए क्रमशः भोग प्राप्ति, अनेक प्रकार से धन, शत्रुताभाव, महत्त्व, पुण्य की अधिकता, मृत्यु, प्राणों का सर्वनाश, पति से प्रीति, बहुविधगुणसम्पन्ना, सर्वसम्पत्, समृद्धि तथा गरीबी होती है॥१५०॥

### लग्नादि द्वादश भावों में शनि, राहुकेतु का फल

स्वच्छन्दत्वं कदशनरतिर्वल्लभत्वं विशील्यम्।
व्याधिः सुश्रीर्मृतिरथ सुखंगर्भपातप्रवृत्तिः॥

द्यूतासक्तिर्भवति रविजे वैभवं वक्त्ररोगः।
स्वर्भानौ वा शिखिनि च तथा लग्नभावादिसंस्थे॥१५१॥

लग्नादि द्वादश भावों में शनि, राहु एवं केतु की स्थिति होने पर स्त्रियों में क्रमशः स्वेच्छा से व्यवहार करना, बुरा भोजन, रति में लगाव, शीलरहित, व्याधि, श्रेष्ठलक्ष्मी, मृत्यु अथवा सुख, गर्भपात प्रवृत्ति, जुआ खेलने में असक्ति, धन एवं मुख में रोग होता है॥१५१॥

### लग्नादि द्वादश भावों में विभिन्न ग्रहों का फल

सर्वे जामित्रसंस्था विदधति मरणं सौरिसूर्यौ प्रशस्तौ।
षष्टाष्टत्र्यायसंस्थौ भवरिपुसहजस्थोऽपि भौमः शशाङ्कः॥
लग्नान्त्याष्टारिवर्ज्यः परिणयनविधौ ज्ञाऽन्त्यमृत्युर्विवर्ज्यम्।
शुक्रेज्यौ वा सुतायास्पदनवमगतौ भातृशुक्रोऽपिनेष्टः॥१५२॥

सभी ग्रहलग्न से सप्तम स्थान में स्थित हों तो मृत्युप्रद होते हैं। सूर्य-शनि छठे, आठवें, तीसरे एवं ग्यारहवें भाव में हो तो श्रेष्ठ होते हैं तथा ग्यारह, षष्ठ और तीसरे भावों में चन्द्रमा मङ्गल भी श्रेष्ठ होते हैं। लग्न से द्वादश, अष्टम तथा षष्ठ स्थान छोड़कर विवाह विधि में बुध शुभ परन्तु लग्नान्त में मृत्युप्रद होता है। शुक्र और बृहस्पति कन्या के पञ्चम, नवम अथवा शुक्र तीसरे हो तो नेष्टफल होता है॥१५२॥

### लग्नस्थ शुभाशुभ ग्रहों का फल

लग्नावस्था शुभखचराः कुर्वन्ति विवाहितां सुपुत्रवतीम्।
सप्तभिरब्दैः क्रूराश्चन्द्रश्च विलग्नगो विधवाम्॥१५३॥

लग्न में शुभग्रहों की स्थिति विवाहित स्त्री को पुत्रवती बनाती है। चन्द्रमासहित लग्न में यदि क्रूरग्रहों की स्थिति हो तो सात वर्षों के अन्दर विधवा हो जाती है॥१५३॥

### चन्द्रमासहित द्वितीय भाव में शुभग्रहों का फल

धनसौख्यवतीं सुभगां धनगाः सौम्यग्रहाः सचन्द्राश्च।
क्रूरा द्वितीयसंस्था धनहीनां वत्सरैस्त्रिभिः कन्याम्॥१५४॥

चन्द्रमा सहित दूसरे भाव में शुभग्रह हों तो विवाहित स्त्री को धन, सुख एवं भाग्यशालिनी बनाते हैं॥१५४॥

### चन्द्रमा का तृतीय भाव में शुभाशुभफल

विसिताः सचन्द्रसौम्यास्तृतीयगा वित्तसौख्यवतीम्।
पापास्तृतीयसंस्थाः सततं सौभाग्यपुत्रवतीम्॥१५५॥

शुक्र को छोड़कर चन्द्रमासहित शुभग्रह तृतीय भाव में हों तो विवाहित कन्या

को धन, सुख ऐश्वर्य प्रदान करते हैं। यदि पापग्रह तृतीय भाव में हो तो सदैव सौभाग्यशालिनी एवं पुत्रवती बनाते हैं॥१५५॥

### चन्द्रमा का चतुर्थ स्थान में शुभाशुभफल

**बन्धुस्थाश्चन्द्रयुताः शुभखचरा भर्तृवल्लभां साध्वीम्।**
**अशुभाश्चतुर्थसंस्था दुःशीलां दुर्भगां च कुर्वन्ति॥१५६॥**

चतुर्थ स्थान में चन्द्रमा सहित शुभग्रह हों तो विवाहिता कन्या को साध्वी एवं पति प्रिया बनाते हैं। यदि पापग्रह चतुर्थ में हों तो दुष्टचरित्र वाली और दुर्भाग्यशालिनी बनाते हैं॥१५६॥

### चन्द्रमा का पञ्चमभाव में शुभाशुभफल

**तनयगता सेन्दुशुभा बहुतनयां मानिनीं सुशीलवतीम्।**
**अशुभखगास्तनयगता विपुत्रवतीं वा विवादशीलवतीम्॥157॥**

पञ्चम स्थान में चन्द्रमा सहित शुभग्रह हों तो विवाहिता कन्या को बहुत पुत्रों वाली, माननीया एवं सुशीला बनाते हैं! अशुभ ग्रह पञ्चम भाव में हों तो पुत्र से रहित तथा विवादशीला बनाते हैं॥१५७॥

### षष्ठस्थान में चन्द्रशुक्र का योग

**सप्तभिरब्दैर्विधवां शशिशुक्रौ षष्ठगौ कुरुतः।**
**सततं पापासक्तां ज्ञेयाः पापाः प्रभूतशीलवतीम्॥१५८॥**

चन्द्रमा शुक्र षष्ठ स्थान में हों तो विवाहिता कन्या को सात सालों के अन्दर विधवा तथा सदैव पाप में आसक्त करते हैं। यदि पाप ग्रह षष्ठ में हों तो अधिक शीलवती बनाते हैं॥१५८॥

### सप्तमस्थान में सभी ग्रहों का फल

**सप्तमगाः सकलखगाः सप्तभिरब्दैः ससप्तमासैश्च।**
**दम्पत्योः सहमरणं यमरक्षितमपि च कुर्वन्ति॥१५९॥**

सभी ग्रह सप्तम स्थान में हों तो विवाहिता कन्या के लिये सातमास के अन्दर अथवा सात वर्षों में पति सहित मृत्युप्रद होते हैं, चाहे यमराज स्वयं रक्षा क्यों न करें॥१५९॥

### अष्टम स्थान में चन्द्रमङ्गल का फल

**अष्टमगौ शशिभौमौ धनरहितां तां च पञ्चभिर्वर्षैः।**
**शुभखचराः कापटिकामितरे साध्वीं चिरञ्जीवीम्॥१६०॥**

अष्टम स्थान में चन्द्रमामङ्गल विवाहिता कन्या को पाँच वर्षों के भीतर धन रहित करते हैं। शुभग्रह अष्टम में हों तो कपट करने वाली होती है। यदि पापग्रह अष्टम में हों तो साध्वी एवं चिरंजीवी होती है॥१६०॥

नवमस्थान में चन्द्रसहितशुभाशुभ ग्रहों का फल

**नवमगताः शुभखचराः शशिसहिता भोगभाग्यसौख्यवतीम्।**
**अशुभखगाः खलचित्तां पर निरतां पापवादिनीं चैव॥१६१॥**

नवम स्थान में शुभग्रह चन्द्रमा सहित हों तो विवाहित कन्या को भोग, भाग्य एवं सुखप्रद होते हैं। यदि पापग्रह नवम स्थान में हो तो दुष्टचित्ता, पर पुरुष में आसक्त तथा पापवादिनी होती है॥१६१॥

दशम स्थान में चन्द्रमासहित शुभाशुभग्रहों का फल

**दशमगताः शुभखेटाः शशिसहिता भर्तृपूजितां साध्वीम्।**
**अशुभखगाः प्रतिकूलां मलिनाङ्गीं कर्कशां मृषाभिरताम्॥१६२॥**

दशम स्थान में शुभग्रह चन्द्रमा सहित हों तो विवाहिता कन्या पति द्वारा पूजित तथा साध्वी होती है। यदि अशुभग्रह (पापग्रह) प्रतिकूल, मलिन अङ्गों वाली, कर्कश स्वभाव वाली तथा अस्तभाषिणी बनाते हैं॥१६२॥

एकादश भाव में चन्द्रमासहित शुभाशुभ ग्रहों का फल

**लाभगता निखिलखगा बहुविधधनधान्यपुत्रपौत्रवतीम्।**
**पतिभक्तां शीलवतीं न नीचगास्तारिराशिगाश्च तथा॥१६३॥**

सभी ग्रह एकादश भाव में हों तो विवाहिता कन्या को अनेक प्रकार से धन-धान्य तथा पुत्र-पौत्रादि से युक्त, पति की भक्त एवं शीलयुक्त करते हैं। यदि ग्रह नीचंगत, अस्तंगत और शत्रुराशि में हों तो उक्त फल नहीं होता है॥१६३॥

द्वादश स्थान में शुभाशुभ ग्रहों का फल

**व्ययगो दुग्धाब्धिभवः करोति विधवां च पञ्चभिर्वर्षैः।**
**मानविहीनां सौम्याः पापाः कुर्वन्ति नीचवृत्तवतीम्॥१६४॥**

द्वादश स्थान में शुभाशुभ ग्रह हों तो विवाहिता कन्या को विधवा बनाते हैं, चाहे कन्या क्षीरसागर से क्यों न उत्पन्न हुई हो। शुभग्रह द्वादश में हों तो मान-प्रतिष्ठा रहित यदि पापग्रह द्वादश में हों तो नीच आचरण वाली बनाते हैं॥१६४॥

**सत्खचराः सदसच्च स्थान्स्वशुभफलान्यफलम्।**
**सम्यग्ज्ञात्वाऽथ तयोः शुभफलमधिकं प्रगृह्णीयात्॥१६५॥**

शुभग्रह शुभाशुभ स्थानों में शुभाशुभ फलप्रद होते हैं। अतः शुभाशुभ ग्रहों का फलादेश भलीभान्ति समझ कर कहना चाहिए॥१६५॥

**तत्राधिकफलवृन्दे विनाशमायाति दोषचयम्।**
**यद्वच्छशांककिरणे कलङ्कमखिलं तथैव सदा॥१६६॥**

अधिक फल समूह के कारण समस्त दोष समूह नष्ट हो जाता है, जैसे चन्द्रमा की किरणों से सदैव समस्त कलङ्क मिट जाते हैं।।१६६।।

**देशे च काले च तथा शरीरे राज्येऽपि चापद्यपि यत्र तत्र।**
**भावान्तरं तत्परिकल्पनीयं गान्धर्व वैवाहचतुष्टयार्थम्।।१६७।।**

देश, काल, शरीर तथा राज्य में यहाँ वहाँ विपत्ति होने पर भावनाओं से हट कर गान्धर्वादि चार प्रकार के विवाहों में अन्य फलों की कल्पना करनी चाहिए।।१६७।।

**लग्ने भावाश्चोदितास्तेषु तिष्ठँल्लग्नस्थः संस्तानतीतो द्वितीयः।**
**खेटैस्त्वेवं शेषराशीषु शेषा भावाः सम्यक् कल्पनीयाः क्रमेण।।१६८।।**

अन्य भावों में उदित, उनमें बैठे हुए, लग्न में अथवा द्वितीय भाव में गए हुए ग्रहों के द्वारा शेष राशियों तथा भावों की क्रम से भलीभान्ति परिकल्पना करनी चाहिए।।१६८।।

**ब्राह्मोद्वाहः कायदैवार्षसंज्ञाश्चैते कार्याः प्रोक्तकाले विधेयाः।**
**नूनं गान्धर्वासुरौ राक्षसाख्यः पैशाचो वा सर्वकाले विधेयाः।।1६९।।**

ब्रह्मविवाह, प्राजापत्य, विवाह, दैव, आर्ष इत्यादि विवाहों को पूर्व कहे गए समयानुसार करना चाहिए और निश्चित रूप से गान्धर्व, आसुर, राक्षस तथा पैशाच संज्ञक विवाह सभी कालों में करने चाहिए।।१६९।।

### ब्रह्मविवाह प्रशंसा

**ब्राह्मो विवाहस्तज्जातः पुरूषानेकविंशतिम्।**
**आहूय दीयते शक्त्या पुनात्युभयतः स्थितान्।।170।।**

ब्रह्म विवाह से उत्पन्न हुआ बालक अपनी इक्कीस पीढ़ियों को पवित्र करता है। इस विवाह में वर को अपने घर में आमन्त्रित करके यथाशक्ति पूजा विधान करके कन्या को दिया जाता है।।१७०।।

### प्राजापत्य विवाह प्रशंसा

**कायोद्वाहः पावयेत्षट् षड्वंश्यांस्तत्र सम्भवः।**
**चरतामनया धर्ममित्युक्त्वा दीयतेऽर्थिने।।१७१।।**

प्राजापत्य विवाह से उत्पन्न बालक बारह पीढ़ियों को पवित्र करता है। कन्या की इच्छा करने वाले वर का यथासम्भव पूजा करके तुम इस कन्या के साथ धर्म का आचरण करना ऐसा कहकर कन्या दी जाती है।।१७१।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

उक्त काले तु कर्त्तव्याश्चत्वारः फलदायकाः।
आसुरो द्रविणादानात्पैशाचः कन्यका छलात्।।

राक्षसो युद्धहरणद् गन्धर्वः समयान्मिथः।
गान्धर्वासुरपैशाचराक्षसाख्यास्तु नोत्तमाः।।
—(ना. सं., अ. २७, श्लोक १४४-१४५)

### दैवविवाह

**दैवोद्वाहो यज्ञवते ऋत्विजे दीयते सदा।**
**पुनात्युभयतः सप्त पुरुषांश्चैव तत्रजः।।१७२।।**

दैव विवाह में यज्ञ करवाने वाले ऋत्वज को अपनी कन्या दी जाती है। इस विवाह से उत्पन्न सन्तान दोनों ओर से सात-सात पीढ़ियों को पवित्र करती है।।१७२।।

### आर्षविवाह

**आर्षोद्वाहस्तथाऽऽदाय गोद्वयं दीयते सुता।**
**पुनात्युभयतस्त्रीन्स्त्रीन्पुरुषांस्तत्र सम्भवः।।१७३।।**

आर्ष विवाह में वर को घर में आमन्त्रित करके उससे दो गाय लेकर कन्यादान में दी जाती है। इस विवाह द्वारा उत्पन्न सन्तान दोनों ओर तीन-तीन पीढ़ियों को पवित्र करती है।।१७३।।

**क्रमागतः–**

**श्रीपतिः—**

प्रजापत्यं ब्राह्मदैवर्षिसंज्ञाः कालेषूक्तेष्वेव कार्या विवाहाः।
गान्धर्वाख्यश्चासुरो राक्षसश्च पैशाचो वा सर्वकालेविधेयाः।
चत्वारो ब्राह्मणस्याद्या राज्ञां गान्धर्वराक्षसौ।
राक्षसश्चासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः।।
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता।
यज्ञस्थऋत्विजे दैव आदायार्षस्तु गोद्वयम्।।
आसुरो द्रविणादानाद् गन्धर्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यका छलात्।।
—(वृ. दै. र. प्र. ७१, श्लोक १६)

### गान्धर्व, आसुर, राक्षस विवाह इत्यादि

**गान्धर्वः समयग्राह्य आसुरोऽर्थप्रदानतः।**
**राक्षसो युद्धहरणात्पैशाचः कन्यकाच्छलात्।।१७४।।**

गान्धर्व विवाह समय ग्राह्य अर्थात् समयानुसार वर-कन्या का एक-दूसरे से प्रेम करना, धन प्रदान करके असुरसंज्ञक विवाह, युद्ध एवं अपहरण द्वारा राक्षस विवाह तथा छलपूर्वक (धोखा देकर) कन्या से विवाह पैशाच संज्ञक कहा जाता है।।१७४।।

**अष्टादश कूटज्ञान**

**वर्णा दिनं गणमहेन्द्रवधूविदूरयोन्याख्यराशितदधीशविवश्यनाड्यः।**
**वेधाख्यभूतबहुलिङ्ग विजातिगोत्रपक्ष्यापयोगिनि सुधांशुयुजो दशाष्टौ॥१७५॥**

वर्ण, दिन, गण, महेन्द्र, स्त्रीदूर, योनि, राशि, राश्याधिपति, वश्य, नाड़ी, वेध, बहुलिङ्ग, विजाति, गोत्र पक्षी, योगिनी, सुधांशु और युंजा ये अष्टादश कूट कहे हैं॥१७५॥

**क्रमागतः–**

**वर्णो वश्यं नृदूरं च वल्लभत्वं च तारका।**
**योनिर्मित्रगणे राशिनाडि केति क्रमाद्दश॥**

—(ज्यो. नि., १४१ पृ., श्लोक ७)

**तत्र दूरद्वयं हित्वा कूटं भेदाष्टकं भवेत्।**
**तारादि षट्कं षडभेदं परं योनि चतुष्टयम्॥**

—(ज्यो. नि., १४१ पृ., श्लोक ७)

**नोट :** आठ कूट विचार में ३६ गुण होते हैं; क्योंकि वर्णादिको एकोत्तर वृद्धि होने के सन्दर्भ में १-८ तक गणना का सरल उपाय "लीलावती" में बताया है—"**सैकपदघ्नपदार्धं**" से—

(१) $\frac{(८+१) \times ८^{४}}{२} = (८+१)\,४ = ९ \times ४ = ३६$

(२) नवकूट में $\frac{(९+१) \times ९}{२} = \frac{१०^{५} \times ९}{२} = ५ \times ९ = ४५$

(३) दस कूटों में $\frac{१० + १ \times १०^{५}}{२} = (१० + १) \times ५ = ११ \times ५ = ५५$

(४) अष्टादशकूटों में $\frac{१८ + १ \times १८^{९}}{२} = (१८ + १) \times ९ = १९ \times ९ = १७१$

इस प्रकार भिन्न-भिन्न कूटों में भिन्न-भिन्न गुणसंख्या प्राप्त होती है।

**नवर्क्षपर्यायवशाद्वधूभमाद्यं वरर्क्षान्तमथो विगणय्य।**
**जन्मत्रिभं पञ्चमसप्तमं भं त्यक्त्वान्यभं शोभनमामनन्ति॥१७६॥**

कन्या के जन्म नक्षत्र से वर के नक्षत्र पर्यन्त गिने तथा वर के नक्षत्र से कन्या के नक्षत्र तक गिने! नौ के पर्याय से तीन भागों में करें, तीसरा, पाँचवां और सातवां नक्षत्र त्याग दें। अन्य सभी नक्षत्र शुभ कहे गये हैं॥१७६॥

### देवगण, मनुष्यगणसंज्ञकनक्षत्र

**दस्त्रादितीज्यमृगमैत्रकरानिलान्त्य लक्ष्मीशभानि नव देवगणः प्रदिष्टः।**
**पूर्वात्रयान्तक विधातृहरोत्तराणि धिष्ण्यानि मानुष गणोऽत्र नव प्रदिष्टः॥१७७॥**

अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशिरा, अनुराधा, हस्त, स्वाती, रेवती तथा श्रवण ये नौ देवगण संज्ञक हैं। पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, रोहिणी, आर्द्रा, उ. फा. उ. षा. उ. भा. ये नौ मनुष्यगण संज्ञक कहे गये हैं॥१७७॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

दम्पत्योर्जन्मभे चैकगणे, प्रीतिरनेकधा।
मध्यमा देवमर्त्यानां राक्षसानां तयोमृतिः॥

—(मु. चि. ६, प्र. ३० श्लोक पी.टी.)

**कश्यपः-**

स्वगणे चोत्तमा प्रीतिर्मध्यमाऽमरमर्त्ययोः।
मर्त्यराक्षसयोर्वैरममरासुरयोरपि ॥

*—(मु. चि. ६, प्र. ३० श्लोक पी.टी.)*

लल्लः

सम्बन्धो निजयोनौ नृपमित्रकलत्र पूर्वशस्तः।
वध्यां नरामराणां मध्यमां नररक्षसां किञ्चित्॥

—(वृहद् दैवज्ञरञ्जन श्लोक संख्या ३३५ अ० ७१)

### असुरसंज्ञकनक्षत्र तथा गणों का परस्पर स्नेह एवं वैर

**पितृद्विदैवाग्निशतेन्द्रमूलवस्वाहिचित्रर्क्षगणोऽसुराख्यः।**
**देवासुराणां मनुजासुराणां वैरं महास्नेहमथेतरेषाम्॥१७८॥**

मघा, विशाखा, कृत्तिका, शतभिषा, ज्येष्ठा, मूल, धनिष्ठा, आश्लेषा, चित्रा ये नौ नक्षत्रों को असुर संज्ञक कहा है। देवता और राक्षस में, मनुष्य और राक्षस में वैर है तथा अन्य सभी में परस्पर बहुत स्नेह होता है॥१७८॥

### महेन्द्रवर्ग कथनम्

**स्त्रीधिष्ण्यतो वेद ४ दिगा १० दि १ विश्वा १३।**
**नृपा १६ तिधृत्या १८ कृति २२ तत्व २५ तुल्ये॥**
**पुंभे सति प्रीतिरतीव शश्वन्महेन्द्रवर्गश्च वधूवरस्य॥१७९॥**

स्त्री (वधू) के नक्षत्र से वर का नक्षत्र, चतुर्थ, दशम, प्रथम, त्रयोदश, षोडश, अष्टादश, बाईस, पच्चीस हो तो वर एवं वधू में अत्यन्त प्रीति होती है। इसे महेन्द्र वर्ग कहा है॥१७९॥

### स्त्रीकूट ज्ञान

**स्त्रीधिष्ण्यतो भे नवके वरस्य चाद्ये तयोर्वैरमथ द्वितीये।**
**सामान्यमेतच्च वधूविदूषितं तस्मात्तृतीये नवके विवाहः॥१८०॥**

स्त्री (वधू) के नक्षत्र से वर का नक्षत्र प्रथम गणना में नवमां हो तो परस्पर वैर होता है। दूसरी वार नवमां नक्षत्र हो तो सामान्य सम्बन्ध समझें। इसलिये तीसरी गणना में नवमां नक्षत्र आ जाये तो विवाह शुभ होता है। इसे स्त्रीकूट कहते हैं॥१८०॥

### नक्षत्रानुसार चौदह प्रकार की योनियां

**अश्वेभमेषभुजगद्वयकुक्करौ तु मेषौ तु मूषकमथोंदुरूगोलुलायाः।**
**शार्दूलमाहिषगवारिमृगद्वयाश्वशाखामृगोक्षकपि पञ्चमुखाश्च सिंहाः॥१८१॥**
**गोकुञ्जराविति यथाक्रममाश्विनादिभानां भवन्ति खलु कल्पितयोनिरूपाः।**
**एतद्विचार्यमखिलं सदसद् ग्रहज्ञस्त्रिस्कन्धवित्प्रवरधीर्विबुधां वरिष्ठः॥१८२॥**

अश्विनी शतभिषा की अश्व योनि, स्वाति हस्त नक्षत्रों की महिष, ज्येष्ठा पूर्वाभाद्रपदा की सिंह, भरणी रेवती की हाथी, पुष्य कृत्तिका को बकरा, श्रवण, पूर्वाषाढ़ा की वानर, उ.षा., अभिजित् की नकुल, मृगशिरा रोहिणी की सर्प, ज्येष्ठा अनुराधा की मृग, मूला आर्द्रा की श्वान्, पुनर्वसु आश्लेषा की विडाल, मघा पू. फा. की मूषक, विशाखा चित्रा की व्याघ्र, उ. फा. उ. भा. की गौ योनि होती है॥१८१॥

गाय, हाथी यथाक्रम से अश्विन्यादि नक्षत्रों में कल्पित योनि रूप कहे गये हैं। इन सभी का अच्छा-बुरा विचार करके त्रिस्कन्ध ज्योतिष के ज्ञाता श्रेष्ठ बुद्धि वाले ज्योतिषी को विचार करना चाहिए।

चौदह योनियों में प्रत्येक पाद की दो योनियों में परस्पर महावैर है, जो विवाह में वर्जित है। उदाहरण के लिये पूर्वार्द्ध अश्विनी शतभिषा की अश्व योनिक, प्रथमपाद के उत्तरार्द्ध में स्वाति हस्त की महिष योनि से महावैर है॥१८२॥

### योनिवैर विचार

**बभ्रुरगं श्वैणमिभेंद्र सिंहमोत्वाखुसंज्ञं त्वजवानरं च।**
**गोव्याघ्रमश्वोत्तममाहिषं च वैरं नृनार्योर्नृपभृत्ययोश्च॥१८३॥**

नेवला और साँप का, कुत्ता और मृग का, हाथी और शेर का, बिल्ली और मूषक का, बकरे वानर का, गाय बाघ का, अश्व महिष का वैर होता है। वर एवं कन्या के राजा और नौकर के योनिवैर का विचार करना चाहिए॥१८३॥

### षडाष्टक, नवपञ्चम, द्विर्द्वादश विचार

**षडाष्टके मृत्युरथाङ्गनाया राशौ नृनार्योर्नवपञ्चमेऽपि।**
**अपत्यहानिर्नियतं च नैःस्वं द्विर्द्वादशे प्रीतिरतः परेषाम्॥१८४॥**

षडाष्टक दोष अर्थात् वर एवं कन्या की छठी एवं आठवीं राशि आ जाये तो कन्या की मृत्यु होती है। वर एवं कन्या की राशियां परस्पर नवमें पाँचवें हों तो सन्तान होनि होती है। राशियां दूसरे बारहवें में हों तो गरीबी होती है। इसके अतिरिक्त अन्य सभी में प्रीति होती है॥१८४॥

राशिकूट ज्ञान

**कनिष्ठं राशिकूटं यदेतच्च त्रिविधं स्मृतम्।**
**व्यत्ययान्मध्यमं चैतदपरं मध्यमं सदा॥१८५॥**

राशिकूट कनिष्ठ है। इसे भी तीन प्रकर का कहा है। एक-दूसरे से परिवर्तन होने पर मध्यम तथा इससे अतिरिक्त सदैव मध्यम ही होता है॥१८५॥

एकाऽधिपत्य, राशीश मित्रता का शुभफल

**एकाऽधिपत्ये त्वथ मित्रभावे स्त्रीपुंसराश्योर्नव रज्जुदोषे।**
**षट्काष्टकादिष्वापि शर्मदं स्यादुद्वाहकर्माचरतोस्तयोश्च॥१८६॥**

एकाऽधिपत्य योग, परस्पर राशि मित्रता होने पर स्त्री-पुरुष राशियों में रज्जुदोष एवं षडाष्टक दोष आने पर भी सुखोपलब्धि कही है। अतः इन योगों में वरकन्या का विवाह करना चाहिए॥१८६॥

क्रमागतः-

ज्योतिर्निबन्धे—

एकराशौ महाप्रीतिश्चतुर्थदशमे सुखम्।
तृतीयैकादशे वित्तंसुप्रजा समसप्तके॥

ज्योतिषतत्त्वे—

एकराशौ च दम्पत्योः शुभंस्यात्समसप्तके।
चतुर्थेदशमे चैव तृतीयैकादशे तथा॥
षडाष्टके मृतिर्ज्ञेया पंचमेत्वनपत्यता।
नैस्वं द्विर्द्वादशेन्येषु दम्पत्योः प्रीतिरुत्तमा॥

—(वृ. द. र. अ. ७१, श्लोक ३४७, ३५०)

एकाऽधिपत्य, राशीश, मित्रता विवाह का शुभफल

एकाऽधिपत्य, राशीश मित्रता विवाह का शुभफल

**एकाधिये मित्रभावेऽप्युद्वाहः शर्मदः सदा।**
**द्विर्द्वादशे त्रिकोणे च न कदाचित्षडषृके॥१८७॥**

एकाऽधिपत्ययोग, परस्पर राशीश मित्रतायोग विवाह में सदैव शुभफलप्रद कहे हैं, ऐसे योगों में द्विर्द्वादश, नवपञ्चम एवं षडाष्टक होने पर भी विवाह सुख देने वाला होता है॥१८७॥

**क्रमागतः-**

**जगन्मोहने—**

मित्रषट्काष्टकं कीटमेषयोर्वृषजूकयोः।
कर्किचापभयोर्मीनसिंहयोर्मृगयुग्मयोः।।
कन्यकाकुभ्योरन्यत्प्रयत्नादिह वर्जयेत्।।

—(मु. चि. ६ प्र. ३२, श्लोक, पी. टी.)

**चण्डेश्वरः-**

**अशुभनवपञ्चम-**

मेषे च चापे मकरे वृषे च कुम्भे च युग्मे झषकर्कटे च।
कुम्भे तुलायां झषकीटयोश्च शत्रुत्रिकोणे बहुःदुःखहानिः।।

**शुभनवपञ्चम्—**

मेषे च सिंहे वृषभे च कन्ये युग्मेघटे वृश्चिककर्कटे च।
सिंहे च चापे मकरे युवत्या मित्रत्रिकोणं बहुपुत्रलाभः।।

*—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ३७०-७१)*

**अन्योऽन्यशात्रवे त्याज्यस्त्याज्यः षट्काष्टकेऽपि च।**
**नाड़ीदोषे भवेन्मृत्युर्गुणैः सर्वैः समन्वितः।।१८८।।**

राशियों पर शत्रु हों तो षडाष्टक का त्याग करना चाहिए। सभी गुणों से युक्त होने पर भी नाड़ी दोष मृत्युप्रद होता है।।१८८।।

**क्रमागतः-**

**चण्डेश्वर : अशुभद्विद्वादशम्—**

कन्याहरौ कीटतुलाधरौ वा चापे मृगे वा झषगे च कुम्भे।
कुलीर युग्मे वृषभे च मेषे द्विर्द्वादशे वै निधनं करोति।।

**शुभद्विर्द्वादाशम्-**

चापे फणीन्द्रे घटभे मृगे च अजेजले सिंहकुलीरके च।
कन्या तुलायां वृषभेषु युग्मे द्विर्द्वादशे चाथ करोति वृद्धिम्।।

—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ३७४-७५)

**भकूटपरिहारक्रमागतः-**

**अत्रिः-**

राशीशयोः सुहृद्भावे मित्रत्वे चांशनाथयोः
गणादिदौष्ट्येप्युद्वाहः पुत्र-पौत्र प्रवर्द्धनम्।
"राशिमैत्रे शुभेलब्धे ग्रहमैत्री न चिन्तयेत्"

*—(मु. चि. ६ प्र. ३३-श्लोक पी. टी.)*

**मध्यनाड़ी पतिं हन्ति पार्श्वे नाड्यौ तु कन्यकाम्।**
**तस्मान्नाडी सदा त्याज्या दम्पत्योः शुभमिच्छता।।१८९।।**

मध्य नाड़ी दोष पति के लिए मृत्युकारक, अन्त्य नाड़ी कन्या के लिए मृत्युप्रद है। अतः दम्पति के लिये कल्याण की इच्छा से नाड़ी दोष सदैव त्याज्य है॥१८९॥

**क्रमागतः–**
**गर्गः—**

नाडीकूटं तु संग्राह्यं कुटानां तु शिरोमणिम्।
ब्रह्मणा कन्यकाकण्ठसूत्रत्वेन विनिर्मितम्॥

—(मु. चि. ६ प्र. ३४, श्लोक, पी. टी.)

**राशिकूट ज्ञान**

**उत्तमे राशिकूटेऽपि समं शात्रवमेव वा।**
**विवाहः शुभदो ज्ञेयो नापि मध्यकनिष्ठयोः॥१९०॥**

उत्तम राशि कूट होने पर विवाह शुभ, सम राशिकूट से मध्यम तथा शत्रु होने पर अधम होता है॥१९०॥

**स्त्रीदूरे समजामित्रे सहजाय सुहृद्दशे।**
**शत्रुः समः समो मित्रं मित्रं चेत्परमं सुहृत्॥१९१॥**

स्त्रीदूर समसप्तक (१,७) सहजाय (३,११) सुहृददश (४-१०) पर शुभ, शत्रु सम-सम तथा मित्र-मित्र होने से परममित्र हो जाता है॥१९१॥

**नृयुक्तुलामेषघटाश्विसिंहाः कुर्वन्त्यजस्रं खलु मित्रभावम्।**
**स्वषष्ठसंख्याभवनैश्च तेऽपि स्वस्वाष्टसंख्याभवनैकता वा॥192॥**

मिथुन, तुला, मेष, कुंभ, धनु, सिंह ये राशियां सदैव मित्रता भाव रखती हैं। अपने षष्ठ संख्या वाले भाव में रहकर अपनी आठवीं संख्या के घर में एकता रखती हैं॥१९२॥

**अन्योऽन्यं शात्रवं यत्र दम्पत्योर्जन्मतस्तयोः।**
**प्रीतिषष्टाष्टमं त्याज्यमपि नूनं करग्रहे॥१९३॥**

अन्योऽन्य जो राशियां शत्रुभाव रखती हैं। यदि वही राशियां दम्पति की जन्म राशियां हों तथा मित्र षडाष्टक योग का भी विवाह में त्याग करना चाहिए॥१९३॥

**एकराशिपृथक्धिष्ण्येऽप्युत्तमं पाणिपीडनम्।**
**एकधिष्ण्ये पृथग्राशौ सर्वैक्येऽपि च मृत्युदम्॥194॥**

एक राशि पृथक् नक्षत्र विवाह में उत्तम कहे हैं। इसी प्रकार यदि नक्षत्र एक हो तथा राशि भिन्न हो तो भी विवाह शुभफलप्रद होता है। परन्तु सभी कुछ एक हो तो विवाह मृत्यप्रद होता है॥१९४॥

क्रमागतः-

नारदः-

एकराशौ पृथक् धिष्ण्ये दम्पत्योः पाणिपीडनम्।
उत्तमं मध्यमं भिन्नराश्यैकर्क्षगयोस्तयोः।।

—(मु. चि. ६ प्र. ३६, श्लोक, पी. टी.)

गर्गः—

एक राशौ द्विनक्षत्रे पुंतारा प्रथमाभवेत्।
अतीव शोभनः प्रोक्तः स्त्रीतारा चेद्विनश्यति।।

—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ४१८ ज्यो नि. १४३, पृ. ७ श्लोक)

**जन्मभं जन्मधिष्ण्येन नामधिष्ण्येन नामभम्।**
**व्यत्ययेन यदा योज्यं दम्पत्योर्निधनप्रदम्।।१९५।।**

जन्म के नक्षत्र से जन्म का नक्षत्र, नाम के नक्षत्र से नाम का नक्षत्र ही वरवधू मेलापक में युक्ति संगत है। यदि विपरीत क्रम से अर्थात् एक का जन्म नक्षत्र दूसरे का नाम नक्षत्र जोड़ने से दोनों वरवधू के लिये मृत्युप्रद होता है।।१९५।।

क्रमागतः-

बृहद्दैवज्ञरञ्जने—

कुर्यात्षोडशकर्माणि जन्मराशौ बलान्विते।
सर्वाण्यन्यानि कार्याणि नामराशौ बलान्विते।।
ज्ञातं जन्म यदा पुंसः स्त्रियो न ज्ञायते तदा।
जन्मनाम्नोर्बलं ज्ञात्वा कुर्वीतोद्वाहमङ्गलम्।।

—(बृहद् दैवज्ञरञ्जने पृ. सं. २४६)

**अज्ञातजन्मनां नृणां नामभं परिकल्पयेत्।**
**तेनैव चिन्तयेत्सर्वं राशिकूटादि पूर्ववत्।।१९६।।**

अज्ञात जन्मराशि वालों का नामराशि से जन्म राशि की भाँति समस्त राशिकूटादि पहले की तरह परिकल्पना करनी चाहिए।।१९६।।

**रवेः समोज्ञः सितसूर्यपुत्रावरी परेऽन्ये सुहृदोऽम्बराठाः।**
**चन्द्रस्य नारि रविचन्द्रपुत्रौ मित्रे समाः शेषनभश्चराः स्युः।।१९७।।**

सूर्य का बुध सम, शुक्र एवं शनि शत्रु तथा अन्य सभी ग्रह मित्र हैं। चन्द्रमा का कोई भी शत्रु नहीं, सूर्य बुध मित्र तथा शेष सभी ग्रह सम हैं।।१९७।।

**समौ सितार्की शशिजश्च शत्रुर्मित्राणि शेषा पृथिवीसुतस्य।**
**शत्रुःशशी सूर्यसितौ च मित्रे समाः परे स्युः शशिनन्दनस्य।।198।।**

पृथ्वी पुत्र मङ्गल के शुक्र शनि सम, बुध शत्रु तथा शेष सभी ग्रह मित्र हैं! चन्द्रमा के पुत्र बुध का चन्द्रमा शत्रु, सूर्यशुक्र मित्र तथा अन्य सभी ग्रह सम हैं।।१९८।।

**गुरोर्ज्ञशुक्रौ रिपुसंज्ञकौ तु शनिः समोऽन्ये सुहृदो भवन्ति।**
**शुक्रस्य मित्रे बुध सूर्यपुत्रौ समौ कुजेज्यावितरावरी तौ॥१९९॥**

देवगुरु बृहस्पति के बुध शुक्र शत्रु, शनि सम तथा अन्य सभी ग्रह मित्र हैं। दैत्यगुरु शुक्र के बुध शनि मित्र, मङ्गल बृहस्पति सम अन्य सभी ग्रह शत्रु हैं॥१९९॥

**शनेः सम वाक्पतिरिन्दुसूनुशुक्रौ च मित्रे रिपवः परेऽपि।**
**ध्रुवं ग्रहाणां चतुराननोऽपि शत्रुत्व मित्रत्व समत्वमुक्तम्॥२०॥**

शनि के बृहस्पति सम, बुध शुक्र मित्र तथा अन्य सभी ग्रह शत्रु हैं! ग्रहों की ध्रुव मित्रता, शत्रुता एवं समता के सन्दर्भ में स्वयं ब्रह्मा जी ने कहा है—अर्थात् इस अटल ग्रह मैत्री को ब्रह्मा जी ने अपने संहिता ग्रन्थ में भी लिखा है; यह प्रमाणित होता है॥२०॥

### अथवश्यकूटम्

**वश्यास्त्यक्त्वा राशयोऽन्ये नराणां।**
**सिंहं तस्याप्येकमन्ये विधेयाः॥**
**कीटं त्यक्त्वा लोकतोऽन्यत्प्रसिद्धं।**
**वश्यावश्यं नैव तोयालयाञ्च॥२०१॥**

सिंह राशि को छोड़कर पुरुष राशि के वश में अन्य सभी राशियां, वृश्चिक राशि को छोड़कर सभी राशियां सिंह राशि के अधीन होती हैं, जलचर राशियां वृश्चिक राशि के वशीभूत नहीं होतीं अतः वरकन्या के परस्पर सम्बन्धों का ज्ञान लोकप्रसिद्ध रीति से करना चाहिए॥२०१॥

**आवृत्तिभिर्भैस्त्रिभिरश्विभाद्यं क्रमोत्क्रमात्सङ्गणयेच्च भानि।**
**यद्येकपर्वण्युभयोश्च धिष्ण्ये नेष्टा नृनायोर्भृशमेकनाडी॥२०२॥**

अश्विन्यादि सत्ताईस नक्षत्रों की क्रम से तीन आवृत्तियां करके क्रम-उतक्रम गणना करने पर यदि वर कन्या के नक्षत्र एक ही पर्व में आ रहे हों तो एक नाड़ी हो जाने से दोनों के लिए नेष्ट होते हैं॥२०२॥

**क्रमागतः—**

**वराहः—**

आद्यैकनाडी कुरूते वियोगं मध्याख्यनाड्यामुभयोर्विनाशनम्।
अन्त्ये च वैधव्यमतीवदुःखं तस्माच्च तिस्रः परिवर्जनीयाः॥

—(मु. चि. ६ प्र. ३४, श्लोक, पी. टी.)

एकनाडि वियोगश्च गुणैः सर्वैः समन्वितः।
वर्जनीयः प्रयत्नेन दम्पत्योर्निधनप्रदः॥

—(मु. चि. ६ प्र. ३४, श्लोक, पी. टी.)

**सा मध्यनाडी पुरुषं निहन्ति तत्पार्श्वनाडी खलुकन्यकां च।**
**आसन्नपर्यायसमागता चेद्वर्षेण साप्यन्तरिता त्रिवर्षैः॥२०३॥**

मध्य नाड़ी पुरुष को मारती है तथा पार्श्व (अन्त्य) नाड़ी कन्या को मारती है, ऐसा निश्चित समझें। आदि नाड़ी दोष में विवाह होने पर निश्चित ही एक से तीन वर्षों के अन्तर में वर एवं कन्यां की मृत्यु हो जाती है॥२०३॥

**क्रमागतः—**
**रत्नकोशे—**

**वैश्वानरद्रुहिणयोरदितीशयोश्च तद्वत्करार्यमभयोद्व्यधियानिर्लेंदौ।**
**छागैकपाद्वरूणयोः श्रुतिवैश्वयोश्च स्याच्चेदभिन्नभवने नहि नाड़ी दोषः॥**

—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ६२८)

**केचिन्नैच्छन्ति चैकांशे केचिदिच्छन्ति मेलकम्।**
**तत्राप्यघ्रे घटीसाम्यं त्यजेन्नो भिन्ननाडिकम्॥**

*(ज्यो.नि. १४४ पृ. २४ श्लोक)*

**केशवार्क—**

**पराशरः प्राह नवांश भेदादेकर्क्षराश्योरपि सौमनस्यम्।**
**एकांशकत्वेपि वसिष्ठ शिष्योनैकत्र पिण्डे किल नाडिवेधः॥**

—(वि. वृ. ३ अ. २४ श्लोक)

**विवाहकुतुहले—**

**शुक्रे जीवे तथा सौम्ये एकराशीश्वरो यदि।**
**नाड़ी दोषो न वक्तव्यः सर्वथा यत्नतो बुधैः॥**

—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ४४४)

**अथवेधकूटम्**

**पूर्वाश्विन्योर्याम्यमैत्राख्ययोश्च वह्नीन्द्राग्न्योर्वायुतोयेशयोश्च।**
**विश्वेंद्वोर्वै त्वाष्ट्रजाङ्घ्न्योर्हुताश विष्णवोर्विश्वादित्ययोर्जीववाय्वोः॥२०४॥**

रेवती, अश्विनी, भरणी, अनुराधा, विशाखा, कृत्तिका, स्वाती, शतभिषा, मृग्शिरा, उत्तराषाढ़ा, चित्रापूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा श्रवण, उ.षा.हस्त, पुण्य स्वाति—॥२०४॥

**क्रमागतः—**
**विवाह वृन्दावने—**

**याम्योत्तरा प्रागपराश्च पञ्च द्वे द्वे च रेखे रचयेद्विदिक्षु।**
**विदिग्द्वतीयार्गलितागिनतारः सहाभिजित्तत्रभवद्वेवर्गाः॥**

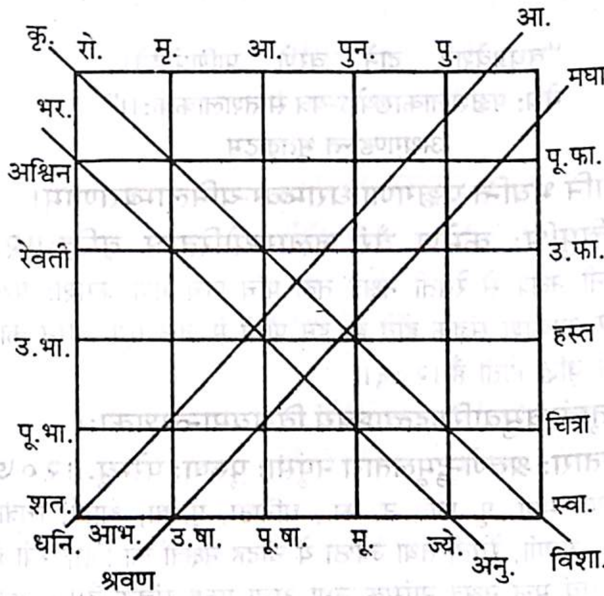
—(अ. १, श्लोक ६)

**क्रमागतः-**

मूलादित्योः श्रवणमघयोः सौम्यविश्वाद्वयोश्च।
पौष्णर्यम्णोर्वरुणमरुतोर्मैत्रयाभ्यर्क्षयोश्च।।
अहिर्बुध्न्याभिधरविभयो रोहिणी साभिजिच्च।
वेधोयं वै मुनिभिरूदितः पाणिसम्बन्धकाले।।

—(वृ. दै. र. अ. ७१, श्लोक ७३६)

**स्पष्टार्थ पञ्चशलाका चक्र**




**मुहूर्त्त चिन्तामणौ रामः**

वेधोन्योन्यसमौ विरिंच्यभिजितोर्याम्यानुराधार्क्षयो-
र्विश्वेंदोर्हरिपित्र्ययोर्ग्रहकृतो हस्तोत्तराभाद्रयोः।
स्वातीवारुणयोर्भवेन्निर्ऋति भादित्योस्तथा फान्त्योः
खेटे तत्र गते तुरीयचरणाद्योर्वा तृतीयद्वयोः।।

—(प्र. ६, श्लोक २६)

**ग्रन्थान्तर से वेधित नक्षत्र**

रोहिणी, अभिजित्—भरणी-अनुराधा, उ.षा.-मृगशिरा, श्रवण-मघा, हस्त, उ.भा., स्वाती-शतभिषा, मूल-पुनर्वसु उ. फा. रेवती नक्षत्रों का परस्पर ग्रहकृत वेध होता है। जैसे भरणी नक्षत्र पर कोई ग्रह हो तो उसका अनुराधा पर और अनुराधास्थ ग्रह का भरणी पर वेध होता है। समग्र ग्रह वेध की अपेक्षा ग्रह जिस नक्षत्र के चरण

पर हो अर्थात् चौथे चरण में होने पर प्रथम चरण वेधित और दूसरे चरण में हो तो तीसरे चरण पर वेध होता है।

**मूलाश्लेषातारयोः पौष्णपित्रोर्भाग्यर्क्षाहिर्बुध्न्ययोर्वै विवाहे।**
**तोयेशाहिर्बुध्न्ययोराजपादर्यम्णोर्वैरं सर्वदा वर्जनीयम्।।२०५।।**

मूल, आश्लेषा, रेवती, मघा, पू. फा. उ. भा. शतभिषा, उ. भा. पू. भा. उ. फा. नक्षत्रों में परस्पर वेध होता है। अतः विवाहकाल में सदैव वर्जित हैं।।२०५।।

**क्रमागतः–**

**श्रीपति—**

"वधूप्रवेशने दाने वरणे पाणिपीडने।
वेधः पञ्चशलाकाख्योऽन्यत्र सप्तशलाककः।।"

अथगण्डान्त भूतकूटम्

**दस्त्रर्क्षतो भानि भवन्ति पञ्चगणा धराम्ब्वग्न्यनिलाम्बराणाम्।**
**पञ्चर्तुभूतर्त्विषुभिः क्रमेण वैरं जलाग्न्योरितरत्र वृद्धिः।।२०६।।**

अश्विनी नक्षत्र से रेवती नक्षत्र तक पाँच-पाँच गण क्रमशः पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश संज्ञक होते हैं। इन पाँचों में जल एवं अग्नि का वैर होता है। अन्य सभी में वृद्धि होती है।।२०६।।

**सर्पाच्चतुष्कं वसुवारिरुद्रत्वाष्ट्रत्रयं विश्वयमान्त्यशक्राः।**
**स्त्रीलिङ्गताराः श्रवणेन्दुमूलतारा नपुंसाः पुरुषाः परेस्युः।।२०७।।**

आश्लेषा, मघा, पू. फा., उ. फा., धनिष्ठा, पू. षा, आर्द्रा, चित्रा, स्वाती, विशाखा, उ. षा., भरणी, रेवती तथा ज्येष्ठा ये चौदह नक्षत्रों का लिङ्ग-स्त्री है, जबकि श्रवण, मृगशिरा एवं मूल नक्षत्र नपुंसक तथा अन्य पुरुष संज्ञक हैं।।२०७।।

| स्त्रीलिङ्ग | | नपुंसक | पुरुष | |
|---|---|---|---|---|
| आश्लेषा | चित्रा | श्रवण | अश्विनी | हस्त |
| मघा | स्वाति | मृगशिरा | कृत्तिका | अनुराधा |
| पू. फा. | विशाखा | मूल | रोहिणी | |
| उ. फा. | उ. षा. | | शतभिषा | |
| धनिष्ठा | भरणी | ० | पूर्वाभाद्रपदा | |
| पूर्वाषाढ़ा | रेवती | ० | पुर्नर्वसु | उत्तराभाद्रपदा |
| आर्द्रा | ज्येष्ठा | ० | पुष्य | |

**स्वकीयलिङ्गेषु तयोः स्वजन्मधिष्ण्येषुसम्प्रीतिरतीव नित्यम्।**
**युद्धं भवेद्व्युत्क्रमलिङ्गकेषु सामान्यमन्यत्र नपुंसकेषु।।२०८।।**

अपने ही लिङ्ग में वरवधू का जन्म नक्षत्र आये तो निरन्तर परस्पर अत्यधिक प्रीति होती है। यदि वर-कन्या का विपरीत लिङ्ग नक्षत्र हों तो परस्पर युद्धकारक समझें। यदि नपुंसक लिङ्ग नक्षत्र हों तो सामान्य फल होता है॥२०८॥

**विप्रक्षमाधीश्वरविट् चतुर्था ये पञ्चमाः संकरजाश्च षष्ठाः।**
**जातिप्रभेदा इति दस्त्रभादिऋक्षाण्यपि ब्राह्मणपूर्वकाणि॥२०९॥**

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, पाँचवें वर्णशङ्कर, षष्ठ अन्यजाति—ये जातिभेद अश्विन्यादि नक्षत्रों में ब्राह्मण-क्षत्रिय क्रम से होते हैं॥२०९॥

**क्रमादजांघ्रित्रितयं च शिष्टं त्रैवर्णिकानां निखिलानि भानि।**
**सम्यग्विचार्यैवमनुक्रमेण जात्याख्यकूटे च फलं ब्रवीमि॥210॥**

क्रमशः तीन ही जातियों में उत्पन्न वर-कन्या के सभी नक्षत्र शुभ कहे हैं। अतः भलीभाँति विचार करके क्रम से जातिकूट का फल कहता हूँ॥२१०॥

**प्रीतिर्नृनार्योरतुलैक्य जात्यां पुंजातितो हीनकुला समा स्त्री।**
**स्त्रीजातितो हीनकुलः पुमांश्चेद्विलोमजात्यामपि तीव्रवैरम्॥211॥**

वर-वधू में एक जाति हो तो परस्पर उत्तम प्रीति होती है। पुरुष जाति से हीन कुल वाली स्त्री सम, स्त्री जाति हीन होने से श्रेष्ठ; परन्तु विपरीत जाति में तीव्र वैर होता है॥२११॥

**स्युः सप्तगोत्रा भचतुष्टयेन गजाश्विसंख्याऽश्विमुखानिभानि।**
**मरीचिवासिष्ठमहांगिरोऽत्रिपौलस्तिसंज्ञाः पुलहः क्रतुश्च॥212॥**

अश्विन्यादि अभिजित् सहित अट्ठाईस नक्षत्रों के चार-चार भाग से सप्त गोत्र क्रमशः मरीचि ऋषि, वसिष्ठ, महाअङ्गिरा, अत्रि, पौलस्ति, पुलह तथा क्रतु संज्ञक हैं॥२१२॥

**ऋषि नक्षत्र ज्ञानचक्र**

| ऋषि | मरीचि | वसिष्ठ | अङ्गिरा | अत्रि | पौलस्ति | पुलह | क्रतु |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| | अश्विनी | मृगशिरा | आश्लेषा | हस्त | अनुराधा | उ.षा. | शतभिषा |
| नक्षत्र | भरणी | आर्द्रा | मघा | चित्रा | ज्येष्ठा | अभिजित् | पू.भ |
| | कृत्तिका | पुनर्वसु | पू.फा. | स्वाति | मूला | श्रवण | उ.भा. |
| | रोहिणी | पुण्य | उ.फा. | विशाखा | पूर्वाषाढ़ा | धनिष्ठा | रेवती |

**यदैक गोत्रे कलहस्त्वजस्त्रं सम्प्रीतिवृद्धिर्यदि भिन्नगोत्रे।**
**एषु प्रधानः खलु गोत्रवर्गः संचिन्तनीयः सततं नृनार्योः॥२१३॥**

यदि एक ही गोत्र में वरवधू विवाह हो तो सदैव कलह होती है। भिन्न गोत्र में विवाह परस्पर प्रीति में वृद्धि कारक होता है! यह गोत्रवर्ग निश्चय से प्रधान है। अतः वर-कन्या के विवाह में इसका सदैव विचार करना चाहिए।।२१३।।

**क्रमागतः-**

**समानप्रवरो भिन्नो मातृगोत्रवरस्य च।**
**विवाहो नैव कर्त्तव्यः सा कन्या भगिनी भवेत्।।**

—(ज्यो. नि. १३२ पृ., ४ श्लोक )

**अष्टादशगोत्र प्रवर्त्तकाः—**

जामदग्न्यो वीतहव्यो वैन्यो गृतसमदाह्वयः।
व्याघ्रः श्रीगौतमाख्यश्च भारद्वाजाह्वयः कपिः।।
हारितो मौद्गलः कण्वो विरूपो विष्णुरुद्धयः।
अत्रिविश्वामित्र कौंचौ वसिष्ठः कश्यपाह्वयः।।
अगस्त्यश्चेति मुनयोष्टादशगणाः स्मृताः।।

—(ज्यो. नि. १३३ पृ., ८-९ श्लोक )

### पक्षिकूटम्

**भेरुण्डपिङ्गलककाकसुकुक्कुटानां बर्हि तथाश्विमुखभानि गुणांश्च पञ्च।**
**बाणर्तुषट्शरशरैः क्रमशो विवाहे भिन्ने गणे कलहमेकगणे प्रवृद्धिः।।२१४।।**

भेरुण्ड, पिङ्गल, काक, मुर्गा तथा मोर ये अश्विन्यादि पाँच गण कहे जाते हैं, पाँच, छः छः पाँच पाँच ये क्रम से विवाह में शुभफलप्रद होते हैं। यदि भिन्न गण हो तो कलहप्रद; परन्तु एक गण हो तो वृद्धिकारक होता है।।२१४।।

### अथायकूटम्

**आया ध्वजाद्याः क्रमशोऽशिवपूर्वभान्यष्टभिर्भैश्च पुनः पुनः स्युः।**
**त्रैवर्णिकं भत्रितयं च शिष्टं प्रद्वेषमेषां खलु पञ्चमेन।।२१५।।**

क्रम से अश्विन्यादि नक्षत्रों को तीन आवृत्तियों में आठ से भाग देकर ध्वजादि आया का विचार करना चाहिए। इनमें तीन आवृत्तियों में तीसरा नक्षत्र शुभ होता है; परन्तु पाँचवां नक्षत्र आपस में शत्रुता करता है।।२१५।।

### अथयोगिनीकूटम्

**ब्रह्माणी कौमारी वाराही वैष्णवी च माहेन्द्री।**
**चामुण्डा माहेशी श्रीक्ष्मीश्चाष्टयोगिन्यः।।२१६।।**

ब्राह्मणी, कौमारी, वाराही, वैष्णवी, माहेन्द्री, चामुण्डा, माहेशी तथा श्रीलक्ष्मी ये आठ योगिनियां कही हैं।।२१६।।

**पूर्ववदूर्द्धं सर्वं योगिन्यैक्ये शुभोऽन्यथात्वशुभः।**
**वर्गो मुख्यतरः स्यात्सर्वेषां सर्वदा करग्रहणे॥२१७॥**

पीछे जैसे कहा—सभी योगिनियों की एकता होने से शुभ होता है अन्यथा अशुभ हो जाता है। वर्ग का विचार सभी के लिये मुख्य है। विवाह में इसका विचार सदैव करना चाहिए॥२१७॥

**पावकदुर्गादिवसौ रविरमरयतिश्च सुरपदिशि।**
**धर्मचतुर्मुखदिवसौ भूतनयः पावकश्च वह्नि दिशि॥२१८॥**

प्रतिपदा एवं नवमी तिथियों में योगिनी पूर्व दिशा में होती है। पूर्व दिशा के स्वामी सूर्य तथा देवता इन्द्र हैं। दशमी एवं द्वितीया तिथियों में योगिनी अग्निकोण में होती है इसका स्वामी मङ्गल तथा देवता अग्नि है॥२१८॥

**योगिनी दिशावास, स्वामी एवं देवता ज्ञानचक्र**

| तिथियां | वास दिशा | स्वामी | देवता |
|---|---|---|---|
| प्रतिपदा नवमी | पूर्व | सूर्य | इन्द्र |
| द्वितीय दशमी | अग्नि | मङ्गल | अग्नि |
| तृतीया एकादशी | दक्षिण | बृहस्पति | यमराज |
| चतुर्थी द्वादशी | नैर्ऋत्य | शनि | नैर्ऋत्य |
| पञ्चमी त्रयोदशी | पश्चिम | शुक्र | वरुण |
| षष्ठी चतुर्दशी | वायव्य | चन्द्रमा | वायु |
| सप्तमी पूर्णिमा | उत्तर | शनि | कुबेर |
| अष्टमी अमावस | ईशान | राहु | शिव |

**गिरिसुताविश्वेदिवसौ वा सुरगुरुः प्रेतयश्च याम्यायाम्।**
**गणपति हरि दिवसौ दिशि रवितनयः कोणयश्च नैर्ऋत्याम्॥219॥**

तृतीया एवं एकादशी को योगिनी दक्षिण दिशा में होती है। इस दिशा के स्वामी बृहस्पति एवं देवता यमराज होते हैं। चतुर्थी एवं द्वादशी को योगिनी नैर्ऋत्य दिशा में होती है। इसके स्वामी शनि एवं देवता नैर्ऋत्य हैं॥२१९॥

**क्रमागतः–**

**आचार्य लल्लः—**

प्रतिपन्नवमी पूर्वे द्वितीया दश चोत्तरे।
तृतीयैकादशौ वह्नौ चतुर्द्वादशी नैर्ऋते॥
पंचत्रयोदशी याम्ये षष्ठी भूतश्च पश्चिमे।
सप्तमी पूर्ण वायव्ये अमावस्याष्टमी शिवे॥

—(वृ. दै. र. अ. ८५, श्लोक ५३-५४)

**स्पष्टार्थ-चक्र**

| पूर्व | अग्नि | दक्षिण | नैर्ऋत्य | पश्चिम | वायव्य | उत्तर | ईशान | दिशा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १,९ | ३,११ | ५,१३ | ४,१२ | ६,१४ | १,१५ | २,१० | ८,३० | तिथि |

**कामभुजङ्गमदिवसौ असरगुरुर्वारिपश्च वारुण्याम्।**
**शिवगिरिजात्मजदिवसौ प्रभञ्जनः शीतरुक्च वायव्याम्॥220॥**

त्रयोदशी एवं पञ्चमी को योगिनी पश्चिम में होती है। इसके स्वामी शुक्र एवं देवता वरुण हैं।

चतुर्दशी एवं षष्ठी तिथियों को योगिनी वायव्यदिशा में होती है। इसके स्वामी चन्द्रमा और देवता वायु है॥२२०॥

**क्रमागतः–**

**मुहूर्त्तचिन्तामणौ—**

नवभूम्यः शिववह्नयोऽक्षविश्वेऽर्ककृताः शक्ररसास्तुरङ्गतिथ्यः।
द्विदिशोऽमावसवश्च पूर्वतः स्युस्तिथयः सम्मुखवामगा न शस्ता॥

—(मु. चि. म., यात्रा प्रकरण, श्लोक-३४ )

**स्पष्टार्थ-चक्र**

| पूर्व | अग्नि | दक्षिण | नैर्ऋत्य | पश्चिम | वायव्य | उत्तर | ईशान | दिशा |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| १,९ | ३,११ | ५,१३ | ४,१२ | ६,१४ | ७,१५ | २,१० | ८,३० | तिथि |

**दिनपति निशिपतिदिवसौ दिनपसुतो यक्षराड्डुदीच्यां च।**
**वसुपितृदिवसौ नूनं स्वर्भानुरथ चन्द्रमौलिरैशान्याम्॥२२१॥**

सप्तमी एवं पूर्णिमा तिथि को योगिनी वास उत्तर दिशा में होता है। इसके स्वामी शनि एवं देवता कुबेर हैं। अष्टमी एवं अमावस में योगिनी ईशान दिशा में होती है। इसके स्वामी राहु एवं देवता शिव हैं॥२२१॥

क्रमागतः-

मुहूर्तचिन्तामणि प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय जी द्वारा कृत चन्द्रिका टीका 'विमर्श' में—

योगिनी जानने के लिए सुगम विधि भड्डरी में मिलती है। ''पू, उ, अ, न, द, प, वा, ई'' फिर योगिनी पूरब आई।

| | | |
|---|---|---|
| पू (पूर्व) | प्रतिपद | नवमी |
| उ (उत्तर) | द्वितीया | दशमी |
| अ (अग्नि) | तृतीया | एकादशी |
| न (नैर्ऋत्य) | चतुर्थी | द्वादशी |
| द (दक्षिण) | पञ्चमी | त्रयोदशी |
| प (पश्चिम) | षष्ठी | चतुर्दशी |
| वा (वायव्य) | सप्तमी | पूर्णिमा |
| ई (ईशान) | अष्टमी | अमावस्या |

ज्योतिष चन्द्रिकाकार का मत भी दिया है।

**योगिनी सुखदा वामे पृष्ठे वाञ्छितदायिनी।**
**दक्षिणे धनहन्त्री च सम्मुखे मरणप्रदा।।**

**अश्विन्याद्यास्ताराः पर्याय परैरष्टभिश्च विज्ञात्वा।।**
**दम्पत्योर्दिगधीशग्रहनाथानां तिथीशानाम्।।२२२।।**

अश्विन्यादि नक्षत्रों का आठ पर्यायों से ज्ञान करके वर-वधू के दिशाओं के स्वामी ग्रहों एवं तिथियों के स्वामियों से मेलापक करना चाहिए।।२२२।।

**मित्रत्वे मित्रत्वं शत्रुत्वे शात्रवं च वैवाहे।**
**ज्ञातव्याश्चाष्टादश वर्गाः सम्यक् सदैव विदा।।२२३।।**

वर-वधू में राशीश मित्रता होने पर मित्रताभाव, राशीश शत्रुता होने पर शत्रुता भाव रहता है। अतः विद्वानों को मेलापक में अष्टादश वर्गों का भलीभाँति विचार करना चाहिए।।२२३।।

**मुख्योऽप्रजानां ग्रहमित्रवर्गः क्षमाधिपानां ग्रहसंज्ञकं च।**
**विशां प्रधानं वनिता विदूरं योन्याख्यवर्गं सततं परेषाम्।।२२४।।**

ग्रहों के मित्रवर्ग का विचार ब्राह्मणों के लिए, क्षत्रियों के लिए ग्रहसंज्ञक विचार, स्त्रीदूर का विचार वैश्यों के लिए प्रधान है तथा योनि विचार अन्य वर्गों के लिए करना चाहिए।।२२४।।

**राशिकूट तदधीशमैत्रता स्त्रीविदूर गणयोनिनाडिकाः।**
**दैवयोगवरगोत्रसमेताः पाणि पीडन विधौ परिचिन्त्याः॥२२५॥**

राशिकूट, राशीशमैत्री, स्त्रीदूर, गण, योनि, नाड़ी, दैवयोग, वर का गोत्र इत्यादि विवाह समय में परिचिन्तनीय है॥२२५॥

**मध्यं दिनगते भानौ मुहूर्त्तोऽभिजिदाह्वयः।**
**योऽष्टमः सर्वदोषघ्नस्त्वन्धकारं यथा रविः॥२२६॥**

सूर्य मध्याह्न काल के मुहूर्त्त को अभिजित् मुहूर्त्त कहा है, जो दिवा मुहूर्त्तों में अष्टम मुहूर्त्त होता है। यह मुहूर्त्त सभी दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् सूर्य अन्धकार को दूर करते हैं। (प्रतिदिन भारतीय स्टै. टा. के अनुसार दिन के ११:३६ से १२:२४ तक यह मुहूर्त्त होता है। इस मुहूर्त्त में सभी शुभकार्य किये जा सकते हैं)॥२२६॥

**क्रमागतः-**
**नारदः-**

अष्टमो योऽभिजित्संज्ञः स एव कुतपः स्मृतः।
तस्मिन्काले शुभायात्रा विना याम्यां बुधैः स्मृताः॥

—(वृ. दै. र. पृ. ३१२ ज्यो. नि. ४६, पृ. १० श्लोक)

यात्रानृपाभिषेकावुद्वाहोऽन्यच्च माङ्गल्यम्।
सर्वे शभुदं ज्ञेयं कृतं मुहूर्त्तेऽभिजत्संज्ञे॥

—(ज्यो. नि. ४६ पृ. ११-श्लोक)

विष्टिव्यतीपातकृतान् दोषानुत्पातखचर भवान्।
मध्याह्नकृतो दिनकृत्सर्वानपनीय शुभकृत्स्या॥

—(वृ. दै. र. पृ. ३१२ ज्यो. नि. ४६, पृ. १२ श्लोक)

पौराणिक रौद्रसिता मैत्रवार भवाः क्षणाः।
सावित्र वैराजिकाख्यौ गन्धर्वाश्चाष्टमोऽभिजित्॥

—(ना. सं. अ. ९, श्लोक ६)

**सूर्याच्चतुर्थं यल्लग्नमभिजित्संज्ञकं तु तत्।**
**सर्वदोषं निहन्त्याशु पिनाकी त्रिपुरं यथा॥२२७॥**

सूर्योदय से जो चतुर्थ लग्न होता है, उसे अभिजित् संज्ञक कहा है। यह अभिजित् मुहूर्त्त शीघ्र ही सभी दोषों को वैसे ही दूर करता है, जैसे भगवान् शङ्कर ने त्रिपुर राक्षस को मारा था॥२२७॥

**क्रमागतः-**
**कश्यपः-**

पौराणिका रौद्रसिता मैत्राश्चाऽऽरभयक्षणाः।
सावित्रो वैराजकाख्यो गन्धर्वश्चाष्टमोऽभिजित्॥

रोहिणो बलसंज्ञश्च विजयो नैर्ऋतो मतः।
इन्द्रो जलेश्वरः पञ्चदशोभगसंज्ञकः।।
अष्टमो योऽभिजित्संज्ञः स एव कुतपः स्मृतः।।
—(क. सं. अ. १७, श्लोक ८-१०)

नारदः–

मध्यन्दिनगते भानौ मुहूर्त्तोऽभिजिदाह्वयः।
नाशत्यखिलान्दोषान्पिनाकी त्रिपुरं यथा।।
मध्यं दिनगते भानौ सकलं दोष संचयम्।
करोति दोषमभिजित्तूल राशिमिवानलः।।
—(ना. सं. अ. २७, श्लोक १४७-१४८)

**सर्वदेशेष्विदं मुख्यं सर्ववर्णेषु सर्वदा।**
**सर्वदोषहरं यद्वद् हरिरित्यक्षरद्वयम्।।२२८।।**

यह अभिजित् मुहूर्त्त सभी देशों में, सभी वर्गों में सदैव मुख्य है। यह मुहूर्त्त सभी दोषों को वैसे ही दूर करता है, जैसे भगवान् विष्णु के हरि नामक अक्षरद्वय सब पापों को दूर करते हैं।।२२८।।

**सूर्यात्सप्तमलग्नं यद् गोधूलिकमिति स्मृतम्।**
**सर्वदोषहरं यद्वत्पापं गङ्गाजलं यथा।।२२९।।**

सूर्योदय लग्न से सातवां लग्न गोधूलि संज्ञक कहा है। यह गोधूलि लग्न सभी दोषों का हरण वैसे ही करता है, जैसे गंगाजल सभी पापों को दूर करता है।।२२९।।

क्रमागतः–

नारदः–

चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षात्तु सप्तमम्।।
गोधूलिकं तदुभयं विवाहे पुत्रपौत्रदम्।।
प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम्।।
अभिजित्सर्वदेशेषु मुख्यं दोषविनाशकृत्।।
—(ना. सं. अ. २७, श्लोक १४५-४६)

भागुरिः—

गोपैर्यष्ट्याहतानां खुरपुट दलिता वातिधूलिर्दिनान्ते।
सोद्वाहे सुन्दरीणां विविधधन सुतारोग्य सौभाग्यदात्री।
तस्मिन् काले न ऋचं न च तिथिकरणं नैवलग्नं न योगाः।।
ख्याताः पुंसा सुखार्थं शमयति दुरितान्युच्छ्रितं गोरजस्तु।।

लल्लः—

लग्नं यदा नास्ति विशुद्धमन्यद्गोधूलिकं साधु सदा वदन्ति।
लग्ने विशुद्धेसति वीर्ययुक्ते गोधूलिकं नैवफलं विधत्ते।।

**गोधूलिकं योगलग्नं भावलग्नं च कल्पितम्।**
**गान्धर्वादि विवाहेषु वैश्योद्वाहेषु योजयेत्।।२३०।।**

गोधूलिलग्न, योगलग्न, भावलग्न इत्यादि का विचार प्रेमविवाह में तथा वैश्यों के विवाह में करना चाहिए।।२३०।।

क्रमागतः–

नारदः–

प्राच्यानां च कलिङ्गानां मुख्यं गोधूलिकं स्मृतम्।
गान्धर्वादि विवाहेषु वैश्योद्वाहे च योजयेत्।।
चतुर्थमभिजिल्लग्नमुदयर्क्षात्तु सप्तमम्।
गोधूलिकं हि भवति सम्पत् पुत्रादि सौख्यदम्।।

—(मु. चि. ६ प्र. ९९ श्लोक)

घटीलग्नं यदा नास्ति तदा गोधूलिकं शुभम्।
शूद्रादीनां शुभं प्राहुर्न द्विजानां कदाचन।।
महादोषान् परित्यज्य प्रोक्तधिष्ण्यादिकेषु च।
कारयेद् गोरजो यावत्तावल्लग्नं शुभावहम्।।
लग्नशुद्धिर्यदा नास्ति कन्या यौवनशालिनी।
तदा वै सर्ववर्णानां लग्नं गोधूलिकं शुभम्।।

—(मु. चि. ६ प्र., ९७ श्लोक)

**पुत्रोद्वाहान्नैव पुत्र्याः कदाचिदपि षण्मासात्कार्यमुद्वाहकर्म।**
**ऊद्ध्वंतद्वन्मुण्डनान्मुण्डनं च प्रत्युद्वाहं नैव पुण्यद्वयं च।।२३१।।**

पुत्र के विवाह के पश्चात् छः मासों के भीतर कभी भी पुत्री का विवाह नहीं करना चाहिए। विवाह के पश्चात् मुण्डन नहीं करे, मुण्डन के पश्चात् मुण्डन, विवाह के पश्चात् विवाह यह दोनों पुण्य फलप्रद नहीं होते।।२३१।।

क्रमागतः–

नारदः–

पुत्रोद्वाहात्परं पुत्री विवाहो न ऋतुत्रये।
न तयोव्रतमुद्वाहान्मंगले नान्यमङ्गलम्।।
विवाहश्चैक जन्यानां षण्मासाभ्यन्तरेयदि।
असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवा भवेत्।।

प्रत्युद्वाहो नैव कार्यो नैकस्मै दुहितुर्द्वयम्।
न चैक जन्मनोः पुंसारेकजन्ये तु कन्यके॥
—(ना. सं. अ. २७, श्लोक ५०-५२)

**निर्गमात्पूर्वतो न प्रवेशः शुभस्तत्र संवत्सरान्तावधिः कथ्यते।**
**निर्गमस्त्री विवाहः पुनः पुंविवाहप्रवेशो न वै मुण्डनान्मुण्डनम्॥२३२॥**

कन्या विदाई से पूर्व वधू प्रवेश शुभ नहीं होता है। वर्षपर्यन्त इसकी सीमा कही गई है। निर्गम कन्या विवाह कहलाता है। कन्या विदाई के पश्चात् पुनः पुत्रविवाह में वधू प्रवेश नहीं होना चाहिए; वैसे ही मुण्डन के बाद मुण्डन भी नहीं होना चाहिए॥२३२॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

नैवं कदाचिदुद्वाहो नैकदा मुण्डनद्वयम्।
द्विवाजातस्तु पितरं रात्रौ तु जननी तथा॥
*—(ना. सं. अ. २७, श्लोक १५३)*

**पुत्रीविवाहात्परतः सदैव शुभप्रदं पुत्रविवाहकर्म।**
**पुत्रद्वयं नैव ऋतुद्वयेऽपि पुत्रीद्वयं वापि कदाचिदेव॥२३३॥**

पुत्री विवाह के पश्चात् सर्वदा पुत्र विवाह शुभफलप्रद होता है। दो ऋतुओं के मध्य में दो पुत्रों या दो पुत्रियों का विवाह नहीं करना चाहिए॥२३३॥

**एकोदरप्रसूतानामेकस्मिन्वत्सरे यदि।**
**पाणिग्रहो भवेन्नूनं तत्रैका विधवा भवेत्॥२३४॥**

एक ही उदर से उत्पन्न दो पुत्रियों का विवाह यदि एक ही वर्ष में हो तो निश्चित ही उनमें एक विधवा हो जाती है॥२३४॥

**क्रमागतः–**

**वराहः—**

विवाहस्त्वेकजातानां षण्मासाभ्यन्तरेयदि।
असंशयं त्रिभिर्वर्षैस्तत्रैका विधवाभवेत्॥
*—(मु. चि. ६ प्र. १६ श्लोक, पी. टी. नारद)*

**उद्वाहश्चैकजन्यानां न विधेय ऋतुत्रये।**
**सोऽपि हन्ति तयोरेकं पक्षमब्दत्रयाद्भृशम्॥२३५॥**

एक साथ जन्मे जुड़वे भाई या बहन का विवाह छः मास के भीतर नहीं करना चाहिए। ऐसा किया जाये तो उनमें से एक पक्ष के मध्य में अथवा तीन वर्षों में नष्ट हो जाता है॥२३५॥

विवाहश्चैकजन्यानामेकस्मिन्नुदये कुले।
नाशं करोत्येव वर्षे स्यादेका विधवाऽथवा॥२३६॥

एक साथ उत्पन्न हुए दो पुत्रों या पुत्रियों का विवाह यदि एक ही कुल में किया जाये तो एक साल के अन्दर एक का नाश अथवा विधवा कर देता है॥२३६॥

पुत्रोद्वाहान्नैव पुत्री विवाहोऽपि ऋतुत्रये।
अब्दान्तरे मुण्डनं च न कदा मुण्डनद्वयम्॥२३७॥

पुत्र के विवाह के पश्चात् पुत्री का विवाह छः मासों के अन्दर न करे तथा वर्ष के भीतर मुण्डन या मुण्डन के बाद मुण्डन न करें॥२३७॥

एकजन्ये तु कन्ये द्वे पुत्रयोर्नैकजन्ययोः।
पुत्रिकाद्वयमेकस्मै न दद्यातु कदाचन॥२३८॥

एक साथ उत्पन्न दो बहनें, जुड़वा बहनें, एक साथ उत्पन्न दो पुत्रों जुड़वा भाइयों का कभी भी विवाह नहीं करना चाहिए।

नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रादवश्यं श्वसुरं निहन्ति।
तदन्त्यपादाज्जनितो निहन्ति नैवोत्क्रमेणाहिभवः कलत्रम्॥२३९॥

मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र वा पुत्री शीघ्र ही अपने श्वसुर के लिये मृत्युप्रद होते हैं। मूल के चतुर्थ पाद में जन्म ही मृत्युप्रद होते हैं, जबकि इसके विपरीत क्रम में जन्मे मृत्युप्रद नहीं होते॥२३९॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

आत्मानं सन्ध्ययोर्हन्ति नास्ति गण्डे विपर्ययः।
सुतः सुतावा नियतं श्वसुरं हन्ति मूलजाः॥
पदन्त्यपादजो नैव तथाश्लेजाद्यपादजः।
ज्येष्ठान्त्य पादजो ज्येष्ठं हन्ति वालो न वालिका॥
वालिका मूल ऋक्षे तु मातरं पितरं तथा।
ऐन्द्री धवाग्रजं हन्ति देवरं तु द्विदैवजा॥

*—(ना. सं., अ. २१, श्लोक १५५-१५६)*

सुरेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता च देवरम्।
पुरन्दरर्क्षाज्जनितः सुतस्तदा स्वस्याग्रजं हन्ति न कन्यका यदि॥240॥

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के ज्येष्ठ भ्राता (जेठ) तथा विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या देवर के लिये मृत्युप्रद होती है। ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र अपने बड़े भाई के लिए मृत्युप्रद होता है; परन्तु ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या बड़े भाई को नष्ट नहीं करती॥२४०॥

**महर्षिभिः शास्त्रवितर्कबुद्ध्या न दूषणीयाः कुलदेश धर्माः।**
**तन्मूलमज्ञातसमस्तवेदास्तस्मात्प्रमुख्या प्रथमं हितेऽपि॥२४१॥**

महर्षियों के द्वारा प्रणीत शास्त्रों को अपने तर्क बुद्धि के द्वारा दूषित नहीं करना चाहिए। शास्त्रों के समस्त मूल वेदों में अज्ञात हैं। अतः मुख्य रूप से सर्वप्रथम कुलाचार तथा देशाचार समझना चाहिए॥२४१॥

**जनकं जननीं हन्ति भर्तुर्मूलाहिधिष्ण्यजा।**
**मूलान्त्यपादजा नैव तथाऽश्लेषाद्यपादजा॥२४२॥**

मूल एवं आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने माता-पिता और पति को नष्ट करती है, परन्तु मूल का अन्तिम चरण तथा आश्लेषा का प्रथमपाद दोषप्रद नहीं होता॥२४२॥

**षष्ठाष्टमे वा दशमे दिने वा विवाहमारभ्य वधूप्रवेशः।**
**पञ्चाङ्ग संशुद्धिदिनं विनाऽपि विधावसद् गोचरगेऽपिकार्यः॥२४३॥**

विवाह के प्रारम्भ से अथवा वधू प्रवेश दिन से लेकर छठे, आठवें अथवा दशवें दिन तक, पञ्चाङ्ग संशुद्धि दिन के विना तथा गोचर विचार के विना कार्य करने चाहिए॥२४३॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

आरभ्योद्वाह दिवसात्षष्ठे वाप्यष्ठमे दिने।
वधूप्रवेशः सम्पत्यै दशमेथ समे दिने॥

*—(मु. चि. ७ प्र. १ श्लोक)*

**संग्रहे—**

**विवाहमारभ्यवधूप्रवेशो युग्मे तिथौ षोडशवत्सरातः।**
**ऊर्ध्वं ततोऽब्देऽयुजि पञ्चमान्तं पुनः परस्तान्नियमो न चास्ति॥**

—(ज्यो. नि. १६४ पृ. ४ श्लोक)

**प्रायश्चित्तं चिकित्सां च ज्योतिषं धर्मनिर्णयम्।**
**विना शास्त्रेण यो ब्रूयात्तमाहुर्ब्रह्मघातकम्॥२४४॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**विवाहाध्यायो द्वात्रिंशः॥३२॥**

प्रायश्चित, चिकित्सा, ज्योतिषशास्त्र तथा धर्म निर्णय शास्त्रों के विना बताने वाला ब्रह्मघाती कहलाता है॥२४४॥

वृद्धवसिष्ठ संहिता के विवाहाध्याय की "नारायणी"
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥३२॥

**पाठान्तरम्**

०१. (द) ज१-विधु (—विध)

०२. (अ) ज१, ज२-वषतिशुभो, ज. मो. वर्षात्तुशमो (—वर्षाच्छुभदो)

(ब) ज१, ज२-दुःखगतः प्रसादः (—दुःखगदप्रदः सः)

०३. (अ) ज१, ज२-नृयुग्ममासेषु संस्थे, पी. यू. धा. टी.—मृत्युगमनक्रात्यघटर्क्ष-संस्थे ज. मो.—नृयुग्मगाख्येष(—नृयुङ्मृगाख्येषु गृहेषु संस्थे)

(ब) पी.यू.धा. टीका—माधवशुक्लयोश्च (—माधव शुक्रयोस्तु) ज. मो.—कार्तिकमार्गयोस्तु (—कार्त्तिकसौम्योश्च)

०४. (अ) ज१, ज२-शुक्ला (—शुक्ले)

(ब) ज१, ज२-प्रशस्ताः (—शुभाः स्युः)

०५. (अ) ज१, ज२-बालोऽपि (—वलीहि)

(ब) ज१, ज२-पिलयं (—विलयं)

०६. (ब) ज१, ज२-कामार्थ (—कामार्क)

०८. (ब) ज१, ज२-नाड्योभ्यस्येहंमुकोणे (—क्रमान्नयसेच्छुंभुकोणे) ज१-सामिजिति, ज२-सामिजिति (—साभिजिच्च)

०९. (ब) ज१-पादयेत, ज२-पादएव (—पादमेव)

१०. (अ) ज१, ज२-मितस्यकार्य (—मिनस्य कार्यं)

१२. (अ) प्रागुदयोहस्त्रितयं (—प्रागुद्गतोऽहस्त्रितयं)

(ब) ज१, ज२-पक्षः (—पक्षम्)

१३. (अ) ज१, ज२-वृद्धत्वमिदोत्रयहंविनार्द्र (—वृद्धत्वमिन्दोस्त्रिदिनं दिनार्द्धं)

(ब) ज१, ज२-वस्ते (—अस्ते)

ज.मो. वारेन्यशक्ता (—वालेऽन्यसक्ता)

१४. (अ) ज१-येनोक्तदिवसः, ज२-येनोक्तं दिवसः (—येनोक्तमेकं दिवसं)

ज१, ज२-शिशुत्वमन्येतदिंहोस्तदुशुक्लमत्र (—शिशुत्वमित्येतदिन्दोस्तद-युक्तमत्र)

(ब) ज१-शीघ्रंवसुधामयित्वा, ज२-शीघ्रंवसुधामयत्वा (—शीघ्रत्वसुधामयत्वाद्)

ज१, २-दिनार्द्धमित्यब्दजनितत्वात् (—दिनार्द्धमित्यब्जजनिष्ठितत्वातु)

१५. (अ) ज१, ज२-तिथिमेक्षणेषु, मु. पु. तिथिक्षणेषु (—तिथिक्षयेषु)

ज१, ज२-वैनाशकद्रक्षगणोषु, ज. मो.—वैनाशिकाद्रक्षगणेषु (—वैनाशिका-द्व्यृक्षगणेषु)

(ब) ज.मो. नैवाद्यगर्भे द्वितीये (—नैवाद्यगर्भं द्वितयं)

१६. (अ) ज१, ज२-चैकाराशी (—चैक्ये राशौ)

१८. (अ) मानेयुदुमासषट, ज२-मानेषुदुमासषङ्के, ज.मो.—मानोऽप्युडुमासषङ्कम् (—मानेऽप्युहुमास षट्कम्)

(ब) ज१-नाधरातस्त्रास्त्रिश्चरिक्षयोग, ज२-नाघंशतस्त्रस्त्रिश्चरिक्षयोगे (—नाड्य-श्चतस्रस्तिथि ऋक्षयोगे)

जर१, जर२-संविद्धिपादाकृणतस्थसंति (—सन्धिर्द्विपादं करणस्यसन्धिः)

१९. (ब) जर१,२-सवैधृतौ (—सवैधृता)

२०. (अ) जर१,२-सर्वेत्रपूज्याः (—सर्वत्रवर्ज्याः)

(ब) जर१,२-निसप्तयोगोऽपि (—निमित्तसंयोग)

२१. (अ) जर१,२-मासग्रहः (—ससंग्रहः)

जर१,२-र्त्तरिकासुदोषैः, ज.म. क्र्तरिकांशदोषाः (—कर्तरिकांशदोषौ)

(ब) जर१,२-चन्द्रारिष्फाष्टमपापवर्गाः, ज. मो. चन्द्रगिरिःफाष्टमपापवर्गः (—चन्द्रोऽरिरिष्फाष्टमपापवर्गौ)

२३. (ब) ज. मो. लग्नास्तशुद्धि (—लग्नास्तजाता)

२४. (अ) जर१,२-उत्पातवोल्का ज. मो.-उतपातमाख्या-(—उत्पातभोल्का)

ज.मो.-विवज्यनीयः (—विवर्ज्याः)

२५. (अ) जर१-उपग्रहोलामयातितर्क्ष,जर२-उपग्रहोलातभयातितर्क्ष (—उपग्रहोलत्त-भयातितर्क्षे)

मु. पु.-शुभग्रहैर्विद्ध (—उपग्रहैर्विद्ध)

जर१,२-विदूषितेचेत् (—विदूषितं यत्)

(ब) जर१-जन्माधिष्ण्यां, जर२-जन्मधिष्ण्यो (—जन्मधिष्ण्यम्)

२६. (ब) जर१,२-मुखादंधनमासतिथ्योः (—मुखोद्वन्धनमासतिथ्यः)

२७. (अ) जर१,२-चायविदुल्लता, जर२-चापविद्युल्लता (—चापविद्युत्वता)

जर१-भ्रमणोभ्रमघोषाः, २-भ्रमणाभ्रघोषाः (—भूभ्रमणाभ्रदोषाः)

(ब) जर१,२-मरूप्रवारः (—मरूत्प्रचारः)

जर१,२-परिवेषकं (—परिवेषकम्पः)

जर१-प्रंतीदुवैरार्यमथेन्दुमाचोः, जर२-प्रतीदुवैरार्यचमयेन्दुमावोः (—प्रतीन्दु-वैवर्णमथेन्दुभान्वोः)

२८. (ब) जर१,२-कृयते (—क्रियते)

२९. (ब) जर१,२-सौराष्सान्मेषु चलीतंतंभं (—सौराष्ट्रशाल्वेषु च लत्तितं भं)

मु.पु.—वर्ज्यं शुभविद्रभं च (—वर्ज्यमशुभविद्धभं च)

३०. (अ) जर१-निषिद्वयोगधु विनाशजाति, जर२-निषिद्धयोगाद्युविनाशजात (—निषिद्धयोगद्युनराशिजाता)

जर१,२-निषिद्धनाड्या (—निषिद्धनाड्यो)

(ब) जर१,२-सदातंकणासतेदेशे (—सदाकौङ्कणसंज्ञदेशे)

३१. (ब) जर१,२-दुःखप्त, मु.पु. दुःखप्न (—दुःस्वप्न)

जर१,२-अपियत्रतत्र (—स्त्वपियत्रतत्र)

३२. (अ) जर१,२-दशचैवदोषाः (—दशपूर्वदोषाः)

३३. (अ) जर१-तेद्मूष्णववंगांगखसेषु, जर२-तमृणववंगांग खसेषु (—तेहूणवङ्गांगखशेषु)

३५. (अ) जर१-क्रमशस्तिस्मिः थिवारर्क्ष, जर२-क्रमशस्तिथिवारंर्क्ष (—क्रमशस्ति-थिवारर्क्ष)

(ब) ज१,२-संभवं (—सम्भवा:)

३६. (अ) ज१-मङ्गललसघंयं तत् (—मङ्गलसञ्चयं यत्)

(ब) ज१-दहत्यभोष्व, ज२-दहत्यनोष्व (—दहत्यमोघं)

३७. (अ) ज१,२-विषुवयोरयनयोदिनंनयं (—विषुवतोऽयनतोऽपि दिनत्रयं)

ज१-हरिपदेषु (—हरिपदे)

३८. (अ) ज१-मंगलीयं, ज२-मंगलौघं (—मङ्गलौघम्)

४१. (अ) ज१-दोषोसलग्नोत्वगुणोसमरतात्,

ज२-दोष: सलग्नोत्वगुणेसमस्थान (—दोष: सलग्नोत्थगुणान्समस्तान)

४२. (ब) ज१,२-सपापात्मकं, मु. पु. ससापत्यकम् (—समापत्यकम्)

(स) ज१,२-केचिच्छुभौ (—केचिच्छुभम्)

(द) ज१-धाघैर्मृत्युरसग्रहै:, ज२-द्याघेर्मृत्युरलदग्रहै:

मु.पु. व्याध्यैमृत्युरसद्ग्रहै: (—व्याध्यैर्मृत्युरसदग्रहै:)

ज१,२-शशियुतैदीर्घप्रवासशुभै:-मु. पु. शशियुतैदीर्घप्रयास:शुभै:

—(शशियुतैर्दीघ: प्रवास: शुभै:)

४३. (अ) ज१,२-लग्नस्यपृष्ठाग्रगयोरसोभ्यो मु. पु. लग्नेऽस्य-पृष्ठाग्रगयोरसाध्वो: (—लग्नस्यपृष्ठागयोरसाध्वो:)

(ब) मु. पु. वक्रचारौ (—वक्रचारे:)

(ब) ज१,२-पितामहोक्त: (—पितामहोक्ति:)

४४. (अ) ज१,२-महत्सदोषो (—महान्हिदोषो)

(ब) ज१,२-समस्तं (—समस्ताम्)

४७. (ब) ज१,२-युग्मकन्याचापथ, ज. मो. युग्मवत्यश्चापाद्यमाका: (—नृयुग्मवत्यश्चापार्द्धभाग:)

ज१-शुभास्यु:, ज२-शुभदानवान्ये, ज. मो. शुभदो न वान्य (—शुभदो न चान्ये)

४८. (अ) ज१,२-सापशुशीलयुक्ता, पी.यू.धा.टी. स्यात्पशुचारपरा मु. पु. स्यात्पशुशीलयुक्ता (—सापि सुशीलयुक्ता)

ज१, २-कुलटाप्यतस्तं (—कुलटाप्यजस्त्रम्)

५०. (अ) ज१,२-चापाद्यभागे (—चापांशकाद्ये)

ज१-भागेन्सक्ता, ज२-भागेन्यसक्ता (—भागेऽन्यसक्ता)

(ब) ज१-योगतरा, २-योनगरा (—योगरता)

५१. (अ) पी. यू. धा. टी.—भर्तृयुतार्थहीना (—भर्तृसुतार्थहीना)

(ब) ज१,२-सम्प्रवृद्धौ (—गुण संप्रवृद्ध्यै)

५२. (अ) ज१-अत्याप्राकेचिद्धिशुभांशकान्ति, ज२-अन्यांशकेचेद्विशुभांशकानि (—अन्त्यांशकश्चेद्विशुभांशकानां)

जर-मधयेंजयेकोन शुभप्रदंशा, ज२-मध्येजयेकोनशुप्रदंशा
—(मध्ये च ,एको न शुभप्रदः सः)

५३. (अ) जर-विनात्पुंसो, ज२-विनापुंसो (—विनान्त्यांशो)
(ब) ज१, २-ज. मो. पुत्रपौत्रादिवृद्धिदः (—पुत्रपौत्राभिवृद्धिदः)

५४. (अ) ज१-नवांशकेदोष (—नवांशदोषः)
(ब) ज१-वर्षतिः वहतीव, ज२-व्रवंतिहंतीव्र (—दत्तं निहन्तीव)
ज१, २-वृकोजसंघ (—वृकोऽजसंघं)

५५. (अ) ज१,२-विधोश्च (—विधोस्तु)
(ब) ज१, २-तद्वत्सुरालयः (तद्वत्सुरालवः)

५६. (अ) ज१,२-शकता, ज. मो. शक्ताः, मु. पु. शेकुः (—शक्ता)
(ब) ज१-विवाहमुत्यत्रयतित्रिमुच्चैर्वसं, ज२-विवाहमुत्पन्नजतित्रिमुच्चैःर्वसं, ज. मो. विवाहमुत्सन्निजमित्रमुच्चैर्वत्सं मु. पु. विवाहमुत्पन्ननिजत्रिमुच्चैर्वत्सं-(—विवाहमुत्पन्ननिजमित्रिमुच्चैर्वत्सं)

५७. (अ) ज१,२-समानदोषः (—महान्सदोषः)
(ब) ज१-श्रुप्यत्यशेषं, ज२-पुष्यत्यशेष (—शुष्यत्यशेषं)
ज१, २-खलुराघवस्य (—राघवस्य)

५९. (अ) ज१,२-भोमोष्टमसंस्थदोषा (—भौमाष्टमसंस्थदोषो)
(ब) ज१-धर्मवधात् शेषात्, ज२-धर्मवयान्शेषात्- (—धर्मचयानशेषानतः)

६०. (ब) ज१-यद्वत्लग्नांश, ज२-यद्विलग्नांश (—यथा लग्नांश)
ज१-धर्मसंचयात्, ज२-धर्मं च संचयान् (—धर्मसञ्चयम्)

६१. (अ) ज१-भावायामस्तदोषसः, ज२-भावायासमस्त दोषसः (—भौमाष्टदोषः सः)

६२. (अ) ज१,२-करोत्यनाशं (—करोतिनाशं)
(ब) ज१-अधिकमाद्याद्वदशेषधातृन्, ज२-आधिक्रमाद्याद्वदशेषधातून (—आधिः क्रमाद्यद्वदशेषधातून्)

६३. (अ) ज१-ववखधोविन्योगवृत्नूनं, ज२-खयोग वियोगवृन्नूनं (—वरवध्वोर्द्राग्वियोगकृन्नूनम्)

६४. (अ) ज१-यदंतराले (—यदन्तरालं)
ज१,२-पितृसार्पयोश्च (—पितृसार्पधिष्ण्ये)
(ब) ज१,२-तघामप्रमाणं (—तन्नाड्यः प्रमाणं)
ज१, २-शुभकर्महन्त्री (—शुभकर्महन्ति)

६५. (अ) ज१-पादार्द्ध (—यामार्द्ध)

६६. (ब) ज१,२-यत्लग्नजातं (—तल्लग्नजातं)
ज१-यदक्ष्यंडं, ज२-यसर्क्षदंडयं, ज. मो. यत्क्ष्वेडो (—यत्क्ष्वेडं)

६७. (अ) ज१-हय्र्योरलंघापयोश्च, ज२-ह्ययरिलिचापयोश्च (—हर्योरलिचापयोश्च)

(ब) ज. मो.-दारिद्रमेकं गुणसंहन्तितत् (—लाभो यथा सर्वगुणान्नरस्य)
६८. (अ) ज१,२-समान्त्रिदोषो (—समांध्रिदोषो)
(ब) ज१-शुभग्रहोत्वानसुतथानिहन्ति, ज२-शुभग्रहोत्वानसततथानिहन्ति (—शुभग्रहोत्थानपि तान्निहन्ति)
६९. (अ) ज१,२-राशेर्नवांशे (—राशेर्नवांशं)
(ब) ज१-कृत्सन्नराशिः, ज२-कृष्णाधिष्ण्यं (—कृत्स्नधिष्ण्यम्)
७०. (ब) ज१-तक्षा, ज२-तज्ञा (—तज्ज्ञा)
ज१-भस्यशस्त, ज२-त्रयस्यशस्तं (—भस्यशस्ताः)
७१. (अ) ज१-विधिष्ण्यं (—च धिष्ण्यं)
ज१-चेन्द्रिस्थचेदंषड्मनणां, ज२-चेद्विष्ण्यंषड्भगणां (—चेद्धिष्ण्यदोषाद्-भगणं)
(ब) ज१-चदूष्यंमिति प्रसंगास्त्विनपाद एव,
ज२-दूष्यमिति प्रसंगस्त्विनपादएव
(—च दूष्मिति प्रसङ्गस्थितपाद एव)
७२. (ब) ज१,२-पादौ (—पादो)
७४. (ब) ज१-असंभवच्छसीतयोदृशो, ज२-असंभावाछुसीतयोदृशे (—असंभवाच्छशीनयोर्दृशोः)
ज१-समत्रमत्रैवः, ज२-समत्रमत्रवैः (—समत्वमत्र वै)
७५. (अ) ज१,२-पादयेन शुभ (—पादएव न शुभः)
ज१, २-महंहि (—मतंहि)
(ब) ज१, २-सकलान् पादतः (—सकलं न पादतः)
७६. (अ) ज१, २-यामार्द्रोयमघंटकः (—खार्जूर यमघंटकश्च)
ज१-कुलिकहत्येते च, ज२ कुलिकहत्येतेव (—कुलिकश्चेत्येव)
(स) ज१, २-दोषत्रयं (—दोषत्रयः)
(द) ज१, २-प्रोत्कटानन्यो (—प्रोत्कटाश्चान्यो)
ज१, २-महानामार्द्रतुल्या (—महान्यामार्द्धतुल्याः)
७८. (अ) ज१-स्त्रिंश, ज२-म्रिशं (—व्योमगुणा)
ज१-दतखवेद, ज२-दतंखवेद (—खवेदा)
(ब) ज१, २-शक्रा (—इन्द्राः)
ज१,२-कुदस्र (—कुदस्राः)
(स) ज१, २—खमुजा (—खयमाः)
(द) ज१, २-मनवो (—मनवः)
७९. (ब) ज१, २-वेदाक्षिणे (—वेदाश्विनी)
(स) ज१, २-विदस्ता (—ऽब्धिदस्रा)
(द) ज१, २-दशत्रयमुषकाणां (—दस्रमुखर्क्षकाणाम्)
८०. (अ) ज१,२-आद्यः (—आभ्यः)

(ब) ज१-चिरात्तसर्व, ज२-चिरातुसर्वे (चिराच्चसर्वे)

८१. ज१,२- विलग्नसितान्गुणान्पिशेषात्, (मु. पु. लग्नाश्रितानंशगणान्वि-शेषान् (—लग्नाश्रितानंशगुणान्विशेषान्)

८२. (अ) ज१-कुंर्वतिबुद्धाहितां कन्यां, ज२-कुर्वन्तिबुद्धातुहितां च कन्यां (—कुर्वन्त्युद्वाहितां कन्यां) ज१, २-वर्षत्रयात् (—वत्सरत्रयात्)

८३. (अ) ज१,२-यस्याश्च (—यस्यास्तु)

ज१-वाराराशावधीशे च, ज२-वाराराशाधीश च (—वा राशौ तदीशेऽथ)

(ब) ज१-मनोजनिमैत्र, ज२-मनोजजिमेत्र (—मनोजस्त्रिनेत्र)

ज१,२-फलांदक (—भालांबक) ज१, २-वह्निगेव (—वह्निनेव)

८४. (अ) मु. पु. लग्नमर्थहरमत्र (—लग्नेशमर्थहरमत्र)

८६. (अ) ज१-तयोत्रैथनकं, ज२-तयोर्नैधनकं (—तयोर्नैधनभं)

ज१, २-चाघतदंशकं च (—वाऽथ तदीश्वरं च)

(ब) ज१-नैधनको, ज२-नुधनकोऽपि (—नैधनगौ)

ज१-विवर्ज्यः, ज २-वर्ज्ये (—विवर्ज्यौ)

८७. (अ) ज१,२-जन्मराश्यष्टलग्नेशो (—जन्मेशाष्टमलग्नेशौ)

८८. (अ) ज१,२-शुभकर्म्य (—शुभकार्य)

(ब) ज१, २-लग्नगुणा (—सर्वगुणाः)

ज१, २-इववह्निदग्धं (—विषवह्निदग्धम्)

८९. (अ) ज१, २-नाशं (—मृत्युं)

(ब) ज१, २-पितावियोगः (—सीता वियोग)

ज१, २-दशास्थे (—दशास्यम्)

९०. (ब) ज१, २-यूतकिरातकर्म (—द्यूतमिवात्मकर्म)

९१. (ब) ज१, २-सुसमीसम्रणं (—समां समग्राम्)

९२. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-पित्र्याग्नौयौ, ज. मो.-पित्र्याग्नेयौ (—पित्रग्नी द्वौ)

(स) ज१-जीवयोराक्षसाख्य, ज२-जीवयो राख्य साख्ये (—जीवाहे राक्षसाख्यो)

(द) ज१-सौरेचेते, ज२-सौरेशेते, ज. मो. सौरावेती (—सौरावेते)

ज१, २-स्तुथसनिधनदा (—त्वधननिधनदा)

९३. (अ) ज१-पौषो (—दोषो)

(ब) ज१, २-लग्नगुणास्त्वशक्त्याः (—लग्नगुणा अशक्ताः)

ज१, २-शशिनयः धानां (—शनिनोपघातम्)

९४. (अ) ज१-शस्त्रक्षमीनीतमहानिपातः, ज२-शस्त्रक्षपानीनमहानिपानितः (—शास्त्रात्समानीतमहातिपातः)

ज. मो. सवैधृतिर्हन्ति (—सवैधृतो हन्ति)

(ब) ज१-त्रिसप्तधारानि च, ज२-त्रिसप्तनारानि, ज. मो.-त्रिसप्तवरानिव (—त्रिसप्तवाराणि च)

जश, २-जामदग्निः, ज. मो. जामदग्न्यः (—जामदग्न्यो)
ज१-क्रोधो वा वाक्षत्रकुलं, ज२-क्रोधे ववाक्षत्रकुलं
ज.मो. क्रोधा च् चिरात्क्षाकुलं (—क्रोधोऽचिरात् क्षत्रंकुलं)

९५. (अ) ज१, २-शुद्धिरहितः (—शुद्धिरस्तु)

९७. (अ) ज१, २-उदयसिः (—उदयांशः)
ज१-स्वनथेन, ज२-स्वनयेन (—स्वनाथेन)
ज१, २-वायुतः (—सञ्युतः)
(ब) ज१, २-वस्तथास्तसो (—तथास्तांशो)
ज१, २-पौत्रकः (—पौत्रदः)

९८. (अ) ज१-चोग्रहखेटविदक्षतिदमं, ज२-चोग्रहखेरटवृद्धर्क्षतद्धं (—भोग्रखेट विद्धर्क्षतद्धं)
(ब) ज१-लग्नगुणास्त्वशक्त्याः स्त्रोत, ज२-लग्नगुणास्वशक्त्याः (—लग्नगुणास्त्वशक्तास्त्रातुं)

९९. (ब) ज१, २-दहंति च (—दहतीव)

१००. (अ) ज१-राजावधूतं पुरुषे च, ज२-राजाविधूतं पुरुषे च
ज.मो. राजावधूतं पुरुषं च (—राज्ञाधृतं तं पुरुषं च)

१०१. (अ) ज१, २-पवित्रतुसमेकुरेमुरे च, मु. पु. परित्रातुमशेकुरेव (—परित्रातुमशंकुरेव)

१०२. (ब) ज१, २-लग्ने (—लग्नं)
ज. मो. याजकानाम् (—यायजूकम्)

१०३. ज१-पाठस्यलोपः, ज२-मित्राधिमित्रोच्चगृहं प्रजाता (—मित्रादिमित्रौच्च-गृहांशजाता)

१०४. ज१, २-पाठोनास्ति

१०५. (अ) ज१, २-ज.मो. सवाप्य (—यदवाप्य)
(ब) ज१-इववायं, ज२-इवार्ध (—इवान्धम्)

१०६. (अ) ज१, २-ग्रहोस्वजातं (—गृहोच्चजाताः)

१०७. (अ) ज. मो. धर्मत्रिकोणेषु (—धनत्रिकोणस्थ)
ज१, २-शुभपत्येहोगुणा (—शुभग्रहोत्थगुणा)
ज१, २-नतकीसतदवाप्य, ज. मो. निरर्थास्तदवाम (—निरर्थास्तदवाप्य)

१०८. (ब) ज१-तौदंपदद्वद्गुणाहनृवासा, ज२-तंदंपतद्वंदगुणाहंत्रवासा (—दोषोऽपितद्वद्-गुणधातुकः सः)

११०. (ब) ज१-कृत्वाददोष, ज२-क्त्वागंददोष (—कृत्वाद् दोषदः)
ज१, २-शुभप्रदश्च (—शुभप्रदः सः)

१११. (अ) ज१, २-दोषनिरूपणो (—दोषनिरूपणं)
ज१, २-यत् नित्रयनं (—यन्निरूपणं)
(ब) ज१, २-वक्ष्येश्यप (—वक्ष्येऽन्य)

११२. (ब) मु. पु. दृशाधीश (—दशाधीश)

११३. (अ) ज१, २-योगस्तिथिप्रजाताश्च (—योगास्थिति प्रयाताश्च)

११४. (अ) ज१-ये ते च मासान्य, ज२-येते च सामान्य- (—ये चान्यसामान्य)

११५-११६-११७-११८-११९-१२०-१२१—ज१-ज२-पाठोनास्ति।

१२२, २३, २४, २५, २६, १२७-ज१-ज२-'पाठोनास्ति

१२२. (अ) मु. पु. अस्तगृहं (—अस्तग्रहं)

१२८. (अ) ज१-दोषामात्मानपिमासदग्धान, ज२-दोषामात्मान (—दोषान्यान्मासशून्यानपि)

(ब) ज१, २-दिनप्रदग्धामपि (—दिन प्रदग्धानापि)

ज१-यदुददेषपापात्, ज२-यद्बुदशेषपापात्- (—यद्वदशेष पापान्)

१२९. (अ) ज१-एकार्गलोपातलत्तायामित्र (—एकार्गलोपग्रह-पातलत्ताजामित्र)

(ब) ज१-नस्यंति (—नश्यन्ति)

ज१-ज२-यदर्कोभ्युदये (—यथार्काभ्युदये)

१३०. (अ) ज१,२-दक्षिणिपातदोष: (—दृष्टिनिपातदोषा:)

(ब) ज१,२-लग्नेगुरूस्तानमली (—लग्ने गुरूस्तान्विमली)

१३१. (अ) ज१,२-गुणाधिके (—गुणाधिकं)

ज१,२-नवांशकस्य (—नवांशपस्य)

(ब) ज१,२-वलाबले (—बलाबलं)

ज१-दैवविक्ज्ञ:, ज२-दैववह्नि: (—प्रवदेदभिज्ञ:)

१३२. (अ) ज१-नृत्रिनार्योरक्जिीक्योश्च,

ज२-त्रिनार्योरवित्रीवाय्योरविजाक्योश्च

(—नृनार्योरिनजीवयोश्च)

ज१,२-विलग्ने (—सुलग्ने)

(ब) ज१,२-पञ्चाष्टिक्यैकेंदुसुरेज्यमुख्यै (—पञ्चेष्टकेऽकेन्दु-सुरेज्यमुख्ये)

१३३. (अ) ज१-नैधनार्त्थे, ज२-नैधनार्थ (—नैधनान्त्य)

ज१, २-जन्मादिषुश्चानगयोद्वयोवा (—जन्मादिदुस्थानगयोर्द्वयोर्वा)

१३४. (ब) ज१,२-नशक्त्या (—न शक्ता:)

ज१-२-नूनं भुजंगावमित्रवद्धि: (—दष्टुं भुजङ्गा इव मन्त्रविद्धा:)

१३५. (ब) ज१,२-व्योमचराधिपानां (—व्योमचराधिपत्यम्)

१३६. (ब) ज१,२-संचितत्वात्र (—संषीक्षयेत्तत्र)

१३७. (अ) ज१,२-प्रातमिनस्थ (—चास्तमिनस्य)

ज१,२-विदध्याज्जलपूर्णपात्रे (—प्रदद्याज्जलपूर्णपात्रे)

(ब) ज१,२-अलंकृतं (—अलङ्कृते)

१३८. (अ) ज१-षडंगुलोच्छछसमं, ज२-षडंगुलोधेधसमं

(—षडंगुलोत्सेधसमं) ज१, २-यदिरसांगुलं (—सद्विरसाङ्गुलं)

(ब) ज१, तुल्यैर्दृपलिर्ज्जलस्य, ज२-तुल्यैर्दयलिलिज्जैस्य (—शुल्वैर्दशभिर्जलस्य)

१३९. (अ) ज१-षद्मशमसत्रय एव, ज२-षडत्रयशमुसजयं (—यवत्र्यंशमाद्यत्रय)

(ब) ज१-पदेशन्मपूरंनखासरार्द्धं, ज२-पदेशर्न्मगलंपूरनखासरार्द्धं (—द्द्यान्मयूरं नखानराद्यम्)

१४०. पाठोनास्ति

१४१. (अ) ज१-शुभाययुक्ते, ज२-शुभाव्ययुक्तं (—शुभाययुक्ताम्)

(ब) ज१-सुमुंडयं, ज२-समंडप (—समण्डपां)

ज१-प्राक्त्रवणामुग्ध, ज२-प्राकवणामुग्धं (—प्रवणामुदग्वा )

१४३. (ब) ज१,२-मरीचहोराच्चगुडैः (—धान्याकहारिद्रगुडैः)

१४४. (अ) ज१-वेदनाणैः (—वेदघोषैः)

(ब) ज१, २-प्रदक्षिणा परक्रमणा त्युपैतां (—प्रदक्षिण प्रक्रमणाद्युपेतां)

ज१, २-तामानुगेहेनिधनं सुवेदी (—तामारूरोहेन्मिथुनं च) वेदीम्

१४५. (ब) ज१,२-स्वासेरतिश्यसुष (—सौख्यं बहुविधमतो)

(स) ज१, २-व्याधिर्थागमत्वं (—व्याधिरर्थागमश्च)

१४६. (अ) ज१,२-प्रजाप्तिः (—प्रजार्तिः)

(ब) मु. पु. सापन्यवाधा (—सापत्यबाधा)

(स) ज१, २-प्रवज्यस्त्वं (—प्रव्रज्यत्वं)

ज१, २-भोक्त (—भागभाक्त्वम्)

१४७. (ब) ज१-चोभयोर्विशनाशः मु. पु. वंशनाशः क्वचित्पाठः (—चोभयोर्वित्तनाशः)

१४८. (ब) ज१,२-निवैपक्ष्य (—निर्वैपक्ष्यं)

(द) ज१,२-हिमकरतनये (—हिमकरसुते)

१५०. (ब) ज१,२-पुण्यधिक्यं, मु. पु. धूम्राधिक्यं (—पुण्याधिक्यम्)

(स) ज१,२-पत्युप्रीति, मु. पु. तथ्येप्रीति (—पत्युःप्रीतिः)

(द) ज१,२-स्त्रीणांप्युसनसिताथो (—स्त्रीणामुशनसि)

१५१. (अ) ज१,२-विशालां (—विशील्यम्)

(ब) ज१,२-सुस्त्री (—सुश्रीः)

(स) ज१,२-वक्ररोगं (—वक्त्ररोगः)

(द) ज१,२-वाथशिलिनिया (—वा शिखिना च)

१५२. (स) ज१-परिणायनविधौ, ज२-परियनविधौ (—परिणयनविधौ)

ज१-ज्ञोत्यमृत्युविर्वज्या, ज२-शात्यमृत्युर्विवर्ज्याः (—ज्ञाऽन्त्यमृत्युर्विवर्ज्यम्)

(द) ज१,२-शुक्रेज्या (—शुक्रेज्यौ)

१५३. (ब) ज१,२-क्रूराश्चंद्रस (—क्रूराश्चन्द्रश्च)

१५४. (ब) ज१,२-धनरहितामब्दकेस्त्रिभिः (—धनहीनां वत्सरैस्त्रिभिः)

१५७. (ब) ज१,२-अपुत्रवतीं (—विपुत्रवतीं)

ज१,२-विवादशीलवन्ती (—विवादशीलवतीम्)

१५८. (ब) ज१,२-ज्ञेज्योपापः (—ज्ञेयाः पापाः)

जश, २-प्रभूतशीलवन्ती (—प्रभूतशीलवतीम्)

१५९. (ब) मु. पु. दम्पन्त्योः (—दम्पत्योः)

१६०. (अ) मु. पु. पञ्चभिर्वर्षैः (—पञ्चभिर्वर्षैः)

(ब) ज१,२-चिरंजीवां (—चिरंजीवीम्)

१६१. (अ) ज१-भोगवंती, ज२-भोगवतीं (—भोगभाग्यसौक्यवतीम्)

(ब) ज१-खलवितां, ज२-लश्चितां (—खलचित्तां)

१६३. (अ) ज१,२-वहुधनधान्यार्थपुत्रवतीं (—बहुविधधनधान्यपुत्र-पौत्रवतीम्)

(ब) ज१, २-शीलयुतां (—शीलवतीं)

ज१-नीचगानारिणाशिगास्तरथ, ज२-तीवगानारिराशिस्तस्य (—नीचगास्तारिराशिगाश्च)

१६४. (अ) ज१,२-व्यगादुग्धविभवा (—व्ययगो दुग्धाब्धिभवः)

ज१-विषवांपंश्च, ज२-विधवांश्च (—विधवांच)

ज१-चमिर्वषैः (—पञ्चभिर्वर्षैः)

१६५. (अ) ज१-सश्चचराः, ज२-सश्चराः (—सत्खचराः)

ज१-सदसस्थानेश्च, ज२-सदसस्थानेष्व— (—सदसच्चस्थानः)

ज१,२-शुभशुभान्फलं (—शुभफलान्यफलम्)

(ब) ज१, २-समज्ञाप्यतयोः (सम्यग्ज्ञात्वाऽथ)

१६६. (ब) ज१,२-नाशत्यातिदोषभवं (—विनाशमायाति दोषचयम्)

१६७. (अ) ज१,२-राज्ये च सत्यादि (—राज्येऽपि चापद्यपि)

(ब) ज१, २-चतुष्टयार्थि (—चतुष्टयार्थम्)

१६८. (अ) ज१-सुस्तानतांतौ, ज२-सस्तानतांतौ (—संस्तानतीतो)

(ब) ज१, २-शेषराशींश्च (—शेषराशीषु)

१६९. (ब) ज१,२-राक्षसास्थे (—राक्षसाख्यः)

१७०. (ब) ज१-आहूयदिति, ज२-आहुयदियते (—आहूयदीयते)

ज१, २-पुनात्युभयतो (—पुनात्युभयतः)

१७१. (अ) ज१-षट्षट्स्तत्र, ज२-षडवस्यांस्तस्तत्र (—षडवंश्यांस्तत्र)

१७२. (अ) ज१, २-दीयते यदा (—दीयते सदा)

१७४. (अ) ज१-समयान्मिथोस्यादानतः, ज२-समयान्मिथोस्यादसुरो प्रदानतः (—समयग्राह्य असुरोऽर्थ प्रदानतः)

१७५. (अ) ज२-वर्गादिनं, मु. पु. वर्यादिनं (—वर्णादिनं)

ज१,२-सदधीशवीवस्थानाड्यः (—तदधीशविवश्यनाड्यः)

(ब) ज१-शुद्धांसज्जोदशाष्टौ, ज२-शुधांसजुषोदशाष्टौ (—सुधाशुयुंजोदशाष्टौ)

१७६. (अ) ज१,२-नबधूनमाद्यं (—वशाद्वधूभयाद्यं)

ज१-वरततिमथोगणयः, ज२-वरंज्ञतिमथोगणायः मु. पु. वरर्क्षान्तमथो-गणय्य (—वरर्क्षान्तमथो विगणय्य)

(ब) ज१, २-शोभनमान्यप्रति (—शोभनमामनन्ति)

१७७. (अ) ज१-दस्रादितोज्य (—दस्रादितीज्य)

ज१, २-लक्ष्मीसभानि (—लक्ष्मीशभानि)

(ब) ज१-मानुषगगे (—मानुषगणोऽत्र)

१७८. (अ) ज१-विवृद्धे, ज२-विवृद्धि (—पितृद्विदैव)

ज१, २-सपुरूहूतमलवस्त्रादि, ज. मो. नलेन्द्रमूलवस्त्वाहि-(—शतेन्द्रमूल वस्वाहि)

ज१, २-विरर्क्षगणोसुराख्य: (—चिर्क्षगणोऽसुराख्य:)

(ब) ज१, २-वैग्रहकोहमयेतमध्येतरेषं (—महास्नेहमथेतरेषाम्)

१८०. (ब) ज२-सामान्यमतश्च (—सामान्येतच्च)

ज१-बधूविदूरश्रेष्ठ, ज२-बधूविधूरश्रेष्ट (—बधूविदूषितं)

ज१-तृतीय न चके विवाहे, ज२-तृतीयेनचके विवाहे, ज. मो. तृतीयं-नवकंविवाहं (—तृतीये नवके विवाह:)

१८१. (अ) ज१-मूषकमहेन्दुरगोलुलाय:, ज२-मूषकमहेन्दुरगोत्पुलाय: मु. पु. मूषक महोंदुरूगोलुलाया: (—मूषकमथोन्दुरूगोलुलाया:)

(ब) ज१, २-शस्त्रगोक्ष (—शाखामृगोक्ष)

ज१, २-मुखदाश्च (—मुखाश्च)

१८२. (अ) ज१-खकत्पितयोनिरूप, ज२-खलुकपितयोनिरूपा: (—खलुकल्पितयोनिरूपा:)

(ब) ज१, २-एतद्विचार्यनिखिलं (—एतद्विचार्यमखिलं)

ज१, २-वरिष्ट: (—वरिष्ठ:)

१८४. (अ) ज१, २-षष्टोष्टमे (—षडाष्टके)

१८५. (अ) ज२-स्मृर्त (—स्मृतम्)

(ब) ज२-चोतमंसदा (—मध्यमं सदा)

१८६. (अ) ज१-रश्योर्नवरज्जुदोषो, ज२-राश्योर्नरचरत्रदोषो (—राश्योर्नवरज्जुदोषे)

१८७. (अ) ज१, २-शमदास्तदा (—शर्मद: सदा)

१८८. (अ) ज१-षष्टोष्टकोपि च, ज२-षष्टाष्टकेपि च (—षट्काष्टकेऽपि च)

१९०. (अ) ज१-सात्रवमेव वा, ज२-मात्रवमेव (—शात्रवमेव वा)

(ब) ज१, २-नालि (नापि)

१९१. (अ) ज१, २-समस्ते च (—समजामित्रे)

ज१-२-सहजाय (सहजाय)

(ब) ज१-२-सुसृत (—सुहृत)

१९२. (अ) ज१-नृयुक्लामेषघटाश्वसिंहा: ज२-नृयुक्भकालामेषघटाश्वसिंहा: मु. पु. नृयुक्तुलामेषघटाश्वसिंहा: (—नृयुक्तुलामेषघटश्विसिंहा:)

(ब) ज१-धिस्वाष्ट, ज२-स्वाष्ट (स्वस्वाष्ट)

ज१-भर्येचरताया, ज२-भवेचरताबा (—भवनैकता वा)

१९३. (अ) ज१-२-दंपत्योर्ज्जन्मभेतयो: (—दम्पत्योर्जन्मतस्तयो:)
१९४. (अ) ज१,२-एकराश्यो: (—एकराशि)
ज१,२-पृथग्विष्योरुत्तमं (—पृथक्धिष्ण्येऽप्युत्तमं)
(ब) ज१-सचैकोपि, ज२-सवैकेपि (—सर्वैक्येऽपि)
१९६. (अ) ज१-अज्ञानतजन्मनो, ज२-अज्ञातजन्मनो (—अज्ञातजन्मनां)
पी. यू. धा. टी.-नामभे (—नामभं)
१९७. (अ) ज१-रवे: समौक्ष:, ज२-रवे:समा:सो: (—रवे:समोज्ञ:)
ज१-परेयुसुहृदांवराटा: ज२-परायेसुहृदांवराटा: (—परेऽन्येसुहृदोऽम्बराटा:)
(ब) ज१-२-चन्द्रस्यतारा (—चन्द्रस्यनारि)
१९८. (ब) ज१,२-सूर्यसिता (—सूर्यसितौ)
१९९. (अ) ज१,२-गुरोज्ञशुकावरिसंज्ञकौस्त: (—गुरोर्ज्ञशुक्रौ (रिपुसंज्ञकौ)
ज१-सुहृदोग्रहेद्रा:, ज२-सुहृदग्रहंद्रा (—सुहृदोभवन्ति)
(ब) ज१,२-कुयाजचिरश्चशेषा: (कुजेज्यावितरावरी तौ)
२००. (ब) ज१,२-एवंग्रहाणां (—ध्रुवंग्रहाणां)
२०१. (अ) ज१, २-राश्योचोनृतानां, मु. पु. राश्योऽन्येनृभाणाम्
(—राश्योऽन्येनृराणाम्)
(स) ज१,२-विद्धिलोकात्प्रसिद्धं (—लोकतोऽन्यत्रसिद्धं)
(द) ज१,२-तोयालियश्च, मु. पु. तोयालयाश्च (—तोयालयाश्च)
२०२. (अ) ज१,२-क्रमोक्तमात्यंगणयेंदुसूरी.... (—क्रमात्संगणयेच्चभानि)
(ब) ज१-पद्येक...र्मपघेन्यु, ज२-यद्येक पर्वन्यु, ज. मो. यदेवपर्यन्यु
(—यद्येकपर्वण्युभयोश्च)
२०३. (ब) ज१-ज.मो. त्रिवर्षे (—त्रिवर्षै:)
२०४. (अ) ज१,२-इन्द्राश्विन्योयम्भिमैत्रर्क्षयोश्च (—पूर्वाश्विन्योर्याम्यमैत्राख्ययोश्च)
(ब) पाठोनास्ति
२०५. (अ-ब) ज१,२-पाठोनास्ति
२०६. (ब) ज१-यंवर्तुमूचंद्रशभि:, ज२-यंवर्तुमूंषतिसूमिसूभि (—पञ्चर्तुभूतर्त्विषुभि:)
२०७. (अ) वसुचमिरुद्र, ज२-वसुचापिरुद्र (—वसुवारिरुद्र)
ज१-त्वाष्ट्रत्रय्श्चमलत्रयमांत्यक्रक:, ज२-तांष्टुत्रयंश्चमल-त्रयमांत्यचक्र:
(—त्वाष्ट्रत्रयं विश्वयमान्त्य शक्रा:)
(ब) ज१,२-वरर्णोद्रमूलंतारा, ज. मो. वरुणेन्द्रमूला (—श्रवणेन्दुमूलतारा)
ज१,२-परास्यु:, ज. मो. परा:स्यु: (—परेस्यु:)
२०८. (अ) ज१-सम्प्रीति च नित्यं, ज२-ससांप्रीतिरवनित्य (—सम्प्रीतिरतीव नित्यम्)
(ब) ज१-भवेयुक्तमलिंग गेषु, ज२-मषे....युक्तमलिंगणेषु (—भवेद्व्युत्क्रमलिङ्गकेषु)
ज१-समान्यत्र (—सामान्यमन्यत्र)
२०९. (अ) ज१,२-विप्रर्क्षमाधीश्वर (—विप्रक्षमाधीश्वर)

२१०. (ब) ज१-जात्याखटेत्रफलं, ज२-त्यात्यारवकुटेत्रफलं (—जात्याख्यकूटे च फलं)
२११. (ब) ज१-स्त्रीजाति (—स्त्रीजातितो)
ज१,२-पुमांसोविलोमजात्यामपि, ज. मो. पुमांश्चबिलोमजातय्यामपि
(—पुमांश्चेद्विलोमजात्यामपि)
ज१-नीजवैर्‌म, ज२-नीचवैरं, ज. मो. चातिवैरम् (—तीव्रवैरम्)
२१२. (अ) ज१,२-स्वक्षगोत्रा (—सप्तगोत्रा)
ज१-गजांश्वसंख्यानिदस्त्रभादि, ज२-गजाश्वसंख्यानिचदस्त्रभानिदे
(—गजाश्विसंख्याऽश्विमुखानि भानि)
२१४. (अ) ज१-भेतुंडपिंगल, ज२-भेतंडुपिंगलं, ज. मो. भेरण्ड:पिङ्गल:
(—भेरूण्डपिङ्गल)
ज१-शुककुक्कुटानां, ज२-शुकशुक्टानां, ज. मो. कुक्कुटश्च
(—सुकुक्कुटानां)
ज१,२-वहंरथासिमुखतानिगुणाश्चपंच, ज. मो.—पाठोनास्ति
(—बर्हि तथाश्विमुखभानि गुणांश्चपञ्च)
(ब) ज१, २-वरार्तिसुछप्रशरैः, ज. मो. वाणर्तुषट्‌श (—वाणर्तुषट्‌शरशरै)
ज१, २-प्रसिद्ध: (—प्रवृद्धि:)
२१५. (अ) ज१,२-अपाध्वजाख्या: (—आया ध्वजाद्या:)
(ब) ज१-त्रितयं, ज२-न त्रितयं (—भत्रितयं)
ज१,२-वसिष्टं (—च शिष्टं)
२१६. (अ) ज१-कोष्णावी च मर्हद्रा (—वैष्णवी च माहेन्द्री)
(ब) ज१-लक्ष्मीचाष्टदिक्षुयोगिन्य:, ज२-श्रीलक्ष्मीवाष्टदिक्षुयोगिन्य:, ज.मो. श्रीलक्ष्मीश्चाष्टदिक्षुयोगिन्य: (—श्रीलक्ष्मीचाष्टयोगिन्य:)
२१७. (अ) ज१,२-पूर्वपूर्वसर्व (—पूर्ववदूर्द्ध)
(ब) ज१, २-सर्वेसर्वदा, ज. मो. स्यातमवेषां सर्षदा (—स्यात्सर्वेषां सर्वदा)
२१९. (अ) ज१-गिरिपतिसिद्धिवसा प्रमथमगुरू:, ज२-गिरिपतिसिद्धिदिवसाप्रथमगुरू
(—गिरिसुताविश्वेदिवसौ वा सुरगुरू:)
(ब) ज१-सह्यततथा....०, ज२-सह्यिततथा (—दिशि रवितनय:)
२२०. (ब) मु. पु. कलिगिरिजात्मज (—शिव गिरिजात्मज)
२२१. (अ) ज१-पाठोनास्ति, ज२-विरुद्धदिवसौ (—निशिपतिदिवसौ)
(ब) ज२-स्वर्भानुरवि (—स्वर्भानुरथ)
ज२-चन्द्रमौलिरीशानां (—चन्द्रमौलिरैशान्याम्)
२२२. ज१,२-पाठोनास्ति
२२३. (अ) ज१,२-शत्रुवंथवैवाहे (—शात्रवं च वैवाहे)
२२५. (अ) ज१,२-तदधीशत्रैतारास्त्री (—तदधीशमैत्रतास्त्री)
ज१,२-विनाड्य: (—नाडिका)

(ब) ज१-वर्णात्तसमेता:, ज२-वरगोत्रसमेता (—वरगोत्रसमेता:)

२२७. (अ) ज१,२-चयत् (—तु तत्)

२२८. (ब) ज१,२-पाठोनास्ति

२३२. (ब) ज१-पुन: पुन: विवाह: ज२-पुन: पुनर्विवाह: (—पुन: पुंविवाह)

२३३. (ब) ज१-रितुत्रयोधिक, ज२-ऋतुत्रयोपि (—ऋतुद्वयेऽपि)

२३४. (ब) ज१-तत्रैवा. (—तत्रैका)

२३५. (अ) ज१,२-उद्वाहश्चकन्यानां (—उद्वाहश्चैकजन्यानां)

२३६. (ब) ज१,२-वर्षेस्था (—वर्षे स्यादेका)

ज१-च विधवान्भवेत्, ज२-च विधवानयेत् (—विधवाऽथवा)

२३९. (ब) ज१,२-तदंत्यपादाजनिनीं (—तदन्त्यपादाज्जनितो)

२४०. (अ) ज१,२-स्याग्रहहन्ति (—स्वस्याग्रजं हन्ति)

ज१,२-न पुत्रकायदि (—न कन्यकायदि)

२४३. (अ) ज१-दिने वा (—दशमेदिने वा)

(ब) ज१-विवाहसङ्गोचरगोपिकार्य, ज२-विधाहसद्धोचरगोपिकार्य (—विधावसद् गोचरगेऽपिकार्य:)

पुष्पिका ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां विवाहस्वरूप लक्षणं नाम द्वात्रिंशतमोऽध्याय:॥३२॥

पुष्पिका ज२-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां विवाहस्वरूप लक्षणं नाम द्वात्रिंशतमोऽध्याय:॥३२॥

***

# ३३

# अथ राजाभिषेकाध्यायः

**आधानजन्मेशदशाधिनाथरवीन्दुभौमेज्यसितैर्बलस्थैः।**
**उत्पातदोषादिविवर्जितेषु धराधिपानामभिषेक इष्टः॥१॥**

## नारायणी टीका

आधान लग्नेश, जन्मलग्नेश, दधाधिप, सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, बृहस्पति एवं शुक्र बलवान हो तथा उत्पातादि दोष रहित काल होने पर राजा का अभिषेक प्रशस्त होता है॥१॥

**क्रमागतः–**

**श्रीपतिः–**

विलग्नजन्मेशदशाधिनाथमार्त्तण्डधात्रीतनयैर्बलिष्ठैः।
गुर्विन्दुशुक्रैः स्फुरदंशुजालैर्महीपतीनामभिषेक इष्टः॥

—(मु. चि. १० प्र. १ श्लोक पी.टी.)

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भूपानामभिषेचनम्।
सौम्यायने सितेजीवे नास्तगे न च वृद्धगे॥

—(मु. चि. १० प्र. १ श्लोक पी.टी.)

**मूलत्रिकोणस्वगृहोच्चमित्रगृहस्थितैर्वाऽपितदंशसंस्थैः।**
**शुभे विलग्ने सततं ग्रहेन्द्रा दिशन्तिलक्ष्मीं विपुलां च कीर्तितम्॥२॥**

ग्रह यदि मूल त्रिकोण, स्वक्षेत्री, उच्चस्थ अथवा मित्र राशि में या उनके नवांश में हों तथा शुभलग्न में राजा का अभिषेक करने से विपुल धन एवं कीर्ति की प्राप्ति होती है॥२॥

**स्वनीचगैर्वैरिगृहादिगैर्वा ह्यस्तंगतैर्वक्रमुपागतैर्वा।**
**पापोदय शोकभयं त्वकीर्ति दिशन्तिराज्ञां भृशमस्बराटाः॥३॥**

यदि ग्रह अपनी नीचराशि, शत्रुराशि, अस्तंगत, वक्री हों, पाप उदित लग्न में राजा का अभिषेक शोक, भय, अपकीर्ति देने वाला होता है॥३॥

**क्रमागतः–**

**चण्डेश्वरः—**

नाभिषेच्यो नृपश्चैत्रे नाधिमासे न भूसुते।
न प्रसुप्ते तथाधिष्ण्ये न रिक्तायां न रात्रिषु॥

—(मु. चि. १० प्र. १ श्लोक पी.टी.)

**शीर्षोदये चोपचये गृहे वा स्वजन्मलग्नादथ लग्नगेऽपि।**
**शुभग्रहैर्युक्तनिरीक्षिते वा पदं स्थिरं स्यात्सततं च राज्ञाम्॥४॥**

शीर्षोदय लग्न (मिथुन, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक एवं कुम्भ) में, लग्न अथवा चन्द्रमा से उपचय स्थानगतः राशियों के शुभ ग्रहों से युक्त अथवा दृष्ट होने पर राजा का अभिषेक करने से राजा का सिंहासन सदैव स्थिर रहता है॥४॥

**क्रमागतः—**

**कश्यपः—**

त्रिलाभस्थौ सौरिसूर्यौ चतुर्थे चांवरे गुरौ।
यस्याभिषेकः क्रियते तत्र तस्य मही स्थिरा॥
—(मु. चि. १० प्र. ४ श्लोक पी.टी.)

**श्रीपतिः—**

त्रिलाभसंस्थौ शशितिग्मरश्मी मेषूरणे वंधुगृहे गुरुश्च।
यस्यात्र योगे क्रियतेऽभिषेकः संपत्स्थिरा तस्य चिरायुषः स्यात्॥
—(मु. चि. १० प्र. ४ श्लोक पी.टी.)

**रिक्तास्वमायां बुधभौमवार विवर्जिते वारदिनेषु चैव।**
**खले दिने ऋक्षनिशीशयोश्च न नैधनेभेत्वभिषेक इष्टः॥५॥**

रिक्ता (चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी) अमावस्या तिथियों एवं मङ्गल, बुधवासरों को छोड़कर शेष तिथिवारों में चन्द्रमा आदि नक्षत्र से दूषित खल दिन में जन्मनक्षत्र से अष्टम नक्षत्रराशि का त्याग करके शेष नक्षत्रों में अभिषेक शुभ होता है॥५॥

**पापग्रहैः स्वान्त्यगतैश्च निःस्वो रोगी विलग्नोपगतैर्भवेत्सः।**
**पदच्युतः सप्तचतुर्थसंस्थैः पुत्रस्थितैः सर्वसुखैर्विहीनः॥६॥**

अभिषेक के समय यदि पापग्रह अपने अन्तिमांशों में गये हों तो राजा निर्धन होता है तथा अन्तिमांश स्थित ग्रह लग्न में हो तो रोगी होता है। यदि ये ग्रह सप्तम या चतुर्थ में हों तो राजा का पद छीना जाता है और यदि पञ्चम में हों तो सभी सुखों से हीन होता है॥६॥

**भ्रष्टोत्सुकः कर्मगतैरनायुर्मृत्यु स्थितैर्वीर्ययुतैश्च पापैः।**
**लग्नव्ययाष्टारिगतः शशांकः क्षितीश्वरं हन्ति तदा बली चेत्॥७॥**

बलवान पापग्रह अभिषेक लग्न से दशम भाव में हों तो, राजा भ्रष्टाचार में लीन तथा अष्टम भाव में स्थित हो तो अल्पायु होता है। यदि बलवान चन्द्रमा अभिषेक लग्न तथा लग्न से छठे, आठवें एवं बारहवें भाव में स्थित हो तो राजा का नाश होता है॥७॥

**केन्द्रत्रिकोणत्रिधनायसौम्यैस्त्रिषष्ठलाभारिगतैश्च पापैः।**
**षष्ठाष्टलग्नव्ययवर्जितेन चन्द्रेण राज्ञां शुभदोऽभिषेकः।।८।।**

केन्द्र (१,४,७,१०) त्रिकोण (५,९) तीसरे, दूसरे एवं लाभ स्थान में शुभग्रहों, तीसरे, षष्ठ, लाभस्थानों में पापग्रह हों या शत्रुग्रह स्थित हों, चन्द्रमा षष्ठ, अष्टम लग्न तथा द्वादश में न हो तो राजा का अभिषेक शुभ होता हौ।।८।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

यस्याभिषेक लग्ने वा त्रिकोणे यदि वा गुरुः।
शुक्रोऽम्बरे कुजः षष्ठे स लक्ष्म्या मोदते चिरम्।।
त्रिलाभस्थौ शनिसूर्यौ चतुर्थेवाम्बरे गुरुः।
यस्याभिषेकः क्रियते तत्र तस्यमही स्थिरा।।

—(क. सं. अ. ३९-१३-१४ श्लोक)

**यस्याभिषेक पुरूहूतमन्त्री लग्ने त्रिकोणे यदि वा भवेत्सः।**
**षष्ठे कुजः कर्मगतश्च शुक्रः स मोदते विक्रमराज्यलक्ष्म्या।।९।।**

जिस राजा के अभिषेक में देवगुरु बृहस्पति लग्न अथवा त्रिकोण में हो, छठे मङ्गल, दशमें शुक्र हो तो वह राजा पराक्रमपूर्वक राज्यलक्ष्मी से प्रसन्न रहता है।।९।।

**दुश्चिक्यलाभारिगता विनार्की खस्थेऽमरेज्ये यदि बन्धुगेज्ञे।**
**यस्यात्र गोत्रे क्रियतेऽभिषेकश्चिरायुषस्त्वस्य पदं स्थिरं स्यात्।।१०।।**

जिस राजा के अभिषेक लग्न से तीसरे, छठे तथा लाभस्थान को त्याग कर शनि अन्यत्र हो, दशवें बृहस्पति और चतुर्थ में बुध होने पर अभिषेक हो तो ऐसा राजा दीर्घायु, स्थिरपद प्रतिष्ठा सम्पन्न होता है।।१०।।

**क्रमागतः–**

**ज्योतिर्विदाभरणे—**

विरोचनाधिष्ठितभाद्भमण्डलं सिंहासनाधस्तलमध्यतो न्यसेत्।।
सव्यापसव्योभयपार्श्वकोदितं तावत्तलस्थं भयुगं बलार्थहृत्।।
अधोंशयुग्मे भचतुष्टयं वरं पश्चाद्विदिक्के तु युगे प्रमापणम्।
ताराचतुष्के भचतुष्कमिन्द्रदिग्ध्वजाश्रितं मण्डलकीर्तिवर्द्धनम्।।
तो भवेदासन पीठमध्यभागं ताराद्वयं भीतिकरं प्रकीर्णयोः।
ज्योतिश्चतुष्कं जनयेदिहतं विभोश्चात्र श्रवीशर्क्ष चतुष्टयं लयम्।।
तारात्रयेच्छात्रविमालिसंस्थे पट्टाभिषेकान्नरदेवतः स्यात्।
सम्राडतश्चेदिह चक्रवर्ती स्वराडपाये ननु छत्रयुक्तस्थे।।

—(ज्यो. वि. १० अ. १४-१७, २१-२४ श्लोक)

**शुभेषुचन्द्रयोगेषु स्वयोगेषु शुभेषु च।**
**राजयोगेषु यो राजा ह्यभिषिक्तः क्षितीश्वरः॥११॥**

शुभ ग्रहों से युक्त चन्द्रमा हो अथवा स्वयं चन्द्र शुभ योग बना रहा हो अथवा राजयोग हो ऐसे काल में अभिषिक्त राजा पृथ्वीपति होता है॥११॥

**प्राग्भागे मन्दिरस्याथ गोमेयेन तु कारयेत्।**
**मण्डलं चतुरस्रं तद्वर्णकैः समलङ्कृतम्॥१२॥**

राज प्रासाद के पूर्वभाग में गोबर से लीपकर चतुरस्र मण्डल बनाकर अनेक रङ्गों से भलीभाँति सुशोभित करें (रंगोली बनावें)॥१२॥

**तत्र भद्रासनं सम्यगर्चयेत्सुमनोहरम्**
**गङ्गातोयसुसम्पूर्णस्वर्णकुंभोदकैः सह॥१३॥**

तब वहाँ भद्रासन का गंगाजल से परिपूर्ण स्वर्ण कलश के जल से सुन्दर रीति से पूजा अर्चना करनी चाहिए॥१३॥

**दिग्विदिक्षु स्थितैः शुक्लगन्धमाल्याम्बरार्चितैः।**
**शतौषधीमूलहेमरत्नसद्बीजपल्लवैः ॥१४॥**
**मृत्तिका वृषशृङ्गं च गजदन्तं च रोचनम्।**
**उत्पलं पद्मकं पद्मं मुस्तरेणुकुंकुमम्॥१५॥**
**राजसर्षपमुस्तं च देवदारु समन्वितैः।**
**देवस्यत्वेति मन्त्रेण आयुः पुष्टियशस्करैः॥१६॥**
**अब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रैश्च शुभलग्ने शुभान्विते।**
**भद्रासने स नृपतिरभिषेकं च कारयेत्॥१७॥**

दिशा-विदिशाओं में स्थित श्वेत, गन्ध, माला, वस्त्रादि से पूजित शतौषधी, मूल, स्वर्ण, रत्न तथा सदबीज पल्लवों द्वारा मिट्टी, बैल का सींग, गजदन्त, रोचन (रोली) कमलदण्ड, फूल, पद्म, नागरमोथा, कुमकुलधूलि राजसर्षप (पीली सरसों), नागरमोथा, देवदारु से युक्त "देवस्यत्वेति" मन्त्र से आयुपुष्टि एवं यश देने वाले के द्वारा अब्लिङ्ग तथा वेदमन्त्रों के द्वारा शुभग्रहों से युक्त शुभलग्न में भद्रासन पर राजा का अभिषेक करें॥१४-१७॥

**नीराञ्जनं च कर्त्तव्यं शङ्खवादित्रनिःस्वनैः।**
**आशिषो वाचनं कृत्वा चार्चयेच्च सुरान्पितृन॥१८॥**

शङ्ख तथा मृदङ्ग ध्वनि से आरती करनी चाहिए। तत्पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वक आशीर्वाद देकर देवता एवं पितरों की अर्चना करें॥१८॥

**आयुधानि च पट्टं च विप्रान्गन्धादिनाऽर्चयेत्।**
**शुक्लमाल्याम्बर धृतः प्राङ्मुखस्य महीपतेः॥१९॥**

अस्त्र, शस्त्र तथा पट्ट (पगड़ी) का गन्ध आदि से पूजन करके सफेद माला, वस्त्र इत्यादि को धारण करवाकर पूर्वाभिमुख बैठे हुए राजा को श्वेत माला, वस्त्र आदि धारण कर पूर्वाभिमुख बैठे हुए राजा के अस्त्र-शस्त्रों तथा पट्ट (पगड़ी) का तथा विप्रों की गन्ध आदि से पूजन करना चाहिए॥१९॥

**पट्टं शिरसि बन्धीयात्सिंहासनगतस्य च।**
**विप्रेभ्यो दक्षिणां दद्यान्मानयेन्मन्त्रपूर्वकम्॥२०॥**

सिंहासन पर बैठने वाले राजा को शिर पर पट्ट (पगड़ी) बाँधना चाहिए तथा मन्त्रपूर्वक ब्राह्मणों को दक्षिणा देनी चाहिए॥२०॥

**ब्रूयात्प्रत्यङ्मुखो राजा नमामि त्वां धरेति च।**
**प्राच्यां मामभिषिंचन्तु वसवस्तेजसे श्रियै॥२१॥**

राजा पूर्वाभिमुख होकर बोले, हे पृथ्वी! मैं तुम्हें प्रणाम करता हूँ! ऐश्वर्य-प्रताप और तेज की वृद्धि के लिए पूर्व दिशा में अभिषेक करें॥२१॥

**याम्यायामभिषिंचन्तु मां रुद्रा विजयाय च।**
**आदित्यास्त्वभिषिंचन्तु प्रतीच्यां दिशि वृद्धये॥२२॥**

हे रुद्रगण! दक्षिण दिशा में विजय के लिए मेरा अभिषेक करें, हे आदित्य! आप भी पश्चिम दिशा में वृद्धि के लिए मेरा अभिषेक करें॥२२॥

**विश्वेदेवास्तथोदीच्यामभिषिंचन्तु तुष्टये।**
**दिगीशास्त्वभिषिंचन्तु मां सदा विजयाय च॥२३॥**

हे विष्णु! उत्तर दिशा में सन्तुष्टि के लिए मेरा अभिषेक करें, हे दशदिक्पालों! सदैव विजय के लिए मेरा अभिषेक करें॥२३॥

**साम्राज्यमितिमन्त्रेण राजानं सम्यगर्चयेत्।**
**व्याघ्रचर्मण्यथासीनं नवालङ्कारभूषितम्॥२४॥**

बाघ के चमड़े के आसन पर बैठकर नये-नये अलङ्कारों से सुशोभित होकर "साम्राज्यमिति" मन्त्र के द्वारा राजा की अर्चना करनी चाहिए॥२४॥

**छत्रचामरसंयुक्तं राज्यचिह्नसमन्वितम्।**
**पुरोहितश्च जुहुयात्सावित्र्याऽग्नौ प्रयत्नतः॥२५॥**

छत्र, चामर तथा राजचिह्नों से युक्त पुरोहित के द्वारा सूर्य भगवान् के लिए होम करना चाहिए॥२५॥

**उदुम्बरसमिद्भिश्च आज्येनाष्टोत्तरं शतम्।**
**विद्वत्पुरोहितामात्यवृद्ध-बन्धु-समन्वितैः॥२६॥**

उदुम्बर (रूम्बल गूलर) की समिधाओं से घी के द्वारा १०८ बार विद्वान पुरोहित, मन्त्री, वृद्ध-भाई-बन्धुओं द्वारा होम करें॥२६॥

**तदा संचिन्त्य सप्ताङ्गं प्रजाधर्मेण पालयेत्।**
**एवं यः कुरूते सम्यक्स राजा वर्द्धते चिरम्॥२७॥**

तब सप्ताङ्ग चिन्तन करके धर्म के द्वारा प्रजा पालन करना चाहिए। इस प्रकार जो राजा भलीभाँति प्रजा पालन करता है, वह चिरकाल तक वृद्धि को प्राप्त करता है॥२७॥

**अभिषेकविधिं चोक्त्वा तदाचारः प्रवक्ष्यते।**
**अभिषेकगुणोपेतं राजानं धर्मशीलिनम्॥२८॥**

अभिषेक के गुणों से युक्त, धर्मपरायण राजा को अभिषेक विधि को बतलाकर, अब उसके आचरण को कहते हैं॥२८॥

**श्रीमान्कुलीनोऽव्यसनोऽतिशूरः श्रुतिस्मृतिज्ञः स्मृतिमान् सुदक्षः।**
**धर्मस्वरूपीत्वगदस्त्वलुब्धः शुचिः स्थिरो नीतिपरः सुरूपः॥२९॥**

धनवान, कुलीन, व्यसनरहित, शूरवीर, श्रुति-स्मृतियों का ज्ञाता, स्मरणशक्ति वाला, बहुत चतुर, धर्मस्वरूप, रोगविहीन, लोभरहित, पवित्र, स्थिर नीति परायण तथा सुन्दर रूपवाला होना चाहिए॥२९॥

**पथ्याभिलाषी निपुणः कलासु वक्ता सुवेषः प्रियवाक्कृतज्ञः।**
**वृद्धोपसेवी गुणवान्गम्भीरः स्वरन्ध्रगोप्ता पररन्ध्रवेत्ता॥३०॥**

पथ्य को चाहने वाला, कलाओं में निपुण, वक्ता, सुन्दर वस्त्रधारी, प्रिय वचन बोलने वाला, कृतज्ञ, वृद्धों का सेवक, गुणवान, गम्भीर, अपनी कमजोरियों को छुपाने वाला, दूसरे की कमजोरियों को समझने वाला होना चाहिए॥३०॥

**दातासहिष्णुर्विजितेन्द्रियश्च मानी सुसप्ताङ्गयुतो विनीतः।**
**उत्साहमन्त्रः प्रभुशक्तियुक्तश्चतुर्विधोपाययुतस्त्वभीतः॥३१॥**

दानी, सहनशील, इन्द्रियों पर विजयी, सुन्दर सप्ताङ्गयुक्त, विनम्र, उत्साह, मन्त्र एवं ईश्वरीय शक्ति से युक्त, चार प्रकार के उपायों से युक्त तथा निडर, भयरहित होना चाहिए॥३१॥

**पञ्चाङ्गमन्त्रे कुशलः प्रगल्भः षाड्गुण्यवृन्दे विजयी सदा सः।**
**पञ्चाङ्गमन्त्रं त्वथ षड्गुणानां नामानि वक्ष्ये च पृथक् पृथग्वै॥३२॥**

पञ्चाङ्गमन्त्र में कुशल, प्रगल्भ (ढीठ) छः गुणों से युक्त, राजा सदा विजयी होता है। पञ्चाङ्गमन्त्र एवं छः गुणों को भिन्न-भिन्न रीति से कहते हैं॥३२॥

**आद्योपायः सुप्रारम्भस्त्वर्थाप्तिर्गुणपूर्णता।**
**देशकाल विभागश्च विनिपातविचारणम्॥३३॥**

पहले उपायों द्वारा अच्छी तरह प्रारम्भ, धन की प्राप्ति, गुणों से परिपूर्ण, देशकाल विभाग का ज्ञाता, आधीन लोगों पर विचार करने वाला—॥३३॥

**स्वकार्यसिद्धिरित्येवं मन्त्रः पञ्चाङ्गसंज्ञकः।**
**सामभेद प्रदानाख्या दण्डोपायश्चतुर्विधः॥३४॥**

अपने कार्य को सिद्ध करने वाला, इस प्रकार ये पञ्चाङ्ग (पाँच संज्ञा वाले) मन्त्रों को कहा। साम, भेद प्रदान तथा दण्ड से चार प्रकार के उपाय कहे हैं॥३४॥

**सन्धिविग्रहयानाख्यद्वैधीभावसमन्वितः।**
**संश्रयश्चेति नीतिज्ञैः षड्गुणाः परिकीर्तिताः॥३५॥**

सन्धि, विग्रह, यान, द्वैधी, भावों से युक्त एवं संश्रय ये छः गुण नीति जानने वाले लोगों द्वारा कहे गये हैं॥३५॥

**एवं लक्षण सम्पूर्णः सेव्यः सेवकसज्जनैः।**
**वृद्धविद्वज्जनामात्यः सर्वदा परिसेवितः॥३६॥**

ऐसे सम्पूर्ण लक्षणों से युक्त, सेवक सज्जनों से सेवित, वृद्ध-विद्वान मन्त्रियों के द्वारा सदैव सेवित राजा को होना चाहिये॥३६॥

**भक्त्यारविरुदयात्पूर्वं चिन्तयेदात्मनो हितम्।**
**गीततूर्यरवैः सार्द्धं त्यजेच्छय्यां नृपोत्तमः॥३७॥**

भक्तिभाव से सूर्योदय से पूर्व अपने हित की चिन्ता करके उत्तम राजा को गीतवाद्य ध्वनियों से शय्या त्याग करनी चाहिए॥३७॥

**शृण्वन्मङ्गलवाक्यानि गृहान्निर्गव्य वीक्षयेत्।**
**गोहेमाग्निद्विजघृततोयसूर्यधराधिपान् ॥३८॥**

मङ्गल वाक्यों को सुनते हुए घर से बाहर निकल कर गौमाता, स्वर्ण, अग्नि, ब्राह्मण, देसी घी, जल और राजाओं को देखना चाहिए॥३८॥

**मौनी मूत्रपुरीषेतु ततः कुर्यादुदङ्मुखः।**
**गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्याद्विधानतः॥३९॥**

राजा, मल-मूत्र त्याग के समय चुप रहे, फिर उत्तरमुख होकर पवित्रता हेतु विधिवत स्नान करे, जिससे गन्ध-लेप आदि धुल जाँय॥३९॥

**प्राङ्मुखोदङ्मुखो भूत्वा दन्तधावनमाचरेत्।**
**वितस्तिदीर्घकाष्ठेन सत्वगापाटितेन च॥४०॥**

पूर्व मुख या उत्तरमुख होकर दातुन करनी चाहिए। एक वितस्ति लम्बी काष्ठ की छिलके सहित तोड़ी हुई दातुन होनी चाहिए॥४०॥

**नोट :** वितस्ति : बारह अङ्गुल की लम्बाई की माप।
(हाथ को पूरा फैलाकर अंगूठे से कन्नो अंगुली तक की दूरी)

**शिरीषलोध्रपनसनिम्बजम्बूकन्दबकैः।**
**कुटजांकोलबकुलैर्लक्ष्मीवृद्धिर्भवेत्सदा॥४१॥**

शिरीष (सिरस का पेड़) लोध्र (लाल या पीले फूलों वाला वृक्ष विशेष) पनस (कटहल) नीम, जामनु, कन्द (गाँठदार जड़) सखैन्खजड़, बक (वरैण्कड़) कुटज, अंकोल तथा मौलश्री की दातुन करने से सदैव लक्ष्मीवृद्धि (धनवृद्धि) होती है॥४१॥

**भान्डीरकरवीराम्लैर्नीपक्रमुकदाडिमैः।**
**करञ्जकोविदारार्वैरन्नवृद्धिर्भवेदिह॥४२॥**

भान्डीर (बड़ का या गूलर वृक्ष) कनेर आँवला, नीप (कदम्ब) बरसात में फूल देने वाला—क्रमुक (सुपारी) अनार, करञ्ज (एक वृक्ष का नाम, औषधी विशेष) कोविदार (एक वृक्ष का नाम, कचनार) मन्दार के द्वारा अन्न की वृद्धि होती है॥४२॥

**अपामार्गवटप्लक्षखदिरोदुंबरार्जुनैः।**
**विल्वपुन्नागककुभैरायुर्वृद्धिर्भवेद्ध्रुवम्॥४३॥**

अपामार्ग (पुठकंडा) वट, पलाश, खदिर (खैर) उदुम्बर (रूम्बल) अर्जुन, वेल, पुन्नाग (जयफल या सफेदकमल) ककुभ (अर्जुनवृक्ष) या चम्पकपुष्प के द्वारा निश्चित तौर पर आयु वृद्धि होती है॥४३॥

**श्रीखण्डचम्पकांबष्ठनारिकेल विभीतकैः।**
**कंकुष्ठशालनारङ्गनिचुलैरतुलं यशः॥४४॥**

चन्दन, चम्पा, अम्बष्ठ (यूथिका, जूही फूल) नारियल, बहेड़ा, कंकुष्ठशाल, नारंगी छाल के द्वारा अत्यन्त यश प्राप्ति होती है॥४४॥

**निचुल :** (ऊपर से शरीर ढकने का कपड़ा या चादर)

**पालाशाश्वत्थजम्बीरमातुलुङ्गकुलाम्बकैः।**
**अगस्तितालहिन्तालकङ्ककाष्ठैश्च निस्वता॥४५॥**

पलाश, पीपल, जम्बीर, मातुलुङ्ग, कुलाम्बक, अगस्त, ताल (ताड़) हिन्तालक तथा कङ्ककाष्ठ से गरीबी मिलती है॥४५॥

तन्त्रणीकशमीवेणुमध्वामलकवंजुलैः।
विकङ्कतव्याघ्रपादसर्जकृष्णैर्यशः क्षयः॥४६॥

तन्त्रणीक, शमी, बाँस, मधु, आँवला, वंजुल, विकंकत, व्याघ्रपाद तथा सर्जकृष्ण के द्वारा यश क्षय होता है॥४६॥

हरीतकीविष्ठिनागकेतकोद्दाल तापसैः।
कार्पासाटकिवागूचीबलाश्लेष्मान्तकैर्गदाः॥४७॥

हरीतक (हरड़) विष्ठिनाग, केतकी, उद्दाल, तापस, कार्पास (कपास) आटकि, बागूची, बला तथा लसूड़ा से रोग होता है॥४७॥

भल्लातको देवादारुर्मदयन्तीक्षुवालकैः।
त्रिणांगुलाश्मलोहाद्यैः शत्रुभ्यः साध्वसंततः॥४८॥

भल्लातक, देवदारु, मदयन्ती, लघुइक्षु त्रिणांगुल, पत्थर एवं लोह इत्यादि से शत्रुभय तथा थकावट होती है॥४८॥

शृण्वन्हरिकथालापान्सन्ध्यादि नियमं चरेत्।
राजसर्षपदूर्वेभदाकतीर्थाम्बुमृत्तिकाः ॥४९॥

श्रीहरिकथा तथा आलाप सुनने तथा सन्ध्यादि नियमों का पालन करते हुए, पीली सरसों, दूर्वा, सम्पन्नता (मदार) से पूर्ण तीर्थों का जल एवं मिट्टी आदि से प्रातः कृत्य करें॥४९॥

धारयित्वा सहेमाज्यावेक्षणं दर्पणेऽपि वा।
नत्वा देवद्विजगुरुन्दद्याद्गां वत्ससञ्युताम्॥५०॥

धारण करके, स्वर्ण, घी एवं दर्पण सहित देवता, ब्राह्मण तथा गुरुजी को प्रणाम करके बछड़े सहित गाय दान देनी चाहिए॥५०॥

लब्ध्वा तेभ्यः स्वस्तिवाक्यं तिथिश्रवणपूर्वकम्।
कुर्याद्वचांसि भिषजां सम्यग्ज्ञाप्य तनुः स्थितिम्॥५१॥

उनसे कल्याणप्रद वाक्यों को सुनकर तिथ्यादि श्रवणपूर्वक अपने राजवैद्य से अपने शरीर की सही स्थिति का ज्ञान करना चाहिए। अर्थात् स्वास्थ्य परीक्षण कराना चाहिए॥५१॥

शुक्लमाल्याम्बरधरः सर्वाभरणभूषितः।
भृत्यशिष्टाप्तकाव्यज्ञैर्मन्त्रिनैयायिकैः सह॥५२॥
सभां प्रविश्य राज्याभिवृद्धिं धर्मेण चिन्तयेत्।
ततो माध्याह्निकं कृत्यं कृत्वा ग्रसनपूर्वकम्॥५३॥

सफेद माला, सफेद वस्त्र धारण कर, सभी प्रकार के आभूषणों से सुशोभित, शिष्टाचार सम्पन्न, नौकर, काव्यशास्त्रज्ञ मन्त्रियों तथा नैयायिको सहित राजसभा में प्रवेश करके राज्य अभिवृद्धि के लिए धर्मानुसार चिन्तन करें। तत्पश्चात् मध्याह्न कालिक कृत्यों को करके भोजन करें॥५२-५३॥

**पुत्राद्यैः सह भुञ्जीत शृण्वन्गाथां हरेशयोः।**
**इष्टालापांश्च निर्वर्त्य गजाश्वादींश्च वीक्षयेत्॥५४॥**

भोजन अपने पुत्रों के साथ बैठकर करें तथा भगवान् शङ्कर एवं विष्णु की गाथाएं सुनकर अपनी अभीष्ट व्यक्तियों से वार्तालाप करते हुए हाथी एवं घोड़ों को देखें॥५४॥

**सायं सन्ध्यादिकं कृत्वा सभां प्राग्वत्प्रवेशयेत्।**
**ततो राज्ञो विलासिन्यः कुर्यात्सन्ध्याबलिक्रियाम्॥५५॥**

सायंकालीन सन्ध्यादि करके पहले की भाँति सभा में पुनः प्रवेश करके तत्पश्चात् विलासिनी रानियों के साथ सन्ध्या बलि क्रियाओं को सम्पन्न करें॥५५॥

**तैजसेषु च पात्रेषु नैकस्मिन्नथ वा त्रिषु।**
**तत्तद्राज्यानुसारेण पञ्चस्वपि च सप्तसु॥५६॥**
**तेषु कार्याण्यष्टदलपद्मान्यन्यैर्विचित्रितैः।**
**दलेषु कर्णिकायां च दीपैर्बहुभिरुज्ज्वलैः॥५७॥**

तेज सम्पन्न पात्रों में दो या तीन बार उन-उन राज्यों के अनुसार पाँच या सात में अष्टदल कमल बनाकर अन्य कमलों द्वारा सुशोभित दलों और कर्णिकाओं पर अनेक प्रकार के दीप प्रज्वलित करके—॥५६-५७॥

**नीराजयेद्रक्षमन्त्रैः सह मङ्गलपाठकैः।**
**पूर्ववच्चिंयेद्राज्यं प्रेषयेद् गुप्तचारकान्॥५८॥**

रक्षामन्त्रों एवं मङ्गल पाठकों सहित आरती करके भलीभाँति राज्य का पूर्ववत् चिन्तन करते हुए अपने गुप्तचरों को भेंजे॥५८॥

**अन्तःपुरं सम्प्रविशेन्नियम्यत्वंगरक्षकान्।**
**तासां मनोरथान्कृत्वा प्राग्वृत्तं समनुस्मरेत्॥५९॥**

अन्तःपुर में प्रवेश करते हुए अङ्ग रक्षकों के मनोरथों को पूरा करके, पूर्व वृत्तान्त को समझाते हुए उनको छोड़ दें॥५९॥

**एवं समाचरेन्नित्यं सदा सत्कीर्तिमाप्नुयात्।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन राज्यं धर्मेण पालयेत्॥६०॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**राजाभिषेकाध्यायस्त्रस्त्रिंशः॥३३॥**

इस प्रकार प्रतिदिन कार्य करता हुआ राजा सत्कीर्ति को प्राप्त करता है; इसलिए सभी प्रयत्नों से राज्य का धर्म से पालन करें॥६०॥

इति श्रीब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठ संहिता के राजाभिषेकाध्याय की
"नारायणी" हिन्दी टीका समाप्त॥३३॥

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) पी.यू.धा.टी. वलिष्ठैः (—बलस्थैः)
०२. (अ) ज१,२-याशतवंशसंस्थे० (—तदंशसंस्थैः)
(ब) ज१,२-विपुलं च मैत्रीं (—विपुलां च कीर्तितम्)
०३. (ब) ज१,२-शसंतिराक्षां, ज२-शसंतिराज्ञां (—दिशन्तिराज्ञां)
(ब) ज१-मृशंविराटीः, ज२-भृशमंविविराटाः (—भृशमम्बराटाः)
०४. (अ) ज१-स्वजन्मलग्नादष्ट, ज२-स्वजन्मलग्नादषु (—स्वजन्मलग्नाद)
(ब) ज१-वापदास्थिरं (—वा पदंस्थिरं)
०५. (अ) ज१-विक्तामपा, ज२-विक्रापपा (—रिक्तास्वमायां)
ज१-२-वर्ज्येषु (—विवर्जिते)
ज१-वारेषदिनेषुचैव, ज२-वारेषुदितेषुवैवं (—वारदिनेषु चैव)
(ब) ज१,२-वलेदिने (—खले दिने)
ज१, २-ऋक्षशशीतयोश्च ज. मो. ऋक्षनिशेर्तथैव (—ऋक्षनिशीशयोश्च)
ज१,२-नैधनवेधामिषेकदृष्टः (—नैधनेभेत्वभिषेक इष्टः)
०६. (ब) ज१-सप्तचतुर्दगस्तं, ज२-सप्तचतुर्दगस्ते (—सप्तचतुर्थसंस्थैः)
ज१,२-सर्वयुतेविहीनः (सर्वसुखैर्विहीनः)
०७. (अ) ज१-कर्मगतेप्रवायु, ज२-कर्मगतैः प्रनायुः
मु. पु.—वीर्यतुतैश्चपार्थैः (—वीर्ययुतैश्चपापैः)
ज१,२-नूनंव्ययाष्टारिगतः (—लग्न व्ययाष्टारिगतः)
०८. (अ) ज१,२-त्रिकोणाकेन्द्र विधताय (—केन्द्रत्रिकोणत्रिधनाय)
०९. (अ) ज१,२-लग्न (—लग्ने) ज१,२-त्रिकोण (—त्रिकोणे)
(ब) ज१,२-राजलक्ष्मी (—राजलक्ष्म्या)
१०. (अ) ज१,२-बंधुगेहे, ज.मो. वन्युगेहे (—बन्धुगेह्ने)
(ब) ज१-कृयतेमिषेषविपुषस्तथ, ज२-क्रियतेभिषेके विपुषस्तस्य
पी. टी.-क्रियतेऽभिषेकः सम्पत्स्थिरा तस्यचिरायुरेषः
—(क्रियतेऽभिषेकश्चिरायुषस्त्वस्य)
११. (अ) ज१,२-ज. मो. स्त्वभिषिक्त (—ह्यभिषिक्तः)
१२. (ब) ज१,२-चतुरस्त्रंतुक्वराकिः (—चतुरस्त्रं तद्वर्णकैः)
१३. (अ) ज१,२-सुमनोरमं (—सुमनोहरम्)

(ब) ज१,२-सम्पूर्णा (—सुसम्पूर्ण)

१४. (अ) ज१,२-दिशिदिक्षु (—दिग्विदिक्षु)

ज१,२-माल्यांवराक्षेतेः (—माल्याम्बरार्चितैः)

१५. (अ) ज१-मुर्तिकान् वृषसिंहं, ज२-मूर्तिकाणसिंह (—मृत्तिकावृषः-शृङ्गं)

(ब) ज१-पद्ममुशिरांगु, ज२-पदममुशीरांगु (—पद्मं मुस्तरेणु)

१६. (अ) ज१,२-राजसर्वेपिमुस्तश्च (—राजसर्षपमुस्तं च)

१७. (अ) ज१,२-अभिषेकैर्वेदमत्रैः (—अब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रैश्च)

ज१,२-शुभस्थिते. (—शुभान्विते)

(ब) ज१,२-भद्रासनसथं (—भद्रासने स)

१९. (अ) ज१,२-विप्राणां यदिनाच्येत (—विप्रान्गन्धादिनाऽर्चयेत्)

(ब) ज१,२-महीपतिः (—महीपतेः)

२०. (अ) ज१,२-मितदगतियां (—त्वांधरेति च)

२३. (अ) ज१,२-वृद्धये (—तुष्टये)

२५. (अ) ज१-भृत्यचारससंयुक्तं, ज२-भृत्यचामरसंयुक्तं (—छत्रचामरसञ्युक्तं)

२६. (अ) ज१-हंदुवारसमिभिश्च, ज२-संदुवरंसम्दभिश्च (—उदुम्बर समिद्भिश्च)

(ब) ज१-वृद्धौवैसंमन्वितैः, ज२-वृद्धोर्वैधतसमन्वितैः (—वृद्धबन्धुसमन्वितैः)

२८. (अ) ज१-अभिषेकविचोक्ता, ज२-अभिषेकविधिः प्रोक्ता (—अभिषेक विधिं चोक्त्वा)

२९. (अ) ज१-ज. मो. सुतवान् (—स्मृतिमान्)

(ब) ज१,२-सुरूपाः (—सुरूपः)

३०. (अ) ज.मो. अर्थाभिलाषी (—पथ्याभिलाषी)

ज१-वृहयवाक्कृचा, ज. मो. प्रियवान् कृतज्ञः (—प्रियवाक् कृतज्ञः)

(ब) ज१-परंध्रवेती (—पररन्ध्रवेत्ता)

३१. (अ) ज१,२-दारा (—दाता)

ज१,२-मानीत्वसप्ताङ्गयुगांतीतः (—मानी सुसप्ताङ्गयुतो विनीतः)

(ब) ज१,२-चतुर्विधोवापसुतश्च (—चतुर्विधोपाययुतः)

३२. (अ) ज१,२-कुशलं (—कुशलः) ज१,२-प्रकल्प (—प्रगल्भः)

(ब) ज१, २-पृथक पृथक (—पृथक् पृथग्वै)

३३. (अ) आच्योप्रायः (—आद्योपायः)

(ब) ज१,२-निवारतां (—विचारणम्)

३५. (अ) ज१,२-भावासप्तत (—भावसमन्वितः)

३६. (ब) ज१,२-पतिसेवितः (—परिसेवितः)

३७. (अ) ज१,२-त्यक्तामिद्मोदयात्पूर्वं, मु. पु. सप्तभिरूदयात्सर्वं (—भक्त्यारविरूदयात्पूर्वं)

३८. (ब) ज१-गेहमग्भि, ज२-गेहमग्नि (—गोहेमाग्नि)

जर-वराधिपात्, ज२-वराधिपार (—धराधिपान्)

३९. (अ) ज१-कुर्यादमुत: (—कुर्यादुदङ्मुख:)

(ब) ज१-शौच, ज२-शैवं (—शौचं)

४०. (अ) ज१,२-साधन्यकापाठितेन च (—सत्वगापाटितेन च)

४१. (अ) ज१-शिरीखलोध्रयतम्, ज२-शिलोखलोध्रयतन (—शिरीषलोध्रपनसं)

मु. पु. कदम्बकै: (—कन्दबकै:)

(ब) ज१-कुटजाकोटकुटैर्लक्ष्मी, ज२-कुटजाकोटक्दुलै: लक्ष्मी (—कुटजांकोलबकुलैर्लक्ष्मी)

४३. (अ) ज१,२-वदर्यो (—खदिरो)

४४. (अ) ज१-काश्वतय, ज२-काश्वत्य (—कांबष्ठ)

(ब) ज१,२-सारसारंमतुंडुलैर्विपुलं (—शालनारङ्गनिचुलैरतुलं)

४६. (अ) ज१,२-तिंत्रीणां (—तन्त्रणीक)

ज१-समीवोयु, ज२-समीवायु (—शमीवेणु)

४७. (अ) ज१-कांविष्टगगेतदोर्ग्जलपातसै:, ज२-कोविष्टगकेतजोर्जलपातसै: (—हरीतकी विष्ठिनाकेतकोद्दालतापसै:)

(ब) ज१-कर्णासाज, ज२-कर्णासावमि (—कार्पासाटकि)

४८. (अ) ज१,२-भल्लातकी (—भल्लातको)

ज१-देवदरूमक्ष्येतज बालकै:, ज२-देवदारुमर्क्षेतिजत्रबालकै: (—देवदरूर्मदयन्तीक्षु वालकै:)

४९. (अ) ज१-श्रुणुवरीकथा, ज२-शुंडंबरीकथा (—शृण्वन्हरिकथा)

ज१-लापात्सव्यादित्रियमं, ज२-लापात्सव्यादीत्रियमं (—लापान्सन्ध्यादि नियमं)

ज१,२-दूर्वाचदानवीयातुमृत्तिका मु. पु. दूर्वेभदानतीर्थाम्बुमृत्तिका: (—दूर्वेभदाकतीर्थाम्बु मृत्तिका:)

५०. (अ) ज१,२-धारहत्वासहोमाज्य (—धारयित्वा सहेमाज्यावेक्षणं)

५१. (अ) ज१-उच्चाति, ज२-उद्धनिभ्य (—लब्ध्वातेभ्य:)

(ब) ज१-कुर्याद्वेवीसीविषवा, ज२-कुर्याद्ववीसिविषजां (—कुर्याद्वचांसि भिषजां)

५२. (अ) ज१,२-काव्यदोमंत्रनैयायिकै: (—काव्यज्ञैर्मन्त्रिनैयायिकै:)

५३. (अ) ज१,२-राज्याभिवृद्धौ (—राज्याभिवृद्धि)

(ब) ज१,२-कर्मकृत्वा (—कृव्यंकृत्वा), ज१,२-ग्रासन (—ग्रसन)

५४. (अ) ज१-पुत्रोष्व:, ज२-पुत्रोच्च: (—पुत्राद्यै:)

ज१-भुजात (—भुञ्जीत)

ज१-शुरात्तार्याहरीतयो:, ज२-श्रणुताया: हरीतयो (—शृण्वन्गाथां हरेशयो:)

(ब) ज१, २-गवादिश्चशिक्षयेत् (—गजाश्वादींश्च वीक्षयेत्)

५५. (अ) ज१,२-सार्पशलाध्यादिक (—सायंसन्ध्यादिकं)

५७. (अ) ज१,२-विचित्रिकैः (—विचित्रितैः)

५८. (ब) ज१,२-गुप्तवाचकान् (—गुप्तचारकान्)

६०. (अ) ज१,२-साकीर्तिम् (—सत्कीर्तिम्)

पुष्पिका: ज१-इति श्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां राजाभिषेक स्वरूपलक्षणं नाम त्रयत्रिंशतमोध्यायः॥३३॥

पुष्पिका: ज२-इति श्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां राजाभिषेक स्वरूपलक्षणं नाम त्रयत्रिंशतमोध्यायः॥३३॥

***

# ३४

# अश्वारिष्टशान्त्याध्यायः

### अश्वशान्ति

**भूयतेर्यस्य सन्त्यश्वाः स एव विजयी रणे।**
**श्रीमान्स एव तस्माद् हि कार्यमश्वाभिरक्षणम्।।१।।**

जिस राजा के पास घोड़े होते हैं, वही राजा युद्ध में विजयी एवं श्रीमान् होता है। इसलिए घोड़ों की रक्षा के उपाय कहते हैं।।१।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

अश्वशान्तिं प्रवक्ष्यामि तेषां दोषापनुत्तये।
भानुवारे च संक्रान्तावयने विषुवद्वये।।

—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय, १ श्लोक)

**वृहद्दैवज्ञरञ्जने—**

भूपतेर्यस्य सन्त्यश्वाः स राजा विजयी रणे।
श्रीमान्स एव तत्तस्मात्कार्यमश्वाभिरक्षणम्।।
सूर्ये स्वात्यर्क्ष संपाते जायन्ते बहवो रूजः।
यदा यदा रोगजनमश्वनामथवा तदा।।
सलोकपालं रेवन्तं पूजाहोमं च कारयेत्।।

—(अ० ८२. ६५-६६ श्लोक)

**सूर्ये स्वात्यर्क्षसञ्याते जायन्ते बहवो गदाः।**
**यदा यदा रोगजननमश्वानामथवा तदा।।२।।**
**सलोकपाल हेरम्बपूजां होमं च कारयेत्।**
**भानुवारे च सङ्क्रान्तावयने विषुवद्द्वयोः।।३।।**

सूर्य के स्वाति नक्षत्र में आने पर बहुत से रोगों की उत्पत्ति होती है, जब घोड़ों में रोग आ जाये तो उस समय मङ्गलवार, संक्रान्ति दिवस, उत्तरायण-दक्षिणायन में तथा दोनों विषुव संक्रान्तियों में लोकपालों सहित श्रीगणेश की पूजा तथा होम इत्यादि करना चाहिए।।२-३।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

दिनक्षये व्यतीपाते द्वादश्यामश्विभेऽपि वा।
अथवा भास्करे स्वाती संयुक्ते च विशेषतः।।

ईशान्यां त्वष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मण्डपम्।
चतुर्द्वारवितानस्त्रक्तोरणाद्यैरलंकृतम् ॥
—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय २-३ श्लोक)

**क्रमागतः–**

**वृहद्दैवज्ञरञ्जने—**

भानुवारे च संक्रान्तावयने विषुवद्वये॥
दिनक्षये व्यतीपाते द्वादश्यामश्विभेपि वा॥
ऐशान्यामष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मंडपम्॥
चतुर्द्वारं वितानस्त्रक्तोरणाद्यैरलंकृतम्॥
तन्मध्ये वेदिका तस्य पञ्चविंशतिमांशतः॥
मण्डपस्य बहि कुण्डं प्राच्यां पूर्वोक्तलक्षणम्।
वरयेत्पूर्वद्विप्रान्स्वस्ति वाचनपूर्वकम्॥
सूर्य पुत्र हयारूढं पञ्चवक्त्रंदशांबकम्।
रक्तवर्णांकुशाखड्गं रेवन्तं द्विभुजं स्मरेत॥
—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय ८२, ६७-७१ श्लोक)

**दिनक्षये व्यतीपाते द्वादश्यामश्वभेऽपि वा।**
**ऐशान्यामष्टर्भिहस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मण्डपम्॥४॥**

दिनक्षय (तिथिक्षय) होने पर, व्यतीपात योग में, द्वादशी तिथि अथवा अश्विनी नक्षत्र में, ईशानकोण में चार अथवा आठ हाथ चौड़ा मण्डप निर्माण करें॥४॥

**चतुर्द्वारवितानस्त्रक्तोरणाद्यैरलङ्कृतम्।**
**तन्मध्ये वेदिकान्तस्य पञ्चविंशतिमानतः॥५॥**

वेदिका से २५ हाथ की दूरी पर चारों तरफ द्वार वाले मण्डप का निर्माण करें तथा माला और तोरण से उसे सुसज्जित करें॥५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

तन्मध्ये वेदिकातस्य पञ्चविंशांशमानतः।
मण्डपस्य वहिः कुण्डं प्राच्यां हस्तप्रमाणतः॥
वरयेच्छ्रोत्रियान् विप्रान् स्वस्ति वाचनपूर्वकम्।
सूर्यपुत्रं हयारूढं पञ्चवक्त्रं त्रियम्बकम्॥
—(ना. सं.-अश्वशान्त्याध्याय ४-५ श्लोक)

**मण्डपस्य बहिः कुण्डं प्राच्यां पूर्वोक्तलक्षणम्।**
**वरयेत्पूर्ववद्विप्रान्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ॥६॥**

मण्डप के बाहर पूर्व दिशा में पूर्वोक्त लक्षणों के अनुसार कुण्ड का निर्माण करें। अनन्तर स्वस्ति वाचनपूर्वक ब्राह्मणों का वरण करें।।६।।

**सूर्यपुत्रं हयारूढं पञ्चवक्त्रं दशाम्बकम्।**
**रक्तवर्णं कशाखड्गं रेवन्तं द्विभुजं स्मरेत्।।७।।**

सूर्यपुत्र घोड़े पर आरूढ़, पाँच मुख वाले, दश नेत्रों वाले, लालवर्णयुक्त, चाबुक, खड्ग तथा दो भुजाओं वाले रेवन्त का स्मरण करें।।७।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

शुक्लवर्ण वसा खड्गं रैवन्तं द्विभुजं स्मरेत्।
सूर्य पुत्र नमस्तेऽस्तु नमस्ते पञ्च वक्त्रक।।
नमोगन्धर्वदेवाय रैवन्ताय नमो नमः।
मन्त्रेणानेन रैवन्तं वस्त्रगन्धाक्षतादिभिः।।
विधिवद्वेदिका मध्ये तण्डुलोपरि पूजयेत्।
कार्यास्तत्र गणाः पञ्चरौद्रशाक्राश्च वैष्णवाः।।

—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय ६-८ श्लोक)

**नमस्कार पूजनमन्त्र**

**सूर्यपुत्र नमस्तेऽस्तु नमस्ते पञ्चवक्त्रक।**
**नमो गन्धर्वदेवाय रेवन्ताय नमो नमः।।८।।**

सूर्यपुत्र (शनि) आपको प्रणाम! पाँच मुख वाले को प्रणाम! गन्धर्व देव के लिये नमस्कार तथा रेवन्त पूषा देवता के लिये बार-बार नमस्कार है।।८।।

**पूजा प्रकार**

**मन्त्रेणानेन रेवन्तं गन्धवस्त्राक्षतादिभिः।**
**विधिवद्वेदिकामध्ये तण्डुलोपरि पूजयेत्।।९।।**

इस मन्त्र के द्वारा रेवन्तं (पूषा देवता) को गन्ध, वस्त्र, अक्षत आदि से विधिपूर्वक वेदिका के मध्य में चावलों पर रखकर पूजा करनी चाहिए।।९।।

**क्रमागतः-**

**वृहद् दैवज्ञरञ्जनेपूजाप्रकारः—**

मन्त्रेणानेन रेवतं गन्धवस्त्राक्षतादिभिः।
विधिवद्वेदिकामध्ये तण्डुलोपरि पूजयेत्।।
परितः स्वस्वमन्त्रैस्तान् लोकपालाश्च पूजयेत्।
प्राग्वदगजयोर्मध्ये देवं तस्य समीपतः।।
ऋग्वेदादियजुर्वेदान्याये द्वारेषु पूर्वतः।
पूर्णकुंभान्रक्त वर्णान्गन्धवस्त्राद्यलंकृतान्।।

द्वारे संस्थाप्य चालिङ्गैर्मन्त्रै कार्यं समर्चनम्।
रेवंत पूजामाचार्यः कृत्वा गृह्यविधानतः।।
स्थापयेत्तं व्याहृति भिस्तस्मिन्कुंडे हुताशनम्।
ततस्तत्राज्यभागान्ते मुख्याहुति मत्तंद्रितः।।
आग्नेयेति स्वाहेति हुत्वा घृतेनादौ प्रयत्नतः।
रेवतं पूजा मन्त्रेण आद्यन्त प्रणवेन च।।
पालाश समिधाज्यान्नैः पृथगष्टोत्तरशतम्।
आचार्यो जुहुयाद्व्रीहीन तिलान्व्याहृतिभिस्ततः।।
एकरात्रं त्रिरात्रं वा नवसप्तथापि वा।
अनेन विधिना कुर्यादेकभक्तो जितेन्द्रियः।।

—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय ८२, ७३-८० श्लोक)

**परितः स्वस्वमन्त्रैस्ताँल्लोकपालांश्च पूजयेत्।**
**प्राग्वद्गजाः पञ्च षड्वै रेवन्तस्य समीपतः।।१०।।**

रेवन्त के समीप पूर्ववत् पाँच-छः हाथियों तथा चारों ओर अपने-अपने मन्त्रों के द्वारा उन-उन लोकपालों का पूजन करना चाहिए।।१०।।

क्रमागतः-

वृहद्दैवज्ञ रञ्जने पूजा प्रकारः—

जपादिपूर्वकं सम्यक् कर्त्ता पूर्णाहुति नयेत्।
ततो मङ्गल घोषैश्च नैवेद्यं च समर्पयेत्।।
ततस्तद् घृतशेषेण सहकुंभोदकेन च।
प्रदक्षिणां व्रजेदश्वान्स प्रीतो बलिमुत्तमम्।।
जीमूतस्येत्यनूवाकान् चतुरो दिक्षु निक्षिपेत्।
आचार्याय ततो दद्यादक्षिणां गोचतुष्टयम्।।
तदर्धं वा तदर्धं वा यथा वित्तानुसारतः।
ब्राह्मणेभ्यो याचकेभ्य आचार्यार्द्धं प्रदापयेत्।।
ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चाच्छान्ति वाचनपूर्वकम्।
एवं यः कुरूते सम्यगश्वशान्तिमनुत्तमम्।।
मुच्यते सर्वरोगेभ्यो वर्द्धते नात्रसंशयः।
ऐश्वर्यं चिरलक्ष्मीं च लभते सर्वदा नृपः।।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्विमां शान्तिं समाचरेत्।।

*—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय ८२, ८१-८७ श्लोक)*

**ऋग्वेदादि चतुर्वेदाञ्जपेद् द्वारेषु पूर्वतः।**
**पूर्णकुम्भान् रक्तवर्णान् गन्धवस्त्राद्यलङ्कृतान्।।११।।**

रक्तवर्ण वाले पूर्ण कुम्भों को वस्त्रादि से सुशोभित करके ऋग्वेदादि चतुर्वेदों का जप द्वारों के पूर्व में करना चाहिए॥११॥

क्रमागतः–

नारदः–

सगणपति सौराश्च रैवन्तस्य समन्ततः।
ऋग्वेदादि चतुर्वेदान्यजेद्द्वारेषु पूर्वतः॥
रक्तवर्णान्पूर्ण कुम्भान्वस्त्रगन्धाद्यलंकृतान्।
पञ्चत्वकपल्लवोपेतान्पञ्चामृत समन्वितान्॥
द्वारेषु स्थाप्य तल्लिङ्गैर्मन्त्रैर्विप्रान् प्रपूजयेत्।
एवं तु पूजामाचार्यः कृत्वा गृह्यविधानतः॥

—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय ९-११ श्लोक)

**पञ्चत्वक्पल्लवोपेतानष्टमृद्भिः सुसञ्युतान्।**
**द्वारेषु स्थाप्य चाब्लिङ्गमन्त्रैः कार्यं समर्चनम्॥१२॥**

पञ्चत्वचा युक्त पञ्चपल्लवों, अष्टमृत्तिका से सञ्युक्त द्वारों में स्थापना करके "अब्लिङ्गमन्त्रों" द्वारा अर्चना करनी चाहिए॥१२॥

**रेवन्तपूजामाचार्यः कृत्वा गृह्यविधानतः।**
**स्थापयेत्तं व्याहृतिभिस्तस्मिन्कुण्डे हुताशनम्॥१३॥**

रेवन्त की पूजा में नियुक्त आचार्य को गृह्यसूत्र के विधान से व्याहृतियों के द्वारा कुण्ड में अग्नि स्थापन करें॥१३॥

**ततस्तत्राज्यभागान्ते मुखाहुतिमतन्द्रितः।**
**अग्नये स्वाहेति हुत्वा घृतेनादौ प्रयत्नतः॥१४॥**

तत्पश्चात् घी के भागान्त मुख आहुति आलस्य रहित होकर दे "अग्नयेस्वाहा" इतना कहकर पहले प्रयत्न से घी की आहुति दे॥१४॥

क्रमागतः–

नारदः–

स्थापयेत्तु व्याहृतिभिस्तस्मिन्कुण्डे हुताशनम्।
ततस्तदाज्यभागान्ते मुख्याहुतिमतन्द्रितः॥
"अग्नयेस्वाहे" ति हुत्वा घृतेनादौ प्रयत्नतः।
एवं तु पूजामन्त्रेण ह्याद्यं तु प्रणवेन च॥
पलाश समिदाज्यान्नैः शतमष्टोत्तरं हुनेत।
प्रत्येकं जुहुयात्भक्त्या तिलान्व्याहृतिभिस्ततः॥

**—(ना. सं.-अश्वशान्ति अध्याय १२-१४ श्लोक)**

**रेवन्त पूजा मन्त्रेण आद्यन्तप्रणवेन च।**
**पलाशसमिधाज्यन्नैः पृथगष्टोत्तरशतम्॥१५॥**

रेवन्त पूजा मन्त्र से आदि-अन्त में प्रणव (ॐकार) मन्त्र के द्वारा पलाश समिधा, घी तथा अन्न के द्वारा अलग-अलग १०८ बार आहुति दें॥१५॥

**आचार्यो जुहुयाद् व्रीहींस्तिलान्व्याहृतिभिस्ततः।**
**एकरात्रं त्रिरात्रं वा नवरात्रमथापि वा॥१६॥**

आचार्य को चावल, तिल तथा व्याहृतियों द्वारा एक रात्रि, तीन रात्रि अथवा नौ रात्रि तक होम करना चाहिए॥१६॥

**अनेन विधिनां कुर्यादेक भुक्तो जितेन्द्रियः।**
**जपादिपूर्वकं सम्यक्कर्त्ता पूर्णाहुतिं चरेत्॥१७॥**

इस विधि से नक्तव्रत रखकर, जितेन्द्रिय रहकर जपादिपूर्वक भलीभाँति होमादि करके पूर्णाहुति देनी चाहिए॥१७॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

एक रात्रं त्रिरात्रं वा नवरात्रमथापि वा।
अनेन विधिना कुर्याद्यथाशक्त्या जितेन्द्रियः॥
जपादिपूर्वक सम्यक् कर्त्ता पूर्णाहुति हुनेत्।
ततो मङ्गलघोषैश्च नैवेद्यं च समर्पयेत्॥

—(ना. सं.-अश्वशान्ति, १५-१६ श्लोक)

**ततो मङ्गलघोषैश्च नैवेद्यं च समर्पयेत्।**
**ततस्तद् हुतशेषेण सह कुंभोदकेन च॥१८॥**
**प्रदक्षिणां व्रजन्त्यश्वान्सुप्रीतो बलिमुत्तमम्।**
**जीमूतस्येत्यनुवाकान् चतुरो दिक्षु निक्षिपेत्॥१९॥**

तत्पश्चात् मङ्गल वाद्यों द्वारा नैवेद्य अर्पित करना चाहिए। पुनः बची हुई हवन सामग्री एवं आमन्त्रित कुंभ जल लेकर प्रदक्षिणा करता हुआ घोड़ों की अच्छी प्रीति के लिए ''जीमूतस्य'' इस अनुवाक्य के द्वारा उत्तम बलि सामग्रियों को चारों ओर फेंके॥१८-१९॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

**ततस्ते हुतशेषेण सम्यक्कुम्भोदकैर्द्विजाः।**
**प्रादक्षिण्य व्रजन्तोऽश्वाञ्जयन्त बलिमुत्तमम्॥**
**जीमूतस्येत्यनूवाकाञ्चतुर्दिक्षु विनिःक्षिपेत्।**
**आचार्ययततो दद्यादक्षिणां निष्कपञ्चकम्॥**

तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा यथाशक्त्यनुसारतः।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्धेनुं वस्त्रं धनादिकम्।।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।
एवं यः कुरूते सम्यगश्वशान्तिमनुत्तमाम्।।
—(ना. सं.-अश्वशान्ति, १७-२० श्लोक)

**आचार्याय ततो दद्याद्दक्षिणां गोचतुष्टयम्।**
**तदर्धं वा तदर्धं वा यथावित्तानुसारतः।।२०।।**

तत्पश्चात् आचार्य को चार गाय तथा दक्षिणा देनी चाहिए। दक्षिणा आधी, पुनः आधी या अपने धन के अनुसार देनी चाहिए।।२०।।

**ब्राह्मणेभ्यो जापकेभ्यस्त्वाचार्यार्द्धं प्रदापयेत्।**
**ब्राह्मणान्भोजयेत् पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।।२१।।**

ब्राह्मणों के लिए, जापकों के लिये आचार्य से आधी दक्षिणा देनी चाहिए। तत्पश्चात् शान्तिपाठ पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए।।२१।।

**एवं यः कुरूते सम्यगश्वशान्तिमनुत्तमाम्।**
**मुच्यते सर्वरोगेभ्यो वर्द्धन्ते नात्र संशयः।।२२।।**

इस प्रकार भलीभाँति जो उत्तम अश्वशान्ति को करता है, वह सभी रोगों से मुक्ति पाकर वृद्धि को प्राप्त होता है। इसमें संशय नहीं।।२२।।

**ऐश्वर्यं वीरलक्ष्मीं च लभते सर्वदा नृपः।**
**तस्मात्सर्वप्रयत्नेन त्विमां शान्तिं समाचरेत्।।२३।।**

**इति श्रीब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**अश्वारिष्टशान्त्याध्यायश्चतुस्त्रिंशः।।३४।।**

ऐश्वर्य, वीरलक्ष्मी सदैव राजा को प्राप्त होती है। अतः सम्यग्तया प्रयत्नपूर्वक इस शान्तिकर्म को करना चाहिए।।३४।।

वृद्धवसिष्ठसंहिता के ''अश्वारिष्टशान्त्याध्याय'' की
''नारायणी'' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।३४।।

**क्रमागतः–**
**नारदः–**

सोऽश्वाभिवृद्धिं लभते वीरलक्ष्मीं न संशयः।
यज्ञेनानेन सन्तुष्टा धातृ विष्णु महेश्वराः।।
आदिव्याद्याग्रहाः सर्वे शीताः स्युः पितरोगणाः।
लोकपालाश्च सन्तुष्टाः पिशाचाः डाकिनीगणाः।।
भूतप्रेताश्चगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगाः।।
—(ना. सं.-अश्वशान्ति, २१-२३ श्लोक)

पाठान्तरम्

०१. (अ) ज१,२-भूपतेर्यत (—भूपतेर्यस्य)
ज१,२-सन्त्यक्त्वा (—सन्त्याश्वाः)
(ब) ज१-श्रीमान्सयेव, ज२-श्रीमान्सथैव (—श्रीमान्स एव)
ज१-मर्त्स्यात्, ज२-भर्वस्यात् (—तस्माद्हि)
०२. (अ) ज१,२-बहुरोगसः (—बहवोगदाः)
०३. (अ) ज१,२-रेवंतपूजा (—हेरम्बपूजां)
०४. (अ) ज१,२-द्वादश्यामश्वभे तथा (—द्वादश्यामश्वभेऽपि वा)
०५. (अ) ज१,२-विवाहस्त्रतोरणाद्यैलंकृतं (—वितानस्त्रक्तोरणाद्यैरलङ्कृतम्)
(ब) ज१,२-मासतः (—मानतः)
०७. (अ) ज१-पंचक्रा (—पञ्चवक्त्रं)
(ब) ज१,२-कुशखड्गं, मु. पु. कशाखण्डं (—कशाखड्गं)
१०. (अ) ज१,२-परितश्चेतिमन्त्रेण (—परितः स्वस्वमन्त्रैः)
(ब) ज१,२-समंततः (—समीपतः)
१२. (ब) ज१-द्वारेषुवाप्य, ज२-द्वारेषु चाप्य (—द्वारेषु स्थाप्य)
ज१-चालिङ्गमत्रैः, ज२-वालिंगमन्त्रैः (—चाब्लिङ्गमन्त्रैः)
ज१-कार्यासमवर्ताः, ज२-कार्यासससमर्वतः (—कार्य समर्चनम्)
१३. (अ) ज१-रेवंतंपूज्यमाचार्यः, ज२-एवंत्यं पूज्यमाचार्ये (—रेवन्तपूजामाचार्यः)
१४. (अ) ज१-ततत्तरंतदाज्य, ज२-तत्तरंत्तदाज्य (—ततस्तत्राज्य)
१५-१६. ज१,२-पाठोनास्ति।
१७. (अ) ज. मो. विधिवां (—विधिनां)
(ब) मु. पु. हुनेत् (—चरेत्)
१९. (अ) ज१,२-व्रजन्तोश्वान् (—व्रजन्त्यश्वान्)
ज१-जपन्तोवमिमुत्तमं, ज२-अपंतोवमित्तमं (—सुप्रीतो बलिमुत्तमम्)
(ब) ज१,२-जीमूतस्यत्यनुवाकाश्च (—जीमूतस्येत्यनुवाकान्)
ज१, २-मिक्षिपेत् (—निक्षिपेत्)
२०. (अ) ज१-मोश्चनः पृथां, ज२-मोश्चतुःष्टयां (—गोचतुष्टयम्)
२२. (ब) ज१,२-वर्द्धते (—वर्द्धन्ते)
२३. (ब) ज१,२-हयशान्ति (—त्विमांशान्तिं)

पुष्पिका : ज१-इति श्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायांश्वशान्तिस्वरूपलक्षणं नाम चतुत्रिंशतमोऽध्यायः॥३४॥

पुष्पिका : ज२-इति श्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां
**अश्वशान्तिस्वरूपलक्षणं नाम चतुत्रिंशतमोऽध्यायः॥३४॥**

***

## ३५

# अथ गजारिष्टशान्त्यध्यायः

यस्य राज्ञो गजाः सन्ति तदधीनाऽखिलाधरा।
तस्माद्गजाः कल्पनीयाः पौषणीयाश्च सर्वदा॥१॥

**नारायणी टीका**

जिस राजा के पास अधिक हों, उसके आधीन समस्त पृथ्वी होती है; इसलिए हाथियों का पालन-पौषण सर्वदा करना चाहिए॥१॥

कल्पनं पौषणं तेषां गजवक्त्रप्रसादतः।
तस्माद्गजाननो राज्ञां पूजनीयः प्रयत्नतः॥२॥

उनका पालन-पौषण भगवान् श्रीगणेश जी की कृपा से होता है; इसलिए राजा को श्रीगणेश जी की पूजा प्रयत्नपूर्वक करनी चाहिए॥२॥

तस्मिन्सम्पूजिते प्रीता ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
इन्दादिलोकपालश्च वस्वादित्यमरूद्गणाः॥३॥
सुरासुरा ग्रहाः सर्वे गन्धर्वोरग्रराक्षसाः।
सिद्धविद्याधरा यक्षपिशाचाः सप्तमातृकाः॥४॥
वेतालडाकिनी भूता दिशन्त्वपि मनोरथान्।
गजाननो गजपतिर्गजसूक्तं जपेत्सदा॥५॥

श्रीगणेश जी की पूजा करने से ब्रह्मा, विष्णु, महेश, इन्द्र इत्यादि समस्त लोकपाल, वसु, आदित्य और मरुद्गण प्रसन्न हो जाते हैं। सभी देवता एवं राक्षस, नवग्रह, गन्धर्व, सर्प, राक्षस, सिद्धविद्याधर, यक्ष, पिशाच एवं सप्तमातृकायें, वेताल, डाकिनी तथा भूत भी मनोरथों को पूरा करते हैं। श्रीगणेश एवं गजेन्द्र का सर्वदा गजसूक्त से जप करना चाहिए॥३-५॥

असावेव प्रभुस्तेषां पोषणे शोषणे सदा।
पुरा महेश्वरो देव उक्तवानस्य जन्मनि॥६॥

वही हाथियों का पोषण-शोषण सर्वदा करते हैं, प्राचीन समय में श्रीगणेश के जन्म समय पर भगवान् शङ्कर देव ने स्वयं बताया था॥६॥

यदा यदा गजानां च जायन्ते व्याधयस्तदा।
तदा शान्तिं प्रकुर्वन्ति पूजा होमजपादिभिः॥७॥

जब-जब हाथियों को रोग उत्पन्न हों, तब-तब पूजा, होम, जपादि से शान्ति करवानी चाहिए॥७॥

भानुवारे च संङ्क्रान्तौ ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः।
विषुवत्ययने चैव व्यतीपाते दिनक्षये॥८॥
अन्ये च पुण्यदिवसे चन्द्रतारा बलेष्वपि।
दिक्साधनं समभुवि चैशान्ये च सुरालये॥९॥

रविवार और सङ्क्रान्ति, सूर्यचन्द्र ग्रहणकाल, विषुवत संक्रान्ति, उत्तरायण दक्षिणायन काल में, व्यतीपात योग में तथा तिथिक्षय के अतरिक्त अन्य पुण्य दिवसों में, चन्द्र-ताराबल अनुकूल होने पर ईशान कोण के देवालय में समतल भूमि पर दिक् साधन ईशान कोण करें ॥८-९॥

मध्याद्विनिर्गतैः सूत्रैश्चतुरस्त्रं च कारयेत्।
मण्डपं त्वष्टभिर्हस्तैः सूत्रमार्गेण कारयेत्॥१०॥

मध्य से निकले हुए सूत्र से चारों दिशाओं में सूत्रमार्ग से अष्टहस्त परिमित चकोणा मण्डप निर्माण करें॥१०॥

चतुषष्टिदलं कृत्वा मण्डपान्तःक्ष्मातलम्।
मध्ये चतुष्पदं व्योममण्डलं वेदिकास्थलम्॥११॥

चौसठ दल बनाकर मण्डप के अन्त तक भूमितल पर मध्य में चतुष्पद आकाश मण्डल वेदिका स्थल बनावें॥११॥

द्वादशांशात्मकं वायुमण्डलं व्योमवेष्टितम्।
विंशाशकात्मकं वह्निमण्डलं व्योमवेष्टितम्॥१२॥

बारह अंशात्मक वायुमण्डल आकाश की ओर आच्छादित करके पुनः बीस अंशात्मक अग्नि मण्डल को ऊपर से आच्छादित करें॥१२॥

निखिलान्मण्डलान्वेष्ट्य महीमण्डलमास्थितम्।
ज्ञात्वाग्निमण्डलं तत्र दिक्षु कुण्डचतुष्टयम्॥१३॥

समस्त मण्डलों को आच्छादित कर पृथ्वीमण्डल पर स्थित होकर अग्निमण्डल का ज्ञान करके चारों दिशाओं में चार कुण्ड बनावें॥१३॥

प्रागरेखामध्यमं कुण्डं द्वारं चैकांशमानतः।
तथैव कुण्डद्वारं च शेषदिक्षु प्रकल्पयेत॥१४॥

पुनः आगे रेखा मध्य में एकांश मान से कुण्डद्वार बनावे। उसी भान्ति शेष दिशाओं में कुण्डद्वार कल्पित करें॥१४॥

**पूर्वोक्तलक्षणोपेतं मेखलावस्त्रसञ्युतम्।**
**तोरणाद्यैरलंकृत्य वितानं वेदिकोपरि॥१५॥**

पूर्वोक्त लक्षणों से युक्त मेखला (करधनी) और वस्त्रादि से सञ्युक्त तोरण आदि से सुशोभित करके वेदिका के ऊपर वितान (चन्दोवा) का निर्माण करें॥१५॥

**आशिषो वाचनं कुर्य्यात्सम्यकसङ्कल्पपूर्वकम्।**
**ऋत्विजो वरयेत्पश्चाच्चतुर्विंशति संख्यकान्॥१६॥**

आशीष वचनों को भलीभाँति सङ्कल्प पूर्वक करके चौबीस (२४) संख्या में ऋत्विजों का वरण करें॥१६॥

**विद्यातपोव्रत युतान्विधिज्ञान्कुशलाञ्छुभान्।**
**तेषां मध्ये शिष्टतममाचार्यं तं प्रकल्पयेत्॥१७॥**

विद्या, तपोबल व्रत से युक्त अनेक प्रकार की विधियों का ज्ञाता, कुशल, चुतर और शुभ वेदपाठियों में बीच में से एक श्रेष्ठ विद्वान को आचार्य बनावें॥१७॥

**मधुपर्कादिकं कुर्यात्तत्र कार्ये नियोजयेत्।**
**ब्राह्मणाँश्चतुरो होतृन्कुण्डेषु च नियोजयेत्॥१८॥**

मधुपर्क इत्यादि ब्राह्मणों को खिलाकर उनका उनका कार्य सौंप दे, चार निपुण ब्राह्मणों को होता बनाकर कुण्डों पर नियोजित करें॥१८॥

**द्वारेषु जापकानष्टौ षड्संख्यानंगजापकान्।**
**गन्धपुष्पादिकं दत्त्वा तत्तत्कार्ये विनियोजयेत्॥१९॥**

द्वारों पर आठ जापकों को, छः संख्या में अनङ्ग जापकों को गन्ध, पुष्पादि देकर उनको उनका कार्य सौंप दें॥१९॥

**ब्राह्मणाँस्तत्त्वसंख्यकान् भोजयेच्च यथाविधि।**
**कारयेत्तु सुवर्णेन गजवक्त्रं चतुर्भुजम्॥२०॥**

तत्पश्चात् पच्चीस संख्या में ब्राह्मणों को यथाविधि भोजन करावें तथा चतुर्भुज गजवक्त्र को स्वर्णमूर्ति भी बनावें॥२०॥

**अक्षमालाधरं चाब्जबीजदण्डधरं क्रमात्।**
**वाहनायुधवर्णादीन्सर्वेषां कथितं पुरा॥२१॥**

रुद्राक्ष की माला धारण करने वाले, कमल पुष्प तथा दण्ड को धारण करने वाले, वाहन, अस्त्र, शस्त्र रंग-रूपादि पहले कह चुके हैं॥२१॥

**तत्पुरुषाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि।**
**तन्नो दन्तिः प्रचोदयात् वामदेवाह्वयो ऋषिः॥२२॥**

उस पुरुष को जानते हुए वक्रतुण्ड श्रीगणेश जी का ध्यान करते हैं। वामदेव ऋषि द्वारा कहे हुए एकदन्त श्रीगणेश जी हमें बुद्धि प्रदान करें॥२२॥

**छन्दोऽसौ तत्र गायत्री गजवक्त्रो हि देवता।**
**कुम्भाष्टकं चतुर्द्वारि पूर्वोक्त द्रव्यसंयुतम्॥२३॥**

इसका गायत्री छन्द और देवता श्रीगणेश जी हैं! पूर्वोक्त द्रव्यों से संयुत आठ कुम्भ चार द्वारों पर स्थापित करें॥२३॥

**लिखेदष्टदलं पद्मं वेदिकां तण्डुलोपरि।**
**गजवक्त्र कर्णिकायां लोकपालान्दलेषु च॥२४॥**

अष्टदल कमल लिखकर वेदिका में चावलों पर श्रीगणेश जी तथा उनकी कर्णिका में लोकपालों का दल स्थापित करें॥२४॥

**गणेशशक्रयोर्मध्ये पद्ममष्टदलं लिखेत्।**
**आदित्यादिग्रहांस्तत्र पूजयेत्पूर्ववत्क्रमात्॥२५॥**

श्रीगणेश और देवराज इन्द्र के मध्य में अष्टदल कमल लिखे, सूर्यादि नवग्रहों की पूर्ववत् क्रम से पूजा करें॥२५॥

**गणेश यमयोर्मध्ये पञ्चकोणं प्रकल्पयेत।**
**तत्र पञ्चमहाभूतानर्चयेत्पूर्ववत्तदा॥२६॥**

श्रीगणेश और धर्मराज के मध्य में पाँच कोणों की परिकल्पना करके पञ्चमहाभूतों की पूर्ववत् पूजा अर्चना करें॥२६॥

**गणेशाम्बुपयोर्मध्ये वर्तुलं मण्डलं लिखेत्।**
**तत्रार्चयेदष्टभुजां महिषासुरमर्दिनीम्॥२७॥**

श्रीगणेश और वरुणदेव के मध्य में वर्तुलाकार मण्डल चित्रित करें तथा वहाँ महिषासुर को मारने वाली अष्टभुजी माँ भगवती दुर्गा की अर्चना करें॥२७॥

**गणेशसोमयोर्मध्ये मण्डले वर्तुलं लिखेत्।**
**तत्रार्चयेत्प्रयत्नेन चाश्विनीदेवताह्वयम्॥२८॥**

श्रीगणेश और सोमदेव के मध्यम में वर्तुलाकार मण्डल लिखें तथा वहाँ प्रयत्नपूर्वक दोनों अश्विनी कुमारों की अर्चना करें॥२८॥

**ऐशान्यामर्चयेद्रुद्रमण्डलं तेजसां निधिम्।**
**आग्नेय्यामर्चयेद्विष्णु मण्डलं हायकात्मकम्॥२९॥**

ईशान कोण में तपस्वियों की निधि एवं रुद्रमण्डल की अर्चना करें और अग्निकोण में हाटकात्मक विष्णुमण्डल की अर्चना करें॥२९॥

वेदात्मक च नैर्ऋत्यामर्चयेद्ब्रह्ममण्डलम्।
वायव्यामर्चयेत्सम्यङ्‌मण्डलं प्रणवात्मकम्॥३०॥

वेदात्मक ब्रह्ममण्डल की पूजा नैर्ऋत्यकोण में करें तथा वायव्य कोण में भलीभाँति प्रणवात्मक मण्डल की पूजा करें॥३०॥

रुद्रेण पुरुषसूक्तेन चतुर्वेदादिमन्त्रकैः।
प्रणवस्थ ऋषिच्छन्दो देवताः कथिताः पुरा॥३१॥

रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त तथा चारों वेदों के मन्त्रों द्वारा पूजन करें। प्रणव ऋषि, छन्द एवं देवता के सन्दर्भ में पूर्व कह चुके हैं॥३१॥

तत्तद्वर्णैर्गन्धपुष्पैर्वस्त्रधूपैश्च दीपकैः।
सम्यक्कृत्वोपचाराणि रक्त वस्त्रैर्गजाननम्॥३२॥

उन-उन प्रकार के वर्ण (देवताओं के वर्ण), गन्ध, पुष्प, वस्त्र, धूप, दीपक भलीभाँति उपचारपूर्वक रक्तवस्त्र से श्री गणेश जी का पूजन करें॥३२॥

प्राक् कुण्डं गजवक्त्रस्य पञ्चभूतात्मकं यमः।
दुर्गाकुण्डं प्रतीच्यां च ह्युदक्कुण्डं ग्रहात्मकम्॥३३॥

पूर्वकुण्ड श्रीगणेश जी का, पञ्चभूतों का दक्षिण में, दुर्गाकुण्ड पश्चिम में तथा उत्तर में ग्रहकुण्ड बनावें॥३३॥

तदेवाश्विनकुण्डं च ग्रहहोममतः परम्।
दिक्कुण्डैर्दिक्षु दिग्होमः कर्त्तव्या स्वस्वमन्त्रकैः॥३४॥

वैसे ही अश्विनी कुमारों के कुण्ड का निर्माण करें तत्पश्चात् ग्रहों का होम के पश्चात् दिक् कुण्ड की ओर अपने-अपने मन्त्रों से दिक् होम करना चाहिए॥३४॥

स्वगृहविधिना कुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।
मुखान्ते स्वस्वकुण्डे च जुहुयात्तन्मुखाहुतिम्॥३५॥

अपने गृह्य विधान से अग्निकुण्ड की स्थापना करते हुए अग्नि स्थापना करके मुख के अन्तिम भाग में अपने-अपने कुण्ड में मुखाहुति से हवन करें॥३५॥

पालाशसमिधाज्यान्नैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।
ग्रहहोमैः समिद्भिश्च होमं पूर्ववदाचरेत्॥३६॥

पलाश समिधा, घी, अन्नादि के द्वारा १०८ बार भिन्न-भिन्न होम करें तथा ग्रहों का होम ग्रहों की समिधाओं से पूर्ववत् करना चाहिए॥३६॥

चतुर्दिक्षु चतुर्वेदपरायणपरा द्विजाः।
अब्लिङ्गैर्वारुणैः सूक्तैः कलशार्चनपराश्चते॥३७॥

चारों दिशाओं में चारों वेदों के परायण ब्राह्मण अब्लिंगवरुण सूक्तों के द्वारा कलश की पूजा अर्चन करें॥३७॥

**नैवेद्यं विविधान्नेन बहुवाद्यैः समर्चयेत्।**
**ताम्बुलानि ततो दद्याच्छान्तिवाचनपूर्वकम्॥३८॥**

विविध प्रकार के अन्न पदार्थों के द्वारा अनेक प्रकार के वाद्यों को बजाता हुआ नैवेद्य अर्पित करके पूजा करे तथा शान्तिवाचनपूर्वक ताम्बूल आदि प्रदान करें॥३८॥

**एकरात्रं त्रिरात्रं वा नवरात्रमथापि च।**
**अनेन विधिना कुर्यादकभुक्तो जितेन्द्रियः॥३९॥**

एक रात्रि, तीन रात्रि अथवा नौ रात्रि तक जितेन्द्रिय रहकर, एक समय भोजन करके इस विधि से पूजा करे॥३९॥

**तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसंयुतम्।**
**एवं प्रतिदिनं सम्यग्व्रीहिभिश्च यथा पुरा॥४०॥**

१००८ बार व्याहृतियों द्वारा तिलहोम करे एवं प्रतिदिन जैसा पहले कहा गय है, भलीभाँति चावल-यव इत्यादि अन्नों से होम करें॥४०॥

**सम्पूर्णदिवसे कर्ता कुर्यात्पूर्णाहुतिं ततः।**
**मन्त्रपूतोदकैः कर्त्ता गजानां मार्जयेत्ततः॥४१॥**

यज्ञ के अन्तिम दिवस में कर्ता पूर्णाहुति करे तथा मन्त्रों द्वारा पवित्र किये गये जल से हाथियों का मार्जन करें॥४१॥

**अलङ्कृत्य पुनः सम्यगगन्धपुष्पादिभिस्ततः।**
**हुतशेषं ततो दद्यादौपनायनिकं गजे॥४२॥**

पुनः भलीभाँति गन्ध, पुष्पादि से सुशोभित करके हुतशेष (बची हुई हवन सामग्री) के द्वारा औपनायिक हव्य गज को दे॥४२॥

**दोषशान्तिपञ्चदुर्गां रुद्रं पुरुषसूक्तकम्।**
**पञ्चब्रह्मादिभिर्मन्त्रैर्गजशालासुमार्जयेत्॥४३॥**

दोषशान्त्यर्थ पञ्चदुर्गासूक्त, रुद्रसूक्त, पुरुषसूक्त, पञ्च ब्रह्मादि मन्त्रों द्वारा गजशाला का मार्जन करना चाहिए॥४३॥

**गृहीत्वा सुकृतं तेभ्यो दक्षिणां च समर्पयेत्।**
**आचार्याय ततो दद्यान्निष्कानामेकविंशतिम्॥४४॥**

सुकृत अर्थात् ब्राह्मणों से पुण्य ग्रहण करके उनको दक्षिणा देनी चाहिए। आचार्य को इक्कीस निष्क दक्षिणा देनी चाहिए॥४४॥

तदर्द्धमितरेभ्यश्च यजेच्छेषान्स्वशक्तितः।
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः॥४५॥

आचार्य से आधी दक्षिणा अन्य ब्राह्मणों को देनी चाहिए, शेषजनों को अपनी शक्ति अनुसार दक्षिणा दे तत्पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करवाकर स्वयं बन्धुओं सहित भोजन करें॥४५॥

एवं यः कुरुते सम्यग्गजशान्तिं नृपोत्तमः।
सर्वान्कामानवाप्नोति गजवृद्धिं लभेतु सः॥४६॥

इति श्री ब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठविरचितायां महासंहितायां
गजशान्त्यध्यायः पञ्चत्रिंशः॥३५॥

इस प्रकार श्रेष्ठ राजा गजशान्ति करे तो सभी कामनाओं की पूर्ति के साथ-साथ हाथियों की वृद्धि भी हो जाती है॥४६॥

वृद्धिवसिष्ठसंहिता के गजशान्त्याध्याय की नारायणी हिन्दी टिका सम्पूर्ण॥३५॥

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१,२-तदवीना (—तदधीना)
०२. (ब) ज१-राक्षः, ज२-राज्ञाः (—राज्ञां)
०५. (ब) ज१-गजपठितिर्गद्रिज्जुतस्तंपश्चामवेत् (—गजपतिर्गजसूक्तं जपेत्सदा)
०६-०८. ज१,२-पाठोनास्ति
०९-१०. ज१,२-पाठोनास्ति
११-१२. ज१,२-पाठोनास्ति
११. (अ) मु. पु. मडपांतः (—मण्डप्रान्तः)
१४. (अ) ज१,२-प्रागेवा (—प्रागरेखा)
१५. (अ) ज१,२-मेखलावस्त्रे, मु. पु. मेखलावप्र (—मेखलावस्त्र)
१६. (अ) ज१-वाचं (—वाचनं)
(ब) ज१,२-ऋत्विजान् (—ऋत्विजो)
१७. (अ) ज१-युतान्विक्षतान्कुलजान् शुभान्,
ज२-युवान्विज्ञातान्कुलजान् शुभात् (—युतान्विधिज्ञान्कुशलाञ्छुभान्)
१८. (ब) ज१,२-ब्राह्मणान्चतुरो (—ब्राह्मणाँश्चतुरो)
ज१-होतृन्कुण्डेषु, ज२-होतृतकुंडेषु (—होतृन्कुण्डेषु)
२०. (अ) ज१,२-ब्राह्मणाः पंचविप्राश्च (—ब्राह्मणाँस्तत्वसंख्यकान्)
२१. (अ) ज१,२-अश्वक्षमालायरश्चोष्टगजं (—अक्षमालाधरं चाब्जबीजदण्डधरं)
२४. (ब) ज१,२-कन्यकायां (—कर्णिकायां)
२५. (ब) ज१,२-पूर्वतः क्रमात् (—पूर्ववत्क्रमात्)
२९. (अ) ज१,२-भूमौमंडलं (—रुद्रमण्डलं)

(ब) ज१,२-हाकलात्मकं (—हाटकात्मकम्)

३०. (अ) ज१-रसमंडलं, ज२-समंडलं (—ब्रह्ममण्डलं)

३१. (अ) ज१-रूद्न —(रूद्रेण), ज१२-चतुर्वेदोक्त (—चतुर्वेदादि)

३२. (अ) ज१,२-क्षीणाकै: (—दीपकै:)

३३. (अ) मु. पु. तत: (—यम:)

३४. (ब) ज१,२-तिथिर्होमं, मु. पु. दिग्घोम: (—दिग्होम:)
ज१,२-कर्त्तव्यं (—कर्त्तव्य:)

३५. (ब) ज१-सुखन्नि, ज२-मुखनि (मुखान्ते)

३६. (अ) ज१-याचतुशामेधाज्यानै:, ज२-याचतुशतंसमिधाज्यान्नै:
(—पलाशसमिधाज्यान्नै:)

(ब) ज१,२-ग्रहमन्त्रै: (—ग्रहहोमै:)

३७. (ब) ज१-अग्निर्वारुणो, ज२-अग्निगेवारुणौ: (—अब्लिङ्गैर्वारुणै:)

३८. (अ) ज१-विनातेन, ज२-विनानेन (—विविधान्नेन)

३९. (ब) ज१-कुर्यादिक्भुक्ती, मु. पु. कुर्यादिकभक्तो (—कुर्यादेकभुक्तो)

४०. (अ) ज१,२-वार्ष्टसंयुतं (—चाष्टसञ्युतम्)

(ब) ज१-प्रिय, ज२-प्रियं (—एवं)

४१. (अ) ज१,२-दिवसं कर्त्तव्या: (—दिवसे कर्त्ता)

(ब) ज१-कर्तुगजात्, ज२-कर्तु:गजात् (—कर्ता गजानां)

४३. (अ) ज१,२-सारुद्र (—रुद्रं)

(ब) ज१-गजशालासमर्चयेत्, ज२-गजन्यालांसमर्चयेत्
(—गजशालासुमार्जयेत्)

४५. (अ) ज१-तदर्द्धर्द्धमितं तेषां, ज२-तदर्द्धार्द्धमितं तेषां
(—तदर्द्धमितरेभ्यश्च)
ज१-युगेशेषांस्वशक्ति:, ज२-यगेशेषांस्वशक्तित:
(—यजेच्छेषान्स्वशक्तित:)

पुष्पिका:—ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां
गजशान्ति लक्षणं नाम पञ्चत्रिशतमोऽध्याय:।।३५।।

पुष्पिका:—ज२-इति श्रीवसिष्ठ संहितायां
गजशान्तिलक्षण नाम पञ्चत्रिशतमोऽध्याय:।।३५।।

***

# ३६

# अथ ग्रहणशान्त्याध्यायः

यस्य वै जन्मनक्षत्रे ग्रस्येते शशिभास्करौ।
तस्य व्याधिभयं घोरं जन्मराशौ धनक्षयः॥१॥

जिसके जन्म नक्षत्र पर सूर्यचन्द्र ग्रहण हो, उसे भयङ्कर रोगभय होता है। जन्मराशि पर सूर्य-चन्द्र ग्रहण घटित हो तो धनक्षय होता है॥१॥

द्रव्यमन्त्रविधानेन तस्य दोषापनुत्तये।
उपरागस्नानविधिं सम्यग्वक्ष्ये समासतः॥२॥

अतः द्रव्य एवं मन्त्र विधान के द्वारा उन दोषों की शान्ति के लिये सूर्यचन्द्र ग्रहण में स्नान विधि को भलीभाँति संक्षेप में कहता हूँ॥२॥

मण्डलं चतुरस्रं तु गोमयेन विलेपयेत्।
गृहस्येशान भागे तु वर्णकैः समलङ्कृतम्॥३॥

घर के ईशान भाग में विविध रंगों से सुशोभित कर चतुरस्र मण्डल को गोबर से विलेपन करना चाहिये॥३॥

स्थापयेच्चतुरः कुम्भास्तत्र तान्सागरात्मकान्।
सर्वदेवात्मकान्स्मृत्वा सर्वतीर्थात्मकाञ्छुभान्॥४॥

सागरात्मक, सर्वदेवात्मक तथा सर्वतीर्थात्मक चार कलशों को वहाँ स्थापित करके शुभों का स्मरण करें॥४॥

पञ्चत्वक्पल्लवोशीर शतौषधिसमन्वितान्।
मृत्तिकारत्नहेमेभदन्तगुग्गुलुचन्दनैः ॥५॥

पञ्च त्वक् पल्लव, उशीर (खस) शतौषधि, मिट्टी, रत्न, स्वर्ण, गजदन्त, गुग्गलु तथा चन्दन से कलश को युक्त करें॥५॥

पञ्चगव्यामृतभ्राजत्स्फटिकैः सर्षपाम्बरैः।
शंखकुंकुमतीर्थाम्बुरोचनैः पद्मकैर्युतान्॥६॥

पञ्चगव्य (गोबर, मूत्र, दूध, दही, घी) पञ्चाऽमृत (दूध, दही, घी, शहद, शक्कर) सुशोभित स्फटिक, पीली सरसों, वस्त्र, शंख, कुंकुम, तीर्थों का जल, रोली कमलगट्टा से युक्त करें॥६॥

चत्वारः प्राङ्मुखा विप्राः प्रार्थयेयुः पृथक् पृथक्।
अब्लिङ्गैर्वारुणैः सूक्तैः स्वस्तिवाचनपूर्वकम्॥७॥

पूर्वाभिमुख विराजित चारों ब्राह्मण अलग-अलग प्रार्थना करके अब्लिङ्गवरुण सूक्तों द्वारा स्वस्तिवाचन करें॥७॥

**तिलहोमं व्याहृतिभिः सहस्रं चाष्टसञ्युतम्।**
**एवं कृत्वा प्रयत्नेन स्नानकर्म समाचरेत्॥८॥**

व्याहृतियों के द्वारा तिल होम १००८ बार करके प्रयत्नपूर्वक स्नान कार्य करना चाहिए॥८॥

**आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः कुम्भान्सङ्कल्पपूर्वकान्।**
**एतानेव ततो मन्त्रान्स्वर्णपट्टे ततो लिखेत्॥९॥**

सङ्कल्पपूर्वक कुम्भों को नौ मन्त्रों द्वारा आमन्त्रित करें। तदनन्तर इन्हीं मन्त्रों को स्वर्णपट्ट पर लिखें॥९॥

**कर्तुः शिरसि तान्बध्वा वाब्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकैः।**
**सुमन्त्रितैः कुम्भजलैः स्नाप्य नीराजयेत्ततः॥१०॥**

कर्त्ता के सिर पर उनको बांधकर अब्लिङ्ग वेदमन्त्रों के द्वारा भलीभाँति मन्त्रित कुंभजल से स्नान करके आरती करें॥१०॥

**दद्यात्पट्टं ग्रहज्ञेभ्यः शुक्लमाल्याम्बरः शुचिः।**
**ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छिष्टेभ्यश्च स्वशक्तितः॥११॥**

ज्योतिषी महानुभाव को पवित्र सफेदवस्त्र-मालादि देकर स्वर्णपट्ट देना चाहिए तथा अन्य वेदपाठियों को अपनी शक्त्यानुसार दक्षिणा देनी चाहिए॥११॥

**योऽसौ वज्रधरो देव आदित्यानां प्रभुर्मतः।**
**सहस्रनयनः शक्रो ग्रहपीडां व्यपोहतु॥१२॥**

जो वज्रधारी देव, आदित्यों के स्वामी, सहस्र नयनों वाले देवराज इन्द्र ग्रहों की पीड़ा को दूर करें॥१२॥

**चतुःशृङ्गः सप्तहस्तस्त्रिपादो मेषवाहनः।**
**अग्निश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु॥१३॥**

चार सींग, सात हाथ, तीन पाद तथा भेड़ के वाहन वाले अग्निदेव चन्द्रग्रहण में उत्पन्न ग्रहपीड़ा को दूर करें॥१३॥

**मुखं यः सर्वदेवानां सप्तार्चिरमितद्युतिः।**
**चन्द्रोपराग सम्भूतामग्निः पीडां व्यपोहतु॥१४॥**

जो समस्त देवगणों में प्रमुख हैं, सप्तकिरणों से युक्त, अमित प्रकाश सम्पन्न अग्निदेव चन्द्रग्रहण में उत्पन्न ग्रह पीड़ा को दूर करें॥१४॥

यः कर्मसाक्षी लोकानां धर्मोमहिषवाहनः।
यमश्चन्द्रोपरागोत्था ग्रहपीडां व्योपहतु॥१५॥

जो तीनों लोकों के कर्म साक्षी है, ऐसे महिंष वाहन वाले धर्मराज (यमराज) चन्द्रमा ग्रहण से उत्पन्न ग्रह-पीड़ा को दूर करें॥१५॥

रक्षोगणाधिपः साक्षात्प्रलयानलसन्निभः।
खड्गव्यग्रोऽतिकायश्च रक्षः पीडां व्यपोहतु॥१६॥

राक्षसगणों के अधिपति, साक्षात् प्रलयकारी, अग्निकान्तिसदृश, तलवार, वाणादि से युक्त, दीर्घकाय रक्षदेव पीड़ा दूर करें॥१६॥

नागपाशधरो देवः सदा मकरवाहनः।
वरुणोऽम्बुपतिः साक्षाद् ग्रहपीडां व्यपोहतु॥१७॥

नागपाशधारी, मकर वाहन युक्त, जलाधिपति वरुण देव साक्षात् रूप में ग्रहपीड़ा को दूर करें॥१७॥

प्राणरूपो हि यो लोकान्याति कृष्णमृगप्रियः।
वायुश्चन्द्रोपरागोत्थां ग्रहपीडां व्यपोहतु॥१८॥

प्राणरूप होकर तीनों लोकों में विचरण करने वाले, कृष्णमृग के प्रिय वायुदेव चन्द्रमा ग्रहण से उत्पन्न ग्रह-पीड़ा को दूर करें॥१८॥

योऽसौ निधिपतिर्देवः खड्गशूलगदाधरः।
चन्द्रोपरागकलुषं पीडां चापि व्यपोहतु॥१९॥

जो धनाधिपति देव जिन्होंने खड्ग, शूल और गदा धारण की है, ऐसे देवता कुबेर चन्द्र ग्रहण से उत्पन्न ग्रह-पीड़ा को दूर करें॥१९॥

योऽसाविन्दुधरो रुद्रः पिनाकी वृषवाहनः।
चन्द्रोपराग पापानि स नाशयतु शङ्करः॥२०॥

चन्द्रमा को धारण करने वाले, पिनाक नामक धनुषधारी, बैल की सवारी वाले कल्याणकारी वे भगवान् रुद्रदेव (शिवजी) चन्द्रग्रहण में उत्पन्न पापों को विनष्ट करें॥२०॥

त्रैलोक्ये यानि भूतानि चराणि स्थवराणि च।
ब्रह्मार्कविष्णुयुक्तानि तानि पापं दहन्तु मे॥२१॥

तीनों लोकों में जितने भी चर एवं स्थावर प्राणी हैं, वे सभी ब्रह्मा, सूर्य एवं विष्णु युक्त हैं, वे सभी मेरे पापों को नष्ट करें॥२१॥

आमन्त्रेणे लेखकोक्तास्त्वेते वै नवमन्त्रकाः।
अर्चयित्वा पितृन्देवान्गोभूस्वर्णाम्बरादिभिः॥२२॥

लेखक के द्वारा कहे गए आमन्त्रित नौ मन्त्रों के द्वारा पितरों, देवताओं की गाय, पृथ्वी, स्वर्ण, वस्त्रादि से अर्चना करनी चाहिए।।२२।।

**अनेन विधिना यत्नाद् ग्रहस्नानं समाचरेत्।**
**न तस्य ग्रहपीडा वा न च बन्धुधनक्षयः।।२३।।**

इस विधि से प्रयत्नपूर्वक ग्रहस्नान करना चाहिए। ऐसा करने से ग्रहपीड़ा नहीं होती तथा बन्धु और धन क्षय भी नहीं होता।।२३।।

**परमां सिद्धिमाप्नोति पुनरावृत्तिदुर्लभाम्।**
**सूर्यग्रहेऽप्येवमेव सूर्यनाम्ना विधीयते।।२४।।**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**ग्रहणशान्त्यध्यायः षट्त्रिंशः।।३६।।**

परमसिद्धि को प्राप्त करता है, ऐसी सिद्धि की पुनरावृत्ति दुर्लभ है। सूर्यग्रहण में भी इसी विधि से सूर्य का नाम लेकर शान्ति कार्य करना चाहिए।।२४।।

वृद्धवसिष्ठ संहिता के ग्रहणशान्त्यध्याय की
"नारायणी" हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।३६।।

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१,२-यस्यैव (—यस्य वै)
(ब) ज१,२-धनक्षयम् (—धनक्षयः)
०२. (ब) ज१,२-स्वाननविधिः (—स्नानविधं)
०४. (अ) ज१,२-कुंभान्तत्र (—कुम्भास्तत्र)
(ब) ज१,२-सर्वदेवात्मकान्कृत्वा (—सर्वदेवात्मकान्स्मृत्वा)
०५. (अ) ज१-पल्लवोपेतान्मतौषधि, ज२-वल्लवोपेतान्शतोषधिः
(पञ्चत्वक्पल्लवोशीर शतौषधि—)
(ब) ज१-मृतकारत्रहैमैश्च, ज२-मृत्तिकारत्नहेमेश्च (—मृत्तिकारत्नहेमे)
ज१,२-दंतं (—भदन्तं)
०६. (अ) ज१-पञ्चगव्योब्दत, ज२-पञ्चगव्यादिक (—पञ्चगव्यामृत)
ज१-भ्राजस्फटिकैः, ज२-भ्राम्यस्फुटिकैः (—भ्राजत्स्फटिकैः)
ज१-सर्ववास्वरैः, ज२-सर्वभास्वरैः (—सर्षपाम्बरैः)
(ब) ज१-पद्मकैर्युतं, ज२-मस्तकैःर्युतं (—पद्मकैर्युतान्)
०७. (ब) अंतिमैर्वाणेः, ज२-अन्तिमेर्वरुणो (—अब्लिङ्गैर्वारुणैः)
०८. (अ) ज१,२-चाष्टसंयुताः (—चाष्टसञ्युतम्)
०९. (अ) ज१-आमंत्रनवभिमंत्रैः, ज२-आमंत्रनर्वाममंत्रै (—आमन्त्र्य नवभिर्मन्त्रैः)
ज१-कुंभात्संकल्पपूर्वकं, ज२-कुंभान्संकल्प (—कुंभान्सङ्कल्पपूर्वकान्)
ज१-एतान्ेवसतो. (—एतानेव ततो) ज१,२-स्वर्णपदे (—स्वणपट्टे)

१०. (अ) ज१-ऋतु:, ज२-क्रतु: (—कर्तु:)
ज१,२-शिरसिंत (—शिरसि)
ज१-चव्यवाल्लिङ्ग, ज२-चव्ययाप्लिङ्ग (—तान्बध्वा वाब्लिङ्गैः)
ज१,२-देवमंत्रिकै: (—वेदमन्त्रकै:)
(ब) ज१-स्वाप्यतेराजये ततः, ज२- (स्नाप्येतेराजयेततः)
(—स्नाप्य नीराजयेत्ततः)
११. (अ) ज१-दद्यात्षट्टं, ज२-दद्यात्षष्टं (—दद्यात्पट्टं)
ज१-ग्रहक्षेभ्य:, ज२-भग्रहक्षेभ्य: (—ग्रहज्ञेभ्य:)
(ब) ज१,२-दद्यादिष्टेभ्य: (—दद्याच्छिष्टभ्यश्च)
१२. (ब) ज१-सहस्रनयनश्चन्द्र:, ज२-सहस्रनयनश्चन्द्रे: (—सहस्रनयन: शक्रो)
ज१-ग्रहपीडाख्ययोहतु (—ग्रहपीडां व्यपोहतु)
१३. (अ-ब) ज१,२-पाठोनास्ति
१४. (अ) ज१,२-सप्तार्चिरविवियुति: (—सप्तार्चिरमितद्युति:)
१५. (ब) ज१,२-यमश्चन्द्रोपरोगोत्था, मु. पु. पनश्चन्द्रोपरागोत्था
(—यमश्चन्द्रोपरागोत्था)
१७. (ब) ज१-वरुणोस्तुपति:, २-वरुणोस्तुपति: (—वरुणोऽम्बुपति:)
१८. (अ) ज१,२-ब्राह्मरुमोहिलोकानां (—प्राणरूपो हि यो लोकान्)
२१. (अ) ज१-हंतुमे (—दहन्तु मे)
२२. (अ-ब) पाठोनास्ति
२३. (ब) बंधूधनसंक्षय:, ज२-बंधुधनशंशय: (—बन्धुधनक्षय:)

पुष्पिका:—ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां उपराग भ्रासाषिंभिषेक स्वरूप लक्षणं नाम षट्गविंग्रहण सांतिध्याय:॥३६॥

पुष्पिका:—ज२-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां उपरागग्रासाभिषेक स्वरूप लक्षणं नाम षट्त्रिंशोध्याय:॥३६॥

***

# ३७

## अथ यात्राध्यायः

**निखिलगुणयुतानां राज्ञां कथयामि विधानमत्रयात्रायाः।**
**जातकमवलोक्य तदेतत्फलसिद्धिस्त्वन्यथा मृषा भवति।।१।।**

### नारायणी टीका

सभी गुणों से युक्त राजा के लिये यात्रा विधान कहता हूँ। जन्मपत्रिका में नक्षत्र-राशि आदि देखकर यात्रा करने से फल की सिद्धि होती है अन्यथा यात्रा मिथ्या हो जाती है।।१।।

**क्रमागतः–**

**वराहः–**

विदिते होराराशौ स्थानादिबले ग्रहाणां च।
आयुषि च परिज्ञाते शुभमशुभं यातुरिह वाच्यम्।।

—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक १)

**अज्ञातजातकनामपि यात्रां प्रवदेन्निमित्तशकुनाद्यैः।**
**शुभशकुनैः शुभदा स्याद् शुभैरेतैस्तदन्यथा भवति।।२।।**

जिनकी जन्मपत्रिका नहीं है, उनके लिए नैमित्तिक यात्रा शकुनादि के द्वारा विशेष रूप कहनी चाहिए। शुभ शुकन होने पर यात्रा शुभफलप्रद तथा अशुभ शकुन होने पर यात्रा अशुभफलप्रद होती है।।२।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि यात्रां विज्ञातजन्मनाम्।
अभीष्टफलदां नृणां राज्ञां च विजयप्रदाम्।।१।।
घुणाक्षरसमायात्रा सिद्धिरज्ञातजन्मनाम्।
प्रश्नोदय निमित्ताद्यस्तेषामपि फलोदयः।।२।।

—(क. स. ३५ अ., श्लोक १-२)

**नारदः–**

अथ यात्रा यथा नृणामभीष्टफलसिद्धये।
स्यात्तथा तां प्रवक्ष्यामि सम्यग्विज्ञातजन्मनाम्।।१।।
अज्ञातजन्मनां नृणां फलाप्तिर्घुणवर्णवत्।
प्रश्नोदयनिमित्ताद्यैस्तेषामपि फलोदयः।।२।।

—(ना. स. अ. ३३, श्लोक १-२)

**परविषयविजयार्थं गन्तुर्वा समरयात्राख्या।**
**निखिला परयात्रा या सामान्या भुवि भवेद्द्विविधा।।३।।**

दूसरों के साम्राज्य पर विजय पाने की इच्छा से की जाने वाली यात्रा को समरयात्रा नाम से परिभाषित किया गया है। इसके अतिरिक्त संसार की सभी सामान्य यात्राओं को परमात्मा कहा गया है। ये दो प्रमुख यात्राओं के भेद हैं।।३।।

**कथित तिथिवासरर्क्षेष्वभिमतफलदा भवेच्च सामान्या।**
**समराह्वया च यात्रा योगविलग्नक्षितीशयोगेषु।।४।।**

पूर्वोक्त तिथि-वार-नक्षत्रादि के आधार पर साधित मुहूर्त्त में की गई सामान्य (परयात्रा) अभीष्ट फलदायक होती है, किन्तु समर नामक यात्रा (विजय यात्रा) लग्न, विभिन्न योगों के अतिरिक्त विजयार्थी राजा के जन्मकालिक योगों के आधार पर की गई यात्रा शुभफलदायक होती है।।४।।

**प्रच्छकविलग्नसमये शकुननिमित्तैः शुभावहं वाच्यम्।**
**अक्षतफलताम्बूलकरः प्रणम्य दैवज्ञमथ पृच्छेत्।।५।।**

प्रश्नकर्ता के लग्न कालानुसार, शकुन निमित्तों के द्वारा शुभफल कहना चाहिए। चावल, फूल, ताम्बूल इत्यादि हाथ में लेकर ज्योतिषी को प्रणाम करके प्रश्न करना चाहिए।।५।।

**क्रमागतः—**

**वराहः—**

तस्मान्नृपः कुसुमपुष्पफलाग्रहस्तः
प्राप्तः प्रणम्य रवये हरिदिङ्मुखस्थः।
होराङ्गशास्त्रकुशलाह्वित कारिणश्च
सङ्गृह्य दैवगणकान्सकृदेव पृच्छेत्।।

—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक १)

**राज्ञोपकरणवाहनमङ्गलवाक्यादिमङ्गलैर्घोषैः।**
**सितवस्त्रपुष्पगन्धश्रुतिघोषाम्बुजेक्षुफलरत्नैः ।।६।।**

राजा को उपकरण, वाहन, कल्याणकारी वाक्य आदि मङ्गलघोष के द्वारा श्वेत वस्त्र, पुष्प, गन्ध, वेद मन्त्रों की ध्वनि, कमलपुष्प, गन्ना, फल एवं रत्नों से प्रश्न करना चाहिए।।६।।

**वत्सयुता गोवनिता ज्वलितानलपूर्णकुम्भदुग्धैश्च।**
**दधिमधुपिशिताज्योदनवेश्यावृषमद्यभूषणैर्जयदा।।७।।**

बछड़े सहित गाय, ज्वलित अग्नि, पूर्णकुम्भ, दूध, दही, मधु, मांस, घी, भात, वेश्या, बैल तथा अन्य आभूषण इत्यादि जयप्रद शकुन होते हैं।।७।।

**स्तनचरणगलोष्ठाङ्गुष्ठहस्तोत्तमाङ्ग-**
**श्रवणवदननासागुह्यरन्ध्राणि भूयः।**
**स्पृशति यदि कराग्रैर्गण्डकाद्यंसकं वा।**
**समर भुवि तदानीं शत्रुसेनां निहन्ति॥८॥**

प्रश्नकर्ता यदि वक्षस्थल (स्तन), चरण, कण्ठ, ओष्ठ, अङ्गूठा, हाथ, मस्तक, कान, मुख, नासिका, गुप्तछिद्र, कपोल तथा कन्धों का बार-बार हाथ के अग्रभाग से (उक्त शकुन में) स्पर्श करके (ज्योतिषी के सामने) बैठे तो उस समय युद्धभूमि में शत्रुसेना का नाश करता है। अर्थात् उक्त शकुन विजय सूचक है॥८॥

**प्रच्छकयात्रासमये शकुनं प्रास्थानिकं भवति।**
**स्वगृहं पुनरागमने प्रवेशशकुनं जयप्रदं नृपतेः॥९॥**

प्रश्न कर्त्ता के यात्रा के समय शकुन की प्रास्थानिक होता है। राजा के अपने घर में पुन: आगमन के लिए प्रवेश शकुन राजा के लिए विजयप्रद होता है। अर्थात् युद्ध यात्रा तथा युद्ध के उपरान्त गृह में प्रवेश करते समय शकुन ही प्रधान होते हैं॥९॥

**तृणतुषफणिचर्माङ्गारकार्पासपङ्कै-**
**र्लवणगुडवसास्थिक्लीबतैलोषधैश्च॥**
**रिपुविडसितधान्यव्याधिताभ्यक्ततक्रैः।**
**पतितजटिलमुण्डोन्मत्तवान्तैर्न सिद्धिः॥१०॥**

तृण, भूसा, सर्प केंचुल (सर्पगञ्ज) जलता कोयला, कपास, कीचड़, नमक, गुड़, वसा, अस्थि, नपुंसक, तैल, औषधि, शत्रु के दुर्वचन, चिल्लाना, व्याधिपूर्णधान्य रोगी, तक्र (मट्ठा) पतितजन, जटिल (संन्यासी), सिर मुण्डाये हुए व्यक्ति तथा उन्मुक्त (पागल) जन दिखाई दें तो यात्रा में कार्य सिद्धि नहीं होती॥१०॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

पतितक्लीवजटिलोन्मत्तवान्तौषधादिभिः।
अभ्यक्त काष्ठान्यस्थीनिचर्मांगारतुषाग्निभिः॥
गुडकार्पासलवणवसातैलतृणोरगैः ।
वन्ध्याव्यंथितकाणौ च मुक्तकेशो बुभुक्षितः॥
"प्रयाणसमये लग्ने दृष्टे सिद्धिर्नजायते।"

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ८५-८६)

**प्रच्छक लग्नादशुभो निधनगो वा विलग्नगः प्रबलः।**
**गुरुसितदृष्टिविहीनः प्रभङ्गदो वा निधनदोऽपि॥११॥**

प्रश्नकर्त्ता के लग्न से अष्टमस्थान वा लग्न में प्रबल ग्रह होने से अशुभ होता है। बृहस्पति एवं शुक्र की दृष्टि से विहीन हो तो यात्रा में कार्य नष्ट होता है अथवा मृत्युप्रद भी होता है।।११।।

**शुभखचरस्त्वशुभो वा वक्रगतो लग्नगो यदि भवति।**
**लग्नगतस्तद्वर्गः प्रभङ्गदो भवति भूमिपतेः।।१२।।**

शुभग्रह वक्र हो तथा अशुभग्रह लग्न में स्थित हो अथवा अशुभग्रहों के वर्ग में लग्न स्थित हो तो राजा के लिए अङ्गकारक अर्थात् पराजय कारक होते हैं।।१२।।

**प्रच्छकनिधनविलग्नं लग्नगतं वाऽपि नैधनोपगतम्।**
**तत्पतिरष्टमगो वा यदि लग्नगतः प्रभङ्गदा शीघ्रम्।।१३।।**

प्रश्नकर्त्ता लग्न से अष्टम तथा लग्न में लग्नगत अथवा अष्टम स्थान में आया हुआ कोई भी ग्रह हो और उसका स्वामी अष्टम स्थान में हो अथवा लग्न में हो तो शीघ्र ही राजा की यात्रा को भङ्ग करता है।।१३।।

**प्रच्छकलग्नादृहिमगुर्निधनगतो वारिराशिगो वाऽपि।**
**शुभखचरदृष्टिहीनः प्रभङ्गदो नैव निधनराशिस्थः।।१४।।**

प्रश्न कर्त्ता के लग्न से चन्द्रमा अष्टम स्थान में अथवा शत्रु राशि में हो अथवा शुभग्रह की दृष्टि से विहीन हो और अष्टम राशि में हो तो भी यात्रा को नष्ट नहीं करता।।१४।।

**शुभखचरस्त्वेको वा विलग्नगस्तुङ्गराशिगो वा चेत्।**
**जयति तदारिचक्रं स्वराशिगो वाधिमित्रगेहस्थः।।१५।।**

एक ही शुभग्रह लग्न में स्वोच्च राशि में हो अथवा स्वगृही हो या अपने परममित्र के घर में हो तो यात्रा करने वाला अपने शत्रुओं के समूह पर भी विजय प्राप्त करता है।।१५।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

शुभे त्रिकोणकेन्द्रस्थे लाभे चन्द्रेऽथवा रवौ।
शत्रून्हन्ति गतो राजात्वंधकारं यथा रवि।।
स्वक्षेत्रगे शुभे चन्द्रे त्रिकोणायगते गते।
विनाशयत्यरीन् राजा तूलराशिमिवानलः।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ४९-५०)

**शुभखचरौ द्वौ बलिनौ प्रच्छकलग्नस्थितौ यदा भवतः।**
**बहुविधलाभं विजयं कुरुतस्त्वतिशीघ्रमादिशेत्प्रष्टुः।।१६।।**

बलवान दो शुभ ग्रह प्रश्न कर्त्ता के लग्न में स्थित हों तो अनेक प्रकार से लाभ एवं विजयप्रद होगा ऐसा शीघ्र ही प्रश्नकर्त्ता से (ज्योतिषी को) कहना चाहिए।।१६।।

**बलक्षपक्षे प्रतिपत्प्रयाणे भङ्गप्रदा वा निधनप्रदा वा।**
**यातुर्मनोभीष्टकरा द्वितीया सम्पूर्णयात्रा फलदा तृतीया।।१७।।**

शुक्लपक्ष प्रतिपदा के दिन यात्रा भङ्गप्रद अथवा निधनप्रद होती है! द्वितीया तिथि में यात्रा करने से अभीष्ट फल होता है और तृतीया तिथि में सम्पूर्ण यात्रा शुभफलप्रद होती है।।१७।।

**तिस्रोऽपि रिक्तास्तिथयः प्रायातुर्मृत्युप्रदाश्चार्थ विनाशदा वा।**
**यशस्करी भूरिधनप्रदा च या पञ्चमी मृत्युकरी च षष्ठी।।१८।।**

तीनों रिक्तातिथियों (४.९.१४) में यात्रा मृत्युप्रद अथवा धन हानिप्रद होती है। पञ्चमी तिथि में यात्रा यशकारक, प्रचुरधन प्राप्ति कारक होती है; परन्तु षष्ठी तिथि में यात्रा मृत्युकारक होती है।।१८।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

षष्ठ्यष्टमीद्वादशी च रिक्तामापूर्णिमासु च।
यात्रा शुक्लप्रतिपदि निधनायाधनाय च।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ३)

**शौनकः—**

धननाशो रवौ यातुः शक्तिनाशसितेतरे।
सोमो रक्तोद्भवो भौमे स पापेज्ञे धनव्ययः।।
जयो गुरौ मीनलक्ष्मी यातो भूरि वधादिकम्।
गुणारि लाभखेटानां क्रूरा वाराः सुखप्रदाः।।
शनौ सोमे न पूर्वाशां न यायाद्दक्षिणे गुरौ।
प्रतीच्यां तु रवौ शुक्रे सोतरा बुधभौमयोः।।
प्राचीं प्रति गुरौयायाद् दक्षिणं शनिसोमयोः।
वारुणी भौमबुधयोरूत्तरां सितसूर्ययोः।।

—(ज. मो. अ. ८७, श्लोक ५०-५३)

**सप्तमी विजयदा तथाऽष्टमी शोकदुःखभयदामयप्रदा।**
**सर्वदुःखशमनी यशस्करी लाभदा च दशमी निरन्तरम्।।१९।।**

सप्तमी तिथि में यात्रा विजयप्रद, अष्टमी में शोक, दुःख, भय एवं रोगप्रद तथा दशमी तिथि में यात्रा निरन्तर सभी दुःखों का निवारण यशप्रदा एवं लाभकारक- ।।१९।।

**पशुप्रदा मानकरी सुगन्धरक्ताम्बरानेकशुभप्रदा स्यात्।**
**एकादशी चित्रमृगप्रभूतधान्याकराद्युत्तमवस्तुदा स्यात्।।२०।।**

पशुप्रदा, मान देने वाली, सुगन्ध, रक्त वस्त्र और अनेक विधाओं से शुभफलप्रद होती है। एकादशी तिथि में यात्रा विचित्र मृग, प्रचुर धान्यप्रदा तथा उत्तम वस्तुओं को देने वाली होती है।।२०।।

**भूरिभूतिनाशिनी भूरिधर्महारिणी।**
**भूरिभीतिदायिनी द्वादशी प्रभङ्गदा।।२१।।**

द्वादशी तिथि प्रभूत धन का नाश करने वाली, अनेक धर्मक्रियाओं की हरण (नाश) करने वाली तथा अनेक प्रकार के भय को देने वाली होती है।।२१।।

**त्रयोदशी सुभोगदा विपक्षपक्षनाशिनी।**
**विनाशदाथ पूर्णिमा यशःक्षयं करोति वा।।२२।।**

त्रयोदशी तिथि श्रेष्ठ भोगप्रदा, विपक्ष के पक्ष को नष्ट करने वाली तथा पूर्णिमा विनाशप्रद एवं यश को क्षय करने वाली होती है।।२२।।

**सितराद्यवासरो विभूतिसौख्यभोगदः।**
**सितेतरे जघन्यके फलप्रदाश्च वासराः।।२३।।**

कृष्णापक्ष प्रथम दिवस अर्थात् प्रतिपदा तिथिविभूति और सुखऐश्वर्य देने वाली होती है, जबकि कृष्णपक्ष की अन्य तिथियां जघन्य फलप्रद होती हैं।।२३।।

**सुरेज्यदैत्येज्यशशीन्दुजानां वाराश्च वर्गाः शुभदाः प्रयाणे।**
**आदित्यभूसूनुशनैश्चराणां वाराश्च वर्गा न शुभप्रदा स्युः।।२४।।**

बृहस्पति, शुक्र, चन्द्रमा एवं बुधवारों में इन्हीं का वर्ग भी हो तो यात्रा शुभ हो जाती है। सूर्य, मङ्गल और शनिवारों में इन्हीं का वर्ग हो तो यात्रा में शुभफल नहीं होता।।२४।।

**क्रमागतः–**

**राजमार्त्तण्डः—**

सूर्यदिनेऽध्वनि नाशश्चन्द्रे शक्तिक्षयोऽर्थनाशश्च।
ज्वलनासृक्पित्तरुजः कौजे बौधे सुहृत्प्राप्तिः।।
जीवे जयधनलब्धिः शुक्र स्त्रीवस्त्रगन्धधनलाभः।
दैत्यवधबन्धरोगान्प्राप्नोति दिनेऽर्केपुत्रस्य।।

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ९)

**पौष्णद्वयादित्यकरेज्यमित्रविष्णिवन्दुवस्वाह्वयभानि यानि।**
**श्रेष्ठानि यात्रासु नवैव तानि मुक्त्वा त्रिपञ्चादिमसप्तभानि।।२५।।**

रेवती से दो अर्थात् रेवती और अश्विनी, पुनर्वसु, हस्त, पुष्य, अनुराधा, श्रवण मृगशिरा तथा धनिष्ठा ये नौ नक्षत्र यात्रा में श्रेष्ठ हैं। अपने जन्म नक्षत्र से तीसरा, पञ्चम, पहला तथा सातवां नक्षत्र त्यागकर यात्रा शुभ होती है॥२५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

पौष्णेर्केन्द्वश्विमित्राग्निहरितिष्यवसूड्षु।
नवसप्तपञ्चमायेषु यात्राभीष्टफलप्रदा॥

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ४)

**तिस्रोत्तरा वारुणनैर्ऋतेन्द्र पूर्वात्रयब्राह्मदशैव भानि।**
**मध्यानि कष्टान्यनिलानलेशद्विदैवचित्राहिमघान्तकानि॥२६॥**

तीनों उत्तरा (उ.फा.उ.षा.उ.भा.) शतभिषा, मूल, ज्येष्ठा, पूर्वात्रय (पू. फा. पू. षा. पू. भा.) और रोहिणी ये दस नक्षत्र यात्रा में मध्यम हैं। जबकि कृत्तिका, स्वाती, विशाखा, चित्रा, आश्लेषा, मघा तथा भरणी नक्षत्रों यात्रा में कष्टप्रद होती है॥२६॥

**क्रमागतः–**

**गुरुः—**

पूर्वासु त्रिषु याम्यर्क्षे ज्येष्ठायां रौद्रभौरगे।
सर्वाशासु गते यात्रां प्राणहानिर्भविष्यति॥

—(मु. चि. प. टी. प्र. ११, श्लोक ९)

**पुरुहूतदिशं पुरन्दरर्क्षे नेयाद्याम्यदिशंत्वजाङ्घ्रिधिष्ण्ये।**
**जलनाथदिशं पितामहर्क्षे शूलाख्यान्यथ सौम्ययमर्क्षे॥२७॥**

पूर्व दिशा में ज्येष्ठा नक्षत्र तथा दक्षिण दिशा में पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में, पश्चिम दिशा में रोहिणी नक्षत्र में तथा भरणी नक्षत्र एवं शूल योग में उत्तर दिशा में यात्रा नहीं करनी चाहिए॥२७॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

इन्द्रोजपादचतुरास्यार्यमर्क्षाणि पूर्वतः।
शूलानि सर्वद्वाराणि मैत्रार्केज्याश्विभानि च॥

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ६)

**राजमार्त्तण्डः–**

"तोयेशवह्निधनदान्तक राक्षसानां यातोऽथवानिलशतक्रतुशङ्कराणाम्।"
दिग्भागमुष्ण किरणादि दिनेषु देवैः संरक्षितोऽपि निधनं न चिरादुपैति॥

सूर्यं शुक्रे कुजे राहौ मन्देचन्द्रेबुधेगुरौ।
अग्रतः शोभनायात्रा पृष्ठतोमरणं ध्रुवम्॥

प्रतीचीं रविवारेण प्राचीं च रविनन्दने।
उदीचीं भूमिपुत्रेण न यायाद्दक्षिणां गुरौ।।
—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक १०)

**तुहिनकिरणमन्दवारे शक्रदिशं न च व्रजेद् गुरौ च याम्यायाम्।**
**रविसितदिने प्रतीच्यां सौम्यदिशं ज्ञारयोश्च वारशूलाः स्युः।।२८।।**

सोमवार एवं शनिवार के दिन पूर्व दिशा में, गुरुवार को दक्षिण दिशा में, रविवार एवं शुक्रवार को पश्चिम दिशा में तथा उत्तर दिशा में मङ्गल एवं बुधवार को वारशूल होता है। अत: यात्रा नहीं करनी चाहिए।।२८।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

न मन्देन्दुदिने प्राचीं न व्रजेदक्षिणां गुरौ।
सितार्कयोर्न प्रतीचीं नोदीचीं ज्ञारयोर्दिने।।
—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ५)

**मेषादिमीनपर्यन्तं पश्चिमादिप्रदक्षिणम्।**
**चन्द्रकण्टकमित्याहुर्गमनं कार्यनाशनम्।।२९।।**

मेष राशि से मीन राशि तक पश्चिमादि दिशाओं में चन्द्रकण्टक योग कहा गया है। इस योग में यात्रा करने से कार्यनाश होता है।।२९।।

यथा—मेष में पश्चिम, वृष में उत्तर, मिथुन में पूर्व, कर्क में दक्षिण में चन्द्रकण्टक होता है। इसी प्रकार मीन पर्यन्त गणना करना चाहिए। मेष, सिंह, धनु राशियों पश्चिम में, कर्क, वृश्चिक, मीन, उत्तर में। इसी प्रकार सभी दिशाओं राशियों का स्थापन कर चन्द्रकण्टकी जानने चाहिए।

**शूलाख्यानि च धिष्ण्यानि शूलसंज्ञाश्च वासराः।**
**यामिनां मृत्युदाः शीघ्रमथवाऽश्वादि हानिदाः।।३०।।**

शूल नामक नक्षत्रों में, शूलसंज्ञक वारों में यात्रा करने वाले यात्री की शीघ्र ही मृत्यु होती है अथवा अश्व हानि हो जाती है।।३०।।

**पूर्वादिषु चतुर्दिक्षु वह्निधिष्ण्यान्निरन्तरम्।**
**सप्तसप्तक्रमेणैव द्विग्द्वाराख्यानि भानि वै।।३१।।**

पूर्वादि चारों दिशाओं में कृतिका नक्षत्र से निरन्तर गणना करके सात-सात नक्षत्रों के क्रम से दिग्द्वार संज्ञक नक्षत्र कहे हैं।।३१।।

**न लंघ्यः परिघो दण्डस्त्वग्निवायुदिगाश्रितः।**
**पूण्यार्काश्विनमैत्राणि सर्वदिग्द्वारकाणि च।।३२।।**

परिघ तथा दण्डयोगों में अग्निकोण एवं वायुकोण का उल्लङ्घण नहीं करना

चाहिए। अर्थात् यात्रा वर्जित करें! पुष्य, हस्त, अश्विनी, अनुराधा ये चार नक्षत्र सर्वदिग्द्वार नक्षत्र हैं। अर्थात् इन नक्षत्रों में यात्रा सभी दिशाओं में की जा सकती है।।३२।।

**सर्वदिक्ष्वपि यातॄणां सर्वकामार्थदानि च।**
**पूर्वादिदिक्षु मेषाद्याः क्रमाद्दिग्द्वारराशयः।।३३।।**

सभी दिशाओं में यात्री के लिये ये चार नक्षत्र सभी कामनाओं को पूरा करने वाले तथा धनप्रद होते हैं। पूर्वादि दिशाओं में मेषादि द्वादश राशियों के क्रम से दिग्द्वार राशियां कही हैं।।३३।।

**सर्वदिक्षु प्रशस्तोऽपि पुष्यः सर्वार्थसाधकः।**
**प्रतीच्यां गमने त्याज्यः सौख्यसम्पदमिच्छता।।३४।।**

सभी दिशाओं में पुष्य नक्षत्र प्रशस्त तथा सभी धनों का साधक कहा गया है, परन्तु पश्चिम दिशा में यात्रा करने पर सुख एवं सम्पत्ति की इच्छा रखने वाला पुष्य नक्षत्र का यात्रा में त्याग करे।।३४।।

**दिग्द्वारराशयः सर्वे तद्दिग्यातुर्जयप्रदाः।**
**तद्वर्गाश्च तदंशाश्च लग्नाधिपस्तथाविधः।।३५।।**

सभी दिग्द्वार राशियों में उनकी ही दिशा में यात्रा करने पर विजय प्राप्ति होती है, जबकि उन राशियों के वर्ग में तथा अंश में लग्न का स्वामी भी हो तो जय देने वाला होता है।।३५।।

**एकोऽपि वक्रगः खेटो लग्नस्थश्चारिराशिगः।**
**नीचस्थो वा तदंशस्थो यात्राकाले विनाशदः।।३६।।**

एक भी वक्रगति में गया हुआ ग्रह लग्न में स्थित हो अथवा शत्रुराशि में गया हो, नीच राशि में हो या नीचांश में हो तो यात्रा काल में विनाश होता है।।३६।।

**यात्रायां यस्य वा शुक्रः सम्मुखो दक्षिणस्थितः।**
**करोति वहुधा नाशं बुधश्चेन्निधनप्रदः।।३७।।**

यात्रा में जिसका शुक्र सामने या दक्षिण में हो तो ऐसा शुक्र यात्रा में बहुत प्रकार से नाश करता है, जबकि बुध भी हो तो मृत्युप्रद होता है।।३७।।

**दिगीश्वरा भास्कर शुक्रभौमराह्वार्किचन्द्रज्ञसुरार्चिताः स्युः।**
**दिगीश्वरे यत्र ललाटसंस्थे यात्रा न कार्या न च सन्निवेशः।।३८।।**

सूर्य, शुक्र, मङ्गल, राहु, शनि, चन्द्रमा, बुध एवं बृहस्पति ये क्रमशः दिशाओं के स्वामी हैं। दिशा का स्वामी यहाँ ललाट में स्थित हो तो यात्रा एवं प्रवेशादि नहीं करना चाहिए।।३८।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

दिगीशः सूर्यशुक्रारराह्वार्कीन्दुज्ञसूरयः।
दिशीश्वरे ललाटस्थे यातुर्न पुनरागमः।।
लग्नस्थो भास्करः प्राच्यां दिशि यातुर्ललाटगः।
द्वादशैकादशः शुक्रः अग्नेय्यां तु ललाटगः।।
दशमस्थो कुजो लग्नाद्याम्यायां तु ललाटगः।
नवमोऽष्टमगो राहुर्नैऋत्यां तु ललाटगः।।
लग्नात्सप्तमगः सौरिः प्रतीच्यां तु ललाटगः।
षष्ठपञ्चमगश्चन्द्रो वायव्यां तु ललाटगः।।
चतुर्थस्थानगः सौम्य उत्तरस्यां ललाटगः।
द्वित्रिस्थानगतो जीव ईशान्यां तु ललाटगः।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ९-१३)

**राशीनेकं द्वाविनाक्रान्तराशेरप्रादक्षिण्यान्न्यसेद् दिग्विदिक्षुः।**
**यद्दिग्राशौ लग्नगे सम्मुखत्वे तद्दिग्यातुर्मृत्युदस्तद्दिगीशः।।३९।।**

एक राशि को द्वितीय राशि के विना अक्रान्त राशि में अप्रदक्षिण क्रम से प्रत्येक दिशाओं एवं कोणों में स्थापित करें। जिस दिग् राशि में लग्न में ग्रह सम्मुख हो तो उस दिशा में यात्रा करने से उसी दिशा का स्वामी यात्री के लिए मृत्युकारक हो जाता है।।३९।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

ललाटगं तु सन्त्यज्य जीवितेच्छुर्व्रजेन्नरः।
विलोमगो ग्रहो यस्य यात्रालग्नोपगोयदि।।
तस्यभङ्गप्रदो राज्ञस्तद्वर्गोऽपि विलग्नगः।
रवीन्द्वयनयोर्यानमनुकूलं शुभप्रदम्।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक १४-१५)

**रत्नकोशे-**

"योऽधिपतिर्दिशि यस्यास्तमिंस्तत्स्थेन तां दिशिं यायात्।।"
अनुकूले च दिगीशे गन्तव्यं कष्टकोपगते।।

—(मु. चि. पी. टी. अ. ११, श्लोक ५१)

**प्रायणसमये यस्य विद्युन्नीहारवृष्टयः।**
**अकालजा भवन्त्येते सदा भङ्करामृशम्।।४०।।**

यात्रा के समय बिजली गर्जन अथवा वर्षा हो रही हो तो यह अकालज यात्रा सर्वदा भङ्ग करने वाली होतीं है।।४०।।

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

अकालजेषु नृपतिर्विद्युद् गर्जितवृष्टिषु।।
उत्पातेषु त्रिविधेषु सप्तरात्रं तु न व्रजेत्।
गमने तु शिवाकाककपोतानां गिरः शुभः।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ७९-८०)

**राजमार्त्तण्डः—**

पौषादि चतुरो मासान् प्राप्ता वृष्टिरकालजा।
व्रतं यात्रादिकं चैव वर्जयेत्सप्तवासरान्।।

**श्रीपतिः—**

वृष्टिरकालप्रभवा चतुर्षुमासेषु पौषपूर्वेषु।
आदिसप्ताहंत्याज्यं व्रतं च यात्रादिकं तत्र।।
सौदामिनी वर्षण वर्जितेषु नाकालजेषु प्रवसेन्नरेन्द्रः।
आसप्तरात्राद् ध्रुवमद्भुतेषु दिव्यान्तरिक्षक्षितिजेषुचैवम्।।

—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक ७९)

**शुभाशुभनिमित्तानि ह्युत्पातशकुनानि च।**
**यात्राकाले नृणां तेषां निधनायाधनाय च।।४१।।**

शुभाशुभ नैमित्तक उत्पात शकुनादि यात्राकाल में मनुष्यों के लिए मृत्यु देने वाले अथवा धनरहित करने वाले होते हैं।।४१।।

**वस्तूनां च शुभानां च पूर्वोक्तानां च वीक्षणम्।**
**प्रयाण समये यस्य तस्य भङ्गो भवेत्तदा।।४२।।**

पूर्व में कही गई शुभ वस्तुओं को देखकर यदि यात्रा की जाये तो सभी दुष्ट योग भङ्ग हो जाते हैं।।४२।।

**यात्रायां शकुनं यस्य यदि प्रावेशिकं भवेत्।**
**शोकदुःखं भवेत्तस्य गदो भवति निश्चयात्।।४३।।**

जिसकी यात्रा में यदि शकुन प्रावेशिक हों तो शोक दुःख होता है तथा निश्चय से रोग भी होता है।।४३।।

**पूर्वं प्रवेशिकं भूत्वा पश्चात्प्रास्थानिकं भवेत्।**
**सुखेन सिद्ध्यते कार्यं विपरीतं प्रवेशने।।४४।।**

पूर्व प्रवेशिक होकर तत्पश्चात् यात्रा के लिए प्रास्थानिक होना चाहिए। ऐसा करने पर विपरीत योग में प्रवेश करने पर भी सुख से सभी कार्य सिद्ध होते हैं।।४४।।

**शस्तावाग्वामभागे शिवगुरुरुरुच्छुच्छुन्दरी कुम्भकाक-**
**स्वर्णाक्षीणां प्रयाणे विहगगणपतिर्दक्षिणाः क्षीरवृक्षाः।।**
**कृष्णादन्यच्चतुष्पादति शुभकरो दक्षिणाद्वामभागे।**
**व्यस्तं सर्वं प्रवेशे खरदिन विदृशोः पूर्ववद् वाक्प्रशस्ताः।।४५।।**

यात्रा के समय सियार, रुरु, छछुन्दर, कुम्भ कौवा वाम भाग में श्रेष्ठ होते हैं। सोना, बलहीन व्यक्ति, पक्षी, गणपति तथा क्षीरवृक्ष (दूधारुवृक्ष) यात्रा प्रस्थान समय दक्षिण भाग में शुभ कहे हैं। काली गाय के अतिरिक्त कोई भी चार पैरों वाला पशु दक्षिण या वामभाग में ध्वनि करे तो सब प्रकार प्रवेश, परन्तु खर दिनों को त्याग कर पहले की तरह शुभ होता है।।४५।।

क्रमागतः–

नारदः–

प्रज्वलग्निः शुभं वाक्यं कुसुमेक्षुसुरागणाः।।
गन्धपुष्पाक्षतच्छत्रचामरांदोलका नृपाः।
भक्ष्यं शुभफलं चैवभोऽश्वाजौ दक्षिणे वृषः।।
मत्स्यं मांसं सुधौतं च वस्त्रं श्वेतवृषध्वजः।
पुण्यत्री पूर्णकलशरत्न शृङ्गारगोद्विजाः।।
भेरी मृदङ्गपटह शंख रागादि निस्वनाः।
वेदमङ्गलघोषः स्युर्यायिनां कार्यसिद्धिदाः।।

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ८७-९०)

**चाषबच्चभरद्वाजाश्छागो बर्हीं तथैव च।**
**एतेषां दर्शनात्सिद्धिर्विजयश्च प्रदक्षिणात्।।४६।।**

नीलकण्ठ या उसके सदृश पक्षी, उल्लू, बकरा तथा मोर दक्षिण दिशा में दिखाई दें तो यात्रा में सिद्धि और विजय प्राप्ति होती है।।४६।।

**अर्चास्त्वभिमुखं यान्तिच्छत्रचामरदीपकैः।**
**नृत्यमङ्गलघोषाद्यैः सहिता राज्यलाभदाः।।४७।।**

यात्रा के समय पूजा सामने हो रही हो, छत्र, चामर, दीप, नृत्य, मङ्गल वाद्य सहित यात्रा हो तो राज्य एवं लाभ होता है।।४७।।

**दृष्टे शवे रोदनवर्जिते च सम्पूर्णयात्राफलमेव तत्र।**
**प्रवेश काले तु शवः शवत्वं करोति तद्रोदन वर्जितोऽपि।।४८।।**

रुदन रहित यदि मुर्दा दिखाई दे तो सम्पूर्ण यात्रा शुभफलप्रद होती है! प्रवेशकाल में यदि रोदन रहित होते हुए मुर्दा दिखाई दे तो मृत्यु होती है।।४८।।

**बिडालसर्पशशकगोधाशूकर कीर्तनम्।**
**शुभमालोकनं नेष्टं तदुक्तं वाऽशुभप्रदम्॥४९॥**

बिल्ली, साँप, खरगोश, गधा, सुअर यदि आवाजें करें तो शुभ होता है; परन्तु उनका देखना नष्ट तथा अशुभ फलप्रद होता है॥४९॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

वराहशशगोधानां सर्पाणां कीर्तणं शुभम्।
दृष्टमात्रेण यात्रायां व्यस्तं सर्वं प्रवेशने॥
यात्रासिद्धिर्भवेद्दृष्टे शवे रोदनवर्जिते।
प्रवेशो रोदनयुते शवे स्याच्च शुभप्रदः॥

—(ना. सं. अ. ३३, श्लोक ८३-८४)

**कन्यागोवाद्यशंखं दधिफल कुसुमं पावकं दीप्यमानं।**
**यानं वा गोप्रयुक्तं हयगजवृषभं पूर्णकुम्भं द्विजं वा॥**
**उद्धृत्याज्यं च मांसं जलचरयुगलं सिद्धमन्नं शवं वा।**
**वेश्यास्त्री मद्यभाण्डं प्रियहित वचनं मङ्गलं प्रस्थितानाम्॥५०॥**

कुँवारी कन्या, गाय, वाद्य, शङ्ख, दधि, फल, पुष्प, जलती अग्नि, सवारी, ग्वाले बालक, घोड़ा, हाथी, बैल, पूर्णकुम्भ अथवा ब्राह्मण, घृत तथा मांस को त्यागकर मछलियाँ (नर, मादा), पका हुआ अन्न, शव, वेश्यास्त्री, शराब का पात्र, प्रिय हितकर वाक्य प्रस्थान के समय मङ्गलकारी कहे हैं॥५०॥

**गुडलवणवसास्थि क्लीब कार्पास पंक-**
**प्रहरणरिपुमत्तोन्मत्तपग्वङ्गहीनैः ॥**
**पतितजटिलमुण्डैर्व्याधिताभ्यक्त तैलै-**
**रखिल कुल विनाशः क्षुत्पिपासार्तभूतैः॥५१॥**

गुड़, नमक, वसा (चर्बी), हड्डी, नपुंसक, कपास, कीचड़, प्रहरण शत्रु, पङ्गु, अङ्गहीन प्राणी, पतित एवं जटिल मुण्डित संन्यासी, व्याधिग्रस्त रोगी, तेल से नहाया व्यक्ति, भूख एवं प्यास से व्याकुल प्राणी यात्रा प्रस्थान के समय दृष्टिगोचर हो तो सम्पूर्ण कुल का विनाश होता है॥५१॥

**शाखामृगाख्यभल्लूकदर्शनं स्वरमिष्टदम्।**
**एतयोः कीर्तनं यत्र यातुः कार्यविनाशनम्॥५२॥**

वानर तथा भालू का दर्शन एवं स्वर अभीष्ट सिद्धिप्रद होता है, परन्तु इन दोनों का प्रस्थान समय चिल्लाना, ऊँची ध्वनि करना कार्य का नाश करने वाला होता है॥५२॥

**जन्मान्धमुक्तकेशास्थिकुब्जवन्ध्याविरूपकैः।**
**कषायेन्धननास्तिक्य रजकैः कार्यनाशम्॥५३॥**

जन्म से अन्धा, खुले बालों वाला, हड्डी, कुबड़ा, वन्ध्यास्त्री, कुरूप अथवा अङ्गभङ्ग व्यक्ति, भगवे वस्त्रधारी, नास्तिक व्यक्ति, धोबी इत्यादि प्रस्थान के समय दिखाई दे तो कार्य का नाश होता है॥५३॥

**राहुस्थितर्क्षं तस्यास्यं पुच्छं पञ्चदशं ततः।**
**तदेव केतुभं ज्ञेयं सदा राहुः प्रतीपगः॥५४॥**

राहु स्थित नक्षत्र में अथवा उसके मुख या पुच्छ में तत्पश्चात् पन्द्रहवें नक्षत्र को केतु संज्ञक नक्षत्र जानना चाहिए। ये दोनों (राहु-केतु) सदैव वक्रगति से चलते हैं॥५४॥

**क्रमागतः–**

**स्वरोदयेऽपि—**

"राहुभुक्तानि ऋक्षाणि जीवयक्षस्त्रयोदश।
त्रयोदशैव भोग्यानि मृतपक्षः प्रकीर्तितः॥
यत्र ऋक्षे स्थितो राहुर्वदनं तद्विनिर्दिशेत्।
मुखपञ्चदशे ऋक्षे तस्य पुच्छं व्यवस्थितम्॥

—(मु. चि. पी. धा. टी., प्र. ११, श्लोक १४)

**त्रयोदश त्रयोदश धिष्ण्यान्युभय पार्श्वयोः।**
**मुखभागो मृतपक्षो जीवपक्षस्तु पृष्ठगः॥५५॥**

तेरहा-तेरहा नक्षत्रों को दोनों बगलों में स्थापित करके उसके मुख भाग में मृतपक्ष वाली यात्रा होती है, परन्तु पुच्छ भाग में जीवपक्ष यात्रा जीवन प्रदान करती है॥५५॥

**रविः स्थायी शशी यायी तद्वशाच्च जयाजयौ।**
**जीवपक्षस्थिते सूर्ये मृतपक्षगते विधौ॥५६॥**

रवि स्थायी तथा चन्द्रमा गमन करने वाला है। इन दोनों के अनुसार जय और पराजय कहना। जीवपक्ष में सूर्य एवं मृतपक्ष में चन्द्रमा होने पर—॥५६॥

**क्रमागतः–**

**स्वरोदये—**

जीवपक्षस्थिते चन्द्रे कार्यं स्यादमृतोपमम्।
मृतपक्षेमृत ज्ञेयं यतश्चन्द्रबलेबलम्॥

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक १५)

**स्थायिनां विजयस्तत्र यायिनां च पराजयः।**
**मृतपक्षगते भानौ जीवपक्षगते विधौ॥५७॥**

मृतपक्ष में सूर्य और जीवपक्ष में चन्द्रमा हो तो स्थायी व्यक्ति की विजय होती है, जबकि यायीपक्ष की पराजय होती है॥५७॥

**यायिनां विजयस्तत्र स्थायिनां च पराजयः।**
**जीवपक्षगयोः सूर्य चन्द्रयोः सन्धिमादिशेत्॥५८॥**

यायी की विजय तथा स्थायी पराजित होता है! जीवपक्ष में सूर्य-चन्द्रमा दोनों हों तो यायी एवं स्थायी में सन्धि होगी ऐसा कहें॥५८॥

**उभौ पराजितौ ज्ञेयौ मृतपक्षगयोस्तयोः।**
**चन्द्रे पुच्छे मुखे सूर्ये जयः स्वल्पोऽपि यायिनाम्॥५९॥**

मृतपक्ष में सूर्य एवं चन्द्रमा हों तो दोनों पक्षों की पराजय कहनी चाहिए। चन्द्रमा पुच्छ में एवं सूर्य का मुख में स्थित होने पर यायीपक्ष की सामान्य विजय होती है॥५९॥

**व्यत्यये व्यत्ययफलं युद्धेष्वेव विचिन्तयेत्।**
**यात्रायामपि सर्वत्र चिन्तनीयं प्रयत्नतः॥६०॥**

इसके विपरीत एक-दूसरे के स्थान पर होने से युद्ध में सर्वदा विचारणीय है। प्रयत्नपूर्वक यात्रा में सर्वत्र चिन्तनीय है॥६०॥

**यात्रेष्ट सिद्धिदाऽर्केन्दोरेकायनगयोस्तयोः।**
**भिन्नायनगयोरह्नि निशि चेदन्यथा वधः॥६१॥**

जब सूर्य एवं चन्द्रमा एक ही अयन में हों तो यात्रा मनोनुकूल फल देती है। विभिन्न अयनों में सूर्य एवं चन्द्रमा हों तो दिन की यात्रा शुभ, परन्तु रात्रि यात्रा में अन्यथा वध होता है॥६१॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

"रवीन्द्वयनयोर्यानमनुकूलं शुभप्रदम्।
तदभावे दिवा रात्रौ यात्रा यातुर्वधोऽन्यथा॥

**रत्नकोशे—**

दिनकर कर प्रतप्तां मकरादाबुत्तरां च पूर्वां च।
यायाच्च कर्कटादौ याम्यामाशां प्रतीचीं च॥
—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ३९)

**स्वाष्टलग्ने लग्नगते राशौ वा लग्नगे सति।**
**यातुर्भङ्गो भवेत्तत्र द्वादशे वान्यलग्नगे॥६२॥**

यात्रा लग्न यदि अपने जन्म लग्न से अष्टम में हो अथवा अपनी राशि लग्न में, द्वादश अथवा अन्य लग्न में हो तो यायी की भङ्ग (पराजय) होती है॥६२॥

**स्वशत्रुलग्नराशौ वा यदा लग्नगते तदा।**
**यातुर्भङ्गप्रदा नित्यं तदीशे वाथ लग्नगे॥६३॥**

अपने शत्रु लग्न या राशि लग्न में स्थित हो अथवा उसके स्वामी लग्न में होने पर यात्रा नित्य ही भङ्गप्रद होती है॥६३॥

**अष्टलग्नाधिपे यत्र लग्नगे राशिगेऽथवा।**
**दुःखशोकभयं यातुरथवा निधनं भवेत्॥६४॥**

लग्न से अष्टम स्थान का स्वामी लग्न में या राशि में स्थित हो तो यात्रा करने वाले के लिये दुःख, शोक, भय तथा निधनप्रद होता है॥६४॥

**जन्मराशौ लग्नगते तदीशे वा विलग्नगे।**
**अभीष्टफलदा यात्रा राशीशश्चेच्छुभग्रहः॥६५॥**

जन्मराशि का स्वामी लग्नगत हो या लग्न का स्वामी लग्न में हो तथा राशीश शुभग्रह हो तो यात्रा अभीष्ट फलप्रद होती है॥६५॥

**चरराशौ लग्नगते स्थिरे वा सौम्यवीक्षिते।**
**यातुरिष्टार्थदा यात्रा द्विस्वभावेत्वनिष्टदा॥६६॥**

लग्न गत चरराशि या स्थिर लग्न हो शुभग्रहों द्वारा दृष्टिगोचर हो तो यात्रा, यात्री के लिये इष्ट, धन को देने वाली होती है, परन्तु द्विस्वभाव राशियों का लग्न हो तो अनिष्टकारक यात्रा होती है॥६६॥

**शीर्षोदये लग्नगते तदीशे वाथलग्नगे।**
**अत्यन्तफलप्रदा यात्रा तदीशश्चेच्छुभग्रहः॥६७॥**

लग्न में शीर्षोदय राशि हो तथा राश्याधिपति लग्न में हो और उसका स्वामी शुभग्रह हो तो यात्रा अत्यन्त शुभफल प्रदायिनी होती है॥६७॥

**जन्मलग्ने लग्नगते तद्वर्गे वा विलग्नगे।**
**अत्यन्तफलदा यात्रा तदीशश्चेच्छुभग्रहः॥६८॥**

जन्मलग्न में, जन्मलग्न के वर्ग में और उसका स्वामी शुभग्रह हो तो यात्रा अत्यन्त शुभफलप्रद होती है॥६८॥

**शुभग्रहे लग्नगते तद्वर्गे वा विलग्नगे।**
**धनधान्यप्रदा यात्रा त्वथवा विजयप्रदा॥६९॥**

शुभग्रह लग्न में या शुभग्रह के वर्ग में लग्न हो तो यात्रा धनधान्य देने वाली अथवा विजय प्रदान करती है॥६९॥

**द्विग्द्वारभे लग्नगते तदंशे वा तदीश्वरे।**
**अर्थलाभप्रदा यातुरथवा विजयप्रदा॥७०॥**

दिग्द्वार नक्षत्र में लग्न की स्थिति हो अथवा लग्नांश या लग्नेश लग्न में हो तो यात्रा, यात्री के लिये अर्थलाभकारक अथवा विजयकारक होती है॥७०॥

**जन्मराशि विलग्नाभ्यां लग्ने चोपचये गृहे।**
**सम्पूर्णफलदा यात्रात्वथवा विजयप्रदा॥७१॥**

जन्मराशि अथवा लग्न से लग्न उपचयस्थान (३, ६, १०, ११) में हो तो यात्रा सम्पूर्ण रूप में फलदायिनी अथवा विजयप्रदायिनी होती है॥७१॥

**वर्गोत्तमांशगे लग्ने त्वथवापि सुधाकरे।**
**यात्रा कामदुघा यातुर्माता पुत्रस्य वै यथा॥७२॥**

वर्गोत्तम नवांश में यदि लग्न हो अथवा चन्द्रमा हो तो यात्रा मनोकामनाओं को पूरा करने वाली वैसे ही होती है, जैसे पुत्र के लिये माता॥७२॥

**दिग्द्वारभेषु यात्रोक्तेष्वथवा सर्वभेषु च।**
**यात्रा रक्षति कर्तारं माता पुत्रमिवानिशम्॥७३॥**

दिग्द्वार नक्षत्रों में यात्रा हो या सभी नक्षत्रों में हो यात्रा, कर्त्ता की रक्षा वैसे ही होती है। जैसे माता अपने बच्चे की रक्षा दिन-रात करती है॥७३॥

**स्वराशिगे शुभे लग्ने स्वांशगे मित्रगेऽपि वा।**
**यात्रा रक्षति कर्तारं पितेवानुगतं सुतम्॥७४॥**

अपनी राशि का शुभलग्न, अपने नवांश में या अपने मित्र की राशि में स्थित हो तो यात्रा कर्त्ता की रक्षा, वैसे ही करती है, जैसे पुत्र पिता का अनुगामी होता है॥७४॥

**स्वाधिमित्रगते सौम्ये लग्नगे वा तदंशगे।**
**यात्रा रक्षति कर्तारं सुविद्येवातुरं द्विजम्॥७५॥**

अपने अधिमित्र राशि में शुभग्रह का लग्न हो या शुभग्रह का नवांश हो, यात्रा कर्त्ता की रक्षा वैसे ही करती है, जैसे श्रेष्ठविद्या ब्राह्मण की रक्षा करती है॥७५॥

**वसुभस्योत्तरार्द्धाच्च पञ्चधिष्ण्येषु सर्वदा।**
**याम्यदिग्यायिनां नृणां दुःखदा भङ्गदाऽपि वा॥७६॥**

धनिष्ठा नक्षत्र के उत्तरार्द्ध से आगे पाँच नक्षत्रों तक अर्थात् रेवती नक्षत्र तक सदैव पञ्चक कहे हैं। इन पञ्चकों में दक्षिण दिशा में यात्रा मनुष्यों के लिये दुःखप्रद अथवा नष्ट करने वाली होती है॥७६॥

**अष्टमस्त्वभिजिन्नाममुहूर्तो भङ्गदा सदा।**
**याम्यदिग्यायिनां सन्ति गुणाश्च बहवो यदि॥७७॥**

सूर्योदय पश्चात् आठवां मुहूर्त्त अभिजित् संज्ञक मुहूर्त्त होता है। यह मुहूर्त्त सर्वदा अनेक प्रकार के दोषों को नष्ट करता है। दक्षिण दिशा में यात्रा करने वालों के लिये भी अनेक गुणों को प्रदान करता है॥७७॥

**अन्यदिक्षु प्रयातृणां स मुहूर्तो जयप्रदः।**
**प्राक्तनं सुकृतं यद्वन्नराणां पुण्यकर्मणाम्॥७८॥**

अन्य दिशाओं में यात्रा करने वालों के लिये अभिजित् मुहूर्त्त वैसे ही जयप्रद है; जैसे पूर्वजन्म में किए गये पुण्यकार्य मनुष्यों को पुण्य कर्मों में लगाते हैं॥७८॥

**यात्रा सम्पूर्णफलदा शुभैस्तुङ्गत्रिकोणगैः।**
**मध्यमा स्वसुहृद् भागैरधमा शत्रुनीचगैः॥७९॥**

शुभग्रहों के अपने उच्च, त्रिकोण में होने पर सम्पूर्ण यात्रा शुभफल देती है। यदि ग्रह अपने मित्र राशि में हों तो यात्रा मध्यम और यदि ग्रह शत्रुराशि में या नीचराशि में हों तो यात्रा अधम होती है॥७९॥

**बलप्रदास्य खेटस्य वारवर्गः शुभप्रदः।**
**इतरग्रहवारादिर्यात्रायामशुभप्रदः ॥८०॥**

बलशाली ग्रह का वार एवं वर्ग शुभफलप्रद होता है, जबकि बलहीन ग्रहों का वार एवं वर्ग अशुभ फलप्रद होता है॥८०॥

**एकार्गलहतं धिष्ण्यं क्रूराक्रान्तं च विद्धभम्।**
**उत्पातदूषितं यत्र यात्रा भङ्गप्रदा सदा॥८१॥**

एकार्गल दोष से हत नक्षत्र, क्रूरग्रह से आक्रान्त या विद्धनक्षत्र, उत्पात दूषित नक्षत्र में यात्रा सर्वदा नष्ट करने वाली होती है॥८१॥

**तिथिनक्षत्रलग्नानामन्तरालं च रुक्प्रदम्।**
**गण्डान्तं त्रिविधं तेषां यात्रायां निधनप्रदम्॥८२॥**

तिथि, नक्षत्र और लग्न की सन्धि रोगप्रद होती है। तीनों प्रकार के गण्डान्तों में यात्रा यात्री के लिए मृत्युप्रद होती है॥८२॥

**वैनाशिकादि ऋक्षेषु विषनाडीषु सर्वदा।**
**यातुर्मृत्युप्रदा यात्रा कालकूटविषोपमा॥८३॥**

वैनाशिकादि नक्षत्रों में अथवा विषनाड़ियों में यात्रा वैसे ही मृत्युप्रद होती है; जैसे कालकूट विष की उपमा दूसरे विष से नहीं होती॥८३॥

**महागणितमार्गेषा त्वानीतौ पातवैधृतौ।**
**यो यात्यागमनं तस्य खवृक्षः पुष्पितो यदा॥८४॥**

महागणित के माध्यम से ज्ञात किये गये व्यतीपात वैधृति योगद्वय में जो यात्री यात्रा करता है, उसको असफलता वैसे ही प्राप्त होती है, जैसे शून्यवृक्ष में पुष्प॥८४॥

**कर्त्तरी दूषिते लग्ने चन्द्रे वापि षडष्टगे।**
**यातुर्भङ्गप्रदा यात्रा लग्ने बहुगुणान्विते॥८५॥**

कर्त्तरी दूषित लग्न या चन्द्रमा, षडष्टकयोग होने पर यात्री का यात्रा नष्ट करने वाले होते हैं। चाहे बहुत से गुणों से युक्त लग्न क्यों न हो?॥८५॥

**पञ्चाङ्गदुष्टदिवसे लग्ने वा दोषदूषिते।**
**सा यात्रा भङ्गदा यातुश्चौरभीति प्रदाथवा॥८६॥**

पञ्चाङ्ग में बुरा वार हो, लग्नदूषित हो तो यात्रा नष्ट करने वाली होती है अथवा चोर का डर होता है॥८६॥

**शुक्रे चास्तंगते यत्र चन्द्रे वास्तमुपागते।**
**तयोर्बाल्ये च वार्द्धक्ये स यात्रा भयरोगदा॥८७॥**

शुक्र अस्तंगत हो और चन्द्रमा भी अस्तंगत होने जा रहा हो अर्थात् अमावस हो तो इन दोनों के वाल्य एवं वार्द्धक्य में यात्रा भयप्रद तथा रोगप्रद होती है॥८७॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

नीचगोऽरिगृहस्थो वा वक्रगो वा पराजितः।
यातुर्भङ्गप्रदः शुक्रः स्वोच्चस्थश्चेद्धनप्रदः॥

**श्रीपतिः—**

"नीचगग्रहजिते प्रतिलोमे भार्गवे कलुषितेऽस्तगते वा॥
प्रस्थितो नरपतिः प्रबलोऽपि क्षिप्रमेव वशमेति रिपूणाम्॥

**पराशरः—**

पौष्णादिवाह्निभाद्याङ्घ्रि यावत्तिष्ठति चन्द्रमाः।
तावच्छुक्रो भवेदन्धः सम्मुखे गमनं हितम्॥

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ४१)

**यात्रा लग्नेऽर्क संक्रान्तिदूषिते त्वयनेन वा।**
**यातुर्मासत्रयादेव शत्रुरोगभयप्रदा॥८८॥**

यात्राकाल के लग्न में सूर्य संक्रमण दोष अथवा अयनदूषित हो तो यात्रा को तीन मासों में ही शत्रु एवं रोग का भय होता है॥८८॥

**केन्द्रत्रिकोणगैः सौम्यैस्त्रिभवारिगतैः परैः।**
**अलग्नरिपुचन्द्रेण यात्राभीष्टफलप्रदा॥८९॥**

केन्द्र त्रिकोण स्थानों में शुभग्रह हों, अन्य तीसरे, छठे तथा ग्यारहवें में गये हों, लग्न को छोड़कर शत्रु स्थान में चन्द्रमा हो तो यात्रा अभीष्ट फलप्रद होती है॥८९॥

**यात्रालग्नस्य केन्द्रेषु शून्येषु शुभखेचरैः।**
**निष्फलं गमनं तस्य जारजातस्य पिण्डवत्॥९०॥**

यात्रा कालिक लग्न के केन्द्रों में शुभग्रहों की स्थिति न हो तो यात्रा वैसे ही निष्फल होती है। जैसे जार-जात की पिण्डक्रिया॥९०॥

**त्रिकोणे द्वित्रिराशौ वा शून्ये यस्य शुभग्रहैः।**
**निष्फला तस्य यात्रा स्यान्मिथ्यावादस्य वाग्यथा॥९१॥**

जिस यात्री के त्रिकोण एवं दो-तीन राशियों में शुभग्रह न हों, उसकी यात्रा वैसे ही निष्फल होती है, जैसे मित्यावादी की वाणी व्यर्थ होती है॥९१॥

**यस्मिन्वारे दुर्मुहूर्तलग्नं भङ्गप्रदं नृणाम्।**
**रुक्प्रदं वारदोषं च तस्मात्तत्त्रितयं त्यजेत्॥९२॥**

जिस वार में दुमुर्हूत या दुष्ट लग्न हो तो मनुष्यों की यात्रा नष्ट होती है। वार दोष रोगप्रद होता है। अतः इन तीनों (वार, मुहूर्त्त एवं लग्न) के अशुभ होने पर यात्रा नहीं करनी चाहिए॥९२॥

**पश्चादभ्युदिते शुक्रे यायात्प्राचीं तथोत्तराम्।**
**प्राच्यामभ्युदिते तस्मिन्प्रतीचीं दक्षिणां दिशम्॥९३॥**

पश्चिम दिशा में उदित शुक्र हो तो पूर्व एवं उत्तर दिशा में यात्रा करनी चाहिये। शुक्र पूर्वोदिति हो तो पश्चिम एवं दक्षिण दिशा में यात्रा करनी चाहिए॥९३॥

**सम्मुखे चन्द्रजे यत्र मार्गमध्योदिते यदि।**
**यावदस्तमिते तस्मिंस्तावत्तत्रैव संवसेत्॥९४॥**

यात्रा में चन्द्रात्मज बुध सामने हो तथा मार्ग के मध्य में उदित हो जाए तो जब तक अस्त न हो जाए, वहाँ तब तक वहीं पर निवास करना चाहिए॥९४॥

**प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नरः।**
**बलेन शक्र तुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते॥९५॥**

शुक्र सम्मुख, बुध सम्मुख तथा मङ्गल सम्मुख काल में यदि कोई मनुष्य यात्रा करता है, चाहे उसके पास देवराजइन्द्र तुल्य बल हो तो भी सेना मारी जाती है और उसे वापिस लौटना पड़ता है॥९५॥

क्रमागतः–

गुरुः—

प्रतिशुक्रं प्रतिबुधं प्रतिभौमं गतो नृपः।
बलेन शुक्रतुल्योऽपि हतसैन्यो निवर्तते।।

नारदः–

कश्यपश्च वसिष्ठश्च भारद्वाजात्रिगौतमाः।
एतेषां पञ्चगोत्राणां प्रतिशुक्रो न विद्यते।।

—(जगन्मोहने अ. ८७, श्लोक १०८-१०९)

पुनः गुरुः—

विवाहे तीर्थयात्रायां दुर्भिक्षे राष्ट्रविग्रहे।
एकग्रामे चतुःशाले प्रतिशुक्रो न दूष्यति।।

—(जगन्माहने, अ. ८७, श्लोक ११०)

**प्रवेशे स्वगृहे ग्रामे विवाहे देशविभ्रमे।**
**प्रतिशुक्रोद्भवो दोषो नैव भौमज्ञयोरपि।**
**"तीर्थयात्रा विधौ तेषां प्रतिशुक्रं न विद्यते"।।९६।।**

अपने घर या ग्राम में प्रवेश काल में, विवाह, देश में सङ्कट की स्थिति होने पर शुक्र, मङ्गल तथा बुध सम्मुख दोष नहीं होता। तीर्थयात्रा में भी शुक्र सम्मुख दोष नहीं होता।।९६।।

**काश्यपेषु वसिष्ठेषु भृग्वत्र्यंगिरसेषु च।**
**भरद्वाजेषु वत्सेषु प्रतिशुक्रं न विद्यते।।९७।।**

कश्यप, वसिष्ठ, भृगु, अत्रि, अङ्गिरा, भरद्वाज तथा वत्स ऋषियों के गोत्रोत्पन्न व्यक्ति के लिये सम्मुख शुक्र दोष नहीं होता।।९७।।

**अयमर्थमनुक्तत्वाच्छास्त्रे पैतामहे क्वचित्।**
**तस्मात्सम्मुखदोषोऽस्ति प्रतिशुक्रस्य सर्वदा।।९८।।**

उपर्युक्त अर्थ शास्त्र में ब्रह्मा जी ने कहीं भी नहीं कहा है। अतः शुक्र का सम्मुख दोष सदैव सबको होता है।।९८।।

**तद्दोष शमनार्थाय शान्तिं वक्ष्ये समासतः।**
**कृत्वा शान्तिं प्रयत्नेन पश्चात्कार्यं समाचरेत्।।९९।।**

शुक्र सम्मुख दोष के लिये संक्षेप में शान्ति विधान कहता हूँ। प्रयत्नपूर्वक शान्तिविधान करके तत्पश्चात् कार्यों को करना चाहिए।।९९।।

**भृगोर्लग्ने भृगोर्वर्गे भृगोर्वारे भृगूदये।**
**उपोष्य भृगु वारेऽपि यावच्छुक्रोदयं व्रती।।१००।।**

शुक्र का लग्न, शुक्रवर्ग, शुक्रवार और शुक्र उदित हो, जब तक शुक्र उदित रहे, तब तक शुक्रवार के दिन व्रती को उपवास रखना चाहिए।।१००।।

**रजतेन सुशुद्धेन प्रतिमां कारयेद् भृगोः।**
**लिखेदष्टदलं पद्मं कांस्यपात्रे च तण्डुलैः।।१०१।।**

भलीभाँति शुद्ध चाँदी के द्वारा शुक्र की प्रतिमा बनाकर कांस्यपात्र में चावलों से अष्टदल कमल का निर्माण करें।।१०१।।

**शुक्लसूक्ष्माम्बरैर्वेष्ट्य प्रतिमां तत्र पूजयेत्।**
**शुक्ल पुष्पाक्षतैर्गन्धैर्मुक्ताहारैर्विचित्रितैः।।१०२।।**

सफेद, सूक्ष्म वस्त्र से मूर्ति को लपेटकर वहाँ पूजा करें तत्पश्चात् सफेद फूल, अक्षत, गन्ध, मोतियों की माला इत्यादि विचित्र पदार्थों से—।।१०२।।

**उपचाराणि कार्याणिं शुक्रं ते अन्यदित्यृचा।**
**तन्मन्त्रेण जपं कुर्यात्सम्यगष्टोत्तरं शतम्।।१०३।।**

उपचारादि कार्यों को करे—शुक्र का "अन्यदित्य" ऋचा, मन्त्र से भलीभाँति १०८ बार जप करना चाहिएं।।१०३।।

**कर्मान्ते तेन मन्त्रेण भक्त्या चार्घ्यं प्रदापयेत्।**
**श्वेतगन्धाक्षतैः पुष्पैः क्षीरमिश्रितवारिभिः।।१०४।।**

पूजा कर्म के अन्त में उसी मन्त्र के द्वारा भक्तिपूर्वक सफेद गन्ध, अक्षत, पुष्प तथा दुग्ध मिश्रित जल से अर्घ्य देना चाहिए।।१०४।।

**दैत्यमन्त्री दिवादर्शी चोशना भार्गवः कविः।**
**श्वेतोऽथ मण्डली काव्यो विधिस्थो भृगवे नमः।।१०५।।**

दैत्यमन्त्री, दिवादर्शी, उशना, भार्गव कवि, श्वेत, मण्डली, काव्य, विधि एवं भृगु इन सभी नामों के साथ चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग करके प्रणाम करना चाहिए।।१०५।।

**दत्वा ह्यर्घं प्रयत्नेन प्रार्थयेद्देव भक्तितः।**
**अनेनैव च मन्त्रेण प्राञ्जलिः प्रणतः स्थितः।।१०६।।**

इसी मन्त्र के द्वारा अञ्जलि बनाकर खड़े रहकर, परन्तु थोड़ा झुक कर अर्घ्य देकर प्रयत्नपूर्वक भक्ति प्रयाण होकर देवता को प्रार्थना करनी चाहिए।।१०६।।

**त्वत् पूज्याऽनया शुक्र मे सम्मुखसमुद्भवम्।**
**दोषं विनाशय क्षिप्रं रक्ष मां तेजसां निधे।।१०७।।**

हे शुक्र! इस पूजा के द्वारा आप मेरा उद्भव करें। शीघ्र ही सम्मुख दोष विनाश करके हे तेजस्वी शुक्र! मेरी रक्षा करें।।१०७।।

**इति प्रार्थ्य प्रयत्नेन प्रतिमा भूषणान्विता।**
**दैवज्ञायैव दातव्या श्वेताश्वसहितेन च॥१०८॥**

ऐसी प्रार्थना करके प्रयत्नपूर्वक आभूषणों द्वारा मूर्ति को सजा कर ज्योतिषी को ही सफेद अश्वसहित दे देना चाहिए॥१०८॥

**शिष्टेभ्यो दक्षिणां दद्याद्यथावित्तानुसारतः।**
**ब्राह्मणान्भोजयेत् पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः॥१०९॥**

सभ्य व्यक्तियों को अपने धनानुसार दक्षिणा देना चाहिए। ब्राह्मणों को भोजन करवाकर तत्पश्चात् बन्धुओं के साथ स्वयं भोजन करें॥१०९॥

**एवं यः कुरुते सम्यक् प्रतिशुक्रपूजनम्।**
**न तस्य सम्मुखो दोषो विजयी चार्थवान्भवेत्॥110॥**

जो इस प्रकार भलीभाँति सम्मुख शुक्र का पूजन करता है, उसे सम्मुख शुक्र का दोष नहीं होता अपितु वह विजयी और धनवान होता है॥११०॥

**इतरेषां ग्रहाणां च पूजां कुर्यात्प्रयत्नतः।**
**तत्तत्सम्मुखजं दोषं तत्क्षणादेव नश्यति॥१११॥**

प्रयत्नपूर्वक शुक्र के अतिरिक्त अन्य ग्रहों की पूजा भी करनी चाहिए। अन्य ग्रहों का सम्मुख उत्पन्न दोष उसी क्षण समाप्त हो जाता है॥१११॥

**सूर्याय कपिलां दद्याच्छंखं चन्द्रमसेऽपि च।**
**कुजाय वृषभं दद्यात्स्वर्णं दद्याद् बुधाय च॥११२॥**

सूर्यग्रह के लिये कपिला गाय, चन्द्रमा के लिए शङ्ख, मङ्गल के लिये बैल और बुध के लिए स्वर्ण दान करना चाहिए॥११२॥

**गुरवे पीतवस्त्रं चाश्वं सितायासिताय गाम्।**
**एवं प्रयत्नतः कृत्वा सर्वान्कामानवाप्स्यति॥११३॥**

देवगुरु बृहस्पति के लिए पीलावस्त्र, शुक्र के लिये घोड़ा और शनि के लिये गाय दान करनी चाहिए। इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक दान करने से सभी कामनाओं की पूर्ति होती है॥११३॥

**क्रमागतः–**

**दीपिकायां—**

सितमश्वं सितं छत्रं हेममौक्तिक सञ्युतम्।
ततो द्विजातये दद्यात्प्रतिशुक्र प्रशान्त्ये॥

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ४०)

**क्षुते मार्जारसमरे गृहदाहे ऋतौ स्त्रियः।**
**दुरक्ते माहिषे युद्धे कुटुम्बे कलहादिके॥११४॥**

शारीरिक घाव लगने पर, बिल्लियों की लड़ाई, दग्धगृह, ऋतुमती स्त्रियां, दो भैसों की लड़ाई, परिवार में कलहादि होने पर—॥११४॥

**स्खलिते चाम्बरादीनां प्रत्याह्वाने च मैथुने।**
**वृषाश्वकुक्कुटादीनां युद्धे यात्रात्वनिष्टदा॥११५॥**

वस्त्र स्खलित होना अर्थात् वस्त्र का गिरना, पीछे से बुलाया जाना, मैथुन करना, वृष, अश्व, मुर्गा इत्यादि की लड़ाई यात्रा के समय अनिष्ट फलप्रद होते हैं॥११५॥

**विविधानि निमित्तानि बहूनि शकुनानि च।**
**एतेषामधिका यातुर्मनः शुद्धिर्जयप्रदा॥११६॥**

बहुत प्रकार के निमित्त और बहुत से शकुन होते हैं, किन्तु इनसे अधिक यात्री के मन की शुद्धि ही जयप्रद होती है॥११६॥

**उद्वाहे व्रतबन्धे च प्रतिष्ठायां महोत्सवे।**
**असमाप्ते न गन्तव्यं मृतके सूतकेऽपि च॥११७॥**

विवाह में, व्रतबन्ध में, प्रतिष्ठा या महोत्सव में, मृत सूतक में या शुभ सूतक में क्रिया समाप्ति के विना यात्रा नहीं करनी चाहिए॥११७॥

**घृतान्नं कृशरान्नं च मत्स्यान्नं घृतपायसम्।**
**पूर्वादिषु क्रमाद् भुक्त्वा यात्रासिद्धिमवाप्नुयात्॥११८॥**

घृत से बने अन्न, खिचड़ी, मछली सहित अन्न, घृत मिश्रित खीर इत्यादि को पूर्वादि क्रम से खाकर यात्रा करने से सिद्धि प्राप्त होती है॥११८॥

**मार्जितापरमान्नं च कांजिकं च पयो दधि।**
**क्षीरं तिलोदनं भुक्त्वा रविवारादिषु व्रजेत्॥११९॥**

रविवार को श्रीखण्ड, सोमवार को परमान्न (खीर), मङ्गलवार को मट्ठा, बुधवार दूध, गुरुवार दही, शुक्रवार क्षीर (कच्चा दूध) और शनिवार को तिल-भात खाकर यात्रा करनी चाहिए॥११९॥

**कुल्माषांश्च तिलान्साज्यांस्तण्डुलान्दधि गोघृतम्।**
**पायसं मृगमासं च तत्क्षीरघृतपायसम्॥१२०॥**

उड़द की दाल, तिल, घी सहित चावल, दही, गोघृत, खीर, मृग मांस, क्षीर (कच्चा दूध) घृत युक्त खीर—॥१२०॥

**चणको मृगिणीमांसं शशमांसं च पौष्टिकम्।**
**प्रियङ्गुकमपूपं च मण्डकान्कदलीफलम्॥१२१॥**

चना, हिरनी का मांस, खरगोश का मांस, पौष्टिक पदार्थ, प्रियङ्गु (माल कांगनी), अपूप, मण्डक (फुलका, पतली रोटी) केला फल—॥१२१॥

**कूर्मश्वाविक्ततो गोधाशालनीवारकोद्रवम्।**
**कृशरान्नं मौद्गिकान्नं पाकान्नं मत्स्यभोजनम्॥१२२॥**

कछुआ, कुत्ता, गोधा (गोह), शाल (विशेष प्रकार की मछली), नीवार (जंगली चावल), क्रोद्रव (कोदों का अनाज), खिचड़ी, साबुत मूंग, पाकान्न (पक्का अन्न), मछली भोजन—॥१२२॥

**चित्रान्नं च सदध्यन्नमश्विभाश्च यथाक्रमात्।**
**भुक्त्वा सम्यग्व्रजेद्याता यात्राफलमवाप्स्यति॥१२३॥**

मिश्रितान्न, शीघ्र पचने वाला भोजन, अश्विन्यादि नक्षत्र क्रम से खाकर भलीभाँति यात्री यात्रा करे तो यात्रा का उत्तम फल प्राप्त होता है॥१२३॥

**ग्रहयज्ञं ततः कृत्वा पूर्वोक्त विधिना ततः।**
**दिगीश्वरा कृतिं कृत्वा सुवर्णेन स्वमन्त्रकैः॥१२४॥**
**स्वस्ववर्णैः सुगन्धाद्यैर्दीपैधूपैर्मनोरमैः।**
**तद्वर्णवस्त्रैर्नैवेद्यैर्भक्त्या सम्यक् प्रपूजयेत्॥ १२५॥**

तत्पश्चात् ग्रहयज्ञ पूर्व कथित विधि-विधान से करे, दिशा अधिपति की स्वर्ण मूर्ति बनाकर उसके मन्त्रों द्वारा अपने-अपने वर्णों द्वारा सुन्दर गन्ध, दीप और मनोरम धूपादि से उसी वर्ण के वस्त्र तथा भक्तिपूर्वक नैवेद्य को अर्पित करके भलीभाँति पूजा करनी चाहिए ॥१२४-१२५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

हुताशनं तिलैर्हुत्वा पूजयेत्तु दिगीश्वरम्।
तथा प्रणम्य भूदेवानाशीर्वादैर्नृपो व्रजेत॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक ८३)

**ऐरावतस्थं देवेन्द्रं वज्रपाणिं शचीपतिम्।**
**स्वर्णवर्णं सहस्राक्षं दिव्याभरणभूषितम्॥१२६॥**

ऐरावत (हाथी विशेष) पर विराजमान देवराजइन्द्र जिनके हाथों में वज्र है शची के पति, स्वर्ण वर्ण, सहस्रनेत्रों वाले, दिव्यवस्त्र आभूषणों से युक्त है॥१२६॥

**स्वाहा प्रियं मेषसंस्थं षडक्षं मुक्स्त्रुवायुधम्।**
**सप्तजिह्वं सप्तहस्तं रक्तवर्णं हुताशनम्॥१२७॥**

स्वाहा (अग्नि की पत्नी का नाम) प्रिय, मेष (भिड्डू), पर विराजमान, छः नेत्रों वाले, स्रुवा एवं आयुधवाले, सप्तजिह्वा, सात हाथों वाले, रक्तवर्णयुक्त अग्निदेव हैं॥१२७॥

**रक्तवर्णं श्यामलेशं यमं महिषवाहनम्।**
**दण्डपाणिं लोहिताक्षं सर्वाभरणभूषितम्॥१२८॥**

लाल वर्ण, काले केशों वाले, भैंसा वाहन पर विराजमान, हाथ में दण्ड, लाल नेत्रों वाले, सभी आभूषणों से सुशोभित यमराज हैं॥१२८॥

**दीर्घग्रीवापतिं नीलं निर्ऋतिंनरवाहनम्।**
**ऊर्ध्वकेशं विरूपाक्षं खड्गचर्मधरं प्रभुम्॥१२९॥**

लम्बी गर्दन वाले, नीले वर्ण वाले, नर वाहन, ऊपर उठे हुए बालों वाले, विकृत नेत्रों वाले, तलवार एवं चर्म को धारण करने वाले सम्पन्न नैर्ऋत्य हैं॥१२९॥

**वरुणं कालिकानाथमनर्घ्यमणिभूषितम्।**
**नागपाशधरं पीतवर्णं मकरवाहनम्॥१३०॥**

वरुण देवता, कालिका के स्वामी, बहुमूल्य मणियों से सुशोभित, नागपाशधारी, पीला वर्ण तथा मगरमच्छ वाहन वाले हैं॥१३०॥

**वायुं कृष्णमृगासीनमञ्जनीपतिमव्ययम्।**
**दण्डपाणिं शुक्लवर्णं जन्तूनामन्तरात्मकम्॥१३१॥**

वायु देवता काले मृग् पर विराजमान, देवी अञ्जनी के पति, हाथ में दण्डधारण किये हुए, सफेद वर्ण वाले, सभी प्राणियों की अन्तरात्म में विराजमान हैं॥१३१॥

**अश्वरूढं कुन्तपाणिं चित्ररेखापतिं प्रभुम्।**
**धनाधीशं स्वर्णवर्णं यक्षगन्धर्वनायकम्॥१३२॥**

घोड़े पर सवार, भाला हाथ में लिये हुण चित्ररेखा के पति, धन के स्वामी, स्वर्णिम वर्ण वाले, यक्ष एवं गन्धर्वों के नायक कुबेर हैं॥१३२॥

**गौरीपतिं चन्द्रमौलिं शुद्ध स्फटिक सन्निभम्।**
**पिनाकिनं वृषारूढं सर्वाभूरणभूषितम्॥१३३॥**

भगवान् चन्द्रमौलि (शिवजी) गौरी के पति, चन्द्रमा शिर पर धारण करने वाले, शुद्ध स्फटिक कान्ति से शोभायमान, पिनाक नामक धनुषधारी, बैल पर सवारी करने वाले, सम्पूर्ण आभूषणों से सुशोभित हैं॥१३३॥

**तद्दिगीशं सुसम्पूज्य तिलहोमं च कारयेत्।**
**दैवज्ञाय ततो दद्यात्प्रतिमां दक्षिणान्विताम्।।१३४।।**

दश दिशाओं के स्वामियों की भलीभाँति पूजा करके, तिल होम करके दक्षिणायुक्त मूर्ति ज्योतिषी को देनी चाहिए।।१३४।।

**देवान्गुरुन्पितॄन्विप्रान्स्वस्ति वाचनपूर्वकम्।**
**नत्वा तुष्टः प्रीतिमना व्रजेन्मङ्गलनिःस्वनैः।।१३५।।**

देवताओं, गुरुओं, पितरों तथा ब्राह्मणों को स्वस्तिवाचन पूर्वक प्रणाम करके प्रसन्नता पूर्वक मङ्गल ध्वनियों सहित यात्रा करनी चाहिए।।१३५।।

**तस्मिन् मुहूर्ते स्वयमप्रयाणे प्रयोजनापेक्षतया च दैवात्।**
**तत्रैव तन्निर्गमनं च कार्य्यं स्वात्मासमानं च यदुक्तभानाम्।।१३६।।**

उस मुहूर्त में स्वयं यात्रा न करने पर देव आधीन प्रयोजन की अपेक्षा से यात्रा उसी समय करनी चाहिए। जिस समय यात्रा में विहित नक्षत्र हों।।१३६।।

**क्रमागतः—**

**राजमार्त्तण्डः—**

"प्रस्थाने ब्राह्मणादीनां यज्ञसूत्रमथायुधम्।
मध्वामलफलं चैव प्रशस्तं वृद्धिकारणम्।।"

**नारदोऽपि—**

अप्रयाणे स्वकं कार्यमपेक्षी भूपतिस्तथा।
कुर्यान्निर्गमनं छत्रध्वजवाहनसञ्युतम्।।

—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक ९२)

**श्वेतातपत्रध्वजचामराश्वविभूषणोष्णीषगजाम्बराणि ।**
**आन्दोलिकारत्नरथास्त्रशस्त्रशय्यासनाद्यं मनसस्त्वभीष्टम्।।१३७।।**

श्वेत छत्र, ध्वज, चामर, अश्व, विभूषण, पगड़ी, हाथी का चमड़ा, पालकी, रत्न, रथ, अस्त्र-शस्त्र, शय्या एवं जो मन में अभीष्ट हो—।।१३७।।

**कस्तूरिकागन्धफलाक्षतौघकर्पूरताम्बूलसुभक्षणानि।**
**विचित्रपारावतपक्षिसङ्घं प्रचालयेद् गन्धचयं प्रबन्धम्।।१३८।।**

-कस्तूरीगन्ध, फल, अक्षत, समूह, कर्पूर, ताम्बूल, श्रेष्ठ खाने योग्य पदार्थ, विचित्र कबूतर पक्षी जोड़े से गन्ध समूह का प्रबन्ध करके यात्रा करनी चाहिए।।१३८।।

**विचित्ररम्याणि गृहाणि हेममयानि रौप्याणि घटानि यानि।**
**प्रचालयेद्गायकवाचकाख्यभिषग्ग्रहज्ञं च पुरोहितं च।।१३९।।**

विचित्र वर्णों से युक्त श्रेष्ठ घरों से, सोने या चान्दी से बने हुए घड़ों, गायक, वाचक, वैद्य, ग्रहों के ज्ञाता ज्योतिषी तथा पुरोहितों को साथ लेकर चलें।।१३९।।

**प्रस्थानं धनुषां पञ्चशतान्युत शतद्वयम्।**
**स्वदेवसदनाद्यद्वा दशभिः प्रस्थितोतः॥१४०॥**

प्रस्थान (यात्रा की वस्तु) पाँच सौ धनुष (एक धनुष=चार हाथ के बराबर की लम्बाई की माप) अथवा दो सौ धनुष अपने घर से दूर अथवा दस धनुष दूरी पर प्रस्थान रखना चाहिए॥१४०॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

स्वस्थानान्निर्गमं स्थानं दण्डानां च शतद्वयम्।
चत्वारिंशत्पञ्चविंशत्प्रस्थितः स स्वयं गतः॥

*—(मु. चि. पी. टी. प्र. ११, श्लोक १४)*

**आरभ्य निर्गमाद्यायामात्क्षितिपो दशवासरान्।**
**मण्डलीकः सप्तरात्रात्प्राकृतः पञ्चरात्रतः॥१४१॥**

प्रस्थान निकालने वाले दिन से आरम्भ करके दश दिन के अन्दर २ यात्रा करनी चाहिए। जबकी मण्डलीक राजा को सात दिन तक यात्रा करनी चाहिए; किन्तु साधारण व्यक्ति को पाँच रात्रि तक प्रस्थान का प्रभाव समझना चाहिए॥१४१॥

**अत ऊर्ध्वं व्रजेद्भूयो भद्रे वा दिवसे नृपः।**
**राज्ञोऽन्यः प्राकृतो ज्ञेयो विप्रवैश्यादयोभुवि॥१४२॥**

इसके ऊपर अर्थात् प्रस्थान के दश दिन पश्चात् राजा यात्रा करे तो पुनः सुन्दर मुहूर्त्त को देखना चाहिए। राजा के अतिरिक्त ब्राह्मण, वैश्यादि को पृथ्वी पर प्राकृतिक जनसामान्य समझना चाहिए॥१४२॥

**झषलग्ने झषांशे च पन्था वक्रश्च यायिनाम्।**
**जलराशौ जलांशे च जलयात्रार्थसिद्धिदा॥१४३॥**

मीनलग्न, मीनलग्न का नवांश हो तो यात्री का मार्ग टेढ़ा अर्थात् कष्टप्रद होता है। जबकि जलराशि अर्थात् मीनराशि एव मीन के नवांश में जलयात्रा (पानी के जहाज) धन सिद्धि को देने वाली होती है॥१४३॥

**तनुरर्थाह्वयो धन्वी वाहनो मन्त्रसंज्ञकः।**
**शत्रुमार्गस्तथायुश्च मनोव्यापारसंज्ञकः॥१४४॥**

द्वादश भावों के नाम क्रमशः तनु, धन, पराक्रम, वाहन, मन्त्रसंज्ञक, शत्रु, मार्ग, आयु, मन तथा व्यापारसंज्ञक—॥१४४॥

**लाभश्च व्ययसंज्ञश्च तन्वादीनां च संज्ञकाः।**
**खेटे तन्वादिभावेषु ज्ञेयं यातुः फलत्विदम्॥१४५॥**

लाभ और व्यय संज्ञक ये तन्वादि भाव संज्ञा कही, ग्रहों की तन्वादि भावों में जो फल कहे हैं, उन्हें यहाँ भी समझना॥१४५॥

**हनन्ति क्रूरास्त्रिषष्ठायभावाह्नित्वा परान्सदा।**
**पुष्णान्ति सौम्यखचराः षष्ठाष्टान्त्यविना परान्॥146॥**

क्रूरग्रह तीसरे, छठे और लाभ भाव को छोड़कर अन्य भावों में सदैव कार्यों को नष्ट करते हैं, जबकि शुभसंज्ञक ग्रह छठे, आठवें तथा द्वादश स्थानों के वगैर अन्य भावों को पुष्ट करते हैं॥१४६॥

**क्रमागतः-**

**वराहः—**

प्रायोजगुः सहजशत्रुदशायसंस्था पापाः।
शुभाः सवितृजं परिहृत्य खस्थम्॥
सर्वत्रगाः शुभफलं जनयन्ति सौम्या-
स्त्यक्त्वास्तसंस्थममरारिगुरुं यियासोः॥

**श्रीपतिः—**

"क्रूरग्रहस्त्र्यरिदशायगताः शुभाः स्यु-
र्हित्वा शनिं दशमभावगतं यियासोः॥
मूर्त्यादिभावनिचयेसकलेऽपि सौम्याः।
श्रेष्ठा भृगोस्तनयमस्तगतं विहाय॥
—(मु. चि. पी. यू. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ५६)

**लग्ने षष्ठाष्टमं हन्ति चन्द्रः शुक्रोऽस्तगः सदा।**
**मृत्युलग्नस्थितश्चन्द्रो यातुर्मृत्युप्रदः सदा॥१४७॥**

लग्न से षष्ठ और अष्टमस्थान में स्थित चन्द्रमा अनिष्ट करता है तथा शुक्रग्रह अस्तङ्गत हो तो कष्टप्रद होता है; इसी प्रकार लग्न एवं अष्टम स्थान में चन्द्रमा यात्री के लिए सदैव मृत्युप्रद होता है॥१४७॥

**एवमुक्तप्रकारेण यात्रां नूनं करोति यः।**
**सर्वान्कामानवाप्नोति त्वरितन्तु न संशयः॥१४८॥**

पूर्व कही गई विधियों के अनुसार जो निश्चय से यात्रा करता है, उसकी सम्पूर्ण मनोकामनायें पूरी होती हैं इसमें संशय नहीं है॥१४८॥

**उक्त्वा साधारणां यात्रां युद्धयात्रां ब्रबीमिताम्।**
**व्रजन्ति ये नृपाः सूक्ष्मलग्ने ते यायिनः सदा॥१४९॥**

साधारण यात्रा को कहकर अब मैं युद्ध यात्रा को कहता हूँ, जो राजा लोग सूक्ष्मलग्न में यात्रा करते हैं, वे सदैव जायी होते हैं॥१४९॥

क्रमागतः-

पराशरः—

आत्ययिककार्यपाते दैवने निपीडिते च यातव्ये।
केवलविलग्न योगादपि याता सिद्धिमाप्नोति।।

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ५७)

**फलसिद्धिर्धिष्ण्यगुणैरग्रजानां भवेत्सदा।**
**योगलग्ने क्षितीशानां चौराणां शकुनैर्भृशम्।।१५०।।**

ब्राह्मणों के लिये सदैव फल सिद्धि नक्षत्रानुसार होती है। राजाओं के लिये योग एवं योग लग्नानुसार यात्रा का फल होता है, जबकि चोरों को शकुनों के अनुसार फल होता है।।१५०।।

क्रमागतः-

नारदः-

"फलसिद्धिर्योगबलाद्राज्ञो विप्रस्य धिष्ण्यतः।
मुहूर्त्तशक्तितोऽन्येषां शकुनैस्तस्करस्य च।।"

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक ५७)

**मुहूर्तशक्तितोऽन्येषां निमित्तैश्च फलोदयः।**
**तत्तदुक्तप्रकारेण तस्माद्यात्रां करिष्यति।।१५१।।**

अन्य जनसामान्य के लिये यात्रा मुहूर्त्त की शक्ति से तथा निमित्तानुसार यात्रा का फल होता हैं। पूर्व कथित विधि से ही यात्रा करनी चाहिए।।१५१।।

**तिथिवारसनक्षत्रयोगेषु करणेषु च।**
**यात्रानुक्तेष्वथैतेषु चन्द्रताराबलेऽपि च।।१५२।।**
**योगलग्नयुता राज्ञां यात्रा न विजयप्रदा।**
**विचित्रान्योगलग्नांस्तान्सम्यग्वक्ष्ये समासतः।।१५३।।**

तिथिवार नक्षत्रयोग तथा करणों में चन्द्रतारा बल अनुकूल होने पर जिसमें यात्रा कही गई है, ऐसे मुहूर्त्तों में योग और लग्न से युक्त राजा की यात्रा विजयप्रद होती है। अब विचित्र योग लग्नों के फलादेशों को भलीभाँति संक्षेप से कहते हैं ।।१५२-१५३।।

**गुरौ वीर्ये केन्द्रगते बुधे वा भृगुनन्दने।**
**विजयो नामयोगोऽयं यातुर्विजयदः सदा।।१५४।।**

देवगुरु बृहस्पति बलयुक्त केन्द्र में हो अथवा बुध एवं शुक्र बलयुक्त केन्द्र में हों तो यह योग विजय नामक योग होता है। इस योग में यात्री सदैव विजयी होता है।।१५४।।

**लक्षदोषान्बुधो हन्ति सितो लक्षद्वयं बली।**
**कोटिदोषान्गुरुर्हन्ति एको वा केन्द्रगो यदि॥१५५॥**

बुध एक लाख दोषों को दूर करता है और बलवान शुक्र दो लाख दोषों को; किन्तु अकेला बृहस्पति किसी भी केन्द्रस्थान में हो तो एक करोड़ दोषों को नष्ट करता है॥१५५॥

**स्वराशिगे बुधे लग्ने सिते वा सुरवन्दिते।**
**नद्यावर्ताह्वयो योगो यातुरिष्टार्थसिद्धिदः॥१५६॥**

स्वक्षेत्री बुध लग्न में अथवा स्वक्षेत्री शुक्र एवं बृहस्पति लग्न में हो तो नद्यावर्त योग बनता है, जो यात्री के लिये अभीष्ट धन और सिद्धि को देने वाला होता है॥१५६॥

**स्वांशसंस्थे बुधे लग्ने शुक्रे वा देवपूजिते।**
**शङ्खसंज्ञो महायोगो यातुः कीर्तिप्रदः सदा॥१५७॥**

अपने नवांश लग्न में विराजमान बुध, शुक्र एवं बृहस्पति हों तो शङ्खसंज्ञक महायोग यात्री के लिये सदैव कीर्तिप्रद होता है॥१५७॥

**स्वराशिस्वांशगे सौम्ये लग्नस्थे वा भृगोः सुते।**
**जीवे वा पद्मयोगोऽयं यातुः कल्याणदः सदा॥१५८॥**

अपने राशि और अपने नवांश लग्न में स्थित बुध, शुक्र एवं बृहस्पति हों तो यह पद्म नामक योग यात्री के लिये सदैव कल्याणकारी होता है॥१५८॥

**अधिमित्रगृहस्थे ज्ञे लग्नगे वा भृगोः सुते।**
**जीवे वा वज्रयोगोऽयं यातुः शत्रुविनाशकृत्॥१५९॥**

अपने अधिमित्र गृह में स्थित होकर बुध, शुक्र एवं बृहस्पति लग्न में हों तो यह वज्रनामक योग यात्री के शत्रुओं का विनाश करता है॥१५९॥

**अधिमित्रांशगे सौम्ये सिते वाथ सुरार्चिते।**
**लग्नगे मित्रयोगोऽयं शत्रूणां सन्धिकृत्सदा॥१६०॥**

अधिमित्रांश में स्थित होकर बुध, शुक्र एवं बृहस्पति लग्न में हों तो यह मित्र नामक योग सदैव शत्रुओं से सन्धि करवाता है॥१६०॥

**अधिमित्रगृहे स्वाधिमित्रांशस्थे भृगोः सुते।**
**गुरौ चानन्दयोगोऽयं सौम्ये चानन्ददः सदा॥१६१॥**

अधिमित्र गृह एवं अधिमित्र नवांश में स्थित शुक्र, गुरु या बुध हो तो यह आनन्द नामक योग यात्री को सर्वदा आनन्ददायक होता है॥१६१॥

स्वोच्चगे लग्नगे सौम्ये शुक्रे वा देवपूजिते।
अमृतनामयोगोऽयं यातुरायुःप्रदः सदा॥१६२॥

अपनी उच्च राशि में बुध, शुक्र एवं गुरु लग्न में हों तो यह अमृत नामक योग यात्री के लिये सर्वदा आयुप्रद होता है॥१६२॥

उच्चगे लग्नसंस्थेषु बुधे वाऽथ गुरौ सिते।
शुभसंज्ञो महायोगो यायिनां शुभदः सदा॥१६३॥

उच्च राशि के लग्न में बुध, बृहस्पति अथवा शुक्र हों तो यह शुभ नामक महायोग यात्री को सर्वदा शुभ होता है॥१६३॥

स्वोच्चे स्वोच्चांशगे सौम्ये लग्नगे वा भृगोः सुते।
आये वा कीर्तियोगोऽयं यायिनां श्रीप्रदः सदा॥१६४॥

स्वोच्च, स्वोच्च नवांश में बुध या शुक्र लग्न में हों अथवा एकादश भाव में स्थित हों यह कीर्ति नामक योग यात्री को सर्वदा लक्ष्मी देने वाला होता है॥१६४॥

शुभग्रहे द्वये लग्नसंस्थे वा त्रितयेऽपि वा।
योगोऽतियोगसंज्ञोऽयं विजयोऽखिलभूप्रदः॥१६५॥

यदि दो अथवा तीन ग्रह लग्न में विराजमान हों तो यह अतियोग नामक योग सर्वदा विजय एवं सम्पूर्ण पृथ्वी देने वाला होता है॥१६५॥

त्रिषष्ठलाभगेष्वेषु रविमन्दकुजेषु च।
पूर्णचन्द्रो महायोगः पूर्णराज्यप्रदः सदा॥१६६॥

तीसरे, छठे तथा एकादश स्थान में सूर्य, शनि एवं मङ्गल हो तो यह पूर्णचन्द्र महायोग सदैव पूर्णराज्य को देने वाला होता है॥१६६॥

यत्रैकादशगे चन्द्रे भानौ वा प्रबले शुभे।
अभयो नाम योगोऽयं भवत्यरिविनाशकृत्॥१६७॥

जिसके एकादश स्थान में चन्द्रमा या सूर्य हों अथवा प्रबल शुभग्रह हों तो यह अभय नामक योग सम्पूर्ण शत्रुओं का विनाश करने वाला होता है॥१६७॥

त्रिकोणगे शुभे खेटे सुबले वा द्वितीयगे।
कल्याणसंज्ञो योगोऽयं यायिनां मङ्गलप्रदः॥१६८॥

त्रिकोण (१,५,९) स्थानों में शुभग्रह बलयुक्त हों अथवा द्वितीय भाव में स्थित हों तो यह कल्याण संज्ञक योग यात्री के लिए मङ्गलप्रद होता है॥१६८॥

यत्र स्वोच्चगते चन्द्रे लग्नादेकादशस्थिते।
जयन्तनामयोगोऽयं शत्रुपक्ष विनाशकृत्॥१६९॥

यहाँ स्वोच्च में गया हुआ चन्द्रमा लग्न से एकादश भाव में स्थित हो तो जयन्त नामक योग शत्रुपक्ष का विनाश करता है॥१६९॥

**वर्गोत्तमगते लग्ने शुभे वा प्रबलान्विते।**
**सिद्धिसंज्ञो महायोगो यायिनां कार्य्यसिद्धिदः॥१७०॥**

लग्न वर्गोत्तमी होकर प्रबल शुभग्रहों से युक्त हो तो यह सिद्धि नामक महायोग यात्री के लिये सम्पूर्ण कार्यों की सिद्धि देता है॥१७०॥

**लग्ने गुरौ विधौ खस्थे शनौ षष्ठेऽथवा रवौ।**
**पद्मयोगः शत्रुपक्षक्षयकारी रणे सदा॥१७१॥**

लग्न में बृहस्पति, दशमें चन्द्रमा, षष्ठ स्थान में शनि अथवा सूर्य हो तो यह पद्म योग युद्ध में सदैव शत्रुपक्ष का क्षय करने वाला होता है॥१७१॥

**गुरौ कण्टकगे लग्ने भानावेकादशस्थिते।**
**पुण्डरीको महायोगः शत्रुपक्षविनाशकृत्॥१७२॥**

बृहस्पति केन्द्र में, लग्न में अथवा एकादश भाव में सूर्य हो तो शत्रुपक्ष का विनाश करने वाला पुण्डरीक नामक योग होता है॥१७२॥

**चन्द्रे लाभस्थिते सौम्ये लग्नगे वज्रसंज्ञकः।**
**योगो वज्रनिभोयुद्धे यातॄणामिष्टसिद्धिदः॥१७३॥**

चन्द्रमा एकादश भाव में, बुध लग्न में हो तो यह वज्रनामक योग युद्ध में वज्र के समान और यात्री को अभीष्ट सिद्धि देने वाला होता है॥१७३॥

**वृषराशिगते चन्द्रे लाभगे केन्द्रगे गुरौ।**
**कामधेनुरयं योगः कामदो यायिनां रणे॥१७४॥**

वृष राशि का चन्द्रमा एकादश में और बृहस्पति केन्द्र में हो तो यह कामधेनु योग युद्ध में यात्री की सभी कामनाओं को पूरा करता है॥१७४॥

**सिते केन्द्रगते सूर्ये लाभगे घोरसंज्ञकः।**
**योगस्तद्वद्रणे शत्रुपक्षच्छेदकरस्तथा॥१७५॥**

शुक्र केन्द्र में, सूर्य एकादश में हो तो यह घोरसंज्ञक योग पहले की भाँति युद्ध में शत्रुपक्ष का विनाश करता है॥१७५॥

**लग्ने सौम्ये रवौ षष्ठे लाभगे देवपूजिते।**
**महापाशुपतो योगः शत्रुवर्गविनाशकृत्॥१७६॥**

लग्न में बुध अथवा शुभग्रह हो, सूर्य छठे और बृहस्पति एकादश में हो तो यह महापाशुपत योग शत्रुवर्ग का विनाश करता है॥१७६॥

**स्वराशिसंस्थिते शुक्रे लग्नगे लाभगे विधौ।**
**ललाटलोचनं शम्भोस्तद्वद् दहन्त्यरीनलम्॥१७७॥**

स्वक्षेत्री शुक्र लग्न में तथा लाभ में चन्द्रमा हो तो यह ललाटलोचन नामक योग भगवान् शङ्कर के माथे पर स्थित नेत्र के समान है। यह शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अग्नि ईन्धन को॥१७७॥

**उच्चस्थे लाभगे शुक्रे त्रिषष्ठेषु शुभग्रहे।**
**सुदर्शनो महायोगः शत्रु ध्वंस करोरणे॥१७८॥**

उच्चस्थ शुक्र लाभ में और शुभग्रह तीसरे या छठे में हो तो यह सुदर्शन महायोग युद्ध में शत्रु का नाश करने वाला होता है॥१७८॥

**शुभद्वयान्तरगते चन्द्रे शुक्रेऽथवागुरौ।**
**लग्नगे चक्रयोगोऽयं शत्रुसंघविनाशकृत्॥१७९॥**

दो शुभ ग्रहों के मध्य में चन्द्रमा, शुक्र अथवा बृहस्पति लग्न में हो तो यह चक्रयोग शत्रु समूह को विनाश करता है॥१७९॥

**लग्नात्केन्द्रगते चन्द्रे लग्नस्थे देवपूजिते।**
**महाशङ्खाह्वयो योगः शत्रुसंघं निहन्त्यलम्॥१८०॥**

लग्न से केन्द्र में चन्द्रमा तथा लग्न में बृहस्पति हो तो यह महाशङ्ख नामक योग शत्रु समूह को शीघ्र ही नष्ट करता है॥१८०॥

**केन्द्रत्रिकोणगे जीवे लाभगे स्वोच्चगे यमे।**
**कौस्तुभो नामयोगोऽयं रणे शत्रुनिर्बहणः॥१८१॥**

केन्द्र अथवा त्रिकोण में बृहस्पति, अपने उच्च का शनि एकादश भाव में हो तो यह कौस्तुभ नामक योग युद्ध में शत्रु को नष्ट करता है॥१८१॥

**त्रिधनाय त्रिकोणस्थे जीवे भृगुनन्दने।**
**वर्द्धमानाह्वयो योगः प्रतिपक्षापनोदनः॥१८२॥**

तीसरे, दूसरे, एकादश या त्रिकोणस्थान में बृहस्पति अथवा शुक्र हों तो यह वर्द्धमान नामक योग प्रतिपक्ष का विनाश करता है॥१८२॥

**भूसुते स्वोच्चगे लाभे मृगकुम्भगते यमे।**
**नद्यावर्त्ताह्वयो योगः शत्रुतूलानिलो रणे॥१८३॥**

मङ्गल अपने उच्च में, मकर या कुंभ राशि का शनि एकादश भाव में हो तो यह नद्यावर्त्त नामक योग युद्ध में शत्रु को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अग्नि रुई को॥१८३॥

**मेषगे भास्करे षष्ठे लाभगे स्वोच्चगे यमे।**
**नक्षत्रपदयोगोऽयं शत्रुमेघाऽनलो रणे॥१८४॥**

मेषराशि का सूर्य षष्ठ स्थान में और एकादश भाव में अपनी उच्च राशि का शनि हो तो यह नक्षत्रपद नामक योग युद्ध में शत्रु को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बादल अग्नि को॥१८४॥

**भौमे स्वराशिगे लग्ने सौम्ये केन्द्रत्रिकोणगे।**
**पुष्पयोगो रिपुवने कुठारः सङ्गराङ्गणे॥१८५॥**

मङ्गल स्वक्षेत्री होकर लग्न में हो तथा शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण स्थानों में हों तो यह पुष्पयोग शत्रुरूपी वन के लिए युद्ध में कुल्हाड़ी रूप है॥१८५॥

**चतुष्टयगते सौम्ये स्वतुङ्गे वा स्ववर्गगे।**
**रत्नयोगः शत्रुवनं महादावानलः स्वयम्॥१८६॥**

चारों केन्द्रों में शुभग्रह अपने उच्च या अपने वर्ग के हों तो यह रत्नयोग शत्रुरूपी वन के लिये महादावानल की भाँति है॥१८६॥

**मित्रवर्गगते सौम्ये केन्द्रवर्गगतेऽपि वा।**
**कल्याणयोगो वै पक्षलाक्षारसहुताशनः॥१८७॥**

मित्रवर्ग में शुभग्रह हों अथवा केन्द्र में अपने वर्ग में हों तो यह कल्याणयोग विपक्ष रूपी लाक्ष रस के लिये अग्नि सदृश होता है।

**शुभग्रहेषु केन्द्रेषु पापेषु त्रिभवारिषु।**
**कुमुदो नामयोगोऽयं शत्रुद्विरंदकेसरी॥१८८॥**

शुभग्रह केन्द्र में हों और पापग्रह तीसरे, छठे या एकादश भावों में हों तो यह कुमुद नामक योग शत्रुरूपी हाथी के लिए शेर सदृश है॥१८८॥

**पूर्वार्द्धगेषु सौम्येषु पापेष्विंदावुपान्त्यगे।**
**चक्राख्ययोगः सापत्न्यत्रिपुराणां त्रिलोचनः॥१८९॥**

जन्म लग्न से या प्रश्न लग्न के पूर्वार्द्ध में शुभग्रह हों तथा उत्तरार्द्ध में पापग्रह हों तो यह चक्रनामक योग शत्रु समूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे त्रिपुरासुर को भगवान् शङ्कर ने नष्ट किया था॥१८९॥

**परार्द्धगेषु सौम्येषु पापेष्विंदौ भवस्थिति।**
**शूलयोगस्त्वरिव्रातपूतना केशवः स्वयम्॥१९०॥**

परार्द्ध में शुभग्रह स्थित हों तथा पापग्रह चन्द्रमा सहित एकादश भाव में हों तो यह शूल नामक योग शत्रु समूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने पूतना को॥१९०॥

**एकान्तरगते लग्नाच्छुभखेटेऽथवा शुभे।**
**वापीयोगस्त्वरिव्रात तिमिरौघदिवाकरः॥१९१॥**

लग्न से एक-एक राश्यन्तर में शुभाशुभ ग्रह स्थित हों तो यह वापी योग सम्पूर्ण शत्रु समूह को वैसे नष्ट करता है, जैसे भगवान् दिवाकर अन्धकार को॥१९१॥

**द्व्यन्तरान्तरिते सौम्ये पापे वा यदि लग्नगतः।**
**वल्लकी योगसंज्ञोऽयं विपक्षपुरपावकः॥१९२॥**

यदि लग्न से दो-दो राशियों को अन्तर पर शुभाशुभ ग्रह स्थित हों तो यह वल्लकी नामक योग शत्रुपक्ष को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अग्नि नगर को॥१९२॥

**अन्तरातरिते सौम्ये पापे वा हिमदीधितौ।**
**लाभगे चाप योगोऽयं शत्रुभोगी भुजङ्गभुक्॥१९३॥**

लग्न स्थान से मध्य-मध्य में शुभाशुभ ग्रह हों तथा चन्द्रमा एकादश भाव में हो तो यह चाप योग शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे साँप भोगी व्यक्ति को॥१९३॥

**चन्द्रेऽप्येकादशे संस्थे येषु केषु परेषु च।**
**मुशलो नाम योगोऽयं शत्रुदैत्यौघराघवः॥१९४॥**

चन्द्रमा एकादश भाव में जिस किसी भी राशि में हों तो यह मुशल नामक योग शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे दैत्यों को भगवान् श्रीराम॥१९४॥

**सौम्ये लग्नगते चन्द्रे लाभगे सुतगे शनौ।**
**अन्य स्थानेषु सर्वेषु शुभपक्षाशनिःस्वयम्॥१९५॥**

शुभग्रह लग्न में, चन्द्रमा लाभ में और पञ्चम में शनि हो तथा अन्य स्थानों में सभी ग्रह हों तो शत्रु पक्ष को वैसे नष्ट करता है, जैसे इन्द्र का वज्रपात॥१९५॥

**चरराशिषु संस्थेषु निखिलेषु ग्रहेषु च।**
**लग्ने च रज्जुयोगोऽयं शत्रूणामशनिःस्वयम्॥१९६॥**

चर राशियों में सभी ग्रह स्थित हों तथा लग्न में भी चर राशि हो तो यह रज्जु नामक योग शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वज्रपात॥१९६॥

**स्थिरराशिषु संस्थेषु खचरेष्वखिलेष्वपि।**
**लग्ने वाऽनल योगोऽयं प्रतिपक्षकुलान्तकः॥१९७॥**

यदि सम्पूर्ण ग्रह स्थिर राशियों में स्थित हों और लग्न में भी स्थिर राशि हो तो यह अनल नामक योग प्रतिपक्ष कुल का अन्त करने वाला होता है॥१९७॥

**द्विस्वभावेषु सर्वेषु ग्रहेष्विंदौ विलग्नगे।**
**संवर्त्तयोगः सापत्न्य गोवृन्दे द्वीपिविक्रमः॥१९८॥**

द्विस्वभाव राशियों में सभी ग्रह हों, चन्द्रमा द्विस्वभाव लग्न में हो तो यह संवर्त्त नामक योग शत्रु समूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे शेर गायों के समूह को॥१९८॥

**लग्ने चन्द्रे च चरभे खेटेषु स्थिरभेषु च।**
**यमदण्डो महायोगो नीयतेऽरीन्यमालयम्॥१९९॥**

लग्न में चन्द्रमा चर राशि का हो तथा सभी ग्रह स्थिर राशियों में हों तो यमदण्ड नामक महायोग सभी शत्रुओं को यममन्दिर में पहुँचा देता है॥१९९॥

**चरराशौ लग्नगते ग्रहेषु स्थिरभेषु च।**
**ब्रह्मदण्डो महायोगः शत्रुप्राणापहारकः॥२००॥**

लग्न में चर राशि हो और सभी ग्रह स्थिर राशियों में हों तो यह ब्रह्मदण्ड नामक महायोग शत्रुओं के प्राणों को हरण कर लेता है॥२००॥

**स्थिरराशौ लग्नगते ग्रहेषु चरभेषु च।**
**योगः सञ्जीविनी ज्ञेयो विपक्षान्धकशूलभृत्॥२०१॥**

लग्न में स्थिर राशि हों और सभी ग्रह चर राशियों में स्थित हों तो यह सञ्जीवनी नामक योग शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अन्धकासुर को भगवान् शङ्कर॥२०१॥

**स्थिरभेषु च पापेषु चरभेष्वितरेषु च।**
**द्विस्वभावे लग्नगते योगः शत्रुविनाशकृत्॥२०२॥**

स्थिर राशियों में सभी पापग्रह और अन्य सभी शुभ ग्रह चर राशियों में हों तो तथा द्विस्वभाव राशि का लग्न हो तो यह योग शत्रुओं का विनाश करता है॥२०२॥

**केन्द्रद्वितीययोः सौम्येष्वितरेषु स्थिरेषु च।**
**केदारयोगः सापत्न्यमेषसंघवृकः स्वयम्॥२०३॥**

दो केन्द्रस्थानों में शुभग्रह स्थित हों तथा अन्य पापग्रह स्थिर राशियों में हों तो यह केदार नामक योग शत्रुओं को ऐसे विनष्ट करता है; जैसे भेड़िया भेड़ों को॥२०३॥

**केन्द्रद्वित्रिषु सर्वेषु सत्सु खेटेषु यत्र वै।**
**वीणायोगस्त्वरिव्रातमृत्यु केतूरणाङ्गणे॥२०४॥**

दो-तीन केन्द्र स्थानों में सम्पूर्ण शुभग्रह स्थित हों तो यह वीणा नामक योग रणभूमि में शत्रुओं को मृत्यु केतु की भाँति नष्ट करता है॥२०४॥

**त्रिषष्ठगेषु पापेषु लाभगौ जीवभार्गवौ।**
**सिद्धियोगः सपत्नौघमूषकानां च जाहकः॥२०५॥**

तीसरे, छठे स्थानों में पापग्रह हों, एकादश भाव में बृहस्पति और शुक्र हों तो यह सिद्धियोग शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है। जैसे साँप अथवा बिल्ली, चूहों को।।२०५।।

**सहजैकादशे पापे केन्द्रगेष्वितरेषु च।**
**कुम्भयोगस्त्वरिव्राततारकासुरषण्मुखः।।२०६।।**

तीसरे और एकादश स्थानों में पापग्रह हों तथा अन्य शुभग्रह केन्द्र स्थानों में हों तो यह कुम्भ नामक योग शत्रुओं को ऐसे नष्ट करता है, जैसे तारकासुर को स्वामी कार्त्तिकेय।।२०६।।

**केन्द्रद्वयेषु सौम्येषु चान्येष्वापोक्लिमेषु च।**
**अरविन्दो महायोगस्त्वरिसंघाहि नाकुलः।।२०७।।**

दो केन्द्रों में शुभग्रह स्थित हों और पापग्रह (३,६,९,१२) आपोक्लिम में हों तो यह अरविन्द नामक महायोग शत्रु समूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सर्पसमूह को नेवला।।२०७।।

**दशमस्थे शुभे लाभे चन्द्रेऽन्येषु च बन्धुषु।**
**गोत्रयोगः शत्रुपक्षगोत्राणां गोत्रभित्स्वयम्।।२०८।।**

दशम स्थान में शुभग्रह हों, चन्द्रमा एकादश में तथा अन्य ग्रह चतुर्थ स्थान में हों तो यह गोत्र नामक योग शत्रुओं को ऐसे नष्ट करता है, जैसे गाय का रक्षक स्वयं को।।२०८।।

**तन्वन्त्यगेषु सौम्येषु परेष्यरिभवेषु च।**
**जीमूतयोगो वैपक्षपावको सप्तसागराः।।२०९।।**

लग्न तथा द्वादश भाव में शुभग्रह हों अन्य पापग्रह दूसरे और छठे स्थान में हों तो यह जीमूत नामक योग शत्रुओं को ऐसे नष्ट करता है, जैसे बड़वानल सात समुद्रों को।।२०९।।

**सौम्येष्वाद्यन्तकेन्द्रेषु परेष्वायधनत्रिषु।**
**प्रभञ्जनो महायोगः शत्रुपादपभञ्जनः।।२१०।।**

सौम्य ग्रह चारों केन्द्रों में हों तथा पापग्रह लाभ, धन एवं तीसरे स्थान में स्थित हों तो यह प्रभञ्जन नामक महायोग शत्रुओं के पैरों को उखाड़ देता है।।२१०।।

**धर्मायगेषु पापेषु त्रिबन्धुष्वपरेषु च।**
**त्रक्कचो नामयोगोऽयं शत्रुमस्तकभेदकृत्।।२११।।**

नवमें और लाभस्थान में पापग्रह हों तथा तीसरे चौथे स्थानों अन्य शुभग्रह हों तो यह त्रक्कच नामक योग शत्रु के माथे को भेदने वाला होता है।।२११।।

**त्रिकोणान्त्येषु सौम्येषु त्रिषष्ठेषु परेषु च।**
**दंशयोगः शत्रुजिह्वोत्पाटने दीर्घदंशनः॥२१२॥**

पाँचवें, नौवें तथा द्वादश स्थानों में शुभग्रह हों तीसरे, छठे अन्य पापग्रह हों तो यह दंश नामक योग शत्रु की जिह्वा को नष्ट करने के लिए दीर्घदन्त सदृश है॥२१२॥

**भवरिष्फेषु सौम्येषु त्रिबन्धुषु परेषु च।**
**सृणियोगः शत्रुपक्षमत्तेभेन्द्रसृणिः स्वयम्॥२१३॥**

एकादश और द्वादश स्थानों में शुभग्रह हों तीसरे, चतुर्थ स्थानों में अन्यपाप ग्रह हों तो यह सृणि नामक योग शत्रुओं को वैसे नष्ट करता है, जैसे मदमत्त हाथी को स्वयं अङ्कुश॥२१३॥

**शुभेनैकेन योगः स्यात्केन्द्रधर्मात्मजेषु च।**
**तस्मिन्यातुरतिक्षेमं गमनागमनं सदा॥२१४॥**

यदि केन्द्रों में तथा नवम, पञ्चम में सभी ग्रह हों तो शुभनामक योग में यात्रा करने से अत्यधिक कल्याण तथा आना-जाना बना रहता है॥२१४॥

**त्रिकोणकेन्द्र संस्थाभ्यां शुभाभ्यां मतिसंज्ञकः।**
**योगस्तस्मिन्सदा याता जित्वा शत्रून्रणाङ्गणे॥२१५॥**

पाँचवें, नवमें तथा केन्द्र स्थानों में शुभ ग्रह स्थित हों तो मति नामक योग में यात्रा करने से रणभूमि में सदैव यात्री की विजय होती है॥२१५॥

**योगातियोगः केन्द्राङ्कसुतस्थाः शुभखेचराः।**
**याता शत्रून्निहन्त्याजौ सप्ताङ्गेन समागतः॥२१६॥**

केन्द्रों में तथा पञ्चम नवम स्थानों में शुभग्रह हों तो इस योग में यात्री के शत्रुओं को तथा सात अङ्गों सहित राजा को भी नष्ट कर देता है॥२१६॥

**जन्मभे जन्मलग्ने वा तयोरीशे विलग्नगे।**
**ताभ्यां केन्द्रत्रिषष्ठे वा यातुः शत्रुक्षयस्तदाः॥२१७॥**

जन्मराशि अथवा जन्मलग्न में अथवा इन दोनों के स्वामी लग्न में हों अन्य ग्रह केन्द्रों में, तीसरे, छठे हों तो इस योग में यात्री के शत्रुओं का क्षय हो जाता है॥२१७॥

**शत्रोरष्टमलग्ने वा राशौ वा यदि लग्नगे।**
**तदीशस्थितलग्ने वा यातुः शत्रुक्षयस्तदा॥२१८॥**

शत्रु या अष्टम स्थान में लग्नेश या राशीश गया हो और उनका स्वामी लग्न में हो तो ऐसे योग में यात्री के शत्रुओं का क्षय होता है॥२१८॥

**लग्नकेन्द्रे जन्मपतौ धनायस्थैः परैर्ग्रहैः।**
**गतो राजा त्वरेः सेनां नीयते यममन्दिरम्॥२१९॥**

जन्म लग्नेश लग्न अथवा केन्द्र में हों, अन्य ग्रह धन लाभ में स्थित हों तो ऐसे योग में यात्रा करने वाला राजा शत्रु सेना को यममन्दिर में पहुँचाता है॥२१९॥

**शुक्रे केन्द्रे लग्नसंस्थे चन्द्रे बन्धु स्थिते यदा।**
**गतो राजा रिपून्हन्ति केशवो दनुजानिव॥२२०॥**

शुक्र केन्द्र में या लग्न में हो, चन्द्रमा चतुर्थ भाव में हो तो ऐसे योग में यात्रा करने वाला राजा शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे राक्षसों को भगवान् विष्णु॥२२०॥

**षष्टाष्टमेषु पापेषु लग्नेष्वन्येषु तत्र तु।**
**गतस्य रिपुसेनेयं तमुपेत्यभिसारिका॥२२१॥**

छठे, आठवें स्थान में पापग्रह हों तथा लग्न में अन्यग्रह हों तो ऐसे योग में यात्रा करने वाले राजा के पास शत्रु सेना अभिसारिका नायिका की भाँति आ जाती है॥२२१॥

**लग्ने सौम्येऽष्टमे चन्द्रे लाभगेषु परेषु च।**
**गतस्याग्रे वैरिचमूः खलमैत्रीव न स्थिरा॥२२२॥**

लग्न में शुभग्रह, अष्टम में चन्द्रमा तथा अन्य ग्रह लाभ स्थान में स्थित हों तो ऐसे योग में यात्रा करने वाले राजा के आगे शत्रुओं की सेना दुष्टों की मैत्री के समान स्थिर नहीं रहती॥२२२॥

**यमे तृतीयगे लाभे कुजे चन्द्रे शुभस्थिते।**
**गतस्य शत्रुधरणी हस्तस्था निखिला तदा॥२२३॥**

शनि तीसरे, लाभ में मङ्गल तथा शुभ स्थान में चन्द्रमा स्थित हो तो ऐसे योग में यात्रा करने वाले राजा के पास शत्रु का सम्पूर्ण भूमि आ जाती है॥२२३॥

**दिग्राशिलग्नगे जीवे शुक्रे वाप्यथवा बुधे।**
**दहत्यरीन्गतो राजा कृष्णवर्त्मा यथेन्धनम्॥२२४॥**

दशम राशि अथवा लग्न में बृहस्पति शुक्र तथा बुध हो ऐसे समय में यात्रा करने वाले राजा शत्रुओं को वैसे ही मार डालता है, जैसे सम्पूर्ण ईंधन को अग्नि नष्ट कर देती है॥२२४॥

**धिष्ण्ये चोपकुले लग्ने शुभे लाभस्थिते शनौ।**
**शुष्यत्यरीन्गतो राजा त्वर्करश्मिर्यथा ह्रदम्॥२२५॥**

उपकुल नक्षत्र में लग्न हो, लग्न में शुभग्रह हों तथा लाभ-स्थान में शनि हो

तो ऐसे योग में यात्रा करने वाला राजा समस्त शत्रुओं को ऐसे सुखा देता है, जैसे सूर्य किरणें तालाब के जल को॥२२५॥

**दिग्वर्गराशिलग्नस्थे दिगीशे वा भवस्थिते।**
**गतो राजा रिपून्हन्ति पापं यद्वद् हरेः स्मृतिः॥२२६॥**

दिग् वर्गराशिलग्न में स्थित हो तथा दिगीश्वर लाभ स्थान में हो तो ऐसे समय में यात्रा करने वाला राजा शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् विष्णु का स्मरण सब पापों को नष्ट करता है॥२२६॥

**इन्दौ स्वक्षेत्रगे लाभे स्वोच्चगे लग्नगे बुधे।**
**गतो राजा रिपून्हन्ति पापं पञ्चाक्षरी यथा॥२२७॥**

चन्द्रमा अपनी राशि का होकर लाभ स्थान में और अपने उच्च में गया हुआ बुध लग्न में हो तो ऐसे समय में यात्रा करने वाला राजा शत्रुओं को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पञ्चाक्षरी मन्त्र पापों को॥२२७॥

**स्वाधिमित्रगते सौम्ये लग्नस्थे वा भवान्विते।**
**गतो राजा रिपून्हन्ति कर्म ज्ञानोदये यथा॥२२८॥**

अपने अधिमित्र राशि में होकर शुभग्रह लग्न में अथवा लाभ-भाव में हो तो ऐसे समय में यात्रा करने वाला राजा शत्रुओं को वैसे ही मार डालता जैसे ज्ञानोदय होने पर कर्मनष्ट हो जाते हैं॥२२८॥

**एकस्मिन्नैव मित्रर्क्षे स्वोच्चगे लग्नगे गुरौ।**
**गता राजा रिपून्हन्ति पापं भागीरथी यथा॥२२९॥**

एक ही बृहस्पति ग्रह अपने मित्रराशि में या उच्च का होकर लग्न में स्थित हो तो ऐसे समय में यात्रा करने वाला राजा वैसे ही अपने शत्रुओं को मारता है, जैसे भागीरथी पापों को॥२२९॥

**विगततुरगभीतान्पुण्यलोकाभिलाषी।**
**विरथशिथिलवस्त्रान्मुक्तशस्त्रास्त्र केशान्॥**
**नृपमुखगतसत्वान्प्राञ्जलीन्युद्ध्यमानः।**
**क्षितिपतिरिति वीरान्युद्धभूमौ न हन्यात्॥२३०॥**

पुण्य लोकों की अभिलाषा वाले राजाओं को युद्धभूमि में हाथियों, घोड़ों के वगैर जो डरा हुआ हो, रथरहित, शिथिल वस्त्रों वाला, खुले हुए शस्त्र-अस्त्र, खुले बालों वाले, राजा के सामने आकर हाथ जोड़े हुए युद्ध करने वाले राजाओं को तथा योद्धाओं को नहीं मारना चाहिए॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

नार्ता न भीता न तृणाननाश्च विमुक्त शस्त्रा विपलायमानाः।
क्षीणायुधा वाजिगजावतीर्णा ह्येते न वध्या न च पीडनीयाः॥
कुलैकतन्तुः शरणङ्गतो वा कृताञ्जलिर्यश्च वदेत्तवास्मि।
अयुध्यमानानवगम्य चान्यात्र बालकान्स्त्रीपरिरक्षितांश्च॥

—(मु. चि. पी. धा. टी. प्र. ११, श्लोक १०८)

**सापत्नदेशान्नगरं प्रविश्य महीपतिर्देवगुरुद्विजार्थे।**
**कुर्यान्न वाञ्छा न कुलाङ्गनासु प्राणाभिलाषी न कदाचिदेव॥२३१॥**

शत्रु के देश से नगर में प्रवेश करके प्राणों की अभिलाषा रखने वाले राजा, देवता, गुरु एवं ब्राह्मण के लिये अथवा कुलाङ्गनाओं के लिये कभी भी इच्छा न करे॥२३१॥

**सापत्न सप्ताङ्ग समस्तवीरलक्ष्मीं गृहीत्वा निखिलप्रजानाम्।**
**दत्वाऽभयं पूर्ववदेव सर्वं संस्थाप्य लग्ने स्वपुरीं विशेच्च॥२३२॥**

शत्रु के सप्ताङ्गों को तथा समस्त वीर लक्ष्मी को ग्रहण करके सम्पूर्ण प्रजा को अभयदान देकर पूर्ववत् सब कुछ संस्थापना करके शुभ लग्न में नगर में प्रवेश करना चाहिए॥२३२॥

**तस्माद्विवाहे यात्रायामाधाने जातकेऽपि वा।**
**ग्रहयोगात्फलं वाच्यं शेषमन्यद् हि निष्फलम्॥२३३॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**यात्राध्यायः सप्तत्रिंशः॥३७॥**

अतः विवाह में, यात्रा में, गर्भाधान में, जातक में ग्रह योगफल को कहना चाहिए, जबकि अन्य कार्यों में यह योग निष्फल समझें॥२३३॥

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के यात्राध्याय की "नारायणी" हिन्दी
टीका सम्पूर्ण॥३७॥

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१-निखिलयुतातारान्नां, ज२-निखिलयुतानां राज्ञां ज. मो.-निखिलबलयुतस्यराज्ञः मु. पु.-निखिलगुणयुतस्यराज्ञां (—निखिलगुणयुतानां राज्ञां)
ज१, पी. टी. यात्रायाम् (—यात्रायाः)
(ब) ज१, पी. टी.-वदेत्फल (—तदेतत्फल)
०२. (अ) ज१-अक्षात, ज२-अज्ञातुं, ज. मो. अज्ञान (—अज्ञात)
(ब) ज१-स्थुःरशुभैस्तदन्यथा, ज२-स्युरशुभैपदन्यथा (—स्यादशुभैरेतैस्तदन्यथा)

०३. (अ) ज१-परविषयं, ज.मो. परविषयी (—परविषय)
ज१,२-वागंतु (-गन्तुर्वा)
ज१,२-चामरयात्रास्थ (—समरयात्राख्या)
०५. (अ) ज१-पृछक, ज२-पृछुक (—प्रच्छक)
(ब) ज१-तांवूलक०, ज२-तांबूलै:स्त (—ताम्बूलकर:)
०६. (ब) ज१,२-फलरात्रौ (—फलरत्नै:)
०७. (ब) ज१,२-पसिताज्योदन (—पिशिताज्योदन)
०८. (द) ज१-तदानी निहंति (—तदानीं शत्रुसेनां निहन्ति)
०९. (अ) ज१,२-पृद्धति (प्रच्छक) ज१,२-यदिशकुनं (—शकुनं)
ज१-प्रास्वानिकं, ज२-प्राप्तप्रास्त्रविकं, ज.मो. प्रास्थानीकं (—प्रास्थानिकं)
(ब) ज१-नृपत (—नृपते:)
११. (अ) ज१,२-पृच्छक (—प्रच्छक)
ज१,२-निधनगतोऽपि, ज. मो. निधनगतोवापि (—नधनगो वा)
ज१,२-लग्नग: (—विलग्नग:)
१२. (अ) ज१,२-वाक्रमतो (—वा वक्रगतो
(ब) ज१-लग्नगतस्तद्वर्गो, ज२-लग्नगतस्तद्वर्गे (—लग्नगतस्तद्वर्ग:)
ज१-प्रवासभंगदो निधनगोवापि, ज२-प्रवासभंगदो निधनदोगोवापि (—प्रभङ्गदो भवति भूमिपते:)
१३. (अ) ज१-पृच्छख, ज२-पृद्धक (—प्रच्छक)
(ब) ज१-कीघ्रं (—शीघ्रम्)
१४. (अ) ज१-रिष्पुशगोवापि, ज२-इर्ष्यगोवापि प्र. पा. रि:फराशिगोवापि, ज. मो. वारिराशिगोवपि (—वारिराशिगो वाऽपि)
(ब) ज१-नीचराशिस्य, ज. मो. नीचराशिस्थ: (—निधनराशिस्थ:)
१५. (ब) ज१,२-तदात्वरिचक्रं (—तदारिचक्रं)
१६. (अ) ज१,२-पृछक (—प्रच्छक)
(ब) ज१,२-बहुविधभागं (—वहुविधलाभं)
१७. (अ) ज२-वलर्क्षपक्षै (—बलक्षपक्षे)
ज१-मंगदा (—भङ्गप्रदा)
१८. (अ) ज१-त्रिस्त्रोविरिक्तातिथिय, ज२-तिस्त्रोविरिक्तातिथय: (—तिस्रोऽपि रिक्तास्तिथय:)
ज१-प्रयातुंमृत्य, ज२-प्रयातुस्तैमृत्यु (—प्रायातुर्मृत्यु)
ज१-प्रदास्सार्थ, ज२-प्रदा:स्वार्थ (—प्रदाश्चार्थ)
ज१-विनासदाच, ज२-विनाशदाच (—विनाशदा वा)
(ब) ज१-धनमदो चेदापंचमी, ज२-धनप्रदाचेद्पंचमी (—भूरिधनप्रदा च या पञ्चमी)

१९. (अ) ज१-विनयदासदाष्टमी, ज२-विजयदाष्टमी ज. मो.-विजयदाह्यथाष्टमी, पी. टी.-विजयदाह्यथाष्टमी (—विजयदा तथाऽष्टमी)
ज१-शोकदु:खमयप्रदा, ज२-शोकदु:खमयदा भयप्रदा (—शोकदु:खभयदामयप्रद)
(ब) ज१,२-सर्वदु:खनवमी (—सर्वदु:ख शमनी)
२०. ज१,२-रत्नांवरानेक (—रक्ताम्बरानेक)
ज१,२-सुखप्रदा (—शुभप्रदा)
२१. (अ) ज. मो. शर्महारिणी, ज२-शर्म्महारिणी, पी. टी. कर्महारिणी (—भूरिधर्महारिणी)
२२. (अ) ज१-विपक्षकक्षनाशिनी, ज२-विमक्षकुक्षनाशिनी (—विपक्षपक्षनाशिनी)
(ब) ज१,२-विनाशदाच, ज. मो. विनाशताश्च (—विनाशदाथ)
२३. (अ) ज१-सितेतराच्छदासरो, ज२-सितेतराहवासरो (—सितेतराह्यवासरो)
ज१,२-सौख्यदोद: (—सौख्यभोगद:)
२४. (ब) ज१,२-नशुभप्रदास्ते, ज. मो. नशुभमप्रदास्ते (—न शुभप्रदा: स्यु:)
२५. (अ) ज१-मित्रवित्लोंदुवस्वाद्वय, २-मित्रविस्वीदुंवस्त्राह्वय पी. टी. मित्रमिन्दुर्हरीवासव (—मित्रविष्णवन्दुवस्वाह्वय)
(ब) ज१-मेष्टंति, ज२-मेष्टानि (—श्रेष्ठानि)
पी. टी.-त्रिपञ्चादिमसप्तमानि (—त्रिपञ्चमादिमसप्तभानि)
२६. (अ) पी. टी.-ब्राह्ममयुग्मशैवम् (—ब्राह्मदशैवभानि )
२८. (ब) ज१-क्षारथो, ज२-क्षारयोश्च (—ज्ञारयोश्च)
ज१-वाशूलास्यु: (—वारशूला: स्यु:)
३०. (ब) ज१-पापिनां (—यायिनां)
ज१,२-चार्थहानिदा (—अश्वादि हानिदा:)
३१. (अ) ज१,२-पूर्वाधिकाष्टयो (—पूर्वादिषुचतुर्दिक्षु
ज१,२-र्वह्निधिष्ण्यायातुर्दिशासुच (—वह्नि धिष्ण्यान्निरन्तरम्)
(ब) ज१-भानवो, ज२-भानिच (—भानि वै)
३२. (अ) ज१-नोलंघय:, ज२-नोष्मन्ध्य: (—न लंघ्य:)
ज१,२-दंडस्ताग्रितायटिगस्थित: (—दण्डस्त्वग्रिवाय दिगाश्रित:)
३३. (अ) ज१,२-सर्वदिशचपवित्राणां (—सर्वदिक्ष्वपि यातॄणां)
३४. (अ-ब) पाठोनास्ति
३५. (अ) ज१-सर्वरन्तदादिग्यानुजपप्रदा:, ज२-सर्वेंदिगयातुर्जयप्रदा: (—सर्वे तद्दिग्यातुर्जयप्रदा:)
(ब) ज१-सद्दशाश्च, ज२-तद्देश: (—तदंशाश्च)
ज१, २-तदीशाश्चतथाविधा: (—लग्नाधियस्तथाविध:)

३६. (अ) मु. पु. चक्रगः (—वक्रगः)
जर१, २-लग्नस्थोवापिराशिगः (—लग्नस्थश्चारिराशिगः)
(ब) ज१, २-राशस्थो (—नीचस्थो)
ज१, २-यात्राफल (—यात्राकाले)
३७. (अ) ज१,२-पाठोनास्ति
३८. (अ) ज१-पानं न कार्यं, ज२-यानं न कार्य (—यात्रा न कार्या)
३९. (अ) ज१-रासीमैकं, ज२-राशीमैत्रं, प्र.पा शाशीनीकं (—राशीनेकं)
ज१-प्राविनार्का त्रिराशेत्रपादक्षिरायं, ज२-प्राधिनार्कातिराशेन प्रादक्षिण्यं (—(प्रादक्षिण्यान्न्यसेद् दिग्विदिक्षु:)
(ब) ज१-२-यदियासौलग्नगते (—यद्दिग्राशौलग्नगे)
ज१-२-समुपत्तं (—संमुखत्वे)
४०. (अ) ज१,२-प्रायणा (—प्रायण)
(ब) पी. टी.-नृणाम् (—मृशम्)
४१. (अ) ज१,२-अशुभानिमित्तानि (—शुभाशुभनिमित्तानि)
४३. (अ) ज२-प्राग्वेशिकं (—प्रावेशिकं)
४४. (अ) ज१-प्रवेशको, ज२-प्रावृषिकी (—प्रवेशिकं)
ज१-पश्चात्प्रस्थानको, ज२-पश्चात्प्रास्थनिकं (—पश्चात् प्रास्थानिकं)
(ब) ज२-मुखेन (—सुखेन)
४५. (अ) ज१,२-शस्ताश्चावाममागे (—शस्तावाग्वामभागे)
ज१-मंगुरोहुविधुंदरीक्हयकरक, ज२-मंगराच्छुंदरीकुमरक (—शिवगुरुरुरुच्छुच्छुन्दरी)
(ब) ज१,२-पूर्णाक्षीणां (—स्वर्णक्षीणां)
ज१-२-दक्षिणांक्षी उवज्ज्यां (—दक्षिणा: क्षीरवृक्षा:)
(स) ज१-कृष्णादन्यच्च्यतुष्पादति, ज२-कृष्नादन्य वतुष्कांददति ज. मो.-कृष्णा-दन्यचतुष्पादति (—कृष्णादन्यच्चतुष्पादति)
(द) ज१,२-प्रवेशोवदप्रदिन विदृशो (—प्रवेशे खरदिनविदृशो.)
ज१-पूर्वविद्धाप्रशस्ता, ज२-पूर्वविद्धाप्रमास्ता (—पूर्ववद्वाक्प्रशस्ता:)
४६. (अ) ज२-चापंवमु (—चाषबच्च)
४७. (अ) ज१-घातिछन्नं, ज२-यान्तिछुत्र (—यान्तिच्छत्र)
४८. (ब) ज१,२-शिवत्वं (—शवत्वं)
४९. (ब) ज१-नेष्टतद्मुतं, ज२-नेष्टंतदुतं (—नेष्टं तदुक्तं)
ज१, ज. मो. वाशुभप्रदं, ज२-चाशुभप्रदं (—बाऽशुभप्रदम्)
५०. (ब) ज१-यनं, ज२-धनं (—यानं)
ज२-गोत्रयुक्तं (—गोप्रयुक्तं)
ज१,२-ध्वजं च (—द्विजं वा)

(स) प्र. प्रा. उधृत्याज्येनमासं, ज१-उधृत्यायेनमासं, ज२-उद्भृत्याजेनमास (—उद्धृत्याज्यं च मासं)
ज१-सिद्धिमत्रहयं वा, ज२-सिद्धमन्त्रंहयं वा (—सिद्धमत्रं शवं वा०)
(द) ज१-२-वश्यास्त्री (—वेश्यास्त्री)
५१. (स) ज१,२-मुण्डोव्याधिता (—मुण्डैर्व्याधि०-)
(द) मु. पु. फलविनाश: (—कुल विनाश:)
५२. (अ) ज१-भाल्लुकदर्शने (—भल्लूकदर्शनं)
(ब) ज१-एतद्यो:, ज२-सतयो: (—एतयो:)
५३. (अ) ज१,२-नगांधमुक्त, ज. मो. नग्नान्धमुक्त (—जन्मान्धमुक्त)
ज१-कुज्वषंडविरूपकं, ज२-कुज्वखंडविरूपकै: ज. मो. कुब्जवंध्याविरूपकैः (—कुब्जवन्ध्याविरूपकै:)
५४. (अ) ज१, ज२, ज. मो. पी. टी.-केतुर्विज्ञये: (—केतुभंज्ञेयं)
५५. (अ) पी. टी.-मृते: पक्षी (—मृतपक्षी)
ज१,२-पुच्छत: (—पृष्ठग:)
५९. (अ) ज१-मोपराजितौ० (—उभौ पराजितौ)
(ब) ज१-चन्द्रो, ज२-चंद्र (—चन्द्रे)
ज१-सूर्यो (—सूर्ये)
ज१,२-स्वल्पोपजायिनां (स्वल्पोऽपियायिनाम्)
६०. (अ) ज१,२-बुद्धेष्वेवं (—युद्धेष्वेव)
६१. (अ) ज१-यात्रास्वसिद्धिदर्केदारै, ज२-यात्रासुसिद्धिदार्के (—यात्रेष्टसिद्धिदाऽर्केन्दो:)
६२. (ब) ज१,२- वाथलग्नगे (—वान्यलग्नगे)
६३. (अ) ज१-लग्नेराशौ, ज२-राशौलग्ने (—लग्नराशौ)
(ब) ज१-यातुंभंग:प्रदो, ज२-यातुंभंगप्रदो (—यातुर्भङ्गप्रदा)
ज१,२-वालिग्नगे (—वाथलग्नगे)
६४. (अ) ज१-राशिपेथवा, ज२-राशिगेथवा, ज. मो. राशिभेथवा (—राशिगेऽथवा)
६८. (अ) ज. मो.-जन्मराशौ (—जन्मलग्ने)
ज१,२-ज. मो.-तदीशे, प्र. पा.-तदधीशे (—तद्वर्गे)
ज१,२-वाथलग्नगे (—वा त्रिलग्नगे)
(ब) ज१,२-ज. मो. अर्थलाभप्रदायात्रा (—अत्यन्तफलदायात्रा)
६९. (अ) ज१,२-ज. मो. शीर्षोदयेलग्नगते (—शुभग्रहेलग्नगते)
(ब) ज१,२-अत्यन्त लाभदा, ज. मो. अत्यन्तफलदा (—धनधान्यप्रदा)
ज१,२-ज. मो.-यात्रातदीशशश्चेछुभग्रह: (—यात्रात्वथवाविजयप्रदा)
७०. (अ) ज१,२-शुभग्रहलग्नगते, ज. मो.-शुभग्रहेलग्नगते (—दिग्द्वारभेलग्नगते)
(ब) ज१,२-अत्यन्तलाभदायात्रापथै, वा-विजयप्रदा ज. मो. अर्थलाभदा यात्रा लग्नेशश्चैव शुभग्रहा (—अर्थलाभप्रदा यातुरथवा विजयप्रदा)

७१. (ब) ज१-यात्रापथै वा, ज२-यात्रपथेवा (—यात्रात्वथवा)
७२. (ब) ज१-कामधुषा., ज२-कामधुपा (—कामदुधा)
७४. (अ) ज१,२-स्वगृहैच (—स्वराशिगे)
७५. (ब) ज१,२-विधेवातुरगांद्विजं, ज. मो. सुधियेवातुरंद्विजम् (—सुविद्येवातुरं द्विजम्)
७६. (ब) ज१,२-न मुहूर्त्तजयप्रदः, ज. मो. दुःखदाभङ्गदाथवा (—दुःखदाभङ्गदाऽपि वा)
७७. (अ,ब) ज१,२-पाठोनास्ति।
७८. (अ) ज. मो.-प्रयायिणां (—प्रयातॄणां)
(ब) ज१, २-प्राकृतं (—प्राक्तनं)
ज१-यद्वतगणा (—यद्वन्नराणां)
ज१-पुण्यकर्मणा (–पुण्यकर्मणाम्)
८०. (अ) वातवर्गः (—वारवर्गः)
८१. (अ) ज१,२-क्रूरलत्ताहतं, प्र. पा.-क्रूरक्रान्तं (—एकार्गलहतं)
(ब) ज१, २-ज. मो. पी. टी.-भङ्गदासदा (–भङ्गप्रदासदा)
८२. (अ) ज१,२-ज.मो. चतुष्पदं (—च रूक्प्रदम्)
(ब) ज१-शेषा (—तेषां)
८३. (ब) ज१,२-यात्वमित्रप्रदा (—यातुर्मृत्युप्रदा)
८४. ज१,२-महागणितमार्गे, ज. मो.-महागणकगर्गेण प्र. पा-महागणितगर्गेण (—महागणितमार्गेण)
ज१-त्वातीतेः, ज२-त्वानीतैः, ज. मो. स्वानीतेः (—त्वानीतौ)
ज१,२-यात्रवीष्टितौ (—पातवैधृतौ)
(ब) ज१-यो पापाद्गमनं, ज२-यो यायाद्मयनं, ज. मो.—यो यायाद्गमनं (—यो यात्यागमनं)
(ब) ज१-वृक्षस्यपुष्पितोयथा, ज२-वृक्षस्यपुष्पितुं ज. मो.-श्ववृक्षस्यपुष्पितो यथा (—खवृक्षःपुष्पितो यदा)
८५. (अ) ज१,२-सर्वगुणान्विते (—बहुगुणान्विते)
८७. (ब) ज१,२-ज. मो.-च वृद्धे च यात्रा सा (—च वार्द्धक्ये सा यात्रा)
ज१,२-भंगरोगदा (—भयरोगदा)
८८. (अ) ज१,२-त्वयमेव वा (—त्वयनेन वा)
(ब) ज१-यानुर्मासर्वत्रपादेव, ज२-यातुर्मासत्वायादेव (—यातुर्मासत्रयादेव)
८९. (ब) ज१,२-ज. मो. प्र. पा-वलग्नरिफचन्द्रेण (—अलग्नरिपुचन्द्रेण)
९१. (ब) ज१-यात्रायां निंदा च दस्य, ज. मो. यात्रास्यान्निन्दावादस्य (—यात्रा स्यान्मिथ्यावादस्य)
९२. (अ) ज१,२-यस्मिन्लग्ने (—यस्मिन्वारे)

(ब) ज१, २-चतुष्पदं (—रूक्प्रदं)
ज१-यतस्याष्विलयं त्यजेत्, ज२-यत्रस्मद्विलयं त्यजेत् (—तस्मात्तत्रितयं त्यजेत्)
९४. (अ) ज१,२-चंद्रगे (—चन्द्रजे)
ज१-मध्योदितो, ज२-मध्येदितो (—मध्योदिते)
(ब) ज१,२-यावदस्तंगते (—यावदस्तमिते)
ज१-संवशेत् (—संवसेत्)
९५. (ब) पी. टी.-नृपः (—नरः)
९६. (अ) ज१-देवविप्लवे, ज२-देशविप्लवे (—देशविभ्रमे)
(स) ज१-विधावेषां, ज२-विधायेषां (—विधौ तेषां)
ज१, २-प्रतिशुक्रो (—प्रतिशुक्रं)
९८. (अ) ज१-हदमर्थमनुंत्यक्त्वाछास्त्रै, ज२-इदमर्थमनुत्यक्ताशास्त्रे, ज. मो. इदमर्थमनुत्यवाच, प्र. प्रा. इदमर्थमयुक्तत्वात् (—अयमर्थमनुक्तत्वाच्छास्त्रे)
(ब) ज१, २-दोषोक्ति (—दोषोऽस्ति)
९९. (ब) ज१,२-पश्चात्सर्वं (—पश्चात्कार्यं)
१००. (अ) ज१,२-ज. मो.-भृगुलग्ने (—भृगोर्लग्ने)
(ब) ज१, २-ज. मो. पी. टी.-प्रति (—व्रती)
१०१. (अ) ज१,२-ज. मो. पी. टी.-च शुद्धेन (—सुशुद्धेन)
(ब) ज. मो. कांश्यपात्रं (—कांस्यपात्रे)
१०२. (अ) ज१-प्रतिमात (—प्रतिमां तत्र)
१०३. (अ) ज१,२-शुक्रार्थे, ज. मो. शुक्रेन्ते, पी. टी. शुक्रन्ते (—शुक्रं ते)
ज१,२-अन्यदोषु, ज. मो. अन्यदिक्षु च (—अन्यदित्यृचा)
१०४. (अ) ज१-कर्मातेन मन्त्रेण, ज२-कर्माततेतेनमन्त्रेण (—कर्मान्ते तेनमन्त्रेण)
ज१, २-प्रवापयेत (—प्रदापयेत्)
(ब) ज१, २-क्षीरपुष्पेनवारिणा, ज. मो. क्षीरमित्रेणवारिभिः पी. टी.-क्षीरमित्रेणवारिणा (—क्षीरमिश्रितवारिभिः)
१०५. (ब) ज१-स्वेतोप्य, ज२-श्वेतेथ (—श्वेतोऽथ)
१०६. (अ) ज१,२-दत्वेत्यर्घ्यं, ज. मो. दत्वेत्यर्घं पी. टी.-दत्वेत्यर्घं (—दत्त्वाह्यर्घं)
ज१-प्रार्थयेदेव, ज२-प्रार्थयेद्देव, ज. मो. प्रार्थयेदेव मु. पु. प्रार्थयेच्चैव (—प्रार्थयेद्देव)
१०७. (अ) ज१,२-ज. मो.-निधौ (—निधे)
१०८. (ब) ज१,२-दैवज्ञतप्र०-ज२-दैवज्ञायप्र० (—दैवज्ञायैव)
१०९. (अ) ज१-वित्तानुमोनतः, ज२-वित्तानुमानतः (—वित्तानुसारतः)
११०. ज१,२-पार्थिवो भवेत् (—चार्थवान्भवेत्)
११३. (अ) ज१,२-च वासितायासितायगां, मु. पु.-च सितायसितलोहकम् (—चाश्वं सितायासितायगाम्)

११५. (अ) ज१-स्खलिवेषां, ज२-सवालेतेषां (—स्खलिते)
ज१-चरादीनां, ज२-चांपरादीनां (—चाम्बरादीनां)
ज१-२-प्रत्याह्वनि (—प्रत्याह्वाने)
(ब) ज१-वृषस्य, ज२-वृषभस्य (—वृषाश्व)
११६. (ब) ज१-शुद्धेर्जयप्रदा (—शुद्धिर्जयप्रदा)
११९. (अ) मु. पु. मज्जिकांपायसंसाज्यं (—मार्जिता परमान्नं च) मु. पु. पायसो (—च पयो)
१२०. (अ) ज१,२-कुलमाषान् (—कुल्माषांश्च)
ज१,२-पयोघृतं (—गोघृतम्)
(ब) ज१,२-तत्सारमविलापनं (—तत्क्षीरघृतपायसम्)
१२१. (अ) ज१,२-वपकार (—चणको)
ज१-मृगमांस, ज२-मृगमासा (—मृगिणीमांसं)
ज१,२-सत्रशमांस च (—शशमांसं च)
ज१,२-पैत्तिकं (—पौष्टिकम्)
(ब) ज१-मटंकार, ज२-मंटकान (—मण्डकान्)
१२२. (अ) ज१-कूर्माश्चाविहततो, ज२-कूर्मश्चविहततो (—कूर्मश्चावित्ततो)
ज१-गोयांशालिनी वातरकोदग्रं, ज२-गोयांशलिनीवातरकोदयं
मु. पु.-गोधाशालनीवारकादनम् (—गोधाशालनीवारकोद्रवम्)
(ब) ज१-पंकातं, ज२-पंचातं, मु. पु. पावान्नं (—पाकान्नं)
१२३. (अ) ज१-भाच्च, ज२-भाच (—भाश्च)
(ब) ज१,२-प्रयातानां (—वक्रेद्याता)
ज१-फलमवाप्यति, ज२-फलमवाश्यति (—फलमवाप्स्यति)
१२५. (अ) ज१,२-स्वस्वमंत्रैः (—स्वस्ववर्णैः)
१२७. (अ) ज१-क्सृसृंवायुधं, ज२-सृक्सृजायुधं (—मुक्स्रुवायुधम्)
१२८. (ब) ज१-सर्वावरण (—सर्वाभरण)
१३०. (अ) ज१-कानार्थ, ज२-क—नार्थ (—कालिकानाथम्)
(ब) ज१-नामपाशधरं (—नागपाशधरं)
१३१. (ब) ज१-दणुपाणि, (—दण्डपाणिं)
ज१,२-जंतूनांमंतरात्मके (—जंतूनामन्तरात्मकम्)
१३५. (ब) ज१-काष्टपतिमनाः, ज२-काद्यपतिमनाः (—तुष्टः प्रीतिमना)
१३६. (ब) पी. टी.-स्वीयासनाश्चापि (—स्वात्मा समानं)
ज१,२-च चतुष्टयानां, पी. टी.-तदुच्चभानाम् (—च यदुक्तभानाम्)
१३७. (अ) स्वेतातपत्रंध्बूज, ज२-स्वेतातयत्रध्वज (—श्वेतातपत्रध्वज)
१३८. (ब) ज१,२-प्रबंधम् (—प्रबन्धनम्)

१३९. (ब) ज१-पुरोहितांश्च, ज२-पुरोहिताश्च (—पुरोहितं च)
१४०. (ब) मु. पु. मत: (—त:)
१४१. (अ) ज१-निगमप्रियानक्षितियो., ज२-निगंमाद्यायाक्षितियो. (—निर्गमाद्यायामात्क्षितिपो)
(ब) ज१-पंचराततः (—पञ्चरात्रत:)
१४२. (अ) ज१,२-भद्रेण (—भद्रे वा)
(ब) ज१-रक्षोन्ये, ज२-राज्ञोन्ये (—राज्ञोऽन्य:)
१४३. (अ) ज२-वृषलग्ने कुशांशे च (—झषलग्ने झषांशे च)
ज१-पथांवक्रस्य, ज२-पंथावक्रस्य (—पन्था वक्रश्च)
ज१,२-यापिनां (—यायिनाम्)
१४५. (अ) ज१,२-लाभाश्चालाभसंज्ञश्च (—लाभश्च व्ययसंज्ञश्च)
१४८. (ब) ज१-त्वरितान्यूनसंशय:, ज२-त्वरितात्पूनसंशय: (—त्वरितन्तु न संशय:)
१४९. (अ) मुक्त्वासाधारणं, ज२-मुक्तासाधारणं, ज. मो. उक्त्वासाधारणीं, पी. टी.-उक्तासाधारणी (—उक्त्वासाधारणां)
१५२. (अ) ज. मो.-करणेष्वथ (करणेषु च)
(ब) ज१,२-यात्राकृतेषचितेषु, ज. मो.-यात्रानुकूलेष्वेतेषु (—यात्रानुक्तेष्वथैतेषु)
१५५. (अ) ज१,२-लग्नेद्वयं, ज. मो. लग्नद्वयं (—लक्षद्वयं)
ज१,२-ज. मो.-एकोऽपि (—एको वा)
१५६. (अ) ज१,२-सितोवा (—सितेवा)
१५९. (अ) ज१,२-अधिमित्रगृह, ज. मो. अधिमित्रगृहे (—अधिमित्रगृहस्थे)
(ब) प्र. पा. वक्रयोगोऽयं (—वज्रयोगोऽयं)
१६३. (अ) ज१-उच्चैशं, ज२-उच्चांशं, ज. मो. उच्चांशगे (—उच्चगे)
(ब) ज. मो.-जयसंज्ञो (—शुभसंज्ञो)
१६४. (ब) ज. मो. फीर्तियोगोऽयं (—कीर्तियोगोऽयं)
१६५. (अ) ज१,२-लग्नेसंस्थे (—लग्नसंस्थे)
(ब) ज१-वा—खलुप्रद;, ज२-विजयं वैखलप्रद:
ज. मो.-विजयी खलुभूप्रदा (—विजयोऽखिलभूप्रद:)
१६६. (ब) ज१-पूर्णचन्द्र:, ज२-पूर्णाचन्द्रो (—पूर्णचन्द्रो)
ज. मो.-पूर्णभद्रप्रद: (—पूर्णराज्यप्रद:)
१६८. (अ) ज१-वा त्रितीयगे, ज२-वा तृतीयगे (—वा द्वितीयगे)
(ब) ज१-सफलप्रद:, ज२-सुफलप्रद: (—मङ्गलप्रद:)
१६९. (अ) मु. पु. लग्ने (—चन्द्रे)
(ब) ज१, २-ज. मो.-जयंति (—जयन्त)
१७०. (अ) ज१-वाथबलान्विते, ज२-वाथपलान्विते, ज. मो. वाथवलान्विते (—वा प्रबलान्विते)

१७२. (अ) ज१,२-कर्कटलग्ने (—कण्टकगे लग्ने)
(ब) ज१,२-कामदोषपिनारणौ (—शत्रुपक्ष विनाशकृत्)
१७३-१७५. ज१,२-पाठोनास्ति।।
१७८. (अ) ज१-वा भवेशुक्रे, ज२-वा भवेतशुक्रे (—लाभगेशुक्रे)
१७९. (अ) ज१,२-लग्नेचंद्रेथवागुरौ, ज. मो. लग्नेचन्द्रेऽथवागुरौ (—चन्द्रेशुक्रेऽथवागुरौ)
(ब) ज१,२-चन्द्रयोगौ च, ज. मो. वकयोगोऽयं (—चक्रयोगोऽयं)
ज१-विनाशनी, ज. मो. विनाशन: (—विनाशकृत्)
१८०. (अ) ज१,२-लग्नायवेन्द्रगे चन्द्रे, ज़. मो. लग्नान्त्यवेन्द्रगे चन्द्रे (—लग्नात्केन्द्रगतेचन्द्रे)
(ब) ज१-महासंयोग:, ज२-महासंख्यायोग:, ज. मो.-महाशङ्खाहवयो योग: (—महाशङ्खाह्वयोयोग:)
ज१-शत्रुसंघनिहन्त्यलो, ज२-शत्रुसंघनिहन्त्यलं
ज. मो. प्रतिपक्षवमानत: (—शत्रुसंघं निहन्त्यलम्)
१८१. (ब) प्र. पा. कौशिकौ (—कौस्तुभो)
१८२. (अ) ज१,२-त्रिदशाय (—त्रिधनाय)
(ब) ज१,२-प्रतिपक्षायमेदिनी (—प्रतिपक्षापनोदन:)
१८३. (अ) ज१-भृगुसते, ज२-भृगुसुत (—भूसुते)
(ब) ज१-नंदावर्ताद्वयोर्योग:, ज२-तदावर्ताहूयो योग: (—नद्यावर्त्ताह्वयोयोग:)
ज१,२-शत्रुशूला, ज. मो. शत्रुकाष्ठा (—शत्रुतूलानिलो)
१८४. (ब) ज१-नक्षत्रपायोगोयं (—नक्षत्रपदयोगोऽयं)
१८५. (अ) ज१,२-भौमेश्वराक्षिते (—भौमे स्वराशिगे)
(ब) ज१,२-रविविना (—रिपुवने) ज१-कुठारं (—कुठार:)
१८६. (ब) ज१,२-अयंयोग: (—रत्नयोग:)
ज१-शत्रुवन (—शत्रुवनं)
ज१,२-महादावानलक्षयं (—महादावानल: स्वयम्)
१८७. (ब) ज१-वैपर्क्षेचरभेष्वितरेषु च, ज२-वैपक्ष:लाक्षारसहुताशन: (—वैपक्षलाक्षारसहुताशन:)
१८८. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-कुसुमो (—कुमुदो)
ज२-शत्रुग्रासामकेश्वरी, ज. मो. शत्रुसंमजकेसरी (—शत्रुद्विरदकेसरी)
१८९. (अ-ब) ज१-पाठोनास्ति
ज१, ज. मो.-पापेष्विन्दौ भवास्थिते (—पापेष्विंदावुपान्त्यगे)
१९०. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-शूलयोगस्त्वतिव्रात: ज. मो.-शूलयोगस्त्वतिर्जाते (—शूलयोगस्त्वरितव्रात)
१९१. (अ) ज१-पाठोनास्ति, ज२-लग्नान्मुखावेदेयणायुभि: (—लग्नाच्छुभखेटेऽथवा)

१९२. ज१-पाठोनास्ति, ज२-ज. मो. वाऽधिविलग्नगे (—वा यदि लग्नगत:)
(ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-वल्लरीनामयोगोयं, ज२-बल्लरिदमिसाज्ञेया (—वल्लकीयोग संज्ञोऽयं)
ज१-पाठोनास्ति, ज२, ज. मो. विपक्षवनपावक (—विपक्षपुरपावक:)
१९३. ज१-शत्रयोगे, ज२-शत्रुयाल (—शत्रुभोगी)
१९५. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-अन्त्यस्थानेषु (—अन्यस्थानेषु)
१९६. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-तज्जयोज्ञेयो (—रज्जुयोगोऽयं)
ज१-पाठोनास्ति, ज२-शत्रुणांमगति: (—शत्रूणामशनि:)
१९७. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-तज्जयोज्ञेयो० (—वाऽनलयोगोऽयं)
१९८. (ब) ज१-पाठोनास्ति, ज२-सा एवन्नगोवृंहपित्तद्धन:
प्र. पा. सापत्न्यगोवृन्दबीपिद्धत: (—सापत्न्यगोवृन्दे द्वीपिविक्रम:)
१९९. (ब) ज१-पाठस्यलोप:, ज२, ज. मो.-शत्रुप्राणपहारक: (—नीयतेऽरीन्यमालयम्)
२०१. (ब) ज१-पाठस्यलोप:, ज२-संजीवि० ज. मो. संजीवनो (—सञ्जीविनी)
ज१-पाठोनास्ति, ज२-विपधांधकशूलभृत, ज. मो. विपक्षधिकशूसृक —(विपक्षान्धकशूलभृत)
२०३. (ब) ज१-सपात्रमेषसंयवृक:, ज२-सापत्यमेषसंघट्टक: (—सापत्न्यमेषसंघवृक:)
२०४. (ब) ज१,२-मृत्युकेमारणोणो, ज. मो. मृत्युकेनरणाङ्गणे (—मृत्युकेतूरणाङ्गणे)
२०५. (अ) ज१,२-जीवभार्गवे (—जीवभार्गवौ)
(ब) ज१-स्ववसपत्रोषमूषकानीचजाद्वक: ज२-सपत्नौघमूषकानीचजाहूका: (—सपत्नौघमूषकानां च जाहक:)
२०६. (अ) ज१,२-केंद्रगेपीतरेषु च, ज. मो. केन्द्रगेस्थिरभेषु (—केन्द्रगेष्वितरेषु च)
(ब) ज१,२-षण्मुखं (—षण्मुख:)
२०७. (अ) ज१-मान्येथसैकमेव, ज२-पाठस्य लोप: (—चान्योष्वापोक्लिमेषु च)
२०८. (ब) ज१,२-गोत्रभिन्नया (—गोत्रभित्स्वयम्)
२०९. (अ) ज१,२-अंतिगेषु च (—तन्वन्त्यगेषु)
ज१-परेष्वरिवेमंबु च (—परेष्यरिभवेषु च)
(ब) ज१, ज. मो. पावके (—पावको)
ज१,२-सप्तसागरात्, ज. मो. सप्तसागर: (—सप्तसागरा:)
२१०. (अ) ज१,२-परेषुनिधनेत्रिषु (—परेष्वायधनत्रिषु)
(ब) ज१, २-व्रजतोनामयोगोऽयं (—प्रभञ्जनो महायोग:)
ज१-शत्रुपाचप्रभंजन: (—शत्रुपादपभञ्जन:)
२१२. (ब) ज१-दंशुयोग: (—दंशयोग:)
ज१-जिह्वोत्पाटन (—शत्रु जिह्वोत्पाटने)
ज१, २-दीर्घसंशय: (—दीर्घदंशन:)

२१३. (ब) ज१,२-त्रिर्णायोग: (—सृणियोग:)
ज१,२-मृणीस्वयं (—सृणिस्वयम्)
२१४. (अ) ज१,२-धर्मात्मजेन च (—धर्मात्मजेषु च)
२१५. (अ) ज१,२-कृत्वाभ्यामधिसंज्ञकः (—शुभाभ्यांमतिसंज्ञकः)
(ब) ज१,२-गणान्रणो (-रणाङ्गणे)
२१६. (अ) ज१-केन्द्रस्याधर्मात्मजस्थैः, ज२-केंद्रं च धर्मात्मजसथैः (—केन्द्राङ्कसुतस्थाः)
ज१-शुभग्रहैः, ज२-शुभैग्रहैः (—शुभखेचराः)
(ब) ज१-सदागतः, ज२-सहागतः (—समागतः)
२१७. (अ) ज१-तयोधीशे, ज२-तदधीशे (—तयोरीशे)
ज२-लग्नगे (—विलग्नगे)
२१८. (अ) ज१-लग्नगो (—लग्नगे)
(ब) ज१,२-राशौलग्ने (—स्थितलग्ने)
ज१,२-शत्रुक्षयसदा (—शत्रुक्षयस्तदा)
२१९. (अ) ज१,२-जन्मयेतौ (—जन्मपतौ)
ज१-परिग्रहैः, ज२-परिग्रहे (—परैर्ग्रहैः)
(ब) ज१,२-गतोराजाधरेशानां (—गतोराजात्वरैः सेनां)
ज१-मायतेथमयादिरं, ज२-गायतेधनयादिरं (—नीयते यममन्दिरम्)
२२०. (अ) ज१-शुक्रेर्के, ज२-शुक्रेर्की (—शुक्रेकेन्द्रे)
ज१-बुधस्थिते, ज२-बुधसिते (—बन्धुस्थिते)
(ब) ज१-दनुजाननं, ज२-हतजाननं (—दनुजानिव)
२२१. (अ) ज१,२-भौमेषु (—पापेषु)
ज१-लाभेष्वन्येषु (—लग्नेष्वन्येषु)
२२२. (अ) ज१-षष्टगेच०, ज२-षष्टगेचंद्रे (—अष्टमेचन्द्रे)
२२३. (अ) ज१,२-सुखस्थिते (—शुभस्थिते)
(ब) ज१,२-शत्रुर्नधरणी (—शत्रुधरणी)
ज१,२-यातुक्वानखिलातदा (—हस्तस्था निखिला तदा)
२२४. (ब) ज१-दहत्यरीनातौ, ज२-दहत्यरीनामो, ज. मो. दहत्यरिगतो (—दहत्यरीन्गतो)
ज१,२-कृपणास्य यथा धनं, ज. मो. कृष्णवर्त्मयथावनम् (—कृष्णवर्त्मा यथेन्धनम्)
२२५. (ब) ज१,२-पुष्यन्ानातो० (—शुण्यत्यरीन्गातो)
ज१-कर्कराशिर्वशादभयं, ज२-कर्कराशियथेगमं,
ज. मो. सूर्यरश्मिर्यथाहृदः (—त्वर्करश्मिर्यथाहृदम्)
२२६. (ब) ज१-यद्वद्भरिस्मतिः, ज२-यद्व...रिस्मृतिः ज. मो. हरिस्मृतिः (—यद्वदहरेःस्मृतिः)

२२८. (अ) ज१,२- व...चराशिग: (—वा भावान्विते)

२२९. (अ) ज१-एकस्मिन्नेवपत्री, ज२-एकस्मिन्नेवपत्री चा (—एकस्मिन्नैव मित्रर्क्षे)

२३०. (अ) ज१,२-मीतान्युमलोकानिलाधि० (—भीतान्पुण्यलोकाभिलाषी)

(ब) ज१,२-परधशिथवस्त्रस्त्र (—विरथशिथिलवस्त्रान्)

(स) ज१,२-रणमुख (—नृपमुख)

२३१. (अ) ज१-सपत्रदेशानमरान्, ज२-सपत्नदेशान्नममरान् (—सापत्नेशान्नगरं)

(ब) ज१-कुलांगनेषु, ज२-कुलांगनैषु (—कुलाङ्गनासु)

२३२. ज१-सपत्रसप्तांग, ज२-सायत्तसप्तांग (—सापत्न सप्ताङ्ग)

ज१-समन्त्रवीक्ष्मी, ज२-समध्वी...लक्ष्मी: (—समस्तवीरलक्ष्मीं)

ज१,२-ग्रतानां (—प्रजानाम्)

(ब) ज१-स्वपुरं, ज२-स्वपुरे (—स्वपुरीं)

२३३. (अ-ब) ज१,२-पाठोनास्ति

पुष्पिका:—ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां यात्रास्वरूपलक्षणं नाम सप्तत्रिंशततमोध्याय:।।३७।।

पुष्पिका:—ज२-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मत्रृषि विरचितायां महासंहितायां यात्रास्वरूपलक्षणं नाम सप्तत्रिंशततमोमाध्याय:।।३७।।

***

# अथ गृहप्रवेशाध्यायः

**अथ प्रवेशो नवसद्मनश्च सौम्यायने जीवसिते बलाख्ये।**
**सिते च पक्षे शुभवासरे च वास्त्वर्चनं भूतबलिं च कृत्वा॥१॥**

नूतन गृह प्रवेश सूर्य उत्तरायण में, गुरु एवं शुक्र बलशाली हों अर्थात् अस्तंगत न हों, शुक्लपक्ष में, शुभवारों में वास्तुदेवता का पूजन एवं भूतबलि करके करना चाहिए॥१॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

आदौ सौम्यायने कार्यं नववास्तु प्रवेशनम्।
राज्ञा यात्रा निवृत्तौ च यद्वा द्वन्द्वप्रवेशनम्॥
विधाय पूर्वदिवसे वास्तुपूजां बलिक्रियाम्।
वेदमङ्गलनिर्घोषैः कार्यं वेश्मप्रवेशनम्॥

—(ना. सं., अ. ९४ श्लोक १-२)

**कश्यपः—**

अथातः संप्रवक्ष्यामि प्रवेशं नवसद्मनः।
सदा सौम्यायने कार्यं न क्वचिद् दक्षिणायने॥

*(—क. सं. अ. ३९, श्लोक १)*

**नवप्रवेशेऽप्यथ कालशुद्धिर्न द्वंदसौपूर्वकयोः कदाचित्।**
**प्रवेश पञ्चाङ्गदिने सुलग्ने वास्त्वर्चनं पूर्ववदत्र कार्य्यम्॥२॥**

नूतन गृह प्रवेश में काल शुद्धि का विचार करना चाहिए, परन्तु वायु, बिजली एवं भूकम्पादि से गिरे हुए अथवा मिट्टीगार द्वारा निर्मित गृह में प्रवेश के लिए कालशुद्धि आवश्यक नहीं। इसमें केवल पञ्चाङ्ग शुद्धि का विचार करके शुभलग्न में पूर्ववत् वास्तुपूजन पूर्वक प्रवेश करना चाहिए॥२॥

**अपूर्वसंज्ञः प्रथमप्रवेशो यात्रावसाने च सुपूर्वसंज्ञः।**
**द्वंद्वाह्वयस्त्वग्निभयादिजातस्त्वेवं प्रवेशो त्रिविधः प्रदिष्टः॥३॥**

नवीन निर्मित घर में प्रथम प्रवेश अपूर्वसंज्ञक, यात्रा से लौटनेपर गृह-प्रवेश सपूर्व संज्ञक और अग्नि, जल (बाढ़), बिजली एवं भूकम्प से गिरे हुए घर में प्रवेश द्वन्द्व संज्ञक कहलाता है॥३॥

**दिवा प्रवेशः शुभदः सुपुत्रपौत्राभिवृद्धिं निशि भास्करेन्दोः।**

**बलेन मध्येन्दुज वासरस्य रात्रिं विना पूर्वतिथेश्च रात्रिं॥४॥**

गृह प्रवेश दिन में हो तो शुभ कल्याणदायक तथा श्रेष्ठ पुत्र-पौत्रों की वृद्धि देने वाला होता है, जबकि रात्रिकाल में गृह प्रवेश सूर्य एवं चन्द्रमा के बलवान होने पर बुधवार के दिन मध्यम एवं पूर्व तिथि की रात्रि के विना प्रवेश शुभ होता है॥४॥

**दह्यते प्रविशतां च मन्दिरं वह्निभे नियतमेव वह्निना।**
**व्रध्नभूमिसुतवासरे तथा शीतरश्मिदिवसे च वृद्धिम्॥५॥**

कृत्तिका नक्षत्र तथा रविवार एवं मङ्गलवार कृत्तिका नक्षत्र नये घर में प्रवेश हो तो निश्चित रूप में घर अग्नि से जल जाता है; परन्तु सोमवार कृत्तिका नक्षत्र में गृहप्रवेश हो तो वृद्धिकारक होता है॥५॥

**चन्द्रजार्य्यसितवासरेषु तु श्रीकरं सुतमहार्थलाभदम्।**
**सूर्यसूनुदिवसे स्थिरप्रदं किन्तु चौरभयमत्र विद्यते॥६॥**

बुध, बृहस्पति एवं शुक्रवारों में गृह प्रवेश लक्ष्मीप्रद, पुत्र एवं प्रचुर धनदायक होता है। शनिवार गृहप्रवेश स्थिरता देता है; परन्तु चौर का भय बना रहता है॥६॥

**रिक्तामभां दग्धतिथिं दिनेशभूसुनुषड्वर्गमिनेन्दुदृष्टिम्।**
**क्रूरग्रहाधिष्ठितविद्धभं च विवर्ज्जनीयं त्रिविधप्रवेशे॥७॥**

रिक्तातिथियां, अमावस तिथि, दग्धतिथि, सूर्य एवं मङ्गल का षड्वर्ग, सूर्य चन्द्रमा की दृष्टि जिस नक्षत्र में पाप ग्रह हों अथवा पाप ग्रहों से विद्ध नक्षत्र हो ऐसी स्थिति में तीनों प्रकार के प्रवेश वर्जित करने चाहिए॥७॥

**माघेऽर्थलाभः प्रथमप्रवेशे पुत्रार्थलाभः खलुफाल्गुने च।**
**चैत्रेऽर्थहानिर्धनधान्यलाभो वैशाखमासे पशुपुत्रलाभः॥८॥**

माघ मास में प्रथम प्रवेश धनप्रद, फाल्गुन में पुत्रप्रद, चैत्र में प्रवेश धनहानि, निर्धनता करता है, वैशाख मास में गृह प्रवेश धन-धान्य, पशु एवं पुत्र लाभ देता है॥८॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

माघफाल्गुनवैशाखज्येष्ठमासेषु शोभनः।
प्रवेशो मध्यमो ज्ञेयः सौम्य कार्त्तिक मासयोः॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३, श्लोक १)

**ज्येष्ठेषु मासेषु परेषु नूनं हानिप्रदः शत्रुभयप्रदश्च।**
**शुक्ले च पक्षे सुतरां प्रवृद्ध्यै कृष्णे च यावद्दशमी च तावत्॥९॥**

गृह प्रवेश ज्येष्ठादि मासों में निश्चित रूप में हानि तथा शत्रु भय होता है।

शुक्लपक्ष में निरन्तर वृद्धिप्रदायक तथा कृष्णपक्ष में दशमी तिथि तक प्रवेश करना चाहिए। (ज्येष्ठ, आषाढ़, श्रावणादि मासों में शुक्लपक्ष में गृह प्रवेश शुभ समझें)।।९।।

**क्रमागतः-**

**वराहः—**

पौष्णे धनिष्ठास्वथ वारुणेषु स्वायम्भुवर्क्षेषु त्रिषूत्तरासु।
अक्षीणचन्द्रे शुभवासरे च तिथावरिक्ते च गृहप्रवेशः।।

—(ज्यो. नि., १७७, पृ., १७ श्लोक )

**शार्ङ्गधरः—**

शुभप्रवेशो देवेज्यशुक्रयोर्दृश्यमानयोः।
वस्वीज्यवारुणस्वातीहस्तमैत्रस्थिरोडूषु।।
व्यर्कारवारे तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च।
दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशोमङ्गलप्रदः।।

—(ज्यो. नि., १७६ पृ., ४ श्लोक )

**चित्रोत्तराधातृशशांकमित्रवस्वन्त्यवारीश्वरभेषु नूनम्।**
**आयुर्धनारोग्यसुपुत्रपौत्रसुकीर्तिदः स्यात्त्रिविधः प्रवेशः।।१०।।**

चित्रा, उत्तरात्रय, रोहिणी, मृगशिरा, अनुराधा, धनिष्ठा, रेवती, शतभिषा नक्षत्रों में त्रिविध प्रवेश निश्चित रूप से आयु, धन, आरोग्य, श्रेष्ठ पुत्र-पौत्र, सुकीर्तिदायक होता है।।१०।।

**क्रमागतः-**

**श्रीपतिः—**

शुभः प्रवेशो मृदुभिर्ध्रुवाख्यैः क्षिप्रैश्चरैः स्यात्पुनरेवयात्रा।
उग्रैर्नृपो दारुणभैः कुमारो राज्ञी विशाखासु विनाशमेति।।
कृत्तिकासु भवनं कृशानुना दह्यते प्रविशतां न संशयः।
यन्मुखं च सदनं हि तत्ककुब्द्वारभेषु शुभकृत्प्रवेशनम्।।

—(पी. टी. प्र. १३ श्लोक १)

**नारदः-**

वस्वीज्यांत्येन्दुवरुणत्वाष्ट्रमित्रस्थिरोडुषु ।
शुभः प्रवेशो देवेज्य शुक्रयोर्दृश्यमानयोः।
व्यर्कावार तिथिषु रिक्तामावर्जितेषु च।।

—(ना. सं., अ. ९४ श्लोक ४)

**अर्कानिलार्यादितिदस्त्रविष्णुऋक्षे प्रविष्टं नवमन्दिरं यत्।**
**अब्दत्रयात्तत्परहस्तया तं शेषेषु धिष्ण्येषु च मृत्युदं स्यात्।।११।।**

हस्त, स्वाती, पुष्य, पुनर्वसु, अश्विनी श्रवण इत्यादि नक्षत्रों में प्रवेश करने

से शुभफल होता है। शेष अन्य नक्षत्रों में प्रवेश करने से तीन वर्षों के अन्दर घर दूसरे का हो जाता है और मृत्युप्रद भी होता है॥११॥

**पञ्चाङ्गसंशुद्धदिने निशीशताराबले चाष्टकवर्गयुक्ते।**
**सौम्ये स्थिरे भे शुभदृष्टियुक्ते लग्नेऽथवा द्व्यंगगृहे विलग्ने॥१२॥**

पञ्चाङ्ग की शुद्धि वाले दिन, रात्रि में ताराबल बलवान होने पर, अष्टकवर्ग शुद्ध होने पर, शुभग्रह स्थिर राशियों में हों, शुभग्रहों की दृष्टि युक्त लग्न हो या शुभग्रह लग्न में हों तो स्थिर एवं द्विस्वभाव लग्न में गृहप्रवेश करना चाहिए॥१२॥

**क्रमागतः-**

**राजमार्त्तण्डः—**

निन्दिता अपि शुभांशसमेतास्तौलिमेषमकराः सकुलीरः।
कर्तृभोप चयगाश्च विलग्ने राशयः शुभफलाय भवन्ति॥

*—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३, श्लोक ४)*

**न नैधनेभेऽपि न वाष्टलग्नेपञ्चेष्टिकेऽप्यष्टमशुद्धियुक्ते।**
**कार्यः प्रवेशो न चरांशलग्ने शुभेक्षिते वाप्यऽथ सञ्युते वा॥१३॥**

लग्नेश अष्टम हो अथवा अष्टमेश लग्न में हो, पञ्चेष्ट लग्न मिलने पर तथा अष्टम स्थान शुद्ध हो चरांश लग्न को छोड़कर लग्न को शुभग्रह देखते हों अथवा शुभग्रह लग्न में हों तो उस समय गृह-प्रवेश कार्य कर लेना चाहिए॥१३॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

दिवा वा यदि वा रात्रौ प्रवेशो मङ्गलप्रदः।
चन्द्रताराबलोपेते पूर्वोक्तवर्जितेषु च॥

—(ना. सं., अ. ९४, श्लोक ५)

**कर्तुर्विलग्नाच्च हि जन्मराशेर्लग्नस्थितो राशिरिति प्रदिष्टः।**
**निर्व्याधिदारिद्र्ययशस्करश्च सुहृत्सुतघ्नो रिपुनाशदः सः॥१४॥**

कर्ता के लग्न से यदि जन्मराशि लग्नस्थ हो तो वही अभीष्ट राशि समझें उसी से क्रमशः व्याधिरहित, गरीबी; परन्तु यशप्रद, मित्र एवं पुत्र का नाश परन्तु शत्रुनाशक—॥१४॥

**कलत्रहन्ता निधनप्रदश्च रोगप्रदः सिद्धिकरोऽर्थदश्च।**
**क्रमाच्च वैरीभयदः प्रवेशे सदैव नूनं त्रिविधे विचिन्त्यम्॥१५॥**

पत्नी हन्ता, मृत्युप्रद, रोगप्रद, सिद्धिकारक, अर्थप्रद तथा शत्रुभय देने वाला— ये क्रमशः तीनों प्रकार के प्रवेशों में निश्चित तौर पर विचार करना चाहिए॥१५॥

**केन्द्रत्रिकोणत्रिधनायसंस्थैः शुभैस्त्रिषष्ठाऽयगतैः खलैश्च।**
**लग्नान्त्यषष्ठाष्टमवर्जितेन चन्द्रेण लक्ष्मीनिलयः प्रवेशः॥१६॥**

केन्द्र (१, ४, ७, १०) त्रिकोण (५, ९) तीसरे दूसरे तथा लाभ भाव में शुभग्रह स्थित हों, पापग्रह तीसरे, छठे या ग्यारहवें में स्थित हों, लग्न से द्वादश, छठे, आठवें चन्द्रमा को छोड़कर चन्द्रमा शुभ स्थानों में स्थित हो तो ऐसे समय में गृह प्रवेश करने पर घर लक्ष्मीगृह हो जाता है॥१६॥

क्रमागतः-

गुरुः—

सप्तमं शुद्धमुद्व यात्रायामष्टमं तथा।
दशमं च गृहारम्भे चतुर्थसन्निवेशते॥

श्रीपतिः—

केन्द्रच्छिद्रव्यय शुद्धैः क्रूरैः षट्त्र्यायगैर्गुरौ।
लग्ने भृगौ वा केन्द्रे वा स्थिर प्रायोदये विशेत्॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३ श्लोक ४)

नारदः-

स्थिरलग्ने स्थिरांशे च नैधने शुद्धिसञ्युते।
त्रिकोणे केन्द्रगत्र्याये सौम्यैस्त्र्यायारिगैः खलैः॥
लग्नात्षष्ठाष्टमस्थेन वर्जितेन हिमांशुना।
कर्त्तुर्वा जन्मभे लग्ने ताभ्यामुपचयेऽपिवा॥

—(ना. सं., अ. १४ श्लोक ६-७)

**यद्दिग्द्वारं मन्दिरं तद्दिगृक्षैरुक्तर्क्षैः स्यात्सन्निवेशो न सर्वैः।**
**पुष्यो मध्यः सन्निवेशेऽप्युडूनां वाराणां स्यात्सूर्यसूनोश्च वारः॥१७॥**

जिस दिशा में घर का मुख्य द्वार हो उस दिशा में कहे हुए नक्षत्रों में जो ग्रह कहे गये हैं, उनमें गृहप्रवेश करे; परन्तु सभी वारों में नहीं। सभी नक्षत्रों में पुष्य नक्षत्र के मध्य में ग्रह हों तो वारों के मध्य में शनिवार श्रेष्ठ होता है॥१७॥

**मृगादिषड्राशिषु संस्थितेऽर्के नवप्रवेशः शुभदः सदैव।**
**कुम्भं विनान्येष्वपि केचिदूचुर्न सौरमिष्टं खलु सन्निवेशे॥१८॥**

मकरादि छः राशियों में (मकर राशि से कर्कराशि तक) सूर्य स्थित होने पर अर्थात् उत्तरायण होने पर गृह-प्रवेश सदैव शुभप्रद होता है। कुंभ चक्र की शुद्धि नहीं होने पर भी कुछ आचार्यों ने उत्तरायण काल को गृहप्रवेश के लिए शुभ कहा है॥१८॥

**प्रवेशलग्नान्निधनस्थितो यः क्रूरग्रहः क्रूरगृहे यदि स्यात्।**
**प्रवेशकर्त्तारमथ त्रिवर्षादृहन्त्यष्टवर्षैः शुभराशिगश्चेत्॥१९॥**

प्रवेश लग्न से अष्टम स्थान में जो पापग्रह स्थित हो अथवा पापग्रह की राशि का लग्न हो तो गृह प्रवेश कर्त्ता तीन से आठ वर्षों के भीतर नष्ट हो जाता है। चाहे शुभ ग्रह क्यों न देखते हों॥१९॥

**यः क्षीणचन्द्रोऽन्त्यषडष्टसंस्थः पापेक्षितः पापयुतोऽथवा स्यात्।**
**कर्त्तुः स्त्रियं हन्ति स वत्सरेण त्रिवर्षतः सौम्यनिरीक्षितश्चेत्॥२०॥**

जो क्षीण चन्द्रमा द्वादश, षष्ठ तथा अष्टम स्थान में स्थित हो, पापग्रहों से युक्त अथवा पाप ग्रहों द्वारा देखा जाता हो ऐसा चन्द्रमा गृहप्रवेश कर्त्ता की पत्नी का एक वर्ष से तीन वर्षों के मध्य में मार देता है, वेशक शुभ ग्रहों द्वारा देखा जा रहा हो॥२०॥

**क्रमागतः–**

**गुरुः—**

निर्गमान्नमे मासि प्रवेशो नैवशोभनः।
नवमे दिवसे चैव प्रवेशं नैव कारयेत्॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३ श्लोक ४)

**एको ग्रहेन्द्रः परभागवर्त्ती जायास्थितः कर्मगतोऽथ वा स्यात्।**
**प्रविष्टगेहं परहस्तजातं करोति वर्षाद्विवलः स खेटः॥२१॥**

एक श्रेष्ठ ग्रह यदि परभाग में स्थित हो, सप्तम अथवा कर्मस्थान में बलवान होकर स्थित हो तो ऐसे समय में गृहप्रवेश करने वाले का घर दूसरे के हाथ में एक वर्ष के भीतर चला जाता है॥२१॥

**गजाश्वशालादिषु सन्निवेशस्त्वेवं पशूनां पशुयोनिराशौ।**
**शुभग्रहैर्युक्तिनिरीक्षिते च प्रवेशतः शोभनमामनन्ति॥२२॥**

हाथी, घोड़े इत्यादि का शाला प्रवेश पशु योनि की राशि में शुभफलप्रद होता है। शुभ ग्रहों की युति एवं दृष्टि हो तो शाला प्रवेश अत्यन्त शुभफलप्रद होता है॥२२॥

**यद्वास्तुपूजारहितं तदत्र बलिं विना छत्रगृहं विरूपम्।**
**कपाटहीनं न विशेद्यतस्तत्सर्वापदामालयमेतदेव॥२३॥**

वास्तु देवता की पूजा रहित घर, बलि रहित, छत्ररहित, दीवार हीन गृह में प्रवेश करने से समस्त विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ता है॥२३॥

**कृत्वा शुक्रं पृष्ठतो वामतोऽर्कं विप्रान्पूज्यानग्रतः पूर्णकुम्भम्।**
**हर्म्यं रम्यं तोरणैः स्त्रग्वितानैः स्त्रीभिः स्त्रग्वी गीतवाद्यैर्विशेत्तत्॥२४॥**

**इति श्रीब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**गृहप्रवेशाध्यायोऽष्टत्रिंशः॥३८॥**

शुक्र पृष्ठ में, सूर्य वायीं ओर हो, ब्राह्मणों का पूजन करके पूर्ण कुम्भ को

आगे करके तोरण, माला, वितान इत्यादि से सुशोभित, स्त्रियों द्वारा गाये गीतों से युक्त वाद्यों के साथ गृह-प्रवेश करना उत्तम है॥२४॥

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के गृहप्रवेशाध्याय की नारायणी
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥३८॥

**क्रमागतः-**

**गुरुः—**

पृष्ठगं दक्षिणं वापि भृगुं कृत्वा विशेत्सदा।
पुरोऽग्रं वामगं वापि शुक्रं कृत्वा विशेच्च न॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३ श्लोक ४)

**श्रीपतिः—**

कृत्वा विप्रान्सजल कलश चाग्रता वामतोर्क।
स्नातः स्रग्वी विमलवसनी मङ्गलैर्वेद घोषैः॥
व्यस्तैर्यात्रा कथितशकुनैर्द्वार मार्गेण राजा।
हर्म्ये पुष्पप्रकररुचिरंतोरणाख्यं विशेच्च॥

—(मु. चि. पी. टी. प्र. १३ श्लोक ३-४)

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१-नवमंदिस्थ, ज२-नवमंदिनस्य (—नवसद्मनश्च)
(ब) ज१,ज२-शुभवासरेषु (—शुभवासरे च)
०२. (अ) ज१-द्वसौपूर्विक्यो: (—द्वन्द्वसौपूर्वकयो:)
(ब) ज१,२-शलग्ने (—सुलग्ने)
०३. (अ) ज.मो. प्रथम: (—प्रथम)
(ब) ज१,ज२-मयाविजातस्त्वेवं (—भयादिजातस्त्वेवं)
ज१-प्रवेशस्त्रिविधं, ज२-प्रवेशास्त्रिविध: (—प्रवेशो त्रिविध:)
०४. (अ) ज१,ज२-पौत्रमिवृद्धौ (—पौत्राभिवृद्धिं)
(ब) ज१,ज२-मत्स्यध्वजवासरस्य, ज. मो. सौम्यध्वजवासरस्य (—मध्येन्दुजवासरस्य)
ज१,२-राशिं, ज. मो. धात्री (—रात्रिं)
०५. (अ) ज१,ज२-नशशिवह्विभ्याश्च (—नियतमेव वह्निना)
(ब) ज१-भूमिपुनवारयोमृति:, ज२-भूमिसुतवारयोमृति: (—भूमिसुतवासरेतथा)
ज१,२-वृद्धिद: (—वृद्धिम्)
०६. (अ) ज१-चंद्रजोवा सितवासरेषु, ज२-चन्द्रजीवसितवासरेषु (—चन्द्राजार्य्यसितवासरेषु)
ज१,ज२-श्रीकर: (—श्रीकरं)
(ब) ज१,२-स्थिरप्रद: (—स्थिरप्रदं)

०७. (अ) ज१-रिक्तातिथौदग्धतिथि, ज२-रिक्ता तिथौदग्धतिथौ (—रिक्तामर्मा दग्धतिथिं)
ज१,२-मिनेन्दवृष्टिः, ज.मो. सितेन्दुदृष्टिः (—मिनेन्दुदृष्टिम्)
(ब) ज१,२-त्रिविधप्रवेशः, ज२-विविधप्रवेशः ज.मो. त्रिविधैप्रवेशे (—त्रिविधप्रवेशे)

०८. (अ) ज१,ज२-प्रथम प्रवेशे, ज. मो. प्रथम प्रवेशः (—प्रथमप्रवेशे)
(ब) ज१-वैशाष (—वैशाख)

०९. (ब) ज१,ज२-ज.मो. विवृद्धयै (—प्रवृद्धयै)

१०. (ब) ज१,ज२-स्यात्प्रथमःप्वेशः (—स्यात्त्रिविधः प्रवेशः)

११. (अ) ज१,ज२-विष्णरिक्ते (—विष्णुत्र्क्षे)
(ब) ज१-आवृत्ययात्रात्पदस्तथा, ज२-आवृत्ययात्रा....त्यादस्थ ज. मो. आब्दत्रयातत्परहस्तयातं (—अब्दत्रयात्तत्परहस्तयातं)

१२. (अ) ज१,ज२-चाष्टक् वर्गयुक्तं, ज.मो. नाष्टकवर्थयुक्ते (—चाष्टकवर्गयुक्ते)
(ब) ज१-ध्वांग, ज२-ध्यंग (—द्व्यंग)

१३. (अ) ज१-नमैधने...मेपि, ज२-निर्नणनेमेपि (—न नैधनेभेऽपि)

१४. (अ) ज१-क्तुर्विलग्नायदि, ज२-यतुर्विलग्नायदि, पी. टी.-कर्तुविलग्नादय (—कर्तुविलग्नाच्चहि)
(ब) पी.टी.-रिपुनाशदश्च (—रिपुनाशदः सः)

१५. (अ) ज१-निधनग्रहश्च, ज२-निधनग्रहेश्च (—निधनप्रदश्च)

१६. (अ) ज१,ज२-गतैश्चपपिः, ज.मो. नतैरंधश्च (—गतैः खलैश्च)

१८. (ब) ज१,ज२-सन्निवैशे (—सन्निवेशे)

१९. (ब) ज१,ज२-त्रिवर्षैः, ज.मो. त्रिवर्षं (—त्रिवर्षाद्)

२०. (अ) ज१-षडष्टसंस्थैः, ज२-षडस्थसंस्थे (—षडष्यसंस्थः)
(ब) ज१-सौम्ययुतोक्षितश्च, ज२-सौम्ययुतेक्षितश्च (—सौम्यनिरीक्षितश्चेत्)

२१. (ब) ज१-सुखेटः (—सखेटः)

२२. (ब) ज१,ज२-ज.मो. प्रवेशनं (—प्रवेशतः)

२३. (अ) ज१,२-त्वक्तवलिं (—तदत्र बलिं)
मु. पु. छन्नगहं (—छन्नगृहं)

२४. (अ) ज१,ज२-हर्म्यतरभ्यं (—हर्म्यंरम्यं)
(ब) मु. पु. स्रवीं, ज२-स्वग्वी (—स्रग्वी)
ज१,२-वाद्यैविशेच्च (—वाद्यैविशेत्तत्)

पुष्पिका : ज१-इति श्री वृद्धवासिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां ग्रहप्रवेसं स्वरूपलक्षणां नामाष्टत्रिंशतमोध्यायः॥३८॥

पुष्पिका : ज२-इति श्री वृद्धवसिष्ठब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां गृहप्रवेशस्वरूप लक्षणं नामाष्टविंशतमोऽध्यायः॥३८॥

***

# अथ वास्त्वध्यायः

**वास्तुज्ञानं प्रवक्ष्यामि यदुक्तं ब्रह्मणा पुरा।**
**ग्रामसप्तपुरादीनां निर्माणं सूक्ष्मतोऽधुना॥१॥**

अब मैं वास्तुज्ञान को कहता हूँ, जैसा ब्रह्मा जी ने प्राचीन काल में कहा था। गाँव एक सप्तपुरी (वृहद् प्रासाद) निर्माण सूक्ष्मता से कहता हूँ॥१॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः संप्रवक्ष्यामि निर्माणं पुरसद्मनोः।
क्षेत्रस्वीकरणं पूर्वं गन्धवर्ण रसप्लवैः॥१॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक १)

भूमिपरीक्षण विधि

**क्षेत्रमादौ परीक्षेत गन्धवर्णरसादिना।**
**श्वेतस्थानं द्विजातीनामीषद्रक्तं महीभुजाम्॥२॥**

सर्वप्रथम क्षेत्र (प्लाट इत्यादि) की परीक्षा गन्ध (मिट्टी की सुगन्ध), रङ्ग तथा रस द्वारा करनी चाहिए। सफेद भूमि ब्राह्मणों के लिए, सामान्य रक्तवर्णा भूमि क्षत्रियों के लिए—॥२॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

मधुपुष्प सुरामांस गन्धं विप्रानुपूर्वकम्।
सितरक्तपीतकृष्णवर्णा विप्रानुपूर्वतः॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक २)

**नारदः–**

निर्माणे पत्तनग्राम गृहादीनां समासतः।
क्षेत्रमादौ परीक्षेत गन्धवर्णरसप्लवैः॥
मधुपुष्पाम्लपिशितगन्धान विप्रानुपूर्वकम्।
सितरक्तेश हरितकृष्णवर्णं यथा क्रमात्॥

—(ना. सं. अ. ३१, श्लोक १-२)

**विशां पीतं चतुर्थानां कृष्णवर्णं शुभप्रदम्।**
**मधुपुष्पाम्लपिशितं गन्धवर्णानुरूपतः॥३॥**

वैश्यों (व्यापारी वर्ग) के लिए पीली भूमि और शूद्रों के लिए काले रंग की भूमि शुभफलप्रद होती है। मधुर, पुष्प, अम्ल, मांस, गन्ध तथा वर्णों के अनुरूप से—॥३॥

### भूमि के रस

**मधुरं कटुकं त्वम्लं तिक्तं तत्क्रमशो रसम्।**
**खातं कृत्वारत्निमात्रं खनयेत्तत्समंततः॥४॥**

मधुर, कड़वा, अम्ल और तीखा ये क्रम से ब्राह्मणादि वर्णों के लिए भूमि का रस कहा गया है। कोंहनी से मुट्ठी तक की दूरी, एक हाथ परिणाम ख़ात (खड्डा) बनाकर चारों ओर से खनें—॥४॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

मधुरं कटुकं तिक्तं काषायं च यथाक्रम।
सर्वं सम्पत्प्रदं नृणामीशानप्रागुदक् प्लवम्॥
अन्यदिक्षुप्लवं दुःखशोक निधन हानिदम्।
कृत्वा गर्तं रत्निमात्रं तन्मृदापरिपूरयेत॥
अधिकेसत्वन्वृद्धिः स्याद्हीने होनिःसमे सभम्।
गर्तं निशादौ तन्मानं कृत्वा तोयैः प्रपूरयेत॥
दृष्टवाप्रातर्जजेवृद्धिः समं पङ्के व्रणेक्षयः।
एवं लक्षणसंयुक्ते क्षेत्रे सम्यक्समीकृते॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ३-६)

### पुनः भूमि परीक्षणविधि

**रात्रादौ तज्जलैः पूर्य प्रातः सम्यङ्निरीक्षयेत्।**
**जलयुक्तं वृद्धिकरं पङ्कयुक्तं तु मध्यमम्॥५॥**

तथा रात्रि के प्रथम प्रहर में उस गड्ढे को जल से परिपूर्ण करके प्रातः भलीभाँति निरीक्षण करें। गड्ढा यदि पानी सहित हो तो वृद्धिकाक, कीचड़युक्त हो तो मध्यफलप्रद समझें॥५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

मधुरं कटुकं तिक्तं कषायश्च रसाः क्रमात्।
अत्यन्तं वृद्धिदं नृणामीशानप्रागुदक्प्लवम्॥
अन्य दिक्षुप्लवं तेषां शश्वदत्यन्त हानिदम्।
तत्र कर्ता हस्तमात्रं खनित्वा तत्र पूरयेत॥

अत्यन्त वृद्धिरधिके हीने हानिः समेसमम्।
तथा निशादौ कृत्वा तु पानीयेन प्रपूरयेत्।।
प्रातर्दृष्टे जलेवृद्धिः समं पंके व्रणेक्षयः।
एवं लक्षणसंयुक्ते तन्मध्ये स्थापयेत्ततः।।
—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ३-७)

**व्रणयुक्ते भवेद्हानिः शुष्के मृत्युं समादिशेत्।**
**तथैव तन्मृदं कृत्वा तद्गर्तं परिपूरयेत्।।६।।**

यदि गड्ढे में व्रण (दरार) हो गए हों तो हानिकारक और सूखा हुआ गड्ढा हो तो मृत्युप्रद समझें! तत्पश्चात् पुनः उसी प्रकार गड्ढा निकली हुई मिट्टी से भरें—।।६।।

**अधिके वृद्धिमाप्नोति समे साम्यं क्षये क्षयम्।**
**प्रागुत्तरप्लवं वृद्धिरैशान्यं प्लवमिष्टदम्।।७।।**

यदि मिट्टी अधिक हो जाये तो भूमि वृद्धिकारक, मिट्टी सम हो जाए तो समता, मिट्टी कम पड़े तो क्षयप्रद भूमि समझें। पूर्व एवं उत्तर दिशा में भूमि में ढलान हो जाये तो भूमि वृद्धिकारक तथा ईशान कोण में ढलान हो तो अभीष्ट सिद्धिप्रद समझें।।७।।

**कीलकेशास्थिशुद्ध्यर्थं पुरुषत्रयमानतः।**
**खनित्वा पूरयेत्तं च पाषाणसिकताम्बुभिः।।८।।**

कील, बाल तथा हड्डियों की शुद्धि के लिये तीन पुरुष के प्रमाण से भूमि खनकर शुद्ध मिट्टी पत्थर, रेत और जल इत्यादि से गड्ढे को भर दें।।८।।

**एवं परीक्षितं क्षेत्रं कृत्वा दिक्साधनं ततः।**
**सलिलेन समीकृत्यत्वथवापि शिलातले।।९।।**

इस प्रकार जाँची गई भूमि को पुनः जल से समतल करके दिशा साधन के लिए शिलातल पर मण्डलाकार तैयार करें।।९।।

**भूमि में शंकुस्थापन**

**शङ्कुमानेन सूत्रेण लिखेद् वृत्तं समस्थले।**
**आद्वादशाङ्गुलं शङ्कुं वृत्तमध्ये समं न्यसेत्।।१०।।**

द्वादशाङ्गुल शंकुमान से सूत्र के द्वारा वृत्त (गोलाकार) समभूमि पर बना कर द्वादशाङ्गुल शंकु को गोलाकार के मध्य में स्थापित करें।।१०।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

मण्डलं विलिखेच्छङ्कुमानं मानद्वयेन वा।
आद्वादशाङ्गुलं शंकुं तन्मध्येस्थापयेद् दृढम्।।

तच्छायाग्रं यत्रवृत्ते स्पृशेत्पूर्वापराह्नयोः।
उभौ विन्दू तत्र कार्यो वृत्ते पूर्वापराभिधौ।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ७-८)

**तच्छायाग्रं यत्र वृत्ते स्पृशेत्पूर्वापराह्नयोः।**
**कार्यौ विन्दू तत्र वृत्ते यत्र पूर्वापराभिधे।।११।।**

और जिस स्थान पर शंकु की छाया का अगला भाग पूर्वाह्न और अपराह्न में यहाँ छायावृत्त का स्पर्श करे, उसी स्थान पर विन्दु (चिह्न) बनाकर पूर्व और पश्चिम का ज्ञान करें।।११।।

**तयोर्मध्ये हि मत्स्येन रेखा स्याद् दक्षिणोत्तरा।**
**दक्षिणोत्तरदिङ्मध्ये मत्स्योनापरपूर्विका।।१२।।**

दोनों के मध्य में दक्षिण और उत्तर दिशा की ओर रेखा बनायें तथा दक्षिण से उत्तर रेखा साधित करके दिशा ज्ञान करें।।१२।।

**नोट :** इस सन्दर्भ में मत्स्य शब्द संज्ञावाची है।

**क्रमागतः-**
**कश्यपः-**

तन्मध्यं तिमिभिः साध्यं सा रेकादक्षिणोत्तरा।
तन्मध्यमिमिना साध्या रेखा प्राक्पश्चिमाह्वया।।
दिग्मध्य तिमिभिः साध्याः सूच्यग्रे विदिशं च वा।
सूत्रेर्विनिर्गतैर्मध्याच्चतुरस्त्रं लिखेद्बहिः।।
षडवर्गं शोधयेर्त्तात्मेव चतुरस्त्रे मनोहरे।
रेखा मार्गेण कर्त्तव्याः प्राकारा उपलादिभिः।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ९-११)

**दिङ्मध्योद्भवमत्स्यौ च विदिशश्चोपदेशतः।**
**चतुरस्त्रं बहिश्चात्र मूढा ज्यौतिषिका भुवि।।१३।।**

दिशाओं के मध्य में उत्पन्न हुई रेखाकार दो मछलियों द्वारा उपदेश मूर्ख ज्योतिषी करते हैं, यह युक्तिसंगत नहीं—क्योंकि यहाँ बाहर की ओर सब कुछ चकोरा है।।१३।।

**क्रमागतः-**
**नारदः-**

तन्मध्यमत्स्यैर्विदतः साध्यसूचीमुखास्तदा।
मध्याद्विनीर्गतैः सूत्रैश्चतुरस्त्रं लिखेद्वहिः।।
चतुरस्त्री कृतेक्षेत्रे षड्वर्गपरिशोधिते।
रेखा मार्गे च कर्त्तव्यं प्राकारं सुमनोहरम्।।
—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक १०-११)

षड्वर्गशुद्धि से भूमि शुद्धिज्ञान

**अल्पाधिकं चतुरस्त्रं कार्य्यं षड्वर्गशुद्धितः।**
**चतुरस्त्रेण मार्गेण प्राकारं कल्पयेद्भुवि॥१४॥**

षड्वर्ग शुद्धि से भूमि शुद्ध करने के पश्चात् चकोणी भूमि पर रेखाचित्र से प्राकार (घर) भूमि पर बनाना चाहिए॥१४॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

आयामेषु चतुर्दिक्षु प्रागादिषु च सत्स्वपि।
अष्टाष्टौ च प्रतिदिशं द्वाराणि स्युर्यथाक्रमात्॥

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक १२)

**द्वारमायामतः कार्यं पुत्रपौत्रधनप्रदम्।**
**विस्तारकोणद्वारं यद्दुःखशोकभयप्रदम्॥१५॥**

घर के विस्तार में अर्थात् गृहपिण्ड में द्वार का विस्तार पुत्र-पौत्र एव धनप्रद होता है; परन्तु कोण द्वार का विस्तार दुःख-शोक एवं भयप्रद होता है॥१५॥

पूर्वादिक्रम से आठ द्वारों का फल

**तस्मात्कृत्वाष्टधा यामं दिक्षुद्वारेषु सत्स्वपि।**
**प्रादक्षिण्यात्फलान्यष्टावैकैकस्यामिति क्रमात्॥१६॥**

गृहपिण्ड के विस्तार में क्रम से पूर्वादि चारों दिशाओं में आठ प्रकार के द्वार दक्षिण दिशा क्रम से कहे गये हैं। उन आठों द्वारों का फल क्रमशः कहते हैं॥१६॥

प्राचीद्वारफल

**दुःखशोकौ धनप्राप्तिर्नृपपूजा महद्धनम्।**
**स्त्रीजन्म पुत्रता हानिः प्राचीद्वारफलानि वै॥१७॥**

दुःख-शोक, धन प्राप्ति, राजा की पूजा, प्रचुर धन, पुत्री जन्म, पुत्र हानि ये सभी फलादेश पूर्व द्वार के हैं॥१७॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

आयामष्टधा कृत्वा द्वारं ज्ञेयं प्रदक्षिणम्।
क्रोधो भीतिर्धन प्राप्तिर्नृपपूजा महदधनम्॥
चौर्यं विपुत्रता हानिः प्राच्यां दिशि यथाक्रमम्।
बन्धनं निर्धनं भीतिरर्था वाप्तिर्धनागमः॥
आरूजत्वं व्याधिभयमधनत्वं च दक्षिणे।
पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिर्लक्ष्मी प्रीतिर्धनागमः॥

धान्यप्राप्तिरसौभाग्यं दुःखं शोकं च पश्चिमे।
हानिः स्त्रीदूषणं निःस्वं बहुधान्यं धनागमः।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक १२-१५)

### दक्षिणद्वार फल

**निधनं बन्धनं भीतिः पुत्रावाप्तिर्धनागमः।**
**यशोलाभश्चौरभयं व्याधिभीतिश्च दक्षिणे।।१८।।**

मृत्यु, बन्धन, भय, पुत्रप्राप्ति, धनागम, यशलाभ, चौरभय, रोगभय ये सभी दक्षिण द्वार के फल हैं।।१८।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

प्रदक्षिणक्रमात्तेषाममूनि च फलानि वै।
हानिर्नैस्वं धनप्राप्तिर्नृपपूजामहद्धनम्।।
अतिचौर्यमतिक्रोधो भीतिर्दिशि शचीपतेः।
निधनं बन्धनं भीतिरर्थाप्तिर्धनवर्द्धनम्।।
अनातङ्कं व्याधिभयं निःसत्वं दक्षिणादिशि।
पुत्रहानिः शत्रुवृद्धिर्लक्ष्मी प्राप्तिर्धनागमः।।
सौभाग्यमतिदौर्भाग्यं दुःखं शोकश्च पश्चिमे।
कलत्रहानिनिःसत्वं हानिर्धान्यं धनागमः।।
—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक १३-१६)

### पश्चिद्वार फल

**शत्रुवृद्धिः पुत्रहानिर्लक्ष्मी प्राप्तिर्धनागमः।**
**सौभाग्यं धनलाभश्च दुःखं शोकश्च पश्चिमे।।१९।।**

शत्रुवृद्धि, पुत्रहानि, लक्ष्मीप्राप्ति, धनागम, सौभाग्य, धनलाभ तथा दुःख-शोक इत्यादि पश्चिम द्वार के फल हैं।।१९।।

### उत्तरद्वारफल

**निःस्वं स्त्रीदूषणं हानिः सम्प्रत्प्राप्तिः सुखागमः।**
**दुःखागमः शत्रुबाधा चोत्तरस्यां दिशि क्रमात्।।२०।।**

गरीबी, स्त्री में दोष, हानि, सम्पत्ति की प्राप्ति, सुखदुःखागम, शत्रु बाधा क्रमशः उत्तरद्वार के फल हैं।।२०।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

संपद्वृद्धिर्महाभीतिरामयो दिशि शीतगोः।
एव गृहादिषु द्वारं विस्ताराद्विगुणोच्छ्रितम्।।

इति प्रदक्षिणं द्वारं फलमीशानकोणतः।
मूलद्वारस्य चोक्तानि तान्यत्रैवं वियोजयेत्।।
पश्चिमे दक्षिणे वापि कपाटं स्थापयेद् गृहे।
प्राकारतः क्षितिं कुर्य्यदेकाशितिपदं यथा।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक १७-१९)

द्वारनिर्माण निर्णय

**विस्तारद्विगुणोत्सेधं द्वारं तद्विषमायतम्।**
**पश्चिमे दक्षिणे चापि कपाटं च शुभप्रदम्।।२१।।**

घर के द्वार निर्माण में विस्तार से दो गुणा ऊँचाई करके दरवाजे का विस्तार भी बराबर होना चाहिए। पश्चिम एवं दक्षिण दिशाओं में द्वार लगाना शुभ फलप्रद होता है।।२१।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

द्वारस्य पश्चिमे याम्ये कपाटं स्थापयेद्दिशि।
प्राकारान्तं क्षितिं कुर्यादेकाशीति पदंसमम्।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक १७)

वास्तु एवं ब्रह्म निर्माण

**एकाशीतिपदं कुर्य्यात्प्राकाराधिष्ठितां क्षितिम्।**
**मध्येन च पदं ब्रह्मस्थानं तन्निधनप्रदम्।।२२।।**

वास्तुदेवता के एकाशीति (८१) पद घर की भूमि पर बनाकर मध्यम में ब्रह्मपद स्थापित करना चाहिए। ब्रह्म स्थान को त्याग करने पर मृत्यु होती है।।२२।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

मध्यं नवपदं ब्रह्मस्थानं तन्निधनप्रदम्।
पिशाचांशाः प्रकारस्य समीपांताः समन्ततः।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक १८)

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

मध्ये नवपदं ब्रह्मस्थानं तदतिनिन्दितम्।
द्वात्रिंशदंशाः प्राकाराः समीपांशाः समेततः।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक २०)

गृहनिर्माण विधि

**द्वात्रिंशदंशा पैशाच्याः प्राकाराय समीपगाः।**
**एतेषु गृहनिर्माणं शोकरोगभयप्रदम्।।२३।।**

वास्तु चक्र के बत्तीस (३२) अंश (कोष्ठक) घर बनाने के लिए पिशाचांश होते हैं। इनमें गृह निर्माण करने से शोक-रोग तथा भय होता है।।२३।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

द्वात्रिंशदंश निर्माणाः दुःखशोकभयप्रदाः।
गृहारम्भेषु शेषांशाः पुत्रपौत्रधनप्रदाः।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक १९)

नारदः–

पिशाचांशा गृहारम्भे दुःखशोकभयप्रदाः।
शेषास्युर्गृहनिर्माणे पुत्र-पौत्रधनप्रदाः।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक २१)

ब्रह्मभाग एवं पिशाचांश के पुत्रों की संयुति

**दिग्विदिक्षु स्थिता रेखा शिराः स्युर्वास्तुनः सदा।**
**ब्रह्ममार्गे पिशाचांश-शिराणां पुत्रसंयुतिः।।२४।।**

मध्य भाग से चारों दिशाओं में जाने वाली रेखाओं से ब्रह्ममार्ग तथा पिशाचांशों के सिरे मिलते हैं, वहीं पर ब्रह्मभाग और पिशाचांश के पुत्रों की संयुति होती है।।२४।।

क्रमागतः–

नारदः–

शिरस्यर्वाक्तना रेखा दिग्विदिङ्मध्यसंभवः।
ब्रह्मभागपिशाचांशाः शिशूनां यत्र संहतिः।।
तत्र तत्र विजानीयाद्वसतो मर्मसंघयः।
मर्माणि सन्धयो नेष्टास्तेष्वेव विनिवेशने।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक २२-२३)

**मर्माणि सन्धयो ज्ञेया वास्तुनस्तत्र तत्र तु।**
**मर्मसन्धिषु कालेषु कुड्यपादं न कारयेत्।।२५।।**

वास्तु चक्र को समझते हुए वास्तु के मर्मस्थान एवं सन्धियों को भी समझना चाहिए। मर्मस्थान एवं सन्धियों पर दीवारें नहीं बनानी चाहिए।।२५।।

गृहनिर्माण विधि

**शेषस्थानेषु निर्माणं पुत्रपौत्रप्रबर्द्धनम्।**
**स्वे स्वे निवेशनेऽप्येवमेतत्सर्वं विचिन्तयेत्।।२६।।**

मर्मस्थान एवं सन्धिस्थानों को त्याग करके शेष स्थानों में गृह निर्माण करना

पुत्र-पौत्र वृद्धिकारक होता है। अपने-अपने गृह प्रवेश तथा निर्माण में इन सभी बातों का चिन्तन करना चाहिए॥२६॥

### नक्षत्रवशात् मङ्गल स्थिति का फल

**पितृमूलेज्यभाग्यार्कपौष्णभेषु च यत्कृतम्।**
**कुजेन सहितेष्वेवं गृहं तद्दह्यतेऽग्निना॥२७॥**

मघा, मूला, पुष्य, पूर्वा. फा. हस्त तथा रेवती इत्यादि नक्षत्रों मङ्गल स्थित हो तो ऐसे योग में नवनिर्मित गृह अग्नि द्वारा जल जाता है॥२७॥

### अग्नि नक्षत्र में सूर्य एवं चन्द्रफल

**अग्निनक्षत्रगे सूर्य्ये चन्द्रे वा संस्थिते यदि।**
**निर्मितं मन्दिरं नूनमग्निना दह्यतेऽचिरात्॥२८॥**

कृत्तिका नक्षत्र में सूर्य या चन्द्रमा स्थित हों तो इस योग में निर्मित गृह निश्चित रूप से शीघ्र ही अग्नि द्वारा जल जाता है॥२८॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

स्वेस्वे निवेशनेष्वेवमेतत्सर्वं विचिन्तयेत्।
पितृद्वयान्तमूलार्क वह्नीज्यर्क्षेषु यत् कृतम्॥
भौमेन सहितेष्वेषु गृहं तद्वदह्यतेऽग्निना।
चन्द्रेसर्के वाग्नि नक्षत्रे संस्थे निर्मितमन्दिरम्॥
अग्निना दह्यते क्षिप्रं प्रवेश भवनं तथा।
यत्कृतं शनि संयुक्ते मैत्रेन्द्राग्नियाम्यभे॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक २०-२२)

### नक्षत्र वशात शनिफल

**अजपादद्वितये याम्यमित्रेन्द्रानिलभेषु च।**
**यत्कृतं शनिसञ्युक्तं गृह्यते यक्षराक्षसैः॥२९॥**

पूर्वा भाद्रपदा, उत्तराभाद्रपदा, भरणी, अनुराधा, ज्येष्ठा तथा स्वाती नक्षत्रों में शनि सञ्युति हो तो बनाया गया घर यक्ष और राक्षस ग्रहण कर लेते हैं॥२९॥

### दूसरे के हाथ में घर जाने का योग

**परवर्गगतस्त्वेकः खस्थो वा द्यूनगो ग्रहः।**
**परहस्तगतं गेहं करोति स्वगृहेऽबली॥३०॥**

दूसरे के वर्ग में गया हुआ एक भी ग्रह दशमें अथवा सातवें हों तथा गृह स्वामी ग्रह बलरहित हो तो ऐसी स्थिति में घर दूसरे के हाथ में चला जाता है॥३०॥

क्रमागतः-

कश्यपः-

अजपादद्वये सद्मगृह्यते यक्षराक्षसैः।
ग्रहोऽन्यवर्गगोऽप्येकः सप्तस्थोऽन्यहस्तगम्।।
करोति तत्कृतं गेहं वर्गेशो यदि दुर्बलः।
शत्रु नीचगते जीवे शुक्र वा यदि वा बुधे।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक २३-२४)

### गृहस्वामी निर्धनतायोग

**नीचशत्रुगते जीवे शुक्रे वा ज्ञेऽथवा रवौ।**
**निर्मितं सदनं शश्वदतिनिस्वत्वतां गतम्।।३१।।**

नीच एवं शत्रु राशिगत बृहस्पति शुक्र, बुध अथवा सूर्य स्थित हों तो ऐसे योग में निर्मित घर में घर का स्वामी शीघ्र ही निर्धन हो जाता है।।३१।।

### नक्षत्रवशात् गुरु सञ्युतिफल

**इज्योत्तरात्रयाहीन्दु विष्णुधातृजलोडुषु।**
**गुरुणा सहितेष्वेषु कृतं गेहं श्रियायुतम्।।३२।।**

पुष्य, उ. फा., उ. षा., उ. भा., आश्लेषा मृगशिरा, श्रवण, रोहिणी तथा शतभिषा नक्षत्रों में देवगुरु बृहस्पति की सञ्युति में निर्मित गृह लक्ष्मीप्रद होता है।।३२।।

### नक्षत्रवशात् शुक्र सञ्युतिफल

**द्विदैवत्वाष्ट्रवारीशरुद्रादितिवसूडुषु।**
**शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं धान्यप्रदं गृहम्।।३३।।**

विशाखा, चित्रा, शतभिषा, आर्द्रा, पुनर्वसु, धनिष्ठा नक्षत्रों में शुक्र सञ्युति में निर्मित गृह, धान्यप्रद होता है।।३३।।

क्रमागतः-

कश्यपः-

शशांके वा कृतं गेहमतिनिः स्वास्पदं गृहम्।
उत्तरा त्रयासार्पेषु धातृ श्रुति जलोडुषु।।
गुरुणा सहितेष्वेषु कृतंगेहं श्रियायुतम्।
द्विदेवादिति वागीश रुद्रत्वाष्ट्र वसूडुषु।
शुक्रेण सहितेष्वेषु कृतं गेहं सुखप्रदम्।।
जीवे भृगो वा सौम्ये वा गृहनिर्माणलग्नगे।
तस्मिन्वर्गे कृतं गेहं कर्तुरिष्टर्थसिद्धिदम्।।

स्वोच्चे लग्नगे जीवे शुक्रे वा यदि वा बुधे।
तस्मिन् लग्ने कृतं गेहं धनधान्यसुखप्रदम्।।

*—(क. सं., अ. ३७ श्लोक २५-२८)*

**नक्षत्रवशात् बुधसञ्युतिफलम्**

**हस्तार्यमभत्वाष्ट्रदस्त्रचतुरास्येन्दुभेषु च।**
**बुधेन सहितेष्वेषु धनपुत्रसुखप्रदम्।।३४।।**

हस्त, उत्तराफ़ाल्गुनी, चित्रा, अश्विनी, रोहिणी अथवा अभिजित् नक्षत्रों में बुध सञ्युति में निर्मित गृह, धन, पुत्र, एवं सुखप्रद होता है।।३४।।

**शुभग्रहों अथवा शुभवर्ग में निर्मित गृहफल**

**गुरौ सिते वा सौम्ये वा गृहनिर्माणलग्नगे।**
**तद्वर्गे वा कृतं गेहं धनधान्य सुखप्रदम्।।३५।।**

बृहस्पति, शुक्र, अथवा बुध गृह निर्माण लग्न में हों अथवा इन्हीं ग्रहों के वर्ग में निर्मित गृह धनधान्य एवं सुखप्रद होता है।।३५।।

**उच्चस्थ शुभग्रहों एवं शुभवर्गों का फल**

**स्वतुङ्गे गुरौ शुक्रे बुधे वा यदि लग्नगे।**
**तद्वर्गे वा कृतं गेहं सर्वसम्पत्प्रदं सदा।।३६।।**

उच्चस्थ बृहस्पति, शुक्र अथवा बुध लग्न में अथवा अपने वर्गों में स्थित हों तो निर्मित गृह सदैव सर्वसम्पत्प्रद होता है।।३६।।

**एकादश स्थान में शुभग्रहों का फल**

**यत्रैकादशगे सौम्ये खेटे चन्द्रेऽथवा रवौ।**
**अशत्रुनीचराशौ चेत्तद्गृहं भूरिधान्यदम्।।३७।।**

एकादश स्थान में बुध, चन्द्रमा अथवा सूर्य शत्रु अथवा नीच राशियों में न हों तो निर्मित गृह प्रचुर अन्न से भर जाता है।।३७।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

यत्रैकादशगे चन्द्रे भानौ वा प्रबले शुभे।
अशत्रु नीचराशौ चेत्तद्गृहं भूरिधान्यदम्।।
अशत्रु नीचराशिस्थे धन केन्द्रगते शुभे।
सदालाभप्रदं गेहमुच्चस्थे भूरिलाभप्रदम्।।
शुभद्वये त्रये वापि यस्मिंल्लग्नगते कृतम्।
सुस्थिरं तद्गृहं भूरि पुत्र-पौत्र धनप्रदम्।।



—(क. सं., अ. ३७ श्लोक २९-३२)

### केन्द्र त्रिकोण स्थान में शुभग्रहों का फल

**शुभकेन्द्रत्रिकोणस्थे शत्रुनीचांश वर्जिते।**
**सदालाभप्रदं गेहमुच्चगे भूरिधान्यदम्।।३८।।**

शुभग्रह केन्द्र त्रिकोण स्थानों में अपने शत्रु एवं नीचांश वर्जित हों तो निर्मित गृह सदैव लाभप्रद होता है। यदि ग्रह उच्चस्थ हों तो प्रचुर धान्यप्रद होते हैं।।३८।।

### शुभलग्न में निर्मित गृहफल

**शुभद्वये त्रये वापि यस्मिन्निर्माणलग्नगे।**
**बहुकालस्थितं गेहं पुत्रपौत्र धनप्रदम्।।३९।।**

दो या तीन शुभग्रह गृह निर्माण समय लग्न में हों तो ऐसा घर चिरकाल तक स्थित रहकर पुत्र-पौत्र एवं धनप्रदायक होता है।।३९।।

### चरस्थिरद्विस्वंभाव राशियों में सूर्यफल

**स्थिर राशि गते सूर्ये चरराशिगतेऽपि वा।**
**गृहारम्भः सदा कार्यो न कार्यो द्विस्वभावगे।।४०।।**

स्थिर राशि या चर राशि में सूर्य होने पर सदैव गृहारम्भ करना चाहिए, परन्तु सूर्य द्विस्वभाव राशि में हो तो गृहारम्भ नहीं करना चाहिए।।४०।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

गृहारम्भः सदा कार्यः स्थिर राशिंगते रवौ।
चर राशिगते वापि न कार्यो द्विस्वभावगे।।
माघफाल्गुन वैशाखज्येष्ठश्रावणकार्त्तिकाः।
ससौम्या गृहनिर्माणे पुत्रधान्यसुखप्रदाः।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ३२-३३)

### मासानुसार गृह निर्माण फल

**मासे तपस्ये तपसि माधवे नभसि त्विषे।**
**ऊर्जे च गृहनिर्माणं पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्।।४१।।**

माघ, फाल्गुन, वैशाख, श्रावण तथा कार्तिक मासों में गृहनिर्माण करने पर पुत्र-पौत्रों की वृद्धि होती है।।४१।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

सौम्यफाल्गुनवैशाखमाघश्रावणकार्त्तिकाः।
मासाः स्युर्गृहनिर्माणे पुत्रारोग्यधनप्रदाः।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक २४)

### गुरु शुक्र दृष्ट होने पर गृहारम्भ

**गीर्वाणपूर्वगीर्वाणमन्त्रिणोर्दृश्यमानयोः ।**
**शुक्लपक्षे दिवा कार्यं न निर्माणं च रात्रिषु॥४२॥**

दोनों गुरुओं अर्थात् बृहस्पति एवं शुक्र के उदित रहने पर शुक्लपक्ष में दिवाकाल में गृहारम्भ करना चाहिए, परन्तु रात्रिकाल में नहीं॥४२॥

### पूर्वादि आठों दिशाओं के स्वामी

**अकारादिषु वर्गेषु दिक्ष्वष्टषु यथाक्रमम्।**
**गृध्रमार्जरसिंहश्वसर्पाखु गजशाशकाः॥४३॥**

अकारादि (अवर्ग, कवर्ग, चवर्ग, रवर्ग, तवर्ग, पवर्ग, यवर्ग, शवर्ग) ये सभी वर्ण पूर्वादि दिशाओं के क्रमशः गीदड़, विल्ला, शेर, कुत्ता, सर्प, चूहा, हाथी तथा खरगोश स्वामी हैं॥४३॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अकारादिषुवर्गेषु दिक्षु प्रागादिषु क्रमात।
गृध्रमार्जार सिंहाश्व सर्पाखुगजशाशकाः॥
दिग्वर्गाणामियं योनिः पञ्चमोरिः स्ववर्गतः।
..........यातस्याथ उच्यते॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ३४-३५)

### दिशा वर्गानुसार योनिफल

**दिग्वर्गाणामियं योनिः स्ववर्गान्पञ्चमो रिपुः।**
**रिपुवर्गं परित्यज्य शेषवर्गः शुभप्रदः॥४४॥**

दिशा वर्गों के अनुसार योनि कहीं गयी है, ये अपने वर्ग से पाँचवें वर्ग के शत्रु कहे हैं, शत्रु वर्ग को त्याग कर शेष वर्ग गृह निर्माण में शुभ समझें॥४४॥

### साधक धन ज्ञान

**साध्यवर्गं पुरः स्थाप्य पृष्ठतः साधकस्य च।**
**विभजेदष्टभिः शेषं साधकस्य धनं स्मृतम्॥४५॥**

साध्य वर्ग को सामने स्थापना कर पश्चात् साधक वर्ग को स्थापित करके आठ से भाग देने पर शेष साधक का धन समझें॥४५॥

### समस्त सम्पत्प्रदयोग

**व्यत्ययेनागतं शेषं साधकस्य ऋणं स्मृतम्।**
**धनाधिकं ऋणं स्वल्पं सर्वसम्पत्प्रदं स्मृतम्॥४६॥**

इसके विपरीत क्रमशः आया हुआ शेष साधक का ऋण होता है। धनाधिक्य अथवा थोड़ा ऋण होने पर समस्त सम्पत्प्रद माना जाता है॥४६॥

**घातक्षेत्र फलज्ञान**

**विस्तारायामगुणितं गृहस्य पदमुच्यते।**
**तस्माद्धनऋणान्यर्क्षवासराख्य नवांशकाः॥४७॥**

लम्बाई तथा चौड़ाई का घात घर का क्षेत्रफल होता है। उसी से धन, ऋण, आय, नक्षत्र एवं वार इत्यादि नवांशकों को समझना चाहिए॥४७॥

**गृहस्यागतभं यत्र तद्धि राश्यात्मकं यदि।**
**तन्नवांशवशात्तत्र ज्ञातव्यं सर्वदा गृहे॥४८॥**

गृह का आया हुआ नक्षत्र यदि राश्यात्मक हो तो उस राशि नवांशवश ही सर्वदा घर को जानना चाहिए॥४८॥

**गजरामाङ्कवस्वङ्क ऋतुभिर्गुणितात्पदात्।**
**सूर्याष्टाष्टर्क्षशैलाङ्क विभक्तादवशिष्टकाः॥४९॥**

आठ, तीन, नौ, आठ (वसु) अङ्क नौ ऋतु (षट्) पद से गुणा करके सूर्य (१२) आठ, आठ, सत्ताईस, सात तथा नौ से भाग देकर शेष से फल ज्ञान करें॥४९॥

**गृहारम्भ में शुभाशुभफल**

**सम्पूर्णा शुभदास्त्वेते त्वसम्पूर्णास्त्वनिष्टदाः।**
**धनादिकं गृहं वृद्ध्यै निधनाय ऋणाधिकम्॥५०॥**

सम्पूर्ण फल गृहारम्भ में शुभप्रद हैं तथा असम्पूर्ण फल गृह निर्माण में अनिष्टप्रद हैं। धनाधिक्य होने पर घर की वृद्धि तथा ऋण अधिक हो तो मृत्यु होती है॥५०॥

**आय विचार**

**विषमाय शुभायैव समायः शोकदुःखदः।**
**गृहस्य तत्पतेस्त्वेक धिष्ण्यं च निधनप्रदम्॥५१॥**

विषम आय घर के लिए शुभप्रद, सम आय शोकप्रद तथा दुःखप्रद होती है। गृह स्वामी और घर का नक्षत्र एक ही हों तो मृत्युप्रद होता है॥५१॥

**गृहारम्भ में ताराओं का फल**

**विपत्प्रदा विपत्तारा प्रत्यरा प्रतिकूलदा।**
**निधनाख्या तारका या सर्वदा निधनप्रदा॥५२॥**

विपत्तारा, विपित्तप्रदा, प्रत्यरि से प्रतिकूलता तथा निधन संज्ञक तारा सदैव निधनप्रदा होती है॥५२॥

विवर्ज्यास्तारकास्त्वेता निर्माणं शोभनप्रदम्।
कुर्वन्नज्ञानतो मूढो दुःखभाग्व्याधिभाग्यदि॥५३॥

इन प्रतिकूल ताराओं को छोड़कर अन्य सभी ताराओं में गृहारम्भ शुभफलप्रद होता है। यदि कोई मूर्ख अज्ञानतावश गृह निर्माण करता है तो वह दुःख और व्याधियों का भोग करता है॥५३॥

गृहनिर्माण में राशिकूटादि विचार

राशिकूटादिकं सर्वं दम्पत्योरिव चिन्तयेत्।
वैनाशिकादिऋक्षं यद्वर्जयेत्सर्वदा गृहे॥५४॥

जैसे पति-पत्नी की राशि कूटादि का विचार होता है, वैसे ही गृह निर्माण में भी विचार करना चाहिए। वैनाशिक संज्ञक नक्षत्रों में सर्वदा गृह निर्माण वर्जित करना चाहिए॥५४॥

द्विर्द्वादश, नवपंचम षष्ठष्टक योगों का फल

निःस्वं द्विर्द्वादशे नूनं त्रिकोणेत्वनपत्यता।
षष्ठाष्टके नैधनं स्याद्व्यत्यये मध्यमं फलम्॥५५॥

द्विर्द्वादश दोष में गरीबी, नवम पञ्चम में सन्तान हीनता, षडष्टक योग में मृत्यु यदि इससे विपरीत हो तो मध्यम फल होता है॥५५॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

षष्ठाष्टकं नैधनदं त्रिकोणत्वनपत्यदम्।
निःस्वं द्विर्द्वादशे शेषा राशयो भोगभाग्यदा॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ४२)

परेषु शुभदं गेहं सर्वं तत्कर्तृराशितः।
सूर्यारवारराश्यंशाः सदा वह्निभयप्रदाः॥५६॥

गृह निर्माण कर्त्ता की राशि से भिन्न अन्य परिस्थितियों में ग्रह शुभफलप्रद होते हैं। सूर्यमङ्गलवारों में तथा इनके राशि नवांशों में गृह निर्माण करें तो अग्निभय होता है॥५६॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

सूर्यारवारा वंशाश्च हुताशन भयप्रदाः।
शेष ग्रहाणां वारांशाः कर्तुरिष्टार्थ सिद्धिदाः॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ४३)

**शेषा ग्रहाणां राश्यंशाः कर्तुरिष्टाथसिद्धिदाः।**
**तस्मात्सर्वं परीक्ष्यैतद्वदेज्ज्यौतिषिकः सदा॥५७॥**

शेष ग्रहों की राश्यांश कर्त्ता को इच्छित धन तथा सिद्धिदायक होता है। इस लिए सभी प्रकार से परीक्षा करके ज्योतिषी को कहना चाहिए॥५७॥

### वास्तुपुरुषोत्पत्ति

**गृहात्मको वास्तु पुरुषस्त्रिनेत्रः स्वेदसम्भवः।**
**पूर्वादिदिक्छिरोवामपार्श्वशायी प्रदक्षिणम्॥५८॥**

घर की आत्मा स्वरूप वास्तु पुरुष त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्कर के पसीने से उत्पन्न हुआ है। यह वास्तु पुरुष पूर्वादि दिशा में शिर और दक्षिण दिशा में वाम वगल करके सोने वाला है॥५८॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

गृहात्मावास्तु पुरुषः शुक्रस्त्रिनेत्रसम्भवः।
चरवास्तुश्चरत्येवसोऽर्चनीयो गृहाधिपैः॥
यद्दिङ्मुखो वास्तुनरस्तन्मुखं सदनं शुभम्।
प्रतिकूलमुखं सद्म दुःखशोक भयप्रदम्॥
चतुर्द्वित्र्यादि शालानामेष दोषो न विद्यते।
मृत्पेटिकांस्वर्णरत्नधान्यशैवालपारदैः।
गृहमध्ये हस्तमात्रं गर्तन्यासं च विन्यसेत्॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ४५-४८)

### गृहस्वामी वत वास्तु पूजन

**चरवास्तु चरत्येवं पूजनीयो गृहाधिपैः।**
**त्रिषु त्रिषु च मासेषु नभस्यादिषु च क्रमात्॥५९॥**

चलायमान् चरसंज्ञक वास्तु होने के कारण गृहस्वामी वत पूजनीय होता है। भाद्रपदमास से प्रारम्भ करके तीन तीन मासों तक पूर्वादि दिशा क्रम में—॥५९॥

### गृहद्वारनिर्णय

**यद्दिङ्मुखो वास्तुपुरुषः सदनं तन्मुखं शुभम्।**
**अन्यदिग्वक्त्रगेहं तु दुःखशोक भयावहम्॥६०॥**

जिस दिशा में वास्तु पुरुष का मुख रहे उसी दिशा में घर का द्वार निर्माण करना शुभफलप्रद होता है। यदि वास्तुपुरुष के मुख के विपरीत द्वार निर्माण हो तो दुःख-शोक एवं भयप्रद होता है॥६०॥

शंकुस्थापन निर्णय

**चतुर्द्वित्र्यादिशालानामेषदोषो न विद्यते।**
**प्रधानसदनं वीक्ष्य शङ्कुं तत्रैव विन्यसेत्॥६१॥**

यदि चारों दिशाओं में द्वार बनाया जाए तो वहाँ उक्त दोष नहीं होता। प्रधान द्वार को देखकर शङ्कु को वहीं पर स्थापित करना चाहिए॥६१॥

**अनुकूले ग्रहे वाऽपि वास्तुं तत्र च विन्यसेत्।**
**चतुःशालादिषु त्वेवं स्थापयेच्छंकुमुत्तमम्॥६२॥**

ग्रहस्थिति अनुकूल होने पर वहाँ वास्तु का निर्माण करें। चतुःशाल (कमरा) इत्यादि में इसी प्रकार उत्तम शङ्कु की स्थापना करें॥६२॥

**धान्यरत्नस्वर्णयुतां मृन्मयां स्फाटिकां शुभाम्।**
**गृहमध्ये हस्तमात्रे गर्त्ते न्यासाय विन्यसेत्॥६३॥**

धान्य, रत्न और स्वर्णयुक्त मिट्टी के पात्र में शुभ स्फटिक रख कर घर के मध्य में एक हाथ मात्र गर्त्त खनकर पात्र को उसमें स्थापित करें॥६३॥

वास्तु विस्तार वर्णन तथा शंकुरोपण फल

**वास्त्वायामदलं नाभिस्तस्मादध्यङ्गुलत्रयम्।**
**कुक्षिस्तस्मिन्न्यसेच्छंकुं पुत्रपौत्रधनप्रदम्॥६४॥**

वास्तु विस्तार के मध्य में नाभि, नाभि से सात अङ्गुल तक कुक्षि होती है। कुक्षि भाग में शङ्कु रोपण करने से पुत्र-पौत्र एवं धन की प्राप्ति होती है॥६४॥

**वितस्तिमात्रं शंकुः स्यात्सर्वेषां सर्वदा शुभम्।**
**गन्धपुष्पाम्बरस्वर्ण धूपदीपैरलङ्कृतम्॥६५॥**

वितस्तिमात्र अर्थात् २४ चौबीस अङ्गुलात्मक शङ्कु सभी जातिवर्ग के लिए सर्वदा शुभफलप्रद होता है। इसको गन्ध, पुष्प, वस्त्र, स्वर्ण, धूप, दीपादि से सुशोभित करना चाहिए॥६५॥

शंकु निर्माणविधि

**रक्तचन्दनविल्वाम्रखदिरार्जुनवैणवम्।**
**नीपकारंजकुटजसाल-निम्बतरुद्भवम्॥६६॥**

लालचन्दन, विल्लव (वेल) आम, खदिर (खैर) अर्जुन, बाँस, कदम्ब, करन्ज, कुटज, शाल एवं नीमादि वृक्षों से उत्पन्न—॥६६॥

**युग्मपत्रं महापत्रं गोरत्वक्कपजापकम्।**
**रक्तसारविशालत्वक्चन्दनागुरुसम्भवम्॥६७॥**

दो पत्ते या बड़े पत्ते में गोरत्वक् (चमड़ा) कपजापक, रक्तसार, विशाल चमड़ा, चन्दन और अगुरु से उत्पन्न शङ्कु बनाना चाहिए।।६७।।

**शङ्कुं त्रिधा विभज्याद्यं चतुरस्त्रं द्वितीयकम्।**
**अष्टास्त्रकं तृतीयांशं लिङ्गाकारमृजुं शुभम्।।६८।।**

शङ्कु त्रिभाग करके प्रथम कूटभाग का चतुष्कोण, दूसरे मध्यभाग का अष्टकोर्ण, तीसरे भाग को सुन्दर लिङ्गाकार सुन्दर विधि से बनाना चाहिए।।६८।।

**उत्तमशङ्कुस्थापना योग**

**मृदुध्रुवक्षिप्रभेषु रिक्तामावर्जितेषु च।**
**व्यर्कारवारलग्नेषु क्रूरे चाष्टमवर्जिते।।६९।।**

मृदु (मृगशिरा, रेवती, चित्रा, अनुराधा), ध्रुव (तीनों उत्तरा, रोहिणी) क्षिप्र (हस्त, अश्विनी, पुष्य) रिक्ता (४,९,१४ तिथियां) एवं अमावस तिथि को छोड़कर, सूर्य-मङ्गल वारों को छोड़कर तथा लग्न एवं अष्टम स्थानों में क्रूर ग्रह न होने पर— ।।६९।।

**न नैधनोदये कर्तुरष्टमे शुद्धिसञ्युते।**
**स्थिरोदये स्थिरांशे च ग्रहज्ञार्चनपूर्वकम्।।७०।।**

जन्मराशि से अष्टम लग्न तथा अष्टम स्थान शुद्ध होने पर स्थिर लग्न में, स्थिर नवांश में ज्योतिषी की पूजा करके—।।७०।।

**शुभवारे शुभांशे च महादोषविवर्जिते।**
**पुण्याहघोषैर्वादित्रैर्विप्राशीर्वचनैः सदा।।७१।।**

शुभवार, शुभग्रहांश में महादोषों से रहित पुण्याहवाचन, वाद्य ध्वनि करते हुए सदैव ब्राह्मणों के आशीर्वाद सहित—।।७१।।

**त्रिकोणकेन्द्रस्वत्र्यायशुभैः षट्त्र्यायगैः परैः।**
**आलग्नान्त्यारि चन्द्रेण स्थापयेच्छंकुमुत्तमम्।।७२।।**

त्रिकोण (५,९) केन्द्र (१,४,७,१०) तीसरे, छठे, एकादश स्थानों में शुभग्रह हों, पापग्रह तीसरे, छठे तथा एकादश में हों, चन्द्रमा लग्न से द्वादश एवं षष्ठ स्थान में न हो ऐसे योग में उत्तम शङ्कु की स्थापना करनी चाहिए।।७२।।

**क्रमागतः—**

**कश्यपः—**

मृदुस्थिरक्षिप्रभेषु रिक्तामावर्जिते दिने।
व्यर्कारवार लग्नेषु क्रूरे चाष्टम वर्जिते।।

न नैधनोदये कर्त्तुरष्टमे शुद्धिसंयुते।
स्थिरलग्ने स्थिरांशे च स्थापेच्छंकुमुत्तमम्।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ५६-५७)

### भूमि नापने की विधि

**शुभैर्यात्रोक्तशकुनैर्निमित्तैर्मङ्गलस्वनैः ।**
**षड्वर्ग शुद्धिसूत्रेण सूत्रिते धरणीतले।।७३।।**

शुभयात्रा में कहे हुए शकुन, निमित्त, मङ्गल ध्वनि के द्वारा, षड्वर्ग शुद्धिपूर्वक सूत्र से भूमि नापनी चाहिए।।७३।।

### भूमि में अस्थि विचार

**सूत्रिते समये तस्मिन्सूत्रं केनापि लंघितम्।**
**तदाऽस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः।।७४।।**

नापते समय यदि कोई व्यक्ति सूत्र का उल्लंघन करे तो वहाँ एक पुरुषा नीचे (मनुष्य की ऊँचाई या माप) अस्थि होती है।।७४।।

**(स्वयोनित्वं तथा तारा व्ययोऽथ भवनांशकम्।**
**आयोऽथ गृहनामानि करणानि षडेवहि।।**
**गृहस्यैतानि चिन्त्यानि प्रयत्नेन च धीमता।)**
**अभ्यागतो दृश्यते यस्यां दृशि शल्यं समादिशेत्।**
**तस्यामेव तदास्थीनि सप्तत्यङ्गुलमानतः।।७५।।**

(स्वयोनि, तारा, व्यय, गृहांशक, आय तथा घर ये छः प्रकार के कारण कहे हैं। विद्वान व्यक्ति को घर के लिए प्रयत्न पूर्वक इन कारणों का चिन्तन करना चाहिए।)

भूमि नापते समय जिस दिशा में अतिथि दिखाई पड़े उसी दिशा में हड्डी को समझें। उसी दिशा में सत्तर अङ्गुल प्रमाण से हड्डी समझें।।७५।।

*नोट : ७५वें श्लोक के ऊपर की तीन पंक्तियों वाला पाठ समुपलब्ध तीनों पाण्डुलिपियों में नहीं मिलता।*

**सूत्रिते समये यत्र श्वासूत्रोपरि संस्थितः।**
**तदाऽस्थि तत्र जानीयात्षष्ठ्यंगुलमिते क्षितौ।।७६।।**

भूमि नापते समय सूत्र के ऊपर यदि कुत्ता आ जाए तो साठ अङ्गुल प्रमाण पर हड्डी जानना।।७६।।

**उन्मादेवागते तस्मिन्समये यत्र संस्थिते।**
**तदाऽस्थि तत्र जानीयाद्हस्तद्वयमिते क्षितौ।।७७।।**

यदि कोई भूमि नापते समय उन्मादपूर्वक वहाँ स्थित हो जाए तो वहाँ दो हाथ नीचे हड्डी जानना।।७७।।

**चाण्डाले जटिले वापि तदा यस्यां दिशि स्थिते।**
**तदास्थि तत्र जानीयादशीत्यङ्गुलमानतः॥७८॥**

चाण्डाल जटाधारी जिस दिशा में स्थित हो जाए तो वहाँ अस्सी अङ्गुल नीचे हड्डी जानना॥७८॥

**नृगजाश्वपशूनां हि त्वेकस्मिन्यत्र संस्थितिः।**
**सदास्थि तत्र जानीयाद् हस्तत्रयमिते क्षितौ॥७९॥**

यदि मनुष्य, हाथी, घोड़े इत्यादि पशु एक ही स्थान में स्थित हो जाएं वहाँ भूमि में तीन हाथ नीचे हड्डी जानना॥७९॥

**तस्मिन्नवसरे यत्र गृहदाहो भवेद्यदि।**
**मेषाऽस्थि तत्र जानीयात्पुरुषस्य प्रमाणतः॥८०॥**

भूमि नापते समय घर में आग लग जाये तो एक पुरुषा प्रमाण से पृथ्वी में बकरे की हड्डी समझनी चाहिए॥८०॥

**सूत्रे विसूत्रिते तस्मिन् भिन्ने कुम्भेऽथवा यदि।**
**आदिशे निधनं तत्र दम्पत्योः क्रमशस्तदा॥८१॥**

भूमि नापते समय सूत्र टूट जाए अथवा घड़ा फूट जाए तो वहाँ क्रम से पति-पत्नी की मृत्यु होगी ऐसा आदेश करना चाहिए॥८१॥

**षट्पदालयमादित्यस्यायस्कारगृहं शशी।**
**कुजस्थानानि शल्यानि तयोर्मध्ये करत्रये॥८२॥**

सूर्य के लिए छः पद वाला घर, चन्द्रमा के लिए आयताकार घर, दोनों के मध्य मङ्गल के स्थान में तीन हाथ नीचे हड्डी कहनी चाहिए॥८२॥

**अवर्गोच्चारिते प्रश्ने प्राच्यां दिशि समादिशेत्।**
**कुञ्जरास्थीनि पक्षैर्वा पुरुषस्य प्रमाणतः॥८३॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रथम अक्षर अवर्ग का उच्चारण करें तो पूर्व दिशा में हाथी की हड्डी दो पुरुषा प्रमाण से पृथ्वी के नीचे कहनी चाहिए॥८३॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

अकारादिषु वर्गेषु दिक्षुप्रागादिषु क्रमात्।
खगेशौतु हरिश्चाख्य सर्पाखु गजमूषकाः॥
वर्गेशाः क्रमशो ज्ञेयः स्ववर्गात्पञ्चमोरिपुः।
स्ववर्गे परमा प्रीतिः कथ्यते गणकोत्तमैः॥

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक २५-२६)

**कवर्गोच्चारिते प्रश्ने त्वाग्नेय्यामादिशेद्दिशि।**
**मार्जारस्याजशल्यं वा हस्तमात्र प्रमाणतः॥८४॥**

प्रश्नकर्त्ता कवर्ग उच्चारण करे तो अग्निकोण में एक हाथ नीचे बिल्ली अथवा बकरे की हड्डी समझना ॥८४॥

**चवर्गोच्चारिते प्रश्ने याम्यायां च समादिशेत्।**
**हरेर्लुलायशल्यं वा हस्तमात्र प्रमाणतः॥८५॥**

प्रश्नकर्त्ता यदि चवर्ग उच्चारण करे तो दक्षिण दिशा में एक हाथ प्रमाण भूमि के नीचे बन्दर या लङ्गूर की हड्डी समझना॥८५॥

**टवर्गोच्चारिते प्रश्ने नैर्ऋत्यां च समादिशेत्।**
**शुनः शल्यं नृशल्यं वा सार्द्धहस्त प्रमाणतः॥८६॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न के समय टवर्ग का उच्चारण करे तो नैर्ऋत्य कोण में डेढ़ हाथ प्रमाण गहरे कुत्ते या मनुष्य की अस्थि समझनी चाहिए॥८६॥

**तवर्गोच्चारिते प्रश्ने प्रतीच्यां च समादिशेत्।**
**सर्पस्यांडजशल्यं वा हस्तद्वयमिते क्षितौ॥८७॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न समय तवर्ग उच्चारण करे तो पश्चिम दिशा में दो हाथ नीचे सर्प या पक्षी (अण्डज) की हड्डी कहनी चाहिए॥८७॥

**पवर्गोच्चारिते प्रश्ने वायव्यां शल्यमादिशेत्।**
**आरवोर्मेषस्य वा नूनं हस्तखातप्रमाणतः॥८८॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न समय में पवर्ग का उच्चारण करे तो वायव्य कोण में एक हाथ नीचे चूहे या भेड़ की हड्डी कहनी चाहिए॥८८॥

**यवर्गोच्चारिते प्रश्ने ह्युदीच्यामादिशेत्तदा।**
**गजस्याश्वस्य वा शल्यं पूर्वखातप्रमाणतः॥८९॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न समय यवर्ग का उच्चारण करे तो उत्तर दिशा में एक हाथ प्रमाण भूमि के नीचे हाथी अथवा घोड़े की हड्डी कहनी चाहिए॥८९॥

**शवर्गोच्चारिते प्रश्ने त्वैशान्यां च समादिशेत्।**
**शशकस्योक्षशल्यं वा हस्तद्वयमिते क्षितौ॥९०॥**

प्रश्नकर्त्ता प्रश्न समय में शवर्ग का उच्चारण करें तो ईशान कोण में दो हाथ प्रमाण पृथ्वी के नीचे खरगोश या बैल की हड्डी कहनी चाहिए॥९०॥

**प्रश्नेत्युच्चारिते वेधे ब्रह्मस्थाने समादिशेत्।**
**नृशल्यं गजशल्यं वा नरखातप्रमाणतः॥९१॥**

प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न समय में विघ्न हो जाए तो ब्रह्मस्थान में पुरुषा प्रमाण तक मनुष्य की या हाथी की हड्डी कहनी चाहिए॥९१॥

**प्रश्नेऽप्युच्चारिते यत्र नूनं वर्गस्य पञ्चमे।**
**न विद्यते तत्र शल्यं ब्रह्मोक्तत्वान्न संशयः॥९२॥**

प्रश्नकर्त्ता के प्रश्न के उच्चारण में यदि वर्ग का पञ्चम अक्षर आ जाए तो भूमि के भीतर किसी भी प्रकार की हड्डी नहीं है। यह ब्रह्मोक्त कथन है। इसमें सन्देह नहीं॥९२॥

### शाला भेद

**एकद्वित्रिचतुः पञ्चषट् सप्ताष्टादशाह्वयाः।**
**शालाः स्युर्दशभेदास्ताः सहिता नवशालयः॥९३॥**

एक, दो, तीन, चार, पाँच, छः सात, आठ तथा दस प्रमाण से नवशाला (नौ गृह) सहित शालाएं हैं॥९३॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

एकद्वित्रिचतुःशाला सप्तशालाह्वयाः स्मृताः।
ताः पुनः षड्विधाः शालाः प्रत्येकं दशषड्विधाः॥
ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं शत्रुस्वर्णप्रदं क्षयम्॥
आक्रन्दं विपुलाख्यं च विजयं षोडशंगृहम्।
गृहाणि षण्णवत्येव तेषां प्रस्तार भेदतः॥

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ४५-४७)

**आलिन्द भेदैरेताः स्यु प्रत्येकं दशषड्विधाः।**
**षष्टिभिः सहिताः सप्तमिताः शालाः प्रकीर्तिताः॥९४॥**

आँगन के भेद से सोलह प्रकार के पिण्ड होते हैं। इनमें क्रमशः छः-छः या सात भेद होते हैं॥९४॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

एकशाला द्वित्रिशाला चतुःसप्तदशाह्वयाः।
अलिन्दभेदैः षट्शालाः प्रत्येकं दशषड्विधाः॥
ध्रुवं धान्यं जयं नन्दंखरं कान्तं मनोरमम्।
सुमुखं दुर्मुखं क्रूरं शत्रुदं स्वर्णदं क्षयम्।
आक्रन्दं विपुलाख्यं च विजयं चेति षोडश॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ५८-६०)

**ताश्चापि रूपादिग्रामप्रस्तारैर्विविधाः स्मृताः।**
**तेषां समस्तभेदानां प्रस्तारमधुनोच्यते।।९५।।**

उनमें भी रूपादि ग्राम अनेक प्रकार के प्रस्तार कहे गए हैं! उन सभी प्रस्तार भेदों को कहते हैं।।९५।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

एवं गृहाः षण्णवतिस्तेषां प्रस्तार उच्यते।
गुरोरधोलघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्वगं न्यसेत्।।
गुरुभिः पूरयेत्पश्चात्सर्वलघ्वधिर्विधिः।
कार्यलघुपदेऽलिन्दं गृहद्वार प्रदक्षिणम्।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ६१-६२)

**गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्ववन्न्यसेत्।**
**गुरुभिः पश्चिमं पूर्वं सर्वलघ्ववधिर्विधः।।९६।।**

गुरु स्थान के नीच लघु स्थापित करके क्रम से ऊपर-नीचे भाज्य भाजक या अंश हर के रूप में स्थापित करें तथा परस्पर अगली लब्धि से घात करने पर सर्वलब्धि प्राप्त करें।।९६।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

गुरोरधो लघुः स्थाप्यः पुरस्तादूर्ध्ववन्न्यसेत्।
गुरुभिः पूजयेत्पश्चात्सर्वलब्धविधिर्विधिः।।
कुर्याल्लघुपदेलिन्दं गृहद्वारात्प्रदक्षिणम्।
पूर्वादिगेस्वलिन्देषु गृहभेदास्तु षोडश।।
—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ४८-४९)

**स्यादलिन्दं लघुस्थाने नालिन्दं गुरुमाश्रितम्।**
**गृहद्वारादलिन्देषु भवेयुर्दशषड्विधाः।।९७।।**

गृहद्वार से क्रमानुसार लघुस्थान में आँगन बनाए गुरु स्थान में नहीं। पूर्वादि दिशाओं के अनुसार गृह के सोलह भेद हो जाते हैं।।९७।।

**ध्रुवं धान्यं जयं नन्दं खरं कान्तं मनोरमम्।**
**सुवक्त्रं दुर्मुखं क्रूरं विपक्षं धनदंक्षयम्।।९८।।**

ध्रुव, धान्य, जय, नन्द खर, कान्त मनोरम, सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय—।।९८।।

**आक्रन्दं विपुलं चैव षोडशं विजयं गृहम्।**
**इत्येवं शालभेदानि शेषाणामेवमेव हि।।९९।।**

आक्रन्द, विपुल तथा विजय ये सोलह प्रकार के गृह कहे हैं। इस प्रकार ये कमरों के भेद शेष भी इसी प्रकार के होते हैं॥९९॥

**ध्रुवसंज्ञक घर का फल**

**ध्रुवसंज्ञं गृहं त्वायं धनधान्यसुखप्रदम्।**
**धनधान्यप्रदं नृणां जयं तद्विजयप्रदम्॥१००॥**

ध्रुव संज्ञक घर आय, धन, धान्य तथा सुखप्रद होता है। मनुष्यों के लिए धन-धान्यप्रद, जय-विजय प्रदान करने वाला होता है॥१००॥

**कान्त, मनोरम, खर तथा नन्दसंज्ञक घर का फल**

**नन्दं स्त्रीहानिदं नूनं खरं सम्पद् विनाशनम्।**
**पुत्रपौत्रप्रदं कान्तं श्रीप्रदं यन्मनोरमम्॥१०१॥**

नन्दसंज्ञक गृह स्त्री हानि करता है तथा खरसंज्ञक गृह निश्चित ही सम्पत्ति विनाशकारक, कान्तसंज्ञक पुत्र-पौत्रप्रद, मनोरम संज्ञक गृहलक्ष्मीप्रद होता है॥१०१॥

**सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर एवं विपक्षसंज्ञक घरों का फल**

**सुवक्त्रं भोगदं नूनं दुर्मुखं विसुखप्रदम्।**
**सर्वदुःखप्रदं क्रूरं विपक्षं शत्रुभीतिदम्॥१०२॥**

सुवक्त्रसंज्ञक गृह निश्चित रूप में भोगप्रद परन्तु दुर्मुखसंज्ञक गृह दुःखदायी होता है। क्रूरसंज्ञक गृह सब प्रकार से दुःखप्रद तथा विपक्ष संज्ञक गृह शत्रु से भय प्रदान करवाता है॥१०२॥

**धनद, क्षय एवं विजयसंज्ञक घरों का फल**

**धनदं धनदं गेहं क्षयं सर्वक्षयप्रदम्।**
**विजयं नाम सदनं धनदं विजयप्रदम्॥१०३॥**

धनदसंज्ञक गृह धनदायी, क्षयसंज्ञक गृह सब प्रकार से क्षयकारी, विजय संज्ञक गृह धनप्रदायक एवं विजयप्रदायक होता है॥१०३॥

**सौधसंज्ञक घर का फल**

**ध्रुवाख्यं द्वित्रिभूमायं सौधसंज्ञं धरातलम्।**
**सुवर्णशिखरः सोऽपि प्रासादः सर्वभूभुजाम्॥१०४॥**

ध्रुव संज्ञक गृह दो-तीन भूमि वाला पृथ्वी पर सौधसंज्ञक कहा है। सभी क्षत्रियों को श्रेष्ठ शिखिर पर पहुँचाने वाला होता है॥१०४॥

**सौधाख्यं सदनं शश्वद्धनधान्यप्रदं सदा।**
**प्रासादसदनं शश्वद्धनारोग्य सुखप्रदम्॥१०५॥**

सौध संज्ञक गृह सर्वदा निरन्तर धन-धान्यप्रद, प्रासाद संज्ञक गृह निरन्तर धन, आरोग्य एवं सुखप्रद होता है॥१०५॥

विश्वरूपसंज्ञक घर का फल

**पुरतो मण्डपं चास्य तदेव भुवनेश्वरम्।**
**तद्गृहं विश्वरूपाख्यं सर्वसम्पत्प्रदं सदा॥१०६॥**

इसके सामने मण्डप यदि घर के स्वामी का ही हो तो वह घर विश्वरूप संज्ञक सदैव सर्व सम्पत्प्रद होता है॥१०६॥

धनसंज्ञक गृहफल

**धनाख्यं सदनं द्वित्रिचतुःपञ्चादि भूमिकम्।**
**भूरिचन्द्रं महीपानां वित्तवृत्तसुखप्रदम्॥१०७॥**

धन संज्ञक गृह दो, तीन, चार तथा पाँच तल का कहा है। यह घर राजाओं के लिए धन, जीविका तथा सुख देने वाला होता है॥१०७॥

जयसंज्ञक एवं विमुख नामक गृहफल

**जयाख्यनामसदनं द्वितीयाद्यं तु भूमिकम्।**
**विमुखं नाम तद्गेहं भार्यानाशप्रदं सदा॥१०८॥**

जयसंज्ञक गृह दो तल का होता है और विमुख नामक घर सदैव पत्नी विनाशकारक होता है॥१०८॥

नन्दसंज्ञक गृहफल

**नन्दाख्यं सदनं यत्र द्वितीयाद्यं तु भूमिकम्।**
**पूर्णचन्द्रं महद्गेहं सुखदं सर्वभूभुज्ञाम्॥१०९॥**

नन्दसंज्ञक गृह दो तल का होता है। इस घर में पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति सभी राजाओं को सुख देता है॥१०९॥

खरसंज्ञक गृहफल

**खरं गेहं यदा यत्र द्वितीयाद्यं तु भूमिकम्।**
**आसुरं नाम सदनं दुःखशोकभयप्रदम्॥११०॥**

खरसंज्ञक गृह दो तल का होता है। यह आसुर नामक घर दुःख, शोक एवं भयप्रद होता है॥११०॥

मनोरम संज्ञक गृहफल

**प्रासादौ वाऽथ सौधो वा मनोरम गृहं यदा।**
**आनन्दसदनं नाम चित्तानन्दप्रदं सदा॥१११॥**

प्रासाद, सौध तथा मनोरम संज्ञक घर को आनन्द गृह की संज्ञा दी है। ऐसा घर चित्त को आनन्द देने वाला होता है॥१११॥

*(प्रासाद-राजमहल, सौध-बड़ी हवेली)*

### सुवक्त्रा गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा सुवक्त्रसदनं यदा।**
**हाटकं नामक सदनं हाटकदं शुभम्॥११२॥**

प्रासाद, सौध तथा सुवक्त्र घर की हाटक (सुवर्ण) संज्ञा दी गई है, ऐसा घर सदा सोना देने वाला और शुभ होता है॥११२॥

### दुर्मुख गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा दुर्मुखं सदनं यदा।**
**दुर्मुखं नामसदनं सर्वकार्यविनाशनम्॥११३॥**

प्रासाद एवं सौध संज्ञक घर जब दुर्मुख घर होता है तो दुर्मुख नामक घर सभी कार्यों का विनाश करता है॥११३॥

### क्रूर गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा क्रूराख्यं सदनं यदा।**
**क्रूराख्यं सदनं नाम दुःखशोक भयप्रदम्॥११४॥**

प्रासाद अथवा सौध जब क्रूर नामक घर होता है तो वह क्रूर नामक घर दुःख शोक एवं भय को देने वाला होता है॥११४॥

### विपक्षसंज्ञकं गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा विपक्षसदनं यदा।**
**शत्रुसंज्ञं च तद्गेहं सर्वदा शत्रुभीतिदम्॥११५॥**

प्रासाद अथवा सौध जब विपक्षसंज्ञक सदन होता है तो ऐसा शत्रु संज्ञक घर में सदैव शत्रु से भय होता है॥११५॥

### धनदसंज्ञक गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा धनदाख्यं गृहं भवेत्।**
**धनधान्यप्रदंगेहं धनधान्यसुखावहम्॥११६॥**

प्रासाद अथवा सौध जब धनद संज्ञक होता है तो ऐसा घर धन-धान्यप्रद, धन-धान्य के साथ-साथ सुख देने वाला भी होता है॥११६॥

### क्षयसंज्ञक गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा क्षयाख्यं सदनं यदा।**
**आयुक्षयं नाम गृहं सर्वदा तत्प्रदं ततः॥११७॥**

प्रासाद अथवा सौध जब क्षयसंज्ञक गृह होता है तो ऐसा आयुक्षय नामक घर सर्वदा आयु क्षीण करता है॥११७॥

### आक्रन्दसंज्ञक गृहफल

**प्रासादो वाऽथ सौधो वा त्वाक्रन्दं सदनं यदा।**
**आक्रन्दं नाम सदनं वह्निभीतिप्रदं सदा॥११८॥**

प्रासाद अथवा सौध जब आक्रन्द सदन होता है तो ऐसा आक्रन्द संज्ञक घर सदैव अग्निभयप्रद होता है॥११८॥

### विपुलसंज्ञकगृहफल

**विपुलाख्यं यदा यत्र सौधः प्रासाद एव वा।**
**विपुलं नाम सदनं विपुलं धनधान्यदम्॥११९॥**

विपुल संज्ञक जब सौध या प्रासाद संज्ञक हों तो विपुल नामक घर प्रचुर धन-धान्यप्रद होता है॥११९॥

### विजयसंज्ञकगृहफल

**विजयाख्यं यदा नूनं सौधः प्रासाद एव च।**
**विजयं नाम सदनं सर्वदा विजयप्रदम्॥१२०॥**

विजयसंज्ञक जब सौध एवं प्रासाद हो तो विजय संज्ञक सदन सदैव विजय देने वाला होता है॥१२०॥

**विजयं नाम भवति सदनं सहितं यदा।**
**तद्भवं विजयं नाम स्मरणाद्विजयप्रदम्॥१२१॥**

विजय संज्ञा सहित जब घर होता है तो स्मरण मात्र उत्पन्न विजय नाम से जयप्रद हो जाता है॥१२१॥

### विश्वतोमुख गृहफल

**एकशाला यदा नूनं चतुर्द्वारसमन्वितम्।**
**मनोरथप्रदं गेहं नाम्ना तद्विश्वतोमुखम्॥१२२॥**

जब एकशाला का घर चारों ओर से द्वारयुक्त हो तो ऐसा विश्वतोमुख नामक घर सम्पूर्ण मनोरथों को देने वाला होता है॥१२२॥

### पुण्डरीकसंज्ञक गृहफल

**तदैव प्रवरैर्युक्तं कोणमध्येऽथ तद्गृहम्।**
**पुण्डरीकं नाम भवेत्सर्वकामफलप्रदम्॥१२३॥**

वहीं प्रवरों सहित जब मकान कोण के मध्य में स्थित होता है तो ऐसा पुण्डरीक नामक गृह सभी इच्छाओं को पूरा करने वाला होता है॥१२३॥

श्रीनिलयसंज्ञकगृहफल

पश्चिमद्वारहीनं तद्गृहं श्रीनिलयाह्वयम्।
श्रीप्रदं सर्वदा राज्ञां पुत्रपौत्रप्रवर्द्धनम्॥१२४॥

पश्चिम द्वार से हीन तीन दिशाओं में दरवाजे हों तो घर श्रीनिलय संज्ञक होता है राजाओं को सदैव लक्ष्मीप्रद एवं पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करता है॥१२४॥

सूकरसंज्ञकगृहफल

उदग्द्वारविहीनं तच्छूकरस्य पदाह्वयम्।
सूकराद्भयदं नूनमथवा भूपतेर्भयम्॥१२५॥

उत्तर दिशा के द्वार से विहीन अन्य तीन दिशाओं में द्वारों वाला घर सूकर संज्ञक कहा है, इस सूकर नामक घर में सूकर से अथवा राजा से भय होता है॥१२५॥

व्याघ्रसंज्ञकगृहफल

पूर्वद्वार विहीनं तद्व्याघ्रस्य पदसंज्ञकम्।
चतुष्पाद्भयदं गेहमथवा तस्कराद्भयम्॥१२६॥

पूर्व द्वार से हीन अन्य तीन दिशाओं में दरवाजे वाला घर व्याघ्रसंज्ञक कहा है। इस व्याघ्रसंज्ञक घर में पशुओं अथवा चोरों से भय होता है॥१२६॥

शेखरसंज्ञकगृहफल

दक्षिणद्वारहीनं तद्गृहं शेखर संज्ञकम्।
सर्ववस्तुप्रदं गेहं सर्वरत्नप्रदं सदा॥१२७॥

दक्षिण द्वार से हीन अन्य तीन दिशाओं में दरवाजे वाला घर शेखर संज्ञक कहा है। यह शेखर संज्ञक घर सर्वदा सर्ववस्तुप्रद एवं सर्वरत्नप्रद होता है॥१२७॥

द्विशालभेदकथन

इत्येकशालाभेदानि द्विशालाभेदमुच्यते।
द्विशालां कर्त्तुकामो यः कुर्यात्सम्यक् परीक्षणम्॥128॥

पहले एक शाला भेद कहे। अब द्विशाला भेद कहते हैं, जो व्यक्ति द्विशाला बनवाने की इच्छा रखता है, वह भलीभाँति परीक्षा करवा कर घर बनावें॥१२८॥

कमलकरसंज्ञकगृहफल

याम्यपश्चिमयोर्नूनं द्विशालं कमलाकरम्।
नामतः सर्वदा नृणां श्रीप्रदं सर्वभोगदम्॥१२९॥

दक्षिण और पश्चिम दिशा में द्विशाला गृह कमलकर (लक्ष्मीभण्डार) संज्ञक होता है। यह नाम के अनुसार मनुष्यों के लिए लक्ष्मीप्रद एवं समस्त भोगों को देने वाला होता है॥१२९॥

श्वापदसंज्ञकगृहफल

**पश्चिमोत्तरयोः शाला श्वापदं नाम नामतः।**
**हृद्रोगदुःखभयदमथवा चौरभीतिदम्॥१३०॥**

पश्चिम और उत्तर दिशा में द्विशालागृह श्वापद संज्ञक कहा है। यह घर सदैव हृदय रोग से दुःख एवं भय देने वाला अथवा चोरों का भय देने वाला होता है॥१३०॥

विपक्षसंज्ञकगृहफल

**प्राक्सौम्ययोर्द्विशाला सा विपक्षा दुःखकर्षिणी।**
**शत्रुभ्यो भयदा शश्वदथवा चौरभीतिदा॥१३१॥**

पूर्व और उत्तर-दिशा में द्विशाला गृह विपक्षा संज्ञक कहा है। यह घर दुःख देने वाला, निरन्तर शत्रुओं से भय देने वाला अथवा चोरों से भय देने वाला होता है॥१३१॥

सर्पदंष्ट्रिकसंज्ञक गृहफल

**पूर्वदक्षिणयोर्नूनं द्विशाला सर्पदंष्ट्रिका।**
**आधि व्याधि व्याल चौर विशेषभयदा सदा॥१३२॥**

पूर्व एवं दक्षिण दिशा में द्विशाला गृह सर्पदंष्ट्रिक संज्ञक कहा है। यह घर सदैव शारीरिक एवं मानसिक रोगो से, सर्प एवं चोर से भय देने वाला होता है॥१३२॥

मङ्गलाष्टक संज्ञकगृहफल

**याम्यपश्चिमयोरेव द्विशाला मङ्गलाष्टदा।**
**प्रासादो वाथ सौधो वा तस्यामेव तु कारयेत्॥१३३॥**

दक्षिण और पश्चिम की दिशा में द्विशाला गृह मङ्गलाष्टक संज्ञक कहा है। प्रासाद अथवा सौध उसी दिशा में करना चाहिए॥१३३॥

**अन्यदिक्षु द्विशालासु नैस्वं शोकं लभेन्नरः।**
**तस्माद्द्विशालां वाऽन्यत्र प्रयत्नात्परिवर्जयेत्॥134॥**

अन्य दिशाओं में द्विशालागृह निर्माण मनुष्यों को निर्धनता एवं शोक देता है। अतः दूसरी अन्य दिशाओं में द्विशाला गृह निर्माण प्रयत्नपूर्वक त्याग देना चाहिए॥१३४॥

**द्विशालाद्यासु सर्वासु द्वित्रिपञ्चादिभूमिकैः।**
**एवं षोडश सद्मानि भवन्त्यत्राप्यनुक्रमात्॥१३५॥**

द्विशाला गृह इत्यादि सभी दो, तीन, पाँच तल तक कहा गया है। इस प्रकार कुल सोलह प्रकार के भवन क्रमशः कहे हैं॥१३५॥

खण्डेन्दु, बुद्धिवर्धक तथा शङ्खसंज्ञक घरों का फल

**खण्डेन्दुसंज्ञकं त्वाद्यं द्वितीयं बुद्धिवर्द्धनम्।**
**तृतीयं शङ्खसंज्ञं तु धनायुः स्त्रीप्रदानि वै॥१३६॥**

सर्वप्रथम भवन खण्डेन्दु संज्ञक कहा है, दूसरा बुद्धिवर्धक संज्ञक, तीसरा शङ्ख संज्ञक ये सभी धन, आयु तथा स्त्री प्रदान करने वाले हैं॥१३६॥

तलानुसार गृहफल

**चतुर्थपञ्चमं सद्म स्त्रीसौभाग्य विनाशदम्।**
**षष्ठसप्ताष्टमं गेहं लाभायुः श्रीप्रदं सदा॥१३७॥**

चतुर्थ पञ्चम तल वाला घर स्त्री सौभाग्य का विनाश करता है। षष्ठसप्तम तथा अष्टम गृह लाभ, आयु तथा लक्ष्मी सदैव देते हैं॥१३७॥

**नवैकादशमं दुःख रोगशोक भयप्रदम्।**
**द्वादशं सदनं नूनं धनधान्यप्रदं सदा॥१३८॥**

नौवां, दशवाँ और ग्यारहवाँ गृह दुःख, रोग, शोक एवं भय देने वाले, परन्तु बारहवां घर निश्चित ही सर्वदा धन-धान्य देने वाला होता है॥१३८॥

**शोकदुःखप्रदं शश्वत्त्रयोदश चतुर्दशम्।**
**षोडशं पञ्चदशमं त्वायुरारोग्यवृद्धिम्॥१३९॥**

तेरहवाँ और चौदहवाँ गृह निरन्तर शोक एवं दुःखप्रद होता है; परन्तु पन्द्रहवाँ एवं सोलहवाँ घर आयु, आरोग्य में वृद्धि देता है॥१३९॥

त्रिशालासंज्ञक घरों के भेद

**उक्ता द्विशालाभेदानि नामरूपफलैः सह।**
**त्रिशालानामभेदानि अधुना कथ्यते भृशम्॥१४०॥**

द्विशाला संज्ञक घर के भेदों को उनके नामस्वरूप कहकर अब त्रिशाला संज्ञक भेदों को कहते हैं॥१४०॥

जयन्तीसंज्ञक त्रिशाला फल

**उदङ्मुखा त्रिशाला सा जयन्ती संज्ञिता त्वथ।**
**विपुला कीर्तिदा राज्ञां पुत्रपौत्रधनप्रदा॥१४१॥**

उत्तर मुख दिशा में त्रिशाला (तीन कमरे) वाले घर की जयन्ती संज्ञा कही है। यह जयन्ती संज्ञक त्रिशाला अनेकविध कीर्ति देने वाली तथा राजाओं के लिए पुत्र-पौत्र और धन देने वाली होती है॥१४१॥

हरिपदसंज्ञक त्रिशाला फल

**प्राग्द्वारसहिता सा च नाम्ना हरिपदाह्वयम्।**
**तदीप्सितार्थफलदं राज्ञां मुख्यतरं सदा॥१४२॥**

पूर्वद्वार सहित त्रिशाला की हरिपद संज्ञा कही है। यह सदैव राजाओं के लिए प्रधानता अपनी इच्छित वस्तुओं की फल प्राप्ति करवाने वाली होती है॥१४२॥

उष्ट्रदंष्ट्रा संज्ञक त्रिशाला फल

**सा दक्षिणद्वारयुता चोष्ट्रदंष्ट्राह्वया भुवि।**
**निःस्वप्रदा क्षितिशानामथवा शत्रुभीतिदा॥१४३॥**

वह दक्षिण द्वार युक्त त्रिशाला को उष्ट्रदंष्ट्रा संज्ञा कही है। यह पृथ्वी पर राजाओं को गरीबी देने वाली अथवा शत्रु से भय देने वाली होती है॥१४३॥

कुसमासंज्ञक त्रिशाला फल

**पश्चिमद्वारसहिता सर्वदा कुसुमाह्वया।**
**मित्रवृद्धिप्रदा नृणामथवा भातृवृद्धिदा॥१४४॥**

पश्चिमद्वार सहित त्रिशाला की सर्वदा कुसुमा संज्ञा कही है। यह राजाओं के लिए मित्रवृद्धि कारक अथवा भातृवृद्धि देने वाली होती है॥१४४॥

नक्षत्रपदसंज्ञक त्रिशाला फल

**नानाकल्याणदाः शश्वत्पुत्रपौत्र प्रवर्द्धिनी।**
**प्राङ्मुखा या त्रिशाला सा नक्षत्रपदसंज्ञिता॥१४५॥**

पूर्वमुख त्रिशाला को नक्षत्रपद संज्ञा कही है। यह अनेक प्रकार के कल्याण करने वाली, निरन्तर पुत्र-पौत्रों की वृद्धि करने वाली होती है॥१४५॥

स्वर्णगर्भा त्रिशालाफल

**सर्वदा धनदा नृणां दुःखशोक विनाशदा।**
**उदग्द्वारयुता सा च स्वर्णगर्भाह्वया क्षितौ॥१४६॥**

उत्तर द्वार युक्त त्रिशाला की स्वर्णगर्भा संज्ञा कही है। यह पृथ्वी पर सदैव मनुष्यों को धनप्रदा एवं दुःख-शोक विनाशक होती है॥१४६॥

स्वर्णदा त्रिशालाफल

**स्वर्णदास्वपरं चोदङ्मुखायां यत्फलं तु तत्।**
**कुलक्षयकरा सैव त्रिशाला दक्षिणामुखा॥१४७॥**

स्वर्णदा संज्ञक त्रिशाला उत्तरमुख द्वार के फल को देने वाली कही है। यही त्रिशाला दक्षिणामुख हो तो कुल को क्षय करने वाली होती है॥१४७॥

**शालानां पापसंज्ञानां दृष्ट्वा सूर्य्यं निरीक्षयेत्।**
**प्रत्यङ्मुखा त्रिशाला सा क्षयाख्या नामतस्तथा॥१४८॥**

पाप संज्ञक शालाओं को देखकर सूर्य का निरीक्षण करना चाहिए। जो पश्चिमामुख त्रिशाला है, वह क्षयाख्य संज्ञक कही है॥१४८॥

**बहुव्ययकरी सैव पुत्रार्युधननाशदा।**
**गृहोपरि गृहाणां च सम्यक् संचिन्त्य बुद्धिमान्॥149॥**

बहुत व्यय करवाने वाली तथा पुत्र आयु और धन का नाश करने वाली, एक मंजिल के ऊपर दूसरी, तीसरी मंजिल बुद्धिमान व्यक्तियों को भलीभाँति विचार करके बनानी चाहिए॥१४९॥

**चतुःशालाभेद कथन**

**प्रस्तारं यन्मनोरम्यं नानारूप प्रभेदतः।**
**उक्ता त्रिशाला भेदानि चतुःशालामथोऽच्यते॥150॥**

जो प्रस्तार (चपटी सतह) मन के लिए रमणीय तथा अनेक रूप भेद वाले हैं, ऐसे त्रिशाला भेदों को कहकर अब चतुःशाला भेदों को कहते हैं॥१५०॥

**सर्वतोभद्र चतुःशाला**

**पितामहोक्तमार्गेण नामरूपफलैः पृथक्।**
**चतुःशाला चतुर्भेदा सर्वतो भद्रसंज्ञिता॥१५१॥**

पितामह (श्रीब्रह्मा) के द्वारा कहे मार्ग से नामरूप तथा फलों का भिन्न-भिन्न चतुःशाला के चार भेदों को सर्वतोभद्र संज्ञा दी गई है॥१५१॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

पूर्वादि दिक्ष्वलिन्देषु गृहभेदास्तु षोडश।
चतुःशाला चतुर्द्वार सर्वतोभद्रसंज्ञका॥
धात्रीपतीनामन्येषां पुत्रायुर्धन धान्यदा।
पश्चिम द्वाररहिता नन्द्यावर्ताह्वया च सा॥
आयुरारोग्यतैश्वर्यं पुत्र सौभाग्यवृद्धिदा।
दक्षिणद्वार रहिता वर्धमाना धनप्रदा॥
प्राग्द्वाररहितास्वस्तिकाख्या पुत्रधनप्रदा।
उत्तरद्वार रहिता रुचकाऽऽयुर्धनप्रदा॥

—*(क. सं., अ. ३७ श्लोक ६३-६६)*

नद्यावर्त्ता चतुःशाला

**आयुरारोग्य विपुला कीर्तिसम्पत्प्रदा नृणाम्।**
**पश्चिमद्वारसहिता नद्यावर्त्ताह्वया भृशम्॥१५२॥**

यह मनुष्यों के लिये आयु-आरोग्य, प्रचुर कीर्ति और सम्पत्ति प्रदान करने वाली होती है जब यह पश्चिम द्वार सहित हो तो इसकी नद्यावर्त्ता संज्ञा कही गई है॥१५२॥

रुचका चतुःशाला

**सुगन्धवस्तुनिचयवस्त्ररत्न प्रदा सदा।**
**उत्तरद्वारसहिता शश्वत्सा रुचकाह्वया॥१५३॥**

यह निरन्तर सुगन्ध, वस्तुसमूह, वस्त्र तथा रत्नों को देने वाली होती है। उत्तर द्वार सहित चतुःशाला की रुचका संज्ञा कही है॥१५३॥

स्वस्तिका चतुःशाला

**अन्नपानादि निखिलभोगसौभाग्यपुत्रदा।**
**प्राग्द्वार सहिता सैव स्वस्तिकेति प्रकीर्तिता॥१५४॥**

पूर्वद्वार सहित चतुःशाला की स्वस्तिका संज्ञा कही है। यह अन्न, पानादि समस्त भोग, सौभाग्य तथा पुत्रों को देने वाली होती है॥१५४॥

वर्द्धमानचतुःशाला

**गजाश्वपशुलोहादिभूषण श्रीप्रदा नृणाम्।**
**दक्षिणद्वार सहिता वर्द्धमानाह्वया भुवि॥१५५॥**

पृथ्वी पर दक्षिण द्वार सहित चतुःशाला की वर्द्धमाना संज्ञा कही है। यह शाला हाथी, घोड़ा, पशु, लोहा, आभूषण तथा लक्ष्मी को सर्वदा मनुष्यों को देने वाली होती है॥१५५॥

**तत्रस्थसर्ववस्तूनि वर्द्धन्ते वै श्रिया सह।**
**चतुःशालामध्यभागे कुर्यात्पूर्वमुखं गृहम्॥१५६॥**

वहाँ पर स्थित समस्त वस्तुओं को लक्ष्मी सहित वृद्धि करती है। चतुःशाला के मध्य भाग में पूर्वमुख घर बनाना चाहिए॥१५६॥

कुबेरपद चतुःशाला

**गृहराडिति विख्यातं सर्व सम्पत्प्रदं सदा।**
**तद्गृहं याम्यवक्त्रं चेत्कुबेर पदसंज्ञकम्॥१५७॥**

गृहराट् (गृह राजा) नाम से प्रसिद्ध सदैव समस्त सम्पत्तियों को देने वाला कहा है। यदि वह गृह दक्षिणामुखी हो तो कुबेर पद संज्ञक कहा जाता है॥१५७॥

महेन्द्रपदचतुःशाला

शश्वत्कुबेरगृहवदालये सर्वसम्पदाम्।
प्रत्यग्वक्त्रं मन्दिरं वै महेन्द्रपदसंज्ञितम्॥१५८॥

ऐसा घर निरन्तर कुबेर के घर के समान सभी सम्पत्तियों को देने वाला होता है। पश्चिमामुख गृह की महेन्द्रपद संज्ञा कही गई है॥१५८॥

वारुणचतुःशाला

इन्द्रवेश्म यथा सर्व सम्पद्युक्तं तथैव तत्।
उदङ्मुख तत्सदनं वारुणं पदसंज्ञितम्।
सर्वरत्नालयं गेहं सर्वभोगसुखावहम्॥१५९॥

जैसे देवराज इन्द्र का घर सभी सम्पत्तियों से युक्त रहता है, उसी प्रकार महेन्द्र संज्ञक शाला सम्पत्ति देती है। उत्तरमुख भवन को वारुण संज्ञा कही है। यह सम्पूर्ण रत्नों का घर सम्पूर्ण भोग एवं सुख देता है॥१५९॥

चन्द्रशेखरचतुःशाला

प्रासादो वाथ सौधो वा तद्गृहे वै भवेद्यदि।
तच्चन्द्रशेखरपदं निधीनामालयं भृशम्॥१६०॥

प्रासाद अथवा सौध (राजमहल या बड़ी हवेली) जैसे घर की चन्द्रशेखर संज्ञा कही है। यह समस्त निधियों का घर कहा जाता है। अर्थात् नौ निधियों का निवास घर में रहता है॥१६०॥

महेन्द्रपदचतुःशाला

कोणेष्वयचरं कुर्यान्महेन्द्र पदसंज्ञितम्।
महेन्द्रनिलयं यद्वत्तद्वच्च सम्पदालयम्॥१६१॥

यदि कोण में हो तो महेन्द्रपद संज्ञा कही है। यह देवराज इन्द्र के घर के समान वैसे ही सम्पत्तियों से भरा रहता है॥१६१॥

सोलह प्रकार के प्रस्तारों का कथन

अस्यामपि द्वित्रिचतुःपञ्चषट्सप्तभूमिकैः।
षोडशाख्यानि जातानि तानि प्रस्तारतः क्रमात्॥१६२॥

इसके भी दो, तीन, चार, पाँच, षट् तथा सात तल होते हैं। ये सोलह प्रकार के प्रस्तारों को क्रमशः कहते हैं॥१६२॥

पञ्चादिदशपर्यन्ताः शालास्त्वेवं प्रकल्पयेत्।
प्रास्तारनामदिग्रूपफलैर्यो वास्तुकोविदः॥१६३॥

पाँच से दश पर्यन्त शालाओं की कल्पना करनी चाहिए। प्रस्तारों की दिशा रूप और फल वास्तु विशेषज्ञयों ने कहे हैं॥१६३॥

**दिशाक्रम से गृहनिर्माण**

**ऐन्द्र्या दिशि स्नानगेहमाग्नेय्यां पवनालयम्।**
**याम्यायां शयनं वेश्म नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्॥१६४॥**

पूर्व की ओर स्नानागार, अग्नि दिशा में भोजनालय, दक्षिण दिशा में शयनागार तथा नैर्ऋत्य दिशा में शस्त्रागार बनाना चाहिए॥१६४॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

प्राच्यां दिशि स्नानगृहमाग्नेयां पचनालयम्।
शयनं याम्यदिग् भागे नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्॥
प्रतीच्यां भोजन गृहं वायुभागे गवां गृहम्।
भाण्डार सदनं सौम्ये त्वीशान्यां देवतालयम्॥
इन्द्राग्न्योर्बन्धनं गेहं याम्यग्न्योर्घृतमन्दिरम्।
पुरीषत्यागसदनं मध्ये राक्षस कालयोः॥
विद्यागृहं जलाधीश नैर्ऋत्योर्मध्ये ततः।
रोदनं सदनं तत्र जलाधीश समीरयोः॥
कामोपभोगसदनं मध्ये वायुकुवेरयोः।
नवरत्नालयं मध्ये कुबेरेश्वरयोस्ततः॥
ईशेन्द्रयोर्धान्य गृहं सर्वे चैवं ध्वजोद्भवाः।
ऐतान्ये तानि कार्याणि स्वस्वाऽऽये स्वस्वदिक्षुवपि॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ७५-८०)

**वारूण्यां भोजनगृहं वायव्यां पशुमन्दिरम्।**
**उदीच्यां हाटकं सद्म ऐशान्यां देवमन्दिरम्॥१६५॥**

पश्चिम दिशा में भोजनालय, वायव्य दिशा में पशु घर, उत्तर दिशा में हाटक घर (शृङ्गार, स्वर्णभूषणादि) तथा ईशान कोण में देवस्थान होना चाहिए॥१६५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

स्नानागारं दिशि प्राच्यामाग्नेय्यां पचनालयम्।
याम्यायां शयनागारं नैर्ऋत्यां शस्त्रमन्दिरम्॥

एव कुर्यादिदं स्थानं क्षीर पानाज्य शालिकाः।
शय्यामूत्रास्रतद्विद्याभोजनामंगलाश्रयाः।।
धान्यस्त्रीभोगचित्तं च शृङ्गारायतनानिच।।
ईशान्यादिक्रमस्तेषां गृहनिर्माणकं शुभम्।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ५०-५२)

**ध्वजधूमहरिश्वाख्यवृषगर्दभकुञ्जराः ।**
**ध्वांक्षश्चैते क्रमादायाः स्वस्थाने स्वगृहे शुभाः।।१६६।।**

ध्वज (पूज्यप्रमुख) धूम (उल्का केतु) हरि (शेर) कुत्ता, बैल, गदहा, हाथी, ध्वांक्ष (कौवा) ये सभी क्रम से आय संज्ञक हैं तथा अपने स्थान में या अपने घर में शुभ कहे हैं।।१६६।।

**ऐन्द्राग्न्योर्मन्थनं मध्ये याम्याग्न्यो रतिमन्दिरम्।**
**याम्यराक्षसयोर्मध्ये पुरीषत्याङ्गमन्दिरम्।।१६७।।**

पूर्व एवं अग्नि दिशा के मध्य में दही मन्थन, दक्षिण एवं अग्नि कोण के मध्य में रति स्थान अर्थात् शृङ्गार एव विलास, दक्षिण एवं नैर्ऋत्य कोण के मध्यम में मलमूत्र त्याग स्थान बनावें।।१६७।।

**राक्षसाम्बुपयोर्मध्ये विद्याभवनमन्दिरम्।**
**तोयेशानिलयोर्मध्ये सदनं रोदनं ततः।।१६८।।**

नैर्ऋत्यकोण और पश्चिमकोण के मध्य में विद्याभवन, अध्ययन कक्ष, पश्चिम और वायव्य कोणों के मध्य में रोने वाला घर बनावें।।१६८।।

**कामोपभोगसदनं वायुकौबेरमध्ययोः।**
**कौबेरशानयोर्मध्ये चिकित्सासदनं सदा।।१६९।।**

वायु एवं उत्तर कोण के मध्य में काम इच्छा उपभोग, उत्तर एवं ईशान कोण में सदैव चिकित्सा घर बनाना चाहिए।।१६९।।

**पुरन्दरेशयोर्मध्ये सर्ववस्तुसुसंग्रहम्।**
**सदनं कारयेदेवं क्रमादुक्तानि षोडश।।१७०।।**

ईशान एवं पूर्व दिशा के मध्य में समस्त वस्तु संग्रह स्थान बनाना चाहिए। इस प्रकार क्रमशः सोलह कमरे बनाने का विधान है।।१७०।।

**ध्वजः सिंहे तौ च गजेत्वेते गवि शुभप्रदाः।**
**वृषो न पूजितोऽन्यत्र ध्वजः सर्वत्र पूजितः।।१७१।।**

ध्वज, शेर, हाथी और गाय शुभफल देने वाले होते हैं। बैल का पूजन नहीं होता, परन्तु ध्वज (झण्डा) सब जगह पूजा जाता है।।१७१।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

ध्वजः कार्यः सिंह दिशितौ गजे ते वृषाह्वये।
नाश्रितो वृषभोऽन्यत्र ध्वजः सर्वत्र शोभनः।।
गृहोपरि गृहादीनामेवं सर्वं परीक्षयेत्।
जलस्रावं चाष्टविधं गृहाणां क्रमदास्तदा।।
पांचालमानं वैदेहं तृतीयं कौरयाह्वयम्।
कौजन्यं मागधं सूरसेनं गान्धार संज्ञकम्।।
आवन्तिकान्त्वष्टमाख्यं तत्स्वरूपमथोच्यते।
विस्तारस्योच्छितस्य चतुर्भागयुतस्य च।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ८२-८५)

**गृहोपरि गृहादीनामायमात्रं प्रकल्पयेत्।**
**न षड्वर्गशङ्कुमपि स्थापयेदायसद्मनि।।१७२।।**

घर के ऊपर गृहों की आय मात्र परिकल्पना करनी चाहिए। षडवर्ग शङ्कु को भी आय घर में स्थापित नहीं करना चाहिए।।१७२।।

*(आय-अन्तःपुर का रक्षक)*

**मन्दिरों का अष्टविधस्राव**

**मन्दिराणामष्टविधं जलस्रावं क्रमेण वै।**
**पाञ्चालमानं वैदेहं कौरवं कौरजन्यकम्।।१७३।।**

मन्दिरों का अष्टविध जलस्राव क्रम से कहा गया है। पाञ्चाल (पञ्जाब) वैदेह (मिथिला) कौरवं (कुरुक्षेत्र) कौरजन्यक (कन्नौज)—।।१७३।।

क्रमागतः–

नारदः–

गृहादीनां गृहेश्राव्यं क्रमशो विविधं स्मृतम्।
पञ्चालमानं, वैदेहं, कौरवं, चैव कन्यकाम्।।
मागधं भूरसेनं च वङ्गमेवं क्रमः स्मृतः।
तं चतुर्भागविस्तारं संशोधय तदुच्यते।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ५७-५८)

**मागधं सूरसेनाख्यं गान्धारावन्तिसंज्ञकम्।**
**एषामष्टविधानां च प्रमाणं सम्यगुच्यते।।१७४।।**

मगध, सूरसेन, गान्धार, आवन्ती (उज्जैन) ये आठ प्रकार के प्रमाण सम्यगतया कहे गये हैं।।१७४।।

**स्पष्टार्थ-चक्र**

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| वायव्य | | उत्तर | | ईशान |
| | कोषधान्य | रतिभोग भण्डारघर औषधी | देवता | |
| | रोदन | | सर्ववस्तु | |
| पश्चिम | भोजनकक्ष | | स्नानघर | पूर्व |
| | विद्याभ्यासं | | दधिमन्थन | |
| | शस्त्रागार | शौचालय शयनकक्ष घी | रसोई | |
| नैर्ऋत्य | | दक्षिण | | ईशान |

**स्वचतुर्भाग विस्तारे सोत्सेधं यत्तदुच्यते।**
**पाञ्चालमितरेषां च द्व्यङ्गुलोत्तरवृद्धिदः॥१७५॥**

चार गुणा विस्तार सहित तथा ऊँचाई में कहा गया वह पांचाल के लिए समझें। शेषों के लिए दो अङ्गुल उत्तरोत्तर क्रम से वृद्धि होती है॥१७५॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

पञ्चालमानमतुलमुत्तरोत्तर-वृद्धितः ।
वैदेहादीनिं शेषाणि मानानिस्युर्यथा क्रमात्॥
पञ्चालमानं सर्वेषां साधारणमतः परम्।
अवन्तिमानं विप्राणां गान्धारं क्षत्रियस्य च॥
कौजन्यमानं वैश्यानां विप्रादीनां यथोत्तरम्।
यथोदितजलस्राव्यं द्वित्रिभूमिवेश्मनः॥

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ५९-६१)

**वैदेहादीनि सर्वाणि मानानि स्युर्यथाक्रमात्।**
**पाञ्चालः सर्ववर्णानां वैदेहः शूद्रजातिषु॥१७६॥**

मिथिला इत्यादि सभी मान यथाक्रम कहे हैं। पाञ्चाल का मान सभी वर्णों के लिए तथा मिथिला का मान शूद्र जाति के लिए है॥१७६॥

**आवन्तिकं चाग्रजानां गान्धारः सर्वभूभुजाम्।**
**विशां कौजन्यकं मानं वैदेहं शूद्रजातिषु॥१७७॥**

उज्जैयनी का मान ब्राह्मणों के लिए, गान्धार का मान क्षत्रियों के लिए, कन्नौज का मान वैश्यों का तथा मिथिला का मान शूद्र जातियों के लिए कहा है॥१७७॥

**सामान्यमन्यमानानि विप्रादीनां यथाक्रमात्।**
**गृहोपरिगृहादीनां जलस्त्रावं यथोच्यते॥१७८॥**

सामान्य रूप से अन्य मानों को ब्राह्मणादि जातियों में यथाक्रम से घर के ऊपर गृह इत्यादि का जलस्त्राव कहते हैं॥१७८॥

**नानाविधानि हर्म्याणि जालकाचित्रितानि च।**
**पश्चिमेदक्षिणे चैव गवाक्षं मन्दिरस्य च॥१७९॥**

नाना प्रकार के ऊँचे तालिकाओं वाले भवन चित्रित खिड़कियों से युक्त होने चाहिए। पश्चिम और दक्षिण दिशाओं में झरोखे बनाने चाहिए॥१७९॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

पांचालमङ्गुलद्वाभ्यां द्वाभ्यां वृद्ध्यापराणि च।
वैदेहादीनि नामानि भवन्त्यत्र तथा क्रमात्॥
पांचालं सर्ववर्णानां जलस्त्रावं शुभप्रदम्।
आवन्तिमानं विप्राणां गान्धारं क्षत्रियस्यः च॥
कौजन्यमानं वैश्यानां द्विज़ादीनां यथोत्तरम्।
द्वित्रिभूमिकवेश्यानां जलस्त्रावं यथोचितम्॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ८६-८८)

**गजाये वा ध्वजाये वा गजानां मन्दिरं शुभम्।**
**अश्वालयं ध्वजाये वा खराये वा वृषेऽपि वा॥१८०॥**

गज आय तथा ध्वज आय में हाथियों का मन्दिर शुभ कहा है। घुड़साल के लिए ध्वज आय, खर आय अथवा वृष आय शुभ होता है॥१८०॥

**उष्ट्राणां मन्दिरं कार्यं गजाये वा वृष ध्वजे।**
**पशुसद्म वृषाये वा ध्वजाये वा शुभप्रदम्॥१८१॥**

ऊँटों का घर गज आय, वृष आय या ध्वज आय में बनाना चाहिए। पशुओं का घर वृष आय या ध्वज आय में शुभप्रद होता है॥१८१॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

उष्ट्रकुंजरशालानां ध्वजायोऽप्यथवा गजे।
पशुशालाश्वशालानां ध्वजायोऽप्यथवावृषे॥
द्वारे शय्याशना मन्त्रेध्वजसिंहे वृषाः शुभाः॥

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ६२)

**शय्यासु वृषभः शस्तः पीठे सिंहः शुभप्रदः।**
**अन्यत्रछत्रवस्त्राणां वृषभाये ध्वजेऽपि वा॥१८२॥**

शैय्या घर वृष आय में प्रशस्त होता है, जबकि बैठने की चौकी तिपाई सिंह आय में शुभप्रद होती है। अन्य छाता वस्त्रादि के लिए वृष आय या ध्वज आय शुभ होता है॥१८२॥

**पादुकोपानहौ कार्य्यौ सिंहायेऽप्यथवा ध्वजे।**
**उक्तानामप्यनुक्तानां मन्दिराणां ध्वजः शुभः॥१८३॥**

पादुका (खड़ाऊ-चप्पल), उपानह जूता इत्यादि के लिए सिंह आय अथवा ध्वज आय में व्यवस्था करनी चाहिए। कहे हुए अथवा नहीं कहे हुए कमरों के लिए ध्वज आय शुभ है॥१८३॥

**उदुम्बरप्लक्षनिम्बचूतस्नुहि विभीतकः।**
**बदरीखदिरं त्यक्त्वा निन्दिताः कण्टकद्रुमाः॥१८४॥**

उदुम्बर (रूम्बल), प्लक्ष (पलाश), नीम, आम, स्नुहि (थोहर), विभीतक (बहेड़ा), वैर तथा खैर को छोड़कर शेष सभी काँटेदार वृक्ष घर में लगाना निन्दित कहा गया है॥१८४॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

कण्टकानिन्दिताः सर्वे वदरीखदिरं विना।
वटाश्वत्थंकपिंत्थाख्य तिन्तिडीक तृणद्रुमाः॥
अगस्ति शिग्रु पालाशदुग्धवृक्षाश्च निन्दिताः।
करंजैरण्डशिग्रु निर्गुण्डी गृह शालाश्च निन्दिताः॥

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ९१-९२)

**गृह में वर्जित वृक्ष**

**वटाश्वत्थकपित्थाख्यतिन्तिणीकतकद्रुमाः।**
**अगस्तिशिग्रुपालाशदुग्ध वृक्षाश्च निन्दिताः॥१८५॥**

वट (वरगद-बोढ़), पीपल, कपित्थ (कैथ), इमली तथा कतक (रीठा), अगस्ति (औषधी विशेष), शिग्रु (सहिजन का पेड़), पालाश इत्यादि दूधवाले वृक्ष घर में लगाना वर्जित हैं॥१८५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

एतेस्वस्थानशस्तानि स्वस्वाय स्वस्वदिश्यपि।
प्लक्षोदुम्बरचूताख्या निम्बस्नुही विभीतिकाः॥

येकण्टका दग्धवृक्षा वटाश्वत्थकपित्थकाः।
अगस्त्य शिग्रु तालाख्या तिंतिणीकाश्च निन्दिताः।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ५३-५४)

**करञ्जैरण्डन्निर्गुन्ड़ी गृहशालाश्च निन्दिताः।**
**स्वगृहात्पश्चिमे या।म्ये पितुः स्वाग्रजमन्दिरम्॥१८६॥**

करञ्ज (औषधी विशेष वृक्ष), एरण्ड (एरण्डी का पौधा, बहुत छोटे पत्तों वाला छोटा पेड़), निरगुन्डी (दूध वाला वृक्ष) घर में निन्दित हैं। अपने घर से पश्चिम में तथा दक्षिण दिशा में पिता और अपने बड़े भाई का घर बनाना चाहिए।।१८६।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

स्वगृहात्पश्चिमे याम्ये पितुःसाग्रजमन्दिरम्।
गृहाधारा गृहस्तम्भा वामाः कोशविनाशकाः।।
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं कुड्योत्सेधं यथारुचि।
भित्तिः पक्वेष्टिकाभिर्वादा....यथामृदा।।

*—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ९३-९४)*

**समान असमान गृहस्तम्भनिर्णय**

**गृहपादा गृहस्तम्भा समाः कार्य्याश्च नाऽसमाः।**
**नात्युच्छ्रितं नाति नीचं कुड्योत्सेधं यथा रुचिः॥१८७॥**

घर का चतुर्थांश तथा घर का स्तम्भ समान रहना चाहिए, असमान चतुर्थांश एवं स्तम्भ शुभ नहीं होता। घर की दीवारों की ऊँचाई न तो अत्याधिक और न ही कम बल्कि अपनी रुचिपूर्वक समाान्य होनी चाहिए।।१८७।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

पितृवत्स्वाग्रजं गेहं पश्चिमे दक्षिणेऽपि वा।
गृहपादा गृहस्तम्भाः समाः शस्ताश्च नाऽसमा।।
नात्युच्छ्रितं नातिनीचं कुड्योत्सेधं यथारुचिः।
गृहोपरि गृहादीनामेवं सर्वत्र चिन्तयेत।।

—(ना. सं., अ. ३१ श्लोक ५५-५६)

**भित्तिः पक्वेष्टकाभिर्वा दारुणाप्यथवा मृदा।**
**कार्या चित्रपटैर्वापि तृणैः पर्णैश्च न क्वचित्॥१८८॥**

दीवालें पक्की ईंट, लकड़ी अथवा मिट्टी की हों। चित्रपट, तृण पर्णादि से कभी भी न बनवावें।।१८८।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

कार्या चित्रपटैर्वापि तृणैः पत्रैश्च न क्वचित्।
ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीनाशो निधनं भवेत्।।
संपच्छत्रु क्षयः सौख्यं पुष्टिः प्रागादितः क्रमात्।
कूपे कृते मध्यमे तु धन हानिश्च वास्तुनः।।

—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ९५-९६)

**ऐश्वर्यं पुत्रहानिश्च स्त्रीहानिर्निधनं भवेत्।**
**सम्पच्छत्रुभयं सौख्यं पुष्टिः प्राच्यादितः क्रमात्।।१८९।।**

इस विधि से बनाये गए घर पूर्वादिक क्रम से ऐश्वर्य, पुत्रहानि, स्त्रीहानि मृत्यु, सम्पत्ति, शत्रुभय तथा सुख की पुष्टि होती है।।१८९।।

**गृह मध्य में कूप निषेध**

**कूपे कृते मध्यमे तु धनहानिश्च वास्तुनः।**
**तस्मात्सम्यग्विचार्य्याथ कूपं कुर्याच्च बुद्धिमान्।।१९०।।**

घर के मध्यम में कुआँ बनाया जाए तो वह धन हानि देने वाला होता है इसलिए भलीभाँति विचार करके ही बुद्धिमान व्यक्ति को कुएं का निर्माण करवाना चाहिए।।१९०।।

**घर में अमङ्गलप्रद वृक्ष**

**पुन्नागशोकतिलकशमीबकुल चम्पकाः।**
**दाडिमीपिप्पलीद्राक्षापिचुमन्दाजयामराः।।१९१।।**

पुन्नाग (सफेद कमल-जायफल), अशोक, तिलक (चन्दन की लकड़ी या उवटन), शमी (जण्ड), बकुल (बबूल), चम्पक, अनार, पिप्पली, अङ्गूर, नीम का पेड़ तथा अमरवेल—।।१९१।।

**बन्धूकपूगपनससरोजगृहमल्लिकाः ।**
**मल्लिकापाटलीजातीनारिकेरास्तृणद्रुमाः।।१९२।।**

बन्धूक (दोपहरी वृक्ष), सुपारी, कटहल, कमल, गृहमल्लिका (जूही), चमेली, फूल, गुलाब, चमेली का पौधा, नारियल या नारियल का पेड़, तृणद्रुम- (ताड़ का वृक्ष, खजूर, नारियल का पेड़, केतकी का पौधा, छुहारे का वृक्ष)—।।१९२।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

पुन्नागशो तिलक शमीवकुल चम्पकाः।
दाडिमः पिप्लीद्राक्षापिचुमन्दाजयामरी।।

बन्धूक पूगपनस सरोज गृहमल्लिका।
मल्लिका पाटला जाती नारिकेलतृणद्रुमाः।।
एते गृहाङ्गणे वृक्षाः सर्वदा मङ्गलप्रदा।
प्लक्षकर्कन्धु वृक्षौ द्वौ गृहस्योत्तर तः शुभौ।।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वस्थाः गृहे प्रांगादितः शुभाः।।
—(क. सं., अ. ३७ श्लोक ९७-९९)

**एते गृहाङ्गणे वृक्षाः सर्वदामङ्गलप्रदाः।**
**प्लक्षकर्कन्धुवृक्षौ द्वौ गृहस्योत्तरतः शुभे।।१९३।।**

ये सभी वृक्ष घर के आङ्गण में सदैव अमङ्गल कारक होते हैं, जबकि पलाश और बेर के वृक्ष ये दोनों घर की उत्तर दिशा में शुभ होते हैं।।१९३।।

**दिशा क्रम से वृक्षों का फल**

**न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थाः प्रागादिषु शुभप्रदाः।**
**अगस्तिमातुलिङ्गाख्या हरिद्राकदलीस्तथा।।१९४।।**

वरगद (वोढ़), उदुम्बर (रुम्बल) तथा पीपल के वृक्ष पूर्व दिशा में शुभ कहे हैं। अगस्ति (औषध विशेष), मातुलिङ्ग, नींबू या चकोतरा फल, हल्दी तथा केले के पेड़ पूर्व में शुभ होते हैं।।१९४।।

**स्वयं प्रजाता अप्येते दुःखशोकभयप्रदाः।**
**निर्माणे मन्दिरणां च प्रवेशे त्रिविधेऽपि च।।१९५।।**

यदि ये वृक्ष पौधे अपने आप उग जाए तो ये दुःख, शोक और भय को देने वाले होते हैं। घर के निर्माण में तथा त्रिविध प्रवेशों में (राजप्रवेश, गृहप्रबेश बधुप्रवेश)— ।।१९५।।

**वास्तुपूजा विधान**

**वास्तुपूजा च कर्त्तव्या तस्मात्तां कथयाम्यथ।**
**गृहमध्ये हस्तमात्रं समन्तात्तण्डुलोपरि।।१९६।।**

वास्तु पूजा करनी चाहिए। अतएव पूजा के सन्दर्भ में मैं कहता हूँ। घर के मध्य में हस्तमात्र चारों तरफ से चावलों के ऊपर—।।१९६।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

वास्तु पूजाचक्रमं वक्ष्ये नववेश्मप्रवेशने।
रेखा लिखेद्हस्तमात्रा दशपूर्वादंशोत्तराः।।
गृहमध्येतण्डुलो पर्य्येकाशीति पदं भवेत्।
चत्वारिंशत्सुरान्वक्ष्यमाणान्यं चाधिकान्यसेत्।।

द्वात्रिंशद्वाह्यतः पूज्यास्त्वान्तरास्तु त्रयोदश।
वक्ष्यामितेषां स्थानानि नामानि च यथाक्रमात्।।
ईशानकोणतोवाह्या द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी।
हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः।।
—(क. सं., अ. ३८ श्लोक १-४)

**एकाशीतिपदं कार्य्यं तिलैस्तुल्यं सुशोभनम्।**
**एकद्वित्रिपदाः पञ्चचत्वारिंशत्सुरार्चिताः।।१९७।।**

८१ कोष्ठक बनाने चाहिए जो तिलों के द्वारा सुशोभित हों। एक, दो तथा तीन कोष्टकों पर पञ्चतालीस देवों का पूजन करें।।१९७।।

क्रमागतः–
नारदः–

वास्तुपूजामहं वक्ष्ये नववेश्म प्रवेशने।
हस्तमात्रा लिखेद्रेखा दशपूर्वा दशोत्तराः।।
गृहमध्येतण्डुलोपर्य्येकाशीतिपदं भवेत्।
पञ्चोत्तरान्वक्ष्यमाणांश्चत्वारिंशत्सु वा न्यसेत्।।
द्वात्रिंशद्वाह्यतः पूज्यास्तत्रांतः स्थास्त्रयोदश।
तेषांस्थानानि नामानि वक्ष्यामि क्रमशोऽधुना।।
ईशानकोणतोवाह्या द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी।
कृपीटयोनिः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः।।
—(ना. सं., अ. ३२ श्लोक १-४)

**द्वात्रिंशद्वाह्यतो वक्ष्यमाणाश्चान्तस्त्रयोदश।**
**तेषां स्थानानि नामानि वक्ष्यामीश्वर कोणतः।।१९८।।**

बत्तीस (३२) कोष्टकों के बाहर से कहे जाने वाले अन्त के १३ कोष्टकों में उनके स्थान तथा नाम ईशान कोण से कहते हैं।।१९८।।

क्रमागतः–
नारदः–

सूर्यसत्यो भृशाकाशौ वायुः पूषा न नैर्ऋतः।
गृहर्क्षतो दण्डधरो गान्धर्वो मृगराजकः।।
मृगः पितृगणाधीशस्ततो दौवारिकाह्वयः।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशस्तथासुरः।।
शेषश्च पापो रोगश्च भोगोमुख्यो निशाकरः।
सोमः सूर्योऽदितिदिती द्वात्रिंशद् त्रिदशा अमी।।
—(ना. सं., अ. ३२ श्लोक ५-७)

**तत्राग्निशम्भुकोणस्थस्त्वसौ चैव पदेश्वरः।**
**तस्माद्द्वितीयः पर्जन्यश्चासावेक पदेश्वरः॥१९९॥**

ईशान कोण से अग्निकोण वहाँ से दूसरे पर्जन्य और उसके कोष्टक देवता की पूजा करें॥१९९॥

**जयन्त्येन्द्रार्कसत्याख्या भृशाश्च द्विपदेश्वराः।**
**आकाशवायुपरतः क्रमादेकपदेश्वराः॥२००॥**

जयन्त, इन्द्र, सूर्य तथा भृश (प्रचण्ड देवता) ये दो पदों के स्वामी कहे हैं। आकाश एवं वायु क्रमशः एकपद के स्वामी होते हैं॥२००॥

**एवं प्राच्यां नव ज्ञात्वा नवमे वान्यदिक्षु च।**
**आद्यश्चान्तावेक पादा द्विपादाः पञ्च मध्यमाः।**
**पूषाद्यष्टौ यमान्ताः स्युरमरायाम्य भागगाः॥२०१॥**

इसी प्रकार पूर्व की ओर नव को ज्ञात करके और नौ ही अन्य दिशाओं में आदि से लेकर अन्त तक एक पद वाले, द्विपद वाले पाँच मध्य में पूषा इत्यादि से आठ तथा यम के अन्त तक देवताओं के भाग को दक्षिण दिशा तक कहा गया है॥२०१॥

**अष्टौ पितृगणाधीशा यमान्ताः पश्चिमे सुराः।**
**आद्यन्तौ द्वौ चैकपदौ द्विपदाः पञ्च मध्यगाः॥२०२॥**

आठ पितर गणों के स्वामी यमान्त तक पश्चिम दिशा के देवता, आदि से लेकर अन्त तक दो-दो और दो पदों में तथा मध्यम में पाँच देवता—॥२०२॥

**रोगादिरित्यन्ततसुराः सप्त सौम्यादिशि क्रमात्।**
**तदधस्थश्चतुष्कोणेष्वीशानादिषु च क्रमात्॥२०३॥**

रोग देवता से अन्त देवता तक सात उत्तर दिशा से क्रमशः स्थापित करने चाहिए और उसके नीचे चारों कोणों में ईशान आदि कोण से क्रमशः स्थापना एवं पूजा करनी चाहिए॥२०३॥

**आपः सावित्रविजयरुद्राश्चैकपदेश्वराः।**
**मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्येशानादिकोणगाः॥२०४॥**

आपः (जल), सवित्र, जय तथा रुद्र की एक पद में स्थापना करके पूजा करनी चाहिए। मध्य के नौ पद ब्रह्मा के हैं, उसके ईशान कोण से--॥२०४॥

**आपवत्सोऽथ सविता विबुधाधिपसंज्ञकाः।**
**राजयक्ष्मा च चत्वारः सुराश्चैकपदेश्वराः॥२०५॥**

आपवत्स, सविता, इन्द्र तथा राजयक्ष्म राजसंज्ञक चार प्रकार के देवताओं का एक पद स्थान कहा है॥२०५॥

**ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु त्रिपदाश्चामरा अमी।**
**अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात्॥206॥**

ब्रह्मा की पूर्व दिशा में देवताओं के तीन पद कहे हैं। इनमें अर्यमा, विवस्वान मित्र और पृथ्वीधरः (नागदेवता) क्रम से कहे हैं॥२०६॥

**स्वस्वस्थानेषु देवेषु स्थापितेष्वीदृशं भवेत्।**
**कोणेषु पञ्च पञ्चैव चतुष्वैक पदाः सुराः॥२०७॥**

अपने-अपने स्थानों में देवताओं को इसी प्रकार स्थापित करे ताकि पाँच-पाँच कोणों में एक ही पद में स्थापित हों॥२०७॥

**प्रागादिदिक्षु द्विपदाः पञ्चपञ्च यथा क्रमात्।**
**ब्रह्मणः पूर्वतो दिक्षु द्विपदाः स्युः समीपगाः॥२०८॥**

पूर्व दिशा में दो पद वाले तथा पाँच-पाँच के क्रम से, ब्रह्मा पूर्व दिशा में तथा द्विपद वालों को उनके समीप ही स्थापित करें॥२०८॥

**हिरण्यरेताः पर्जन्यो जयन्तः पाकशासनः।**
**सूर्यसत्यौ भृशाकाशौ वायुः पूषा च वै तथा॥२०९॥**

हिरण्यरेतः (अग्नि), पर्जन्य (इन्द्र), जयन्त (शिव-चन्द्रमा), पाकशासन (इन्द्र), सूर्य, सत्य, भृश (प्रचण्डदेवता), आकाश, वायु तथा पूषा (सूर्य) को इस प्रकार—॥२०९॥

**गृहर्क्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकः।**
**मृगः पितृगणाधीशः स्थाप्यो दौवारिकाह्वयः॥210॥**

गृह नक्षत्र से यमराज, गन्धर्व, भृङ्गराज, मृग, पितर, गणाधीश तथा दौवारिक को स्थापित करें॥२१०॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

रविसत्यौभृशाकाशौ वायुः पूषा च वैसव्यदैतयः।
गृहर्क्षतः पितृपतिर्गन्धर्वो भृङ्गराजकः॥
मृगः पितृगणाधीशस्ततो दौवारिकाह्वयः।
सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः॥
शोषः पापश्च रोगश्च नागो मुख्यो भल्लाटंकः।
सोमः सर्पोऽदित्यदित्यौ द्वात्रिंशत्त्रिदशा अमी॥

अथैशानादिकोणस्थाश्चत्वारस्तत्समीपगः।
आपः सावित्र संज्ञकश्च जयोरुद्रस्तथैव च।।

—(क. सं., अ. ३८ श्लोक ५-८)

**सुग्रीवः पुष्पदन्तश्च जलाधीशो निशाचरः।**
**शोषः पापश्च रोगोऽहि मुखो भल्लाट एव च॥२११॥**

सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, राक्षस, शोष (सूखना), पाप, रोग, सर्पमुख भल्लाटक भिलावे का पौधा—॥२११॥

**सोमसर्पौ दित्यदिती द्वात्रिंशदमराः स्मृताः।**
**आपश्चैवापवत्सश्च जयो रन्ध्रस्तथैव च॥२१२॥**

सोम, सर्पदिति, अदिति ये बत्तीस देवता पूज्य कहे गये हैं! आप (जल) और आपवत्स, जय तथा रन्ध्र—॥२१२॥

**मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगः।**
**प्रागाद्यन्तरिता देवाः परितो ब्रह्मणः स्मृताः॥२१३॥**

मध्य के नौ पद का कोष्ठक ब्रह्मा के हैं, उनके समीप आठ पूर्वादि क्रम से चारों ओर ब्रह्मा के देवता कहे गये हैं॥२१३॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

मध्ये नवपदो ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगाः।
प्रागार्धेकान्तरा देवा ब्रह्माणां परितः स्मृताः।।
अर्यमासविता चैव विवस्वान् विबुधाधिपः।
मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्।।
आपवत्सोऽष्टमः पंच चत्वारिंशत्सुरा अमी।
आपश्चैवाऽऽपवत्सश्च पर्जन्योऽग्निर्दितिस्तथा।।

—(क. सं., अ. ३८ श्लोक ९-११)

**अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः।**
**मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात्॥२१४॥**

अर्यमा, सविता, विवस्वान, इन्द्र, मित्र, राजयक्ष्मा तथा नागदेवता ये सभी स्वामि क्रम से—॥२१४॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

पदिकानां च वर्गोऽयमेवं कोणेष्वशेषतः।
तन्मध्ये तु बहिर्विंशद्विपदास्तेषु सर्वदा।।

अर्यमा च विवस्वांश्च मित्रः पृथ्वीधरः क्रमात्।
ब्रह्माणं परितो दिक्षु चत्वारस्त्रिपदाः स्मृताः।।

—(क. सं., अ. ३८ श्लोक १२-१३)

**आपवत्सोऽष्टमः पञ्चचत्वारिंशत्सुरोत्तमाः।**
**ज्ञात्वैवं स्थाननामानि ब्रह्मणा सहितान्यसेत्।।२१५।।**

आपवत्स आदि आठ देवताओं का स्थान है। ये ४५ देवता स्थान पूज्य कहे हैं। इन देवताओं को ब्रह्मा के सहित नाम और स्थान ज्ञान करके स्थापित करना चाहिए।।२१५।।

**वास्तुज्ञो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।**
**प्रणवेनार्चयेद्वापि अथवा स्वस्व नामभिः।।२१६।।**

वास्तु विशेषज्ञ वास्तु मन्त्रों द्वारा गन्धाक्षत पुष्पादि से ओंकार उच्चारण सहित अथवा देवताओं के नाम मन्त्र से पूजा करें।।२१६।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

ब्रह्माणं च तथैक द्वित्रिपदानर्चयेत्सुरान्।
वास्तुभ्यो वास्तुमन्त्रेण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।।
तत्तन्मन्त्रेण वा शुक्लवस्त्रयुग्मं प्रदापयेत्।
वास्तु पुरुषनमस्तेऽस्तुं भुवायुषाभिरतो प्रभो।।

—(क. सं., अ. ३८ श्लोक १४-१६)

**शुक्लवस्त्रयुगं दद्याद्धूपदीपफलैः सह।**
**अपूपैर्भूरिनैवेद्यैर्वाद्यैः सहसमर्पयेत्।।२१७।।**

सफेद वस्त्रयुगल, धूप, दीप, फल, अपूप (मालपुआ) आदि नैवेद्यों को मङ्गल वाद्यपूर्वक समर्पित करें।।२१७।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

ब्रह्मणं च तथैकद्वित्रिपदानर्चयेत्सुरान्।
वास्तुमन्त्रेण वास्तुज्ञो पूर्वादध्यक्षतादिभिः।।
ब्रह्ममन्त्रेण वा श्वेतवस्त्रयुग्मं प्रदापयेत्।
ताम्बूलं च ततो दत्त्वा प्रार्थयेद्वास्तुपुरुषम्।।
आवाहनादि सर्वोपचारांश्च क्रमशस्तथा।
नैवेद्यं विविधान्नेन वाद्याद्यैश्च समर्पयेत्।।

—(ना. सं., अ. ३२ श्लोक १४-१६)

**ताम्बूलं च ततो दद्याद् देवेभ्यश्च पृथक् पृथक्।**
**दत्त्वा पुष्पाञ्जलिं कर्त्ता प्रार्थयेद्वास्तु पुरुषम्॥२१८॥**

तत्पश्चात् पृथक्-पृथक् देवताओं को ताम्बूल देना चाहिए, फिर कर्त्ता पुष्पाञ्जलि देकर वास्तु पुरुष से प्रार्थना करें॥२१८॥

**विप्रेभ्यो भोजनं दत्त्वा स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः।**
**नमस्ते वास्तुपुरुष भूशय्यानिरत प्रभो॥२१९॥**

ब्राह्मणों को भोजन करा के स्वयं भाई-बन्धुओं सहित भोजन करें। भूशय्या पर प्रसन्न होने वाले वास्तु पुरुष को नमस्कार है॥२१९॥

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

मद्गृहं धनधान्यादि समृद्धं कुरु सर्वदा।
इति प्रार्थ्य ततो दद्यादर्चयित्वा च दक्षिणाम्॥
विप्रेभ्यो भोजन दद्यात स्वयं भुंजीत बन्धुभिः।
एवं यः कुरुते सम्यग् वास्तु पूजां प्रयत्नतः॥
आरोग्यायुः पुत्रपौत्रधनधान्यं लभेन्नरः।
वास्तु पूजामकृत्वा प्रविशेन्नवमन्दिरम्।
रोगान्नानाविधान् क्लेशान् प्राप्नूयात्सर्वसंकटान्॥

—(क. सं., अ. ३८ श्लोक १७-१९)

**मद्गृहे धनधान्यादि समृद्धिं कुरु सर्वदा।**
**इति प्रार्थ्य ततो दद्याद्दक्षिणामर्चकाय च॥२२०॥**

मेरे घर में धन-धान्यादि को समृद्धि सदैव करें। ऐसी प्रार्थना के पश्चात् पूजा अर्चना करवाने वाले ब्राह्मण को दक्षिण देनी चाहिए॥२२०॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

वास्तुपुरुषनमस्तेऽस्तु भूशय्याभिरतः प्रभो।
मद्गृहं धनधान्यादिसमृद्धं कुरु सर्वदा॥
इति प्रार्थ्य यथाशक्तिः दक्षिणामर्चकाय च।
दद्यात्तदग्रे विप्रेभ्यो भोजनं च स्वशक्तितः॥

—(ना. सं., अ. ३२ श्लोक १७-१८)

**एवं यः कुरुते सम्यग्वास्तु पूजां प्रयत्नतः।**
**आरोग्यं पुत्रपौत्रादि धनधान्यं लभेन्नरः॥२२१॥**

जो इस प्रकार प्रयत्नपूर्वक भलीभाँति वास्तु पूजा करता है, वह मनुष्य आरोग्य पुत्र-पौत्र, धन-धान्यादि का लाभ करता है॥२२१॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

**अनेन विधिना सम्यग्वास्तु पूजां करोति यः।**
**आरोग्यं पुत्रलाभं च धनं धान्यं लभेन्नरः॥**
**अकपाटमनाच्छन्नमदत्तबलिभोजनम् ।**
**गृहं न प्रविशेदेव विपदामाकरं हि तत्॥**

—(ना. सं., अ. ३२ श्लोक १९-२०)

**वास्तुपूजामकृत्वा यः प्रविशेन्नवमन्दिरे।**
**रोगान्नानाविधान्क्लेशानुश्रुते सर्वसंकटान्॥२२२॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**वास्त्वध्याय एकोनचत्वारिंशः॥३९॥**

वास्तु पूजा के विना जो नये घर में प्रवेश करता है, वह रोगों तथा नाना प्रकार के क्लेशों को प्राप्त करता हुआ सदैव संकटों को प्राप्त करता है॥२२२॥

**वृद्धवसिष्ठ संहिता के वास्त्वध्याय की "नारायणी"**
**हिन्दी टीका समाप्त॥३९॥**

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज२-ब्रह्मपुराणपुरु (—ब्रह्मणापुरा)
(ब) ज१-ग्रामसय, ज२-ग्रामसप (—ग्रामसप्त)
०२. (ब) ज२-मीषदुक्तं (—मीषद्रक्तं)
ज१,ज२-महीभुजा (—महिभुजाम्)
०३. (ब) ज१-मधुपुष्पाप्लधिशित, ज२-मधुपुष्पाप्लपिश्चि (—मधुपुष्पाम्लपिशितं)
०४. (अ) ज१-तक्रमशोरसं, ज२-तत्क्रमेणरसं (—तत्क्रमशोरसं)
(ब) ज१-गर्तं कृत्वारत्रमयं, ज२-गर्तकृत्वारात्रिमयं (—खातं कृत्वारत्निमात्रं)
ज१,ज२-खातंयतत्समंततः (—खनयेत्तत्समंततः)
०५. (अ) ज१-तंजलैः, ज२-तत्तज्जलैः (—तज्जलैः)
ज१-सूर्यप्रतः (—पूर्यप्रातः)
०६. (अ) ज१,ज२-व्रणायुक्तं (—व्रणयुक्ते)
ज१-२-भवेद्रानि (—भवेदहानिः) ज१,२-शुष्करं (—शुष्के)
(ब) ज१-रत्नतं, ज२-रन्सनतं (—तन्मृदं)
ज१,ज२-प्रतिपूरयेत (—परिपूरयेत)
०७. (अ) ज१,ज२-क्षयः (—क्षयम्)

०८. (ब) ज१-खनच्चापूरयेतं, ज२-खनेत्रापूरयेतं (—खनित्वापूरयेत्ततं)
०९. (अ) ज१,ज२-क्षेत्रमादौ (—क्षत्रंकृत्वा)
(ब) ज१-समंकृद्यवापि, ज२-समंकृत्वाद्यथापि (—समीकृत्यत्वथवापि)
११. (अ) ज१-स्पर्शपूर्वापराह्वयोः, ज२-स्पर्शेयूर्वापरहूयोः (—स्पृशेत्पूर्वापराह्वयोः)
(ब) ज१,२-विन्दुकार्या (—कार्यौविन्दू)
ज१,२-पूर्वापरमिथो (—पूर्वापराविधे)
१२. (अ) स्याद्दक्षिणातरे (—स्याद्दक्षिणोत्तरा)
१३. (अ) ज१,ज२-मत्स्यैश्च (—मत्स्यौ च)
ज१-पदैश्यतः, ज२-विदिशश्चोपदेदितः (—विदिशश्चोपदेशतः)
(ब) ज१-चरूतत्, ज२-श्चरूरत्सं (—चतुरस्त्रं)
ज१,२-संवहिश्चौच० (—बहिश्चात्र)
१४. (अ) ज१,ज२-अष्टादिशं (—अल्पाधिकं)
ज१,२-कार्ये (—कार्य्यं)
(ब) ज१,२-चरूरत्रेणायारोसा (—चतुरस्त्रेणमार्गेण)
ज१,२-कल्पयेत्सुधी (—कल्पयेद्भुवि)
१५. (ब) ज१,ज२-मयावहं (—भयप्रदम्)
१६. (अ) ज१,ज२-यातुं (—यामं)
ज१,२-कस्यादिशि (—कस्यामिति)
१७. (अ) ज१-महोद्वतं, ज२-महोद्धतं (—महद्धनम्)
(ब) ज१-प्राच्याध्वारफलानिचन्यतः, ज२-प्राच्यांद्धारफलान्यतः (—प्राचीद्वारफलानि वै)
१८. (अ) ज१,ज२-मंधनं (—निधनं)
२०. (अ) ज१-निरवस्त्रीदूषणं, ज२-मि...स्त्रीदूषणं (—निःस्वंस्त्रीदूषणं)
ज१-सपत्नीति, ज२-संपत्नीति (—सम्पत्प्राप्तिः)
२१. (अ) ज१,ज२-कुर्याद्विस्ताराद्विगुणोत्सेधः (—विस्ताराद्विगुणोत्सेधं)
ज१,२-द्वारेक्षिणपापजं (—द्वारं तद्विषमायतम्)
(ब) ज१-क्वाटिव, ज२-क्व....व (—कपाटं च)
२२. (अ) ज१,ज२-एकाशीतिपदं (—एकाशान्तिपदं)
(ब) ज१-ब्रह्मववमदोव्रसात्षानन्ननिनधनप्रदं ज२-नवपदोब्रह्मात्पास्त्रीरत्नधनप्रदं (—मध्येन च पदं ब्रह्मस्थानं तन्निधनप्रदम्)
२३. (अ) ज१,ज२-पैशाचा (—पैशाच्याः)
(ब) ज१,२-पाठस्यलोपः
२४. (अ-ब) ज१,ज२-पाठोनास्ति
२५. (ब) कज्यपादं (—कुड्यपादं)

२६. (अ-ब) पाठानास्ति
२९. (अ) ज१-आज्यमाद्वितये, ज२-जनपादितये (—अजपाद्द्वितये)
(ब) ज१,२-शनिसंयुक्त्ये (—शनिसञ्युक्तं)
ज१,२-दह्यते (—गृह्यते)
३०. (अ) ज१-पूरनीग्रहः, ज२-वायु....नोग्रहा: (—घूनगोग्रहा:)
(ब) ज१,ज२-स्वगृहेबले मु. पु. (स्वगृहेडूबली (—स्वगृहेऽबली)
३१. (अ) वाङ्गेथवागुरौ, ज२-वाङ्गेथवा.....(वाङ्गेऽथवारवौ)
३२. (अ) ज१-ईज्जेतरात्रया, ज२-इत्येतरात्रया (—इज्योत्तरात्रयाहीन्दु)
(ब) ज१-धात्रीबलादिषु, ज२-धातृजलाधिषु (—धातृजलोडुषु)
३४. (अ) ज१,ज२-वरुणास्येद्रमेषु (—चतुरास्येन्दुभेषु च)
३५. (अ) ज१-सितौ च, ज२-सिते च (—सिते वा)
(ब) ज१-सर्वसंपत्रदंसदा, ज२-सर्वसंपत्प्रदं सदा (—धनधान्यसुखप्रदम्)
३६. (अ) ज१,ज२-स्वर्क्षतुंगे (—स्वतुङ्गगे)
(ब) ज१,२-धनधान्यसुखप्रदं (—सर्वसम्पत्प्रदं सदा)
३७. (अ+ब) ज१,ज२-पाठोंनास्ति
३८. (अ) ज२-शुभे (—शुभ) (ब) ज१-उच्चरो० मु. पु. उच्चस्थं (—उच्चगे)
ज१२-भूरिलाभदः (—भूरिधान्यदम्)
३९. (ब) ज१,ज२-स्थिरं (—स्थितं)
४०. (ब) ज१,ज२-सदाकार्यं (—सदाकार्यो)
४१. (अ) ज१-नमधन्विते, ज२-नवधान्यविनो: (—नभसित्विषे)
४३. (ब) ज१-माजलि०, ज२-मार्ज्जार (—मार्जार)
४५. (अ) ज१,ज२-पुरस्वाथ (—पुरःस्थाप्य)
ज१,२-साधकंन्यसेत् (—साधकस्य च)
(ब) ज१,ज२-विभजेदष्टनिःशेषं (—विभजेदष्टभिःशेषं)
४६. (अ) व्यतयेनगतशेषं, ज२-व्यत्येत....शेषं (—व्यत्ययेनागतं शेषं)
(ब) ज१-गणां, ज२-नृणां (—ऋणं)
४७. (ब) णायर्क्षवासरक्षयन्यशका:, ज२-धनायर्क्षवासराक्षन्यवांशकः
(—धनऋणान्यर्क्षवासराख्य नवांशका:)
४८. (ब) ज१-वसातत्रज्ञातव्यः, ज२-पाठोनास्ति (—वशात्तत्रज्ञातव्यं)
५०. (ब) ज१-स्त्वमिष्टदाः, ज२-पाठोनास्ति (—स्त्वनिष्टदा:)
५१. (अ) ज१-समापः, ज२-दुर्भयः (—समायः)
(ब) ज१,२-निधनप्रदे (—निधनप्रदम्)
५२. (अ) ज१-प्रत्यरौ, (—प्रत्यरा)
ज१-प्रतिकूलना, ज२-प्रतिकूलता (—प्रतिकूलदा)

(ब) ज१-निधनाख्यां, ज२-निधनाख्यं (—निधनाख्या)
५४. (ब) ज१-पच्चजायें, ज२-यर्च्चाजये (—यद्वर्जयेत्)
५५. (अ) ज१,ज२-नैस्वं (—नि:स्वं)
(ब) ज१-मध्यमंयथा, ज२-मध्यमंस्मृतं, मु. पु. नैधनंफलम् (—मध्यमंफलम्)
५७. (अ) ज२-शेशा (—शेषा) ज१-वारांशा: (राश्यांशा:)
५९. (अ) ज१-नरवास्तु, ज२-नरंवास्तु (—चखास्तु)
(ब) ज१,२-तत्क्रमात् (—च क्रमात्)
६०. (अ) ज१-पुरुषो, ज२-पुरुषा (—पुरुष:)
(ब) ज१-अन्यवह्नियगेहं, ज२-अन्यथ.....गेहं (अन्यादिग्वक्त्रगेहं)
ज१-भयमवदेत्, ज२-भयप्रदं (—भयावहम्)
६१. (अ) ज१,ज२-शालानेमष (—शालानामेष)
६३. (अ) ज१-मृसमय:, (—मृन्मयां)
६४. (ब) ज१-प्रवर्द्धनं, ज२-पाठोनास्ति (—धनप्रदम्)

विशेष सङ्केत: ज२-पुस्तकस्य समाप्ति;

पुष्पिका-ज २

इति श्री वृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां
गृहवास्तुस्वरूप वर्णानं नाम नवत्रिंशत् तमोध्याय:॥३९॥
श्लोक संख्या मूल संवत् १९३५ वैशाखवदि अष्टमी
तिथौ बुधे समाप्तिकृतं, शुभम्भूयात्।

६६. (ब) ज१-नपेणबंकारंजु (—नीपकारंज)
६७. (अ) ज१-वामपत्रं (—युग्मपत्रं)
ज१-गोरक्ताथर्वापक्वं (—गोरत्वक्कपजापकम्)
(ब) ज१-कंदनावा (—चन्दनागुरु)
६८. (ब) ज१-अष्टांशकं (—अष्टास्रकं)
७०. (ब) ज१-स्थिरलग्ने (—स्थिरोदये)
७१. (ब) ज१-सह: (—सदा)
७३. (अ) मु. पु. स्वनै: (—ध्वनै:) (ब) ज१, उधृते (—सूत्रिते)
७४. (ब) ज१-अधस्थ (—तदाऽस्थि)

सङ्केत: (स्योनित्वं....धीमता पर्यन्तं पाठो न दृश्यते ज१, ज. मो. च परन्तु मुद्रित पुस्तके उपलभ्यते)

७५. (अ) मु. पु. अभ्यक्तो (—अभ्यागतो)
७६. (अ) मु. पु. स्वसप्तोपरि (—श्वासूत्रोपरि)
७७. (अ) ज१, ज. मो. उन्मदेवगते, मु. पु. उच्चादेवागते (—उन्मादेवागते)
ज. मो. संस्थित (—संस्थिते)

७८. (अ) ज१-तस्यां (—यस्यां) (ब) ज१-दशांत्यंगुल (—दशीत्यङ्गुल)
७९. (अ) संस्थिते (—संस्थितिः)
८०. (अ) तस्मिन्नवमे (—तस्मिन्नवसरे) (ब) ज१, पुरुषात (पुरुषस्य)
८२. (अ) ज१-सव्यदाल्लय (—षट्पदालयमादित्य)
(ब) ज१-करकस्थानि (—कुजस्थानानि)
ज१-करस्थये (करत्रये)
८३. (अ) ज१-प्रस्या (प्राच्यां) ज१-समादिशित् (—समादिशेत्)
(ब) ज१-विपक्षेर्वा, ज. मो. पक्षी वा (—पक्षैर्वा)
ज१-पुरुषमात्र (—पुरुषस्य)
८४. (अ) ज. मो. त्वाग्नेय्यांच समादिशेत (—त्वाग्नेय्यामादिशेद्दिशनी)
(ब) ज१-माज्जलिस्थायशल्यं (—मार्जारस्याजशल्यं)
८६. (ब) ज. मो. शुनः शशकशल्यं (—शुनः शल्यं नृशल्यं वा)
८८. (अ) ज१, ज. मो. तवर्गो (—पवर्गो)
(ब) ज१-आखोमूर्षस्य (—आखोर्मेषस्य)
ज१-हस्तस्यात् (—हस्तखात)
८९. (अ) ज१-गजस्यशल्य, (—गजस्याश्वस्य)
(ब) ज२-पुरुषखात (—पूर्वखात)
९०. (अ) ज१-षवर्गो (श्वर्गो) ज१-ऐशान्यां (त्वैशान्यां)
९१. (अ) ज१-प्रश्नेषूच्चरिगे, ज. मो. प्रश्नेषुच्चरिते (—प्रश्नेत्युच्चारिते)
(ब) ज१-पूर्वखात, ज. मो. पुरुषखात (—नरखात)
९२. (अ) ज१-प्रश्नेषूच्चरिते (—प्रश्नेऽप्युच्चारिते)
९३. (ब) नवशत्यथा (—नवशालयः)
९४. (ब) ज१-सतमिता (—सप्तमिताः)
ज१-शाला (—शालाः)
९५. (अ) ज१-ताराश्चापि (—ताश्चापि)
(ब) ज१-दमनां (—भेदानां)
९८. (ब) ज१-सुवक्रं (—सुवक्त्रं)
९९. (अ) ज१-शश्वत्षोडशं, (—चैवषोडशं)
(ब) ज१-इत्येकशाला (—इत्येवंशाला)
१०३. (अ) ज१-सर्वक्षप्रदं (—सर्वक्षयप्रदं)
१०४. (अ) ज१-सौधांक (—सौधसंज्ञं) ज१-परातले (—धरातलम्)
(ब) ज१-स्वर्णाः शेखरा (—स्वर्णशिखरः)
१०५. (अ) ज१-शदनं (—सदनं)
(ब) ज१-शशचत्सधरोग्य (—शश्वदधनारोग्य)

१०७-१०९. ज१-पाठोनास्ति
११०.(ब) ज१-आयुसं (—आसुरं)
१११.(अ-ब) ज१-पाठोनास्ति
११४.(अ) ज१-यथा (—यदा)
(ब) ज१-दुःखशोकपदंसदा (—दुःखशोक भयप्रदम्)
११५.(अ) ज१-यथा (—यदा)
(ब) ज१-घतद्गेहं (—च तद्गेहं)
११६.(अ) ज१-चाथ (—वाऽथ)
(ब) ज१-धनदाख्यं प्रदं (—धनधान्यप्रदं)
ज१-सुखंप्रदं (—सुखावहम्)
११७.(अ-ब) ज१-पाठोनास्ति
११८.(अ) ज१-यथा (—यदा)
(ब) ज१-नामत्दगेहं (—नामसदनं)
११९.(अ) ज१-सदा (—यदा)
(ब) ज१-सद्गेहं (—सदनं)
१२१.(अ) ज१-सहितं (—भवति)
ज१-विजय यदा (—सहितं यदा)
(ब) ज१-सदुप्तविजयं (—तद्भवं विजयं)
१२२.(अ) ज१-येकशाला (—एकशाला)
(ब) ज१-नामतद्धितोमुखं (—नाम्ना तद्विश्वतोमुखम्)
१२३.(अ) ज१-तदेवाग्रवरैर्युक्तं (—तदैव प्रवरैर्युक्तं)
(ब) ज१-पर्वकाम (—सर्वकाम)
१२४.(अ) ज१-स्त्रीमिलाद्वयं (—श्रीनिलयाह्वयम्)
(ब) ज१-स्त्रीपदं (—श्रीप्रदं)
१२५.(अ) ज१-द्वारहीनं (—द्वारविहीनं) ज१-पदाद्वयं (—पदाह्वयम्)
१२६.(अ) ज१-व्यग्रस्य (—व्याग्रस्य)
१२७.(अ) ज१-शेष (—शेखर) (ब) ज१-ग्रेहं (—गेहं)
ज१-सर्वब्रह्म (—सर्वरत्न)
१२८.(ब) ज१-परीक्षयेत् (—परीक्षणम्)
१२९.(अ) ज१-विशाला (—द्विशालं) ज१-कमलकरा (—कमलाकरम्)
(ब) ज१-कामदः (—नामतः) ज१-श्रीपदा (—श्रीप्रदं)
ज१-सर्वभोगदा (—सर्वगोगदम्)
१३०.(अ) ज१-हृद्रोगरोगमथवा (—हृद्रोगदुःखभयदमथवा)
ज१-चौरभीतिप्रदंसदा (—चौरभीतिदम्)

१३१.(अ) ज१-धर्मिणी (—कर्षिणी) ज१-भीतदं (—भीतिदा)
१३२.(अ) ज१-सदंष्टिका (—सर्पदंष्ट्रिका)
(ब) ज१-विषेभ्यो (—विशेष)
१३९.(अ) ज१-शत्रु (—शश्वत्)
१४१.(ब) ज१-वर्तिता (—कीर्तिदा) ज१-ताज्ञा (—राज्ञां)
१४२.(अ) ज१-हरितदाद्वया (—हरिपदाह्वयम्)
(ब) ज१-नाज्ञा (—राज्ञां) ज१-मुख्यतरा (—मुख्यतरं)
१४४.(अ) ज१-कुमुदाद्वया (—कुसुमाह्वया)
(ब) ज१-पुत्रवृद्धि (—मित्रवृद्धि)
१४५.(अ) ज१-श्वत् (—शश्वत्)
१४६.(ब) ज१-साथ (—सा च)
१४७.(अ) ज१-स्वर्णदान्वप्र (—स्वर्णदास्वपरं)
१४८.(अ) ज१-सूर्यमितिक्षयेत् (—सूर्य्यं निरीक्षयेत्)
(ब) ज१-व्ययात्या (—क्षयाख्या) ज१-नामतस्त्वथ (—नामतस्तथा)
१४९.(अ) ज१-धनदासदा (—धननाशदा)
१५१.(ब) ज१-चतुर्भद्रा (—चतुर्भेदा)
१५३.(अ) ज१-वसू (—वस्तुं) ज१-मयप्रदा (—प्रदासंदा)
१५४.(अ) ज१-निश्चत्यं (—निखिल)
१५५.(अ) ज१-भूयादछ्रीयदान (—भूषणश्रीप्रदा)
१५६.(ब) ज१-शालापंचमानि (—शालामध्यभागे)
१५७.(ब) ज१-मुहोपद (—कुबेरपद)
१५८.(अ) ज१-सर्वसंपदा (—सर्वसम्पदाम्)
(ब) ज१-येन् (—वै)
१५९.(स) ज१-सर्वरत्नमयं (—सर्वरत्नालयं)
१६०.(ब) ज१-तद्गृहंशेषरपदं (—तच्चन्द्रशेखरपदं)
ज१-पदं (—भृशम्)
१६१.(अ) ज१-कोणेषुखचरं (—कोणेष्वयचरं)
ज१-संज्ञकं (—संज्ञितम्)
१६२.(ब) ज१-जातानि जातानि (—जातानितानि)
ज१-प्रस्थत (—प्रस्तारत:)
१६४.(अ) ज१-पंचवालयां (—पवनालयम्)
१६५.(अ) ज१-धान्यमन्दिरं (—पशुमन्दिरम्)
(ब) ज१-सप्त (सद्म)
१६६.(अ) ज१-धूमधृम् (—ध्वजधूम)

(ब) ज१-तगृहेशुभा (—स्वगृहेशुभा:)

१६७.(अ) ज१-इन्द्राग्न्योमेथुनं (—ऐन्द्राग्न्योर्मन्थनं)

ज१-याभ्याग्न्योर्द्धतमंदिरं (—याम्याग्न्यो रतिमन्दिरम्)

१६८.(ब) ज१-रोदनं मंदिरं तत: (—सदनं रोदनं तत:)

१६९.(ब) ज१-मन्दिरं सदा (—सदनं सदा)

१७१.(अ) ज१-धृजसिंहो (—ध्वज: सिंहे)

१७३.(अ) ज१-क्रमेण च (—क्रमेण वै)

(ब) कौरजन्यकरं (—कौरजन्यकम्)

१७५.(अ) ज१-सतुर्मार्गविविस्तरं (—स्वचतुर्भागविस्तारे)

(ब) ज१-मितिमेषां (—मितरेषां)

१७७-७८. ज१-पाठोनास्ति

१८०.(अ) ज१-सदनं (—मन्दिरं)

१८२. मु. पु. ज१-अङ्गत्र (—अन्यत्र)

१८४.(अ) ज१-पक्ष (—प्लक्ष)

१८५.(अ) ज१-कर्तुणद्रुमा (—कतकद्रुमा:)

(ब) ज१-वृथाश्च (—वृक्षाश्च)

१८६.(अ) ज१-कुल्याश्च (—शालाश्च)

(ब) ज१-वापितृ (—याम्येपितु:)

१८७.(अ) ज१-कार्ययता: समा: (—कार्य्याश्चनाऽसमा:)

(ब) ज१-नात्युच्छिंतां (—नात्युच्छ्रितं)

ज१-नातुनीचं (—नातिनीचं)

१८८.(ब) ज१-पत्रेश्च (—पर्णेश्च)

१८९.(अ) स्त्रीनाशो (—स्त्रीहानि)

(ब) प्रागा:दित: (—प्राच्यादित:)

१९१.(अ) ज१-बहुलचंपका (—बकुलचम्पका:)

१९३.(ब) ज१-शुभो (—शुभे)

१९४.(ब) ज१-कदीझषा (—कदलीस्तथा)

१९५.(ब) ज१-निर्माणं (—निर्माणे)

ज१-प्रवेसे (—प्रवेशे) ज१-त्रिविदोमिवा (—त्रिविधेऽपि च)

१९७.(अ) ज१-शुशोभनम् (—सुशोभनम्)

२००.(ब) ज१-आकाशवाधूपरत: (—आकाशवायुपरत:)

ज१-यमादेवपदेश्वरौ (—क्रमादेकपदेश्वरा:)

२०१.(ब) ज१-पंचमध्यगा: (—पञ्चमध्यमा:)

२०३.(ब) ज१-तत्राधस्थ: (—तदग्रस्थ:)

२०४.(अ) ज१-शाचित्र (—सावित्र)

(ब) ज१-नवपनौ (—नवपदो)

२१०.(अ) ज१-गृहक्षतः (—गृहर्क्षतः)

(ब) ज१-सस्तथा (—स्थाप्यो)

२११.(ब) ज१-रोगाहि (—रोगोऽहि)

२१२.(ब) ज१-रध्रस्तव च (—रन्ध्रस्तथैव च)

२१३.(अ) ज१-यंनपदो (—नवपदो) ज१-तस्यः (—तस्य)

मु. पु. तस्थौतस्थ (—तस्याष्टौचे)

२१४.(ब) ज१-मित्रोथ (—मित्रोऽथ)

२१५.(ब) ज१-सुनाभिः (—स्थाननामानि)

२१७.(ब) ज१-भूरिवेधः च वयिः (—भूरिनैवेद्यैर्वाद्यैः)

२२२.(अ) ज१-कृत्वाधः (—कृत्वा यः)

ज१-मन्दिरं (—मन्दिरे)

(ब) ज१-सर्वसंकटा (—सर्वसंकटान्)

पुष्पिका : इति श्री वृद्धवसिष्ठ ब्रह्मर्षि विरचितायां महासंहितायां वास्तुपूजानाम उणतलीध्याय:॥३९॥

***

# ४०

# अथ सुरप्रतिष्ठाध्यायः

### सुरप्रतिष्ठामुहूर्त्त कथन

**अथ प्रतिष्ठां कथयामि सम्यक्छिवस्य विष्णोश्च तथापरेषाम्।**
**सौम्यायने देवगुरौ च शुक्रे संदृश्यमाने यदितारकाणाम्॥१॥**

अब मैं भलीभाँति शिव, विष्णु तथा अन्य सभी देवताओं की प्रतिष्ठा के लिए मुहूर्त्त कहता हूँ। देव प्रतिष्ठा उत्तरायण, बृहस्पति एवं शुक्र के उदय रहते करनी चाहिए॥१॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि देवानां स्थापनं शुभम्।
सौम्यायने सिते जीवे दृश्यमाने नभस्तले॥
—(क. सं., अ. ४० श्लोक १)

### प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्तमास

**मासे तपस्ये तपसि प्रतिष्ठा धनायुरारोग्यकरी च कर्त्तुः।**
**चैत्रे महारुग्भयदा च शुक्रे समाधवे पुत्रधनप्रदा सा॥२॥**

माघ एवं फाल्गुन मासों में देव प्रतिष्ठा कर्त्ता के लिए धन, आयु तथा आरोग्य को देने वाली होती है, जबकि चैत्रमास में देव प्रतिष्ठा करने से भयङ्कर रोग एवं भय प्राप्त होता है। ज्येष्ठ एवं वैशाख मास में देव प्रतिष्ठा करने से पुत्र एवं धन की प्राप्ति होती है॥२॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

माघ फाल्गुन वैशाखज्येष्ठमासाः शुभप्रदाः।
स्थापने शुभदः शुक्लः कृष्णपक्षार्धसंयुतः॥
—(क. सं., अ. ४० श्लोक २)

**आषाढ़मासादि चतुष्टये च कलत्रसन्तानविनाशदा च।**
**ऊर्जे च कर्तुर्निधनप्रदा च सौम्ये सपौषेऽखिलदुःखदा सा॥३॥**

आषाढ़ मास से आश्विन तक देवप्रतिष्ठा पत्नी तथा सन्तान का विनाश करने वाली होती है। कार्त्तिक मास में की गई देवप्रतिष्ठा कर्त्ता के लिए मृत्युप्रद होती है। उत्तरायण हो परन्तु पौष मास हो तो देव प्रतिष्ठा सम्पूर्ण दुःखों को देने वाली होती है॥३॥

### दोनों पक्षों में देवप्रतिष्ठा विधान

**बलक्षपक्षः शुभदः समस्तः सदैव तत्राद्यदिनं विहाय।**
**अन्त्यत्रिभागं परिहृत्यकृष्णो पक्षोऽपि शस्तः खलुपक्षयोश्च॥४॥**

शुक्लपक्ष प्रतिपदा को छोड़कर सम्पूर्ण शुक्लपक्ष तथा कृष्णपक्ष के अन्तिम तृतीय भाग का छोड़कर दोनों पक्षों में देव प्रतिष्ठा शुभ होती है॥४॥

### प्रतिष्ठा के लिए निन्दयोग

**रिक्तावमान्यक्तदिनेष्वनिन्द्ययोगेषु वैनाशिक वर्जितेषु।**
**दिने महादोषविवर्जिते च शशांकतारा बलसञ्युतेऽपि॥५॥**

रिक्ता तिथि (४,९,१४) अमावस, क्षयतिथि नहीं कहे गए दिन, निन्द्ययोग, वैनाशिक नक्षत्र (जन्म के नक्षत्र से तेईसवां नक्षत्र) में प्रतिष्ठा। महादोष विवर्जित दिन में और चन्द्र-तारा बल युक्त होने पर भी उक्त योग में प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए॥५॥

### देवस्थापना

**देवस्य यस्योडुतिथिप्रशस्ते संस्थाने कर्मणि वासरश्च।**
**कर्तुर्दिनेशस्य बलं सदैव ग्रामधिपग्रामबलं विचार्यम्॥६॥**

जिस देवता का जो नक्षत्र, तिथिवार प्रतिष्ठा के लिए प्रशस्त हो, कर्त्ता का सूर्य बलशाली होने पर ग्राम के अधिपति का सदैव ग्राम बल विचार करके ही देव स्थापना का कार्य शुभ होता है॥६॥

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

या तिथिर्यस्य देवस्य तस्य सा शुभदातिथिः।
मासाद्यदिवस रिक्काममावास्यां दिनक्षयम्॥

—(क. सं., अ. ४० श्लोक ३)

**नारदः–**

यद्दिनं यस्य देवस्य तद्दिने तस्य संस्थितिः।
द्वितीयादि द्वयोः पंचम्यादितस्तिसृषु क्रमात्॥
दशम्यादेश्चतसृषु पौर्णमास्यां विशेषतः॥

—(वृ. दै. रञ्जनम्, पृ. ५२८)

### देव प्रतिष्ठा में प्रयुक्त नक्षत्र

**हस्तत्रये मित्रहरित्रये च पौष्णद्वयादित्यसुरेज्यभेषु।**
**तिस्त्रोत्तराधातृशशांक भेषु सर्वामरस्थापनमुत्तमं स्यात्॥७॥**

हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, ज्येष्ठा, मूला, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा,

रेवती, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, तीनों उत्तरा, रोहिणी, मृगशिरा नक्षत्रों में सभी देवताओं की प्रतिष्ठा उत्तम कही है।।७।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

धात्रीतनयवारंच स्थापने परिवर्जयेत्।
मूलेन्द्राहि त्रिपूर्वाग्नि द्विदैवपितृयाम्यभम्।।
साद्रं त्यक्तान्यधिष्ण्येषु सुराणां स्थापनं शुभम्।
कर्त्तुः सूर्य बलोपेते चन्द्रतारा बलान्विते।।

—(क. सं., अ. ४० श्लोक ४-५)

## देव प्रतिष्ठा में वारफल

**कीर्तिप्रदं क्षेमकरं कृशानोर्भयप्रदं वृद्धिकरं दृढं च।**
**लक्ष्मीकरं सुस्थिरदंत्विनादिवारेषु संस्थापनमामनन्ति।।८।।**

देव प्रतिष्ठा रविवार में हो तो कीर्तिप्रद, सोमवार कल्याणकारी, मङ्गलवार को अग्निभय, बुधवार वृद्धिकारक, गुरुवार में दृढ़ता, शुक्रवार लक्ष्मीप्रद और शनिवार सुन्दर स्थिरता होती है।।८।।

## लग्न शुद्धि विचार

**पञ्चाङ्ग शुद्धौ दिवसे दिनस्य पूर्वार्द्धभागे शुभदे मुहूर्त्ते।**
**शुभग्रहैर्वीक्षितसंयुते वा न नैधने नैधनशुद्धिलग्ने।।९।।**

पञ्चाङ्ग से शुद्धि दिन, दिन के पूर्वार्द्ध अर्थात् १२ बजे से पूर्व, शुभ मुहूर्त्त में, शुभग्रह से युक्त एवं दृष्ट लग्न में प्रतिष्ठा करनी चाहिए, परन्तु जन्मलग्न अष्टम या राशि से अष्टम लग्न होने पर प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए।।९।।

क्रमागतः–

कश्यपः–

पंचाङ्गशुद्धिदिवसे पूर्वाह्ले नाष्टमोदये।
पञ्चेष्टिकयुते लग्नेऽप्यष्टमे शुद्धिसंयुते।।

—(क. सं., अ. ४० श्लोक ६)

नारदः–

शुभलग्ने शुभांशे च कर्तुर्न निधनोदये।
राशयः सकलाः श्रेष्ठाः शुभग्रहयुतेक्षिते।।
गुणाधिकतरे लग्ने दोषेत्यल्पतरे यदि।
सुराणां स्थापनं तत्र कर्तुरिष्टार्थ सिद्धिदम्।।

—(वृ. दै. रञ्जनम्, पृ. सं. ५३३)

### देवप्रतिष्ठा के लिए इष्टग्रह

**पञ्चेष्टिके जीवशशांक सूर्यमुख्यग्रहैः सौम्यनवांशयुक्तैः।**
**लग्ने स्थिरे चोभयराशिलग्ने नवांशके चोभयभे स्थिरे वा॥१०॥**

पाँच इष्ट ग्रह अर्थात् देवगुरु बृहस्पति, चन्द्र, सूर्यादि मुख्य ग्रहों के शुभ नवांश में स्थित होने पर, इष्ट स्थान में सिद्ध होने पर स्थिर लग्न या द्विस्वभाव राशि लग्न में अथवा द्विस्वभाव नवांश में या स्थिर राशि के नवांश में देवप्रतिष्ठा करनी चाहिए॥१०॥

### चरराशिलग्न एवं चर नवांश में प्रतिष्ठा निषेध

**चरोदये लग्नगते न कार्यं संस्थापनं नैव चरांशकेऽपि।**
**चरोऽपि मुख्यः स तुलांशकश्च सदा मृदुत्वात्सुरसन्निवेशे॥११॥**

चरराशि के लग्न तथा चर नवांश में देव प्रतिष्ठा नहीं करनी चाहिए, परन्तु चर राशि का लग्न पूर्ण अंशों का हो तो शुभ मानकर सदा देव प्रतिष्ठा करनी चाहिए॥११॥

### प्रतिष्ठा में शुभाशुभ ग्रहों का बलाबल

**सूर्येन्दुभौमावर्यहिकेतवश्चलग्नस्थिता नैधनदाश्चकर्त्तुः।**
**सौम्य ग्रहा लग्नगताः सदा ते त्वायुर्धनारोग्यकराश्च नूनम्॥१२॥**

लग्न में सूर्य, चन्द्रमा, मङ्गल, शनि, राहु तथा केतु हों तो प्रतिष्ठा कर्त्ता को मृत्यु देने वाले होते हैं; परन्तु शुभग्रह लग्न में हों तो निश्चय से प्रतिष्ठा कर्त्ता को सर्वदा आयु, धन और आरोग्य देते हैं॥१२॥

क्रमागतः–

कश्यपः–

शुभग्रहेक्षिते युक्ते न पापैरीक्षिते युते।
सूर्येन्दुकुजराह्वर्कि केतवो लग्नगायदि॥
—(क. सं., अ. ४० श्लोक ७)

**लग्नाद् द्वितीये शुभखेचरेन्द्राश्चचन्द्रश्च पुत्रार्थ शुभप्रदा स्युः।**
**तत्रैव पापः प्रतिपक्षदुःखशोकप्रदा व्याधिकराः सदैव॥१३॥**

देव प्रतिष्ठा लग्न से द्वितीय भाव में शुभग्रह अथवा चन्द्रमा स्थित हो तो पुत्र, धन तथा शुभ कहे हैं। यदि वहीं पर अर्थात् द्वितीय भाव में पापग्रहों की स्थिति हो तो सदैव शत्रु, दुःख, शोक और रोग देने वाले होते हैं॥१३॥

क्रमागतः–

कश्यपः–

कर्त्तुर्मृत्यु प्रदाः सौम्याश्चायुःश्रीपुत्रपौत्रदाः।
द्वितीये वित्तदाः सौम्याः स चन्द्रानेष्टदाः परे॥

तृतीयस्थानगाः सर्वे ग्रहाः श्रीपुत्र सौख्यदाः।
चतुर्थे लाभदाः सौम्याः क्रूरश्चन्द्रश्च दुःखदाः।।
—(क. सं., अ. ४० श्लोक ८-९)

**असौम्यसौम्या हिमदीधितिश्च तृतीयगालाभकरा नितान्तम्।**
**चतुर्थगालाभकराश्च सौम्याश्चन्द्रश्च पापा विसुखप्रदाःस्युः।।१४।।**

प्रतिष्ठा लग्न से तृतीय स्थान में शुभाशुभ ग्रहों की स्थिति निरन्तर लाभप्रद होती है। चौथे भाव में गए हुए शुभग्रह एवं चन्द्रमा लाभप्रद होते हैं, परन्तु पापग्रह हों तो कर्त्ता को सुख से रहित करते हैं।।१४।।

**आनन्ददाः पञ्चमगाश्चसौम्याविधुश्चपाप रिपुभीतिदाः स्युः।**
**शत्रुस्थिताः शत्रुविनाशदाः स्युः क्रूरासचन्द्राभयदास्तु सौम्याः।।१५।।**

देव प्रतिष्ठा लग्न में पञ्चम स्थान में शुभ ग्रह एवं चन्द्रमा हों तो आनन्ददायक होते हैं, जबकि पञ्चम स्थान में पापग्रह शत्रु से भय देने वाले होते हैं। यदि पापग्रह छठे स्थान में हों तो शत्रु का विनाश करते हैं, किन्तु शुभग्रह चन्द्रमा सहित षष्ठ स्थान में हों तो भय देने वाले होते हैं।।१५।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

पञ्चमे निन्दिताः क्रूरा शुभाः पुत्रधनप्रदाः।
पुत्रदस्तत्रपूर्णेन्दुः क्षीणेन्दु पुत्र नाशदः।।
शत्रुगास्तत्प्रदाः सौम्याः क्रूराः शत्रु विनाशदाः।
पूर्णः क्षीणोऽपि वा चन्द्रः षष्ठे शत्रुभयप्रदा।।
—(क. सं., अ. ४० श्लोक १०-११)

**द्यूनस्थिताः सेन्दुशुभा दिशन्ति लाभं परे प्रीतिहराः सदैव।**
**सर्वे ग्रहा नैधनदास्त्वजस्त्रं सौम्यास्त्वसौम्याः खलुमृत्युसंस्थाः।।१६।।**

प्रतिष्ठा लग्न से सप्तम स्थान में चन्द्रमा सहित शुभग्रह हों तो लाभप्रद होते हैं; किन्तु पापग्रह हों तो सर्वदा प्रीति का हरण करते हैं! सभी शुभाशुभ ग्रह अष्टम स्थान में अथवा अष्टम चन्द्रमा निश्चित ही मृत्युप्रद होते हैं।।१६।।

**क्रमागतः-**

**कश्यपः-**

स चन्द्राः सप्तमे सौम्याः श्रीप्रदा व्याधिदाः परे।
अष्टमस्थानगाः सर्वेकर्तुर्मृत्यु प्रदाः सदा।।
—(क. सं., अ. ४० श्लोक १२)

**नवमस्थानगाः सौम्याः सेन्दवो विजयप्रदाः।**
**असौम्या नवमस्थाने दुःखशोकभयप्रदाः।।१७।।**

देवप्रतिष्ठा में नवम स्थान में शुभग्रह अथवा चन्द्रमा हो तो विजयदाता और नवम स्थान में पापग्रह दुःख, शोक और भय को देते हैं॥१७॥

क्रमागतः-

कश्यपः-

श्रीप्रदाः सेन्दवः सौम्याः धर्मे क्रूरागदप्रदाः।
सचन्द्राः कर्मगाः सौम्याः कीर्तिदाः क्लेशदाऽपरा॥

—(क. सं., अ. ४० श्लोक १३)

**दशमस्थानगाश्चन्द्रसहिताः शुभखेचराः।**
**अर्थलाभकराः पापा व्याधिशत्रुभयप्रदाः॥१८॥**

प्रतिष्ठा लग्न से दशम स्थान में चन्द्रमा सहित शुभग्रह हों तो धन लाभप्रद होते हैं; किन्तु पापग्रह रोग, शत्रु एवं भयप्रद होते हैं॥१८॥

**लाभस्थानगताः सर्वे खेचरा बहुलाभदाः।**
**व्ययदा व्ययगाः पापाः सेन्दवः शोकदाशुभाः॥१९॥**

प्रतिष्ठालग्न से एकादश स्थान में सभी ग्रह बहुत लाभप्रद होते हैं। चन्द्रमा सहित पापग्रह द्वादश मे हों तो कर्त्ता के लिए व्यय करवाने वाले तथा शुभग्रह हों तो शोक देने वाले होते हैं॥१९॥

क्रमागतः-

कश्यपः-

लाभस्थानगताः सर्वे ग्रहाः सर्वसमृद्धिदः।
व्ययस्थानगताः सर्वे बहुव्ययकरा ग्रहाः॥

—(क. सं., अ. ४० श्लोक-१४)

**एकोऽपि जीवो बलवान्तनुस्थः सितोऽपि सौम्योऽप्यथवा बलीचेत्।**
**दोषानशेषान्विनिहन्ति सद्यः स्कन्दो यथा तारकदैत्यवर्गम्॥२०॥**

प्रतिष्ठालग्न में बृहस्पति, शुक्र तथा बुध में से एक भी बलवान होकर स्थित हो तो सभी दोषों को वैसे ही नाश करते हैं, जैसे स्वामी कार्त्तिकेय तारकासुर दैत्यवर्ग को नष्ट करते हैं॥२०॥

**हन्त्यर्थहीनं त्वमरप्रतिष्ठा कर्त्तारमृत्त्विग्वरविप्रमुख्यम्।**
**मन्त्रैर्विहीना त्वथ कर्तृभार्यां यदा यदा लक्षणहानितश्च॥२१॥**

**इति श्रीब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठविरचितायां संहितायां सुरप्रतिष्ठाध्यायश्चत्वारिंशः॥४०॥**

धन से हीन देव प्रतिष्ठा कर्त्ता, अमन्त्रक, ऋत्विज, श्रेष्ठ ब्राह्मण मन्त्रविहीन, शुभ लक्षणों से हीन कर्त्ता की पत्नी इन सभी को प्रतिष्ठा शुभफलप्रद नहीं होती॥२१॥

वृद्धवसिष्ठ संहिता के "**सुरप्रतिष्ठाध्याय**" की 'नारायणी' हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥४०॥

**क्रमागत:–**

**कश्यप:–**

हन्त्यर्थहीनं कर्त्तारं मन्त्रहीना सदर्त्विजम्।
स्त्रियं लक्षणहीना तु न प्रतिष्ठा समो रिपु:।।

—(क. सं., अ. ४० श्लोक)

**नारद:–**

हन्त्यर्थहीने कर्त्तारं मन्त्र हीने तु ऋत्विजम्।
शिल्पिनं लक्षणैर्हीने न प्रतिष्ठासमो रिपु:।।

—(वृ.दै. रञ्जनम् पृ. सं. ५३९)

***

## पाठान्तरम्

०१. (अ) ज१-परिवारिकाणां, ज. मो.-दिवारकाणाम् मु. पु. यदिवारकाणाम् (—यदितारकाणाम्)
०२. (ब) ज१-शुक्ले (—शुक्रे) धनदास्यात् (—धनप्रदासा)
०३. (ब) ज१-दु:खदास्यात् (—दु:खदा सा)
०४. (अ) ज१-बलक्ष: (—बलक्षपक्ष:)
(ब) ज१-सस्त: (–शस्त:)
०५. (ब) ज१-संयुतेपि (—सञ्युतेऽपि)
०६. ज१-पाठोनास्ति
०८. मु. पु. नृपाणाम् (—दृढं च)
०९. (ब) ज१-शुद्ध (—शुद्धि)
१०. (अ) ज१-नवांसयुक्ते (—नवांश युक्तै:)
१२. (अ) ज. मो. नैधनगाश्च (—नैधनदाश्च)
१३. (अ) ज१-ज.मो. सुखप्रदास्यु: (—शुभप्रदास्यु:)
(ब) मु. पु.-पतिपक्ष (—प्रतिपक्ष)
१४. (ब) ज१-विशुखप्रदा, ज. मो. विसुखपदा (—विसुखप्रदास्यु:)
१५. (ब) ज१-भगदाश्च (—भयदास्तु)
१६. (अ) ज१-सदेवा (—सदैव)
२१. (ब) ज१-कर्त्तुमार्या (—कर्तृभार्या)
हीनतश्च (—हानितश्च)

पुष्पिका : ज१-इति श्री वृद्धवासिष्ठब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां सुरप्रतिष्ठाध्याय:।। ४०।।

***

## ४१

# अथ गुणनिरूपणाध्यायः

### काल की महिमा

**काल एव ईश्वरः साक्षादीश्वरः काल एव सः।**
**विद्यते चेश्वरज्ञानी चेत्कालज्ञः स एव वै॥१॥**

### नारायणी टीका

काल ही ईश्वरस्वरूप है तथा साक्षात् ईश्वर ही काल है। जो ज्ञानी पुरुष काल तथा ईश्वर में एकत्व समझता है, वस्तुतः वही काल का ज्ञाता होता है॥१॥

**तस्मात्कालं न जानन्ति यागिनोऽपि महीतले।**
**तथापि देहिनां नूनं हिताय कमलासनः॥२॥**

इसीलिए योगी लोग भी इस पृथ्वी पर काल को नहीं जानते। फिर भी श्री ब्रह्मा जी ने मनुष्यों की निश्चित भलाई के लिए काल के सन्दर्भ में कहा है॥२॥

**भचक्रभ्रमणात्स्थूलकालं कल्पितवान्प्रभुः।**
**प्राणादिदिनमासादि युगान्तं चैव भग्रहैः॥३॥**

राशि नक्षत्रादि चक्र के भ्रमण से श्रीब्रह्मा जी ने स्थूल समय को कल्पित किया है। सांस, श्वास, दिन, मासादि युगान्त तक राशि नक्षत्रों के द्वारा—॥३॥

**शुभाशुभग्रहोत्पातपञ्चाङ्गतिथिवारजैः।**
**तिथिनक्षत्रवारोत्थवारनक्षत्रपूर्वकैः॥४॥**

शुभाशुभ ग्रह उत्पात, पञ्चाङ्ग तिथि एवं वार से उत्पन्न तिथि नक्षत्र तथा वार नक्षत्र पूर्वक—॥४॥

**एवमाद्यैर्गुणैर्दोषैनित्यं कालः समन्वितः।**
**तस्मात् कालगुणान्दोषान्कथयामि पृथक् पृथक्॥५॥**

अनेक गुणदोषों से युक्त प्रतिदिन काल प्रतिष्ठित है। अतः काल के गुण-दोषों को अब भिन्न-भिन्न कहता हूँ॥५॥

### नन्दातिथियों का नक्षत्र-वारादि फल

**नन्दास्वम्बुपवित्राग्निरौद्रविष्णूत्तरात्रयम् ।**
**वारयोगा भवन्त्येते सर्वकार्ये शुभप्रदाः॥६॥**

नन्दा तिथियां (१,६,११) पूर्वाषाढ़ा, ज्येष्ठा, कृत्तिका, आर्द्रा, श्रवण,

उत्तराफाल्गुनी, उ. षा. उ. भा. इत्यादि नक्षत्रों से शुभवारों का योग सभी कार्यों में शुभफलप्रद कहे हैं॥६॥

भद्रातिथियों से नक्षत्रों का योगफल

भद्रास्वदितिदैत्येज्ये कमलासनतारकाः।
श्रेष्ठयोगा भवन्त्येते सर्वदा मङ्गलप्रदाः॥७॥

भद्रातिथियों (२,७,१२) में पुनर्वसु, मूल, पुष्य एवं रोहिणी नक्षत्र श्रेष्ठ योगकारक होते हुए सदैव मङ्गलप्रद होते हैं॥७॥

जयातिथियों से नक्षत्रों का फल

जयासु वसुसोमार्कदस्त्रान्त्येज्यभत्र्युत्तराः।
शुभयोगास्त्वमी नृणां मङ्गले मङ्गलप्रदाः॥८॥

जया तिथियों (३,८,१३) में धनिष्ठा, मृगशिरा, हस्त, अश्विनी, रेवती, पुष्य, उ. फा., उ. षा., उ. भा. ये शुभयोग कारक होते हुए मनुष्यों के माङ्गलिक कार्यों में मङ्गलकारक होते हैं॥८॥

रिक्ता तिथियों से नक्षत्रों का फल

रिक्तास्वीज्यद्विदैवेंद्रसार्प वायव्यतारकाः।
तदा कल्याणयोगाः स्युः सर्वकार्येषु शोभनाः॥९॥

रिक्ता तिथियों (४,९,१४) में पुष्य, विशाखा, ज्येष्ठा, आश्लेषा एवं स्वाती नक्षत्र कल्याण योगकारक होते हुए सभी कार्यों में शुभता प्रदान करते हैं॥९॥

पूर्णातिथियों से नक्षत्रों का फल

पूर्णासु पुष्यपौष्णाद्यवसुवारीशतारकाः।
वर्द्धमानाह्वया योगाः शुभकार्यप्रवृद्धिदाः॥१०॥

पूर्णा तिथियों (५,१०,१५) में पुष्य, रेवती, अश्विनी, धनिष्ठा, शतभिषा ये सभी वर्द्धमान योगकारक होते हुए शुभ कार्यों में वृद्धिप्रद होते हैं॥१०॥

सौम्ययोग फल

उत्तरात्रयपौष्णोज्यमूलार्कहरितारकाः ।
चित्रेन्द्वदितयः सौम्या योगाः स्युर्भानुवासरे॥११॥

उत्तरात्रय (उ. फा. उ. षा. उ. भा.) रेवती, पुष्य, मूल, हस्त, श्रवण, चित्रा, मृगशिरा, पुनर्वसु ये सभी नक्षत्र रविवार संयोग से सौम्य योगकारक होते हैं॥११॥

महायोग

सोमवारे दितिमरुद्वैष्णवत्रयतारकाः।
रोहिणीद्वयशाक्रेज्या महायोगाः प्रकीर्तिताः॥१२॥

सोमवार को पुनर्वसु, स्वाती, श्रवण, धनिष्ठा, शततारका, रोहिणी, मृगशिरा, ज्येष्ठा तथा पुष्य—ये सभी नक्षत्र होने पर महायोग कारक होते हैं॥१२॥

**पूर्णयोग**

**उत्तरात्रयमैत्रेज्यदस्रांत्येंद्वग्नि तारकाः।**
**भौमवारेण सञ्युक्ताः पूर्णयोगाः प्रकीर्तिताः॥१३॥**

उत्तरात्रय (उ. फा. उ. षा., उ. भा.) अनुराधा, पुष्य, अश्विनी, रेवती, मृगशिरा, कृत्तिकादि नक्षत्र मङ्गलवार को हों तो यह पूर्णयोग कारक कहे हैं॥१३॥

**शङ्खयोग**

**बुधवारेऽसुरेज्येदुधातृवह्नित्रिरुत्तराः ।**
**हस्तत्रयानलास्ताराः शङ्खयोगाः प्रकीर्तिताः॥१४॥**

बुधवार को मूल, पुष्य, मृगशिरा, रोहिणी, कृत्तिका, तीनों उत्तरा, हस्त, चित्रा, स्वाती तथा पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रों की शङ्खयोग संज्ञा कही है॥१४॥

**अमृतयोग**

**गुरुवारेऽदितीज्यार्कत्रयमित्रान्त्यतारकाः ।**
**श्रवणत्रयमित्येते योगाश्चामृतसंज्ञकाः॥१५॥**

बृहस्पतिवार को पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, चित्रा, स्वाती, अनुराधा, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा इत्यादि नक्षत्रों का योग अमृत संज्ञक कहा है॥१५॥

**पद्मयोग**

**रेवतीद्वयहस्तेन्दुधातृमित्रत्रिरुत्तराः ।**
**शुक्रवारेण सञ्युक्ताः पद्मयोगाः प्रकीर्तिताः॥१६॥**

रेवती, अश्विनी, हस्त, मृगशिरा, रोहिणी, अनुराधा, उत्तरात्रय इन नक्षत्रों का शुक्रवार से संयोग पद्मयोग कारक कहा है॥१६॥

**नन्दयोग**

**रोहिणीद्वयपुष्येन्द्रविष्णुत्रयमघोत्तराः ।**
**शनिवारेण सञ्युक्ता योगाश्चानन्दसंज्ञकाः॥१७॥**

रोहिणी, मृगशिरा, पुष्य, ज्येष्ठा, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, मघा, पू. फा. इत्यादि नक्षत्रों का शनिवार से संयोग नन्द संज्ञक कहा है॥१७॥

**सिद्धियोग**

**हस्तेन्दुदस्रमित्रेज्यपौष्णपद्मज तारकाः।**
**आदित्यादिषु वारेषु सिद्धियोगः क्रमादमी॥१८॥**

हस्त, मृगशिरा, अश्विनी, अनुराधा, पुष्य, रेवती, रोहिणी ये सातों नक्षत्र सूर्यादि वारों में क्रमशः सिद्धियोग संज्ञक होते हैं॥१८॥

पीयूषयोग

**मूलहर्य्युत्तराभाद्रकृत्तिकादितयः क्रमात्।**
**भाग्यानिलाख्याः पीयूषयोगा वारेष्विनादिषु॥१९॥**

मूल, श्रवण, उत्तराभाद्रपदा, कृत्तिका, पुनर्वसु, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा ये नक्षत्र सूर्यादि वारों में क्रमशः पीयूष योग संज्ञक कहे हैं॥१९॥

कपिलयोग

**स्वतुङ्गस्वांशगो जीवो यदि लग्नसमन्वितः।**
**बलावान्वीक्षयेद्वापि योगः कपिलसंज्ञकः॥२०॥**

अपने उच्च तथा अपने नवांश में बृहस्पति लग्न में स्थित हो या बलवान होकर लग्न को देखता हो तो यह कपिल संज्ञक योग होता है॥२०॥

समुद्रयोग

**परमोच्चगतो जीवो वीक्षयेद्वा विलग्नगः।**
**समुद्रयोगो विज्ञेयो योगसद्बलसञ्युतः॥२१॥**

अपने परमोच्च में बृहस्पति लग्न में या लग्न को देखता हो तो यह समुद्रयोग श्रेष्ठबलशाली होता है, ऐसा जानना चाहिए॥२१॥

वापीयोग

**लग्नमालोकयेज्जीवस्त्वथवा लग्नगो बली।**
**वापीयोगः स विज्ञेयस्त्वधिमित्रगृहस्थितः॥२२॥**

बलशाली गुरु लग्न में स्थित हो अथवा लग्न को देखता हो या अपने अधिमित्र के घर में गया हो तो इस योग को वापीयोग समझना॥२२॥

मुसलयोग

**वीक्षयेत्सञ्युतो वापि लग्नं देवेन्द्रपूजितः।**
**स्वधिमित्रभभागस्थः स योगो मुसलाह्वयः॥२३॥**

देवगुरु बृहस्पति लग्न में स्थित हो अथवा लग्न को देखता हो या फिर अपने अधिमित्र के भाग में स्थित हो तो यह मुसल नामक योग होता है॥२३॥

वियद्योग

**मित्रराशिगतो जीवो वीक्षयेद्वा विलग्नगः।**
**वियद्योगः स विज्ञेयः कमलासन चोदितः॥२४॥**

मित्र राशि में गया हुआ बृहस्पति लग्न में या लग्न को देखता हो यह वियद् नामक योग समझना ऐसा श्रीब्रह्माजी ने कहा है॥२४॥

पुण्डरीक योग

**गुरुर्बली स्वलग्नस्थो वीक्षयेद्वा विलग्नगः।**
**पुण्डरीको महायोगः सर्वदा योगनायकः॥२५॥**

बलशाली गुरु लग्न में अथवा लग्न को देखता हो तो सदैव योगों में श्रेष्ठ पुण्डरीक महायोग समझना॥२५॥

गुणशेखर योग

**शुभवर्गस्थितो जीवः सुबली सौम्यवीक्षितः।**
**गुणशेखरसंज्ञोऽयं योगो वा केबलं बली॥२६॥**

शुभवर्ग में स्थित बृहस्पति बलवान हो तथा शुभग्रहों द्वारा देखा जा रहा हो, वस्तुतः केवल बलवान ही हो तो गुणशेखर संज्ञक योग जानना॥२६॥

**एवं शुक्रोऽपि सौम्योऽपि गुरुवद्योग कारकौ।**
**ग्रन्थविस्तार भीत्याथत्वेवं संक्षिप्य चोदितम्॥२७॥**

इसी प्रकार से शुक्र एवं बुध भी बृहस्पति की तरह योगकारक होते हैं, केवल ग्रन्थ विस्तार के भय से ही संक्षिप्त रूप से कहा है॥२७॥

गुणधूर्जटियोग

**वर्गोत्तमगतो जीवः शुक्रो वा चन्द्रजोऽपि वा।**
**गुणधूर्जटिसंज्ञोऽयं यदा ते बलिनस्तदा॥२८॥**

अपने-अपने वर्गोत्तम में बृहस्पति, शुक्र, एवं बुध स्थित हों और बलशाली भी हों तो यह योग गुणधूर्जटि संज्ञक कहा है॥२८॥

गुणभास्करयोग

**बलिनः केन्द्रगाः सौम्या भवन्ति च यदा तदा।**
**गुणभास्करसंज्ञोऽयं यदि वा लाभसंस्थिताः॥२९॥**

बलशाली शुभग्रह जब कभी क्रेन्द्र में स्थित हों अथवा एकादश भाव में हों तो यह योग गुणभास्कर संज्ञक कहा है॥२९॥

गुणकौस्तुभयोग

**त्रिकोणगा यदा सौम्याः सहोत्थ धनगाऽथवा।**
**गुणकौस्तुभसंज्ञोऽयं यदि ते बलवत्तराः॥३०॥**

शुभग्रह बलवान होकर त्रिकोण, तीसरे अथवा दूसरे भावों में हों तो यह योग गुणकौस्तुभ संज्ञक कहा है॥३०॥

चन्द्रशेखरयोग

**वर्गोत्तमगतश्चन्द्रो बलवाञ्छुभवीक्षितः।**
**लग्नमेवंविधं चेद्वा गुणानां चन्द्रशेखरः॥३१॥**

अपने वर्ग में बलवान होकर चन्द्रमा स्थित हो तथा उसको शुभग्रह देखते हों अथवा चन्द्रमा लग्न में भी इस प्रकार हो तो गुणों में सर्वश्रेष्ठ चन्द्रशेखर योग होता है॥३१॥

श्रीवत्सयोग

**त्रिषष्ठलाभगाः पापा बलिनः शुभवीक्षिताः।**
**भवन्ति यदि योगोऽयं श्रीवत्सो योगराट् प्रभुः॥३२॥**

तीसरे, छठे, एकादश भावों में बलवान पापग्रहों को शुभग्रह देखते हों तो यह सम्पूर्ण योगों का स्वामी श्रेष्ठ श्रीवत्स नामक योग होता है॥३२॥

सिंहयोग

**उच्चस्थो लाभगः सूर्यः षष्ठगो वा तृतीयगः।**
**यदि स्यात्सिंहयोगोऽयं तुङ्गांशस्थोऽपि वायदि॥३३॥**

उच्चस्थ सूर्य एकादश भाव, छठे व तीसरे स्थानों में अथवा परमोच्च स्थिति में हो तो यह सिंह नामक योग होता है॥३३॥

गुणशार्दूलयोग

**अधिमित्रगृहस्थो वा मित्रराशिगतोऽपि वा।**
**गुणशार्दूल संज्ञोऽयं ब्रह्मणा कथितः पुरा॥३४॥**

कोई ग्रह अधिमित्र व मित्र राशि में स्थित हो तो यह योग गुणशार्दूल संज्ञक होता है। ऐसा प्राचीनकाल में श्रीब्रह्मा जी ने कहा है॥३४॥

इन्द्रयोग

**स्वतुङ्गस्थः कुजः सौम्यवीक्षितो लाभगो यदि।**
**दुश्चिक्यस्थो रिपुस्थो वा गुणानामिन्द्रसंज्ञकः॥३५॥**

अपने उच्च में मङ्गल एकादशभाव अथवा तीसरे, छठे स्थान में स्थित हों तथा शुभग्रहों द्वारा देखा जाता हो तो गुणों में इसे इन्द्र संज्ञक कहा जाता है॥३५॥

रत्नमालिकायोग

**शनि स्वतुङ्गगः सौम्यवीक्षितो लाभसंस्थितः।**
**तृतीयगः षष्ठगो वा गुणानां रत्नमालिका॥३६॥**

शनि अपने स्वोच्चराशि में एकादश, तृतीय व षष्ठ स्थान में शुभग्रहों द्वारा देखा जाये, तो यह गुणों में रत्नमालिका योग कहा है॥३६॥

### मकर नामक योग

**अधिकमित्रस्वराशिस्थावथवा मित्रराशिगौ।**
**कुजार्कौ भवतो यत्र गुणो मकरतो भुवि॥३७॥**

अपने अधिमित्र, अपनी राशि अथवा मित्र राशि में गए हुए मङ्गल एवं शनि स्थित हों तो यह योग गुणों में भूमि पर मकर संज्ञक कहा गया है॥३७॥

### निर्मलमणियोग

**स्वतुङ्गगः शशी यत्र लाभसंस्थो यदा भवेत्।**
**अधिमित्रगृहस्थो वा गुणानां निर्मलो मणिः॥३८॥**

अपने उच्च में चन्द्रमा एकादश भाव में स्थित हो या अपने अधिमित्र के घर में स्थित हो तो गुणों में यह योग निर्मलमणि संज्ञक कहा है॥३८॥

### गुणार्णवमहायोग

**चन्द्रार्कौ लाभगौ यत्र भवतौ यदि केवलम्।**
**गुणार्णवो महायोगो जनानामिष्टसिद्धिदः॥३९॥**

चन्द्रमा और सूर्य दोनों एकादश भाव में स्थित हों तो लोगों में इष्ट की सिद्धि देने वाला गुणों में गुणार्णव महायोग कहलाता है॥३९॥

### सुदर्शन महायोग

**धर्मकर्मद्वित्रिसंस्थः शशी यत्र भवेद्यदि।**
**सुदर्शनो महायोगो दोषासुर विनाशनः॥४०॥**

नवम, दशम, दूसरे व तीसरे स्थान में यदि चन्द्रमा विराजमान हो तो यह योग सुदर्शन महायोग कहलाता है। यह योग दोषी असुरों का नाश करता है॥४०॥

### गुणसागरयोग

**लाभस्थितो यदा सूर्य्यश्चन्द्रो वाप्येक एव सः।**
**गुणसागरयोगोऽयं यदा भवति चेद्बली॥४१॥**

एकादशभाव में यदि सूर्य व चन्द्रमा में से कोई एक बलशाली होकर स्थित हो तो यह योग गुणसागर योग कहा जाता है॥४१॥

### पुण्ययोग

**स्ववर्गस्थः शशी यत्र लग्नात्पञ्चमगो भवेत्।**
**पुण्ययोगः स विज्ञेयो गुरुर्वायदि वा बुधः॥४२॥**

अपने वर्ग में स्थित चन्द्रमा लग्न से पञ्चम भाव में हो तो यह योग पुण्ययोग नामक समझना चाहिए। यह योग बृहस्पति व बुध के द्वारा भी बनता है॥४२॥

अमृतनामकयोग

नन्दाभौमार्कयोर्भद्रा शुक्रेन्दोश्च जया बुधे।
शुभयोगा गुरौ रिक्तापूर्णा मन्देऽमृताह्वया॥४३॥

नन्दतिथियां रवि व मङ्गलवार में, भद्रा तिथियां शुक्र व सोमवार, जया तिथियां बुधवार, रिक्ता तिथियां गुरुवार तथा पूर्णा तिथियां शनिवार के योग में अमृत नामक योग बनाती हैं॥४३॥

सिद्धातिथियां

शुक्रज्ञकुजमन्देज्यवारा नन्दादिषु क्रमात्।
सिद्धा तिथिः सिद्धिदा स्यात्सर्वकालेषु सर्वदा॥४४॥

शुक्र, बुध, मङ्गल, शनि, गुरुवार क्रम से नन्दादि तिथियों से सञ्युक्त हों तो ये सिद्धा तिथियां कही जाती हैं। यह सभी कालों में सर्वदा सिद्धिप्रद होती हैं॥४४॥

विजयनामकयोग

पुष्यस्याद्यद्वितीयांश संस्थितौ चन्द्रवाक्पती।
विजयो नाम योगोऽयं समरे विजयप्रदः॥४५॥

पुष्य नक्षत्र के प्रथम व द्वितीय चरण में चन्द्रमा एवं बृहस्पति स्थित हों तो यह विजयनामक योग युद्ध में सर्वदा विजयप्रद होता है॥४५॥

ब्रह्मदण्डमहायोग

परमोच्चगतोऽप्येको जीवो वाज्ञः सितोऽपि वा।
ब्रह्मदण्डो महायोगः सर्वदोष विनाशकृत्॥४६॥

बृहस्पति, बुध व शुक्र इनमें एक भी अपने परमोच्च में स्थित हो तो यह ब्रह्मदण्ड महायोग सभी दोषों का विनाश करता है॥४६॥

कामधेनुयोग

स्वतुङ्गांशस्थिताः सौम्यायेषु केषु च राशिषु।
कामधेनुरयं योगः चन्द्रो वा वृषभांशगः॥४७॥

अपने उच्चांश में स्थित शुभग्रह जिस किसी भी राशि में अथवा चन्द्रमा वृष राशि के उच्चांश में हो तो यह योग कामधेनु योग कहलाता है॥४७॥

प्रभञ्जनमहायोग

मूलत्रिकोणगाः सौम्या भवन्ति यदि वा शशी।
प्रभञ्जनो महायोगस्त्वथवापि तदंशगाः॥४८॥

मूलत्रिकोण में शुभग्रह अथवा चन्द्रमा मूल त्रिकोण में अपने अंश में स्थित हो तो यह योग प्रभञ्जन नामक महायोग होता है॥४८॥

**इन्द्रदण्डमहायोग**

मूलत्रिकोणगाः पापास्त्रिषष्ठायगता यदि।
इन्द्रदण्डो महायोगस्तदंशकगता अपि॥४९॥

मूलत्रिकोण में पाप ग्रह तीसरे, छठे अथवा एकादश भाव में, अपने अंशों में भी स्थित हों तो यह योग इन्द्रदण्ड महायोग होता है॥४९॥

**रुद्रदण्डमहायोग**

चन्द्रः शुभांशको यत्र भवेच्छुभनिरीक्षतः।
रुद्रदण्डो महायोगो दोषतूल प्रभञ्जनः॥५०॥

चन्द्रमा शुभांशों में होकर शुभग्रहों द्वारा देखा जाता हो तो यह रुद्रदण्ड महायोग कहलाता है। यह योग रुई रूपी दोष के लिये वायुरूप है। जैसे हवा रुई को उड़ाने में सक्षम है, वैसे ही यह योग समस्त दोषों को मिटाने में सक्षम है॥५०॥

**अभिजित्संज्ञकयोग**

मुहूर्त्तश्चाष्टमः शश्वदभिजिद्योगसंज्ञकः।
गुणानामधिपः सोऽपि मध्यं दिनगते रवौ॥५१॥

सूर्य जब मध्य आकाश पर रहता है, गुणों का अधिपति दिवा मुहूर्तों में आठवां मुहूर्त्त सर्वदा अभिजित् संज्ञक होता है॥५१॥

**गुणनिरूपणसमाप्ति**

उक्तं निरुपणं सम्यग्गुणानामथ साम्प्रतम्।
पितामहोक्तमार्गेण वक्ष्ये दोषनिरूपणम्॥५२॥

**इति श्रीब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**गुणनिरूपणाध्याय एकचत्वारिंशः॥४१॥**

सम्प्रति गुणों का निरूपण भलीभाँति कहा। अब श्री ब्रह्मा जी के द्वारा कहे गये दोष निरूपण भी कहेंगे॥

वृद्धवसिष्ठसंहिता के गुणनिरूपणाध्याय की 'नारायणी'
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥४१॥

**पाठान्तरम्**

०२. (ब) ज१-कमलसन (—कमलासनः)
०३. (ब) ज१-दिनमानाशाब्द (—दिनमासादि)
०६. (अ) ज१-यचित्रा (—पवित्रा)

०७. (अ) ज१-मित्रेज्य (—दैत्येज्ये)
(ब) ज१-शर्वदा (—सर्वदा)
०८. (अ) ज१-जयाशु (—जयासु)
१०. (अ) ज१-तारका (—तारकाः)
११. (ब) ज१-सौधा (—सौम्या)
१४. (अ) मु. पु. बुधवारेसुरेज्य (—बुधवारेऽसुरेज्य)
(ब) ज१-शेषयोगा (—शङ्खयोगाः)
१५. (ब) ज१-संज्ञिका (—संज्ञकाः)
१६. (ब) ज१-संर्द्धहस्तेंदु (—द्वयहस्तेन्दु)
१७. (अ) ज१-मयोत्तराः (—मघोत्तराः)
(ब) ज१-संज्ञिका (—संज्ञकाः)
१९. (अ) ज१-मूलनुत्यत्तरा (—मूलहर्य्युत्तरा)
२०. (अ) ज१-परमोच्चगता (—परमोच्चगतो)
(ब) मु. पु. योगराड्, ज१-सवल (—योगसद्)
२३. (अ) ज१-वदितः (—पूजितः)
(ब) ज१-सयोगमुशलाद्धयः (—स योगो मुसलाह्वयः)
२५. (अ) ज१-स्ववर्गस्थो (—स्वलग्नस्थो)
२६. (अ) ज१-सोम्यव्रवीक्षितः (—सौम्यवीक्षितः)
(ब) ज१-सेषरसंज्ञेयो (—गुणशेखरसंज्ञोऽयं)
२७. (ब) ज१-सांक्षिश्चवादितं (—संक्षिप्य चोदितम्)
२८. (अ) ज१-चंदजोपिवा (—चन्द्रजोऽपि)
(ब) ज१-संज्ञेयं (—संज्ञोऽयं)
२९. (ब) ज१-संज्ञेयं (—संज्ञोऽयं)
३२. (अ) ज१-सौम्यवीक्षितः (—शुभवीक्षिताः)
३४. (ब) ज१-गुलसार्दूलसंज्ञोयं (—गुणशार्दूलसंज्ञोऽयं)
३६. (अ) ज१-वीक्षते (—वीक्षितो)
(ब) ज१-तृतीयः षष्टिगोवापि (—तृतीयगः षष्ठगो वा)
ज१-गुणा (—गुणानां)
३७. (अ) ज१-मरास्थो (—राशिस्था)
(ब) ज१-कुजार्क (—कुजार्कौ) ज१-मरकतो (—मकरतो)
३९. ज१-भक्तो (—भवतौ)
४०. (ब) ज१-विमर्द्दनः (—विनाशनः)

४१. (अ) ज१-वायैक (—वाप्येक)

४४. (ब) ज१-सर्वकार्येषु (—सर्वकालेषु)

४५. (ब) ज१-शमंत्र (—समरे) विजयप्रदा (—विजयप्रदः)

४६. (ब) ज१-विनासकृत (—विनाशकृत्)

४७. (अ) ज१-रासिषु (—राशिषु)

४९. (अ) ज१-इन्द्रोदण्डो (—इन्द्रदण्डो)

५०. (अ) ज१-शुभांशगो (—शुभांशको)

५२. (ब) ज१-वक्षे (—वक्ष्ये)

**पुष्पिका :** ज१-इति श्रीवृद्धवासिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायांगुणनिरूपणाध्याय:।।४१।।

***

# ४२

# अथ दोषनिरूपणाध्यायः

उत्पातयोग

द्विदैवजलवस्वन्त्य ब्रह्मेज्यार्यमतारकाः।
उत्पातयोगा विज्ञेया भानुवारादिषु क्रमात्॥१॥

## नारायणी टीका

विशाखा, पूर्वाषाढ़ा, धनिष्ठा, रेवती, रोहिणी, पुष्य एवं उत्तराफाल्गुनी रविवारादि क्रम से उत्पातयोग कारक होते हैं॥१॥

उत्पात योग-चक्र

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | विशा. | पू. षा. | धनि. | रे | रोहि. | पुष्य | उ. फा. |

मृत्युयोग

मैत्रविश्वाम्बुवार्ष्विदुसार्पसूर्याख्यातारकाः ।
मृत्युयोगा मृत्युकराः सूर्यवारादिषु क्रमात्॥२॥

अनुराधा, उत्तराषाढ़ा, पूर्वाषाढ़ा, स्वाती, मृगशिरा, आश्लेषा, हस्त ये नक्षत्र रविवारादि क्रम से हों तो मृत्युयोग कारक होते हुए मृत्युप्रद होते हैं॥२॥

मृत्युयोगचक्र

| वार | सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | अनु. | उ.षा. | पू.षा. | स्वा. | मृग् | आश्लेषा | हस्त |

क्रमागतः–

"विशाखादि चतुर्वर्गमर्कवारादिषु क्रमात्।
उत्पातमृत्युकाणाख्यायोगाश्चामृतसंयुता॥

—(मु. चि. १ प्र. ३० श्लोक)

अन्धयोग

ब्रह्मेज्यार्यमवैशाखहरिवस्वन्त्यभेषु च।
नन्दायामर्कवारादिष्वन्ध योगाः प्रकीर्तिताः॥३॥

रोहिणी, पुष्य, उत्तरा फाल्गुनी, विशाखा, श्रवण, धनिष्ठा, रेवती ये नक्षत्र नन्दा तिथियों में रविवारादि क्रम से अन्ध योग संज्ञक कहे हैं॥३॥

अन्धयोग चक्र

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | रो.<br>१ | पुष्य<br>१ | उ.फा.<br>१ | विशा.<br>१ | श्र.<br>१ | धनि.<br>१ | रेवती<br>१ |
| तिथियां | ६<br>११ | ६<br>११ | ६<br>११ | ६<br>११ | ६<br>११ | ६<br>११ | ६<br>११ |

काणयोग

रुद्रसार्पाम्बुनैर्ऋत्यपितृभाग्याग्निभेषु च।
भद्रातिथौ काणयोगाः सूर्यवारादिषु क्रमात्॥४॥

आर्द्रा, आश्लेषा, पूर्वाषाढ़ा, मूल, मघा, पूर्वा. फाल्गुनी एवं कृत्तिका नक्षत्रों में भद्रा तिथियों के सूर्य वारादि क्रम से काणयोग होता है॥४॥

काणयोग चक्रम्

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | आर्द्रा<br>२ | आश्ले<br>२ | पू.षा.<br>२ | मूल<br>२ | मघा<br>२ | पू.फा.<br>२ | कृ.<br>२ |
| तिथियाँ | ७<br>१२ | ७<br>१२ | ७<br>१२ | ७<br>१२ | ७<br>१२ | ७<br>१२ | ७<br>१२ |

पङ्गुयोग

द्विदैवरौद्रमूलेन्द्रवारिविश्वपितृडुषु ।
जयासु पङ्गुयोगाः स्युरर्कवारादिषु क्रमात्॥५॥

विशाखा, आर्द्रा, मूल, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा एवं मघा नक्षत्रों में ज्या तिथियां रविवारादि क्रम से हों तो पङ्गुयोग होता है॥५॥

पङ्गुयोगचक्र

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | विशा.<br>३ | आर्द्रा<br>३ | मूल<br>३ | ज्ये.<br>३ | पू.षा.<br>३ | उ.षा.<br>३ | मघा<br>३ |
| तिथियां | ८<br>१३ | ८<br>१३ | ८<br>१३ | ८<br>१३ | ८<br>१३ | ८<br>१३ | ८<br>१३ |

**बधिरयोग**

**अजपात्पितृवह्नीशत्वाष्ट्रमित्रवसूडुषु ।**
**रिक्तासु बधिरायोगाः सूर्यवारादिषु क्रमात्॥६॥**

पूर्वाभाद्रपदा, मघा, कृत्तिका, आर्द्रा, चित्रा, अनुराधा एवं धनिष्ठा नक्षत्रों में रविवारादि क्रम से रिक्ता तिथियां हों तो वधिर योग बनता है॥६॥

**बधिरयोग चक्र**

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | पू.भा. ४ | मघा ४ | कृ. ४ | आर्द्रा ४ | चित्रा ४ | अनु. ४ | धनि ४ |
| तिथियां | ९ १४ | ९ १४ | ९ १४ | ९ १४ | ९ १४ | ९ १४ | ९ १४ |

**उद्वाहादिषु सर्वेषु मङ्गलेष्वपि निन्दिताः।**
**एते स्युः षड्विधा योगाः स्वनामफलदायकाः॥७॥**

विवाहादि सभी मङ्गल कार्यों में ये छः प्रकार के योग जो अपने नाम के अनुसार फल देते है निन्दित कहे हैं॥७॥

**दग्धातिथियां**

**द्वादश्येकादशीनागगौरीस्कन्दवसुष्वपि ।**
**नवमां दग्धयोगाख्या भानुवारादितः क्रमात्॥८॥**

द्वादशी, एकादशी, पञ्चमी, तृतीया, षष्ठी, अष्टमी तथा नवमीं तिथियां रविवारादि क्रम सेदग्धयोग वाली कही हैं॥८॥

**दग्धातिथि चक्र**

| वार | रवि | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| तिथियां | द्वादशी | एकादशी | पंचमी | तृतीया | षष्ठी | अष्टमी | नवमी |

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

"एकादशी चेन्दुवारे द्वादशी चार्कवासरे।
षष्ठी बृहस्पतेर्वारे तृतीया बुध वासरे॥
अष्टमी शुक्रवारे च नवमी शनिवासरे।
पञ्चमी भौमवारे च दग्धयोगाः प्रकीर्तिता॥

—(मु. चि. १ प्र० ८ श्लोक पी. टी.)

सूर्यादि ग्रहों का जन्म नक्षत्र ज्ञान

**भरणीचित्रविश्वाख्यवस्वर्यमनगारिषु ।**
**पौष्णभेष्वर्कवारादिष्वर्कादिग्रहजन्मभम्।।९।।**

भरणी, चित्रा, उ. षा. धनिष्ठा, उत्तराफाल्गुनी, ज्येष्ठा एवं रेवती नक्षत्रों को रविवारादि क्रम से सूर्यादि ग्रहों का जन्मनक्षत्र कहलाता है।।९।।

सूर्यादि नवग्रहों के जन्म नक्षत्र ज्ञानचक्र

| वार | सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | भर. | चि. | उ.षा. | धनि. | उ. फा. | ज्ये. | रेवती |

**अस्मिन्योगद्वये यत्तत्कृतं कर्म विनश्यति।**
**तस्माद्योगद्वयं त्याज्यं मङ्गलेष्वपि सर्वदा।।१०।।**

इन दो योगों में जो भी कार्य किये जाते हैं सभी नष्ट हो जाते हैं; इसलिये शुभ मङ्गल कार्यों में इन दोनों योगों का त्याग करना चाहिए।।१०।।

**क्रमागतः–**

**बृहस्पतिः—**

विशाखार्कस्य जन्मर्क्षं तारानाथस्य कृत्तिका।
वैष्णवं भूमिजस्याहुर्धनिष्ठा चन्द्रजस्य तु।।
शुक्रस्य जन्मभं तिष्यं गुरोरुत्तराफाल्गुनी।
शनेस्तु रेवती जन्म राहोर्जन्माश्विनी भवेत्।।
शुभग्रहाणां जन्मर्क्षे शुभकर्म शुभावहम्।
पाप ग्रहाणां जन्मर्क्षे शुभं वाप्यशुभं भवेत्।।

*—(वृ. दै. र. ३७१. श्लोक ६७-६९)*

अचिकित्सा एवं गदयोग

**कुजार्क्योः सप्तमी षष्ठी चन्द्रे भानौ चतुर्थिका।**
**द्वितीया ज्ञेऽष्टमी जीवे नवमी शुक्रवासरे।।११।।**

मङ्गल तथा शनि, सप्तमी षष्ठी तिथि में चन्द्रमा और सूर्य चतुर्थी तिथि में, द्वितीया तिथि में बुध, बृहस्पति अष्टमी में, नवमी में शुक्र—।।११।

**क्रमागतः–**

**बृहस्पतिः—**

**षष्ठी शशाङ्के नवमी च शुक्रे बुधे द्वितीया पनेचतुर्थी।**
**जीवेऽष्टमी सौरिकुजेऽह्नि सप्तमीयोगा विषाख्याःकुलनाशाः स्युः।।**

—(मु. चि. १ ५८ श्लोक पी. टी.)

**अचिकित्सागदा योगा मङ्गलेष्वपि निन्दताः।**
**भगन्दराश्मरीकुष्ठक्षयरोग प्रदायकाः॥१२॥**

अचिकित्सा एवं बीमारी का योग होने के कारण शुभ मङ्गल कार्यों में निन्दित कहे हैं। इन योगों में की गई चिकित्सा में भगन्दर (फोड़ा), पथरी, कोढ़ तथा क्षयादि रोग होते हैं॥१२॥

मृत्युयोग कथन

**लग्नात्षष्ठाष्टसंस्थे शशिनिसुरगुरौ चापि मन्दे सुतस्थे।**
**भौमे रन्ध्रस्थितेऽर्के व्ययभवनगते मृत्युगे चन्द्रसूनौ।**
**द्यूनस्थे दैत्यपूज्ये सति निखिलनृणां मृत्युयोगा भवन्ति।**
**त्याज्या दावाग्निरूपा सततमवितथं मृत्युदा मङ्गलेषु॥१३॥**

लग्न से छठे अथवा आठवें चन्द्रमा, गुरु सहित पाँचवें शनि, मङ्गल अष्टम में स्थित हो सूर्य द्वादश स्थान में गया हो, बुध अष्टम में हो, शुक्र सप्तम में हो—ये सभी मनुष्यों के लिए मृत्यु योग होता है। इस योग को दावाग्नि स्वरूप समझकर त्यागना चाहिए; क्योंकि यह योग शुभ मङ्गल कार्यों में असत्य एवं मृत्यु को देने वाला है॥१३॥

अग्निजिह्वानामसातयोग

**सप्तषष्ठ्यादि तिथयः सोमवारादिभिर्युताः।**
**अग्निजिह्वाः सप्तयोगा मङ्गले कुलनाशदाः॥१४॥**

षष्ठी तिथि से द्वादशी तिथि तक सात तिथियों सोमवारादि से युक्त होने पर 'अग्निजिह्वा' नामक सात योग मङ्गल कार्यों में कुलनाशक होते हैं॥१४॥

**विशेष**—सोमवार में षष्ठी, मङ्गल में सप्तमी, बुध में अष्टमी, बृहस्पति में नवमी, शुक्र में दशमी, शनि में एकादशी और रविवार द्वादशी तिथि होने पर अग्निजिह्वा नामक सातयोग बनते हैं॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

"षष्ठ्यादितिथयः सप्त चन्द्रवारादिभिर्युताः।
क्रमात्पक्षद्वयोपेताः सप्तयोगा हुताशनाः॥
—(मु. चि. १ प्र० ८ श्लोक पी. टी.)

कालकूट विषयोग

**भानुवारादिभिर्युक्तास्त्वेताः स्युस्तिथयो यदा।**
**विषयोगास्त्वमी सप्त कालकूट विषोपमाः॥१५॥**

यदि ये तिथियां रविवारादि दिनों से युक्त हों तो इनकी विषयोग संज्ञा कही है। इन सातों की उपमा कालकूट विष से की गई है॥१५॥

**नक्षत्रान्त, मासान्त, वर्षान्त तथा ग्रहण में त्याज्य**

**घटिकाद्वयमृक्षान्ते मासान्ते तु दिनत्रयम्।**
**वर्षान्ते वर्जयेत्पक्षं ग्रहणे दिनसप्तकम्॥१६॥**

नक्षत्रान्त की दो घड़ियां, मासान्त के तीन दिन, वर्षान्त का एकपक्ष और ग्रहण में सात दिन त्याग करने चाहिए॥१६॥

**तत्फलम्**

**ऋक्षान्ते पुत्रनाशः स्यान्मासान्ते तु धनक्षयः।**
**वर्षान्ते वर्गनाशः स्याद्ग्रहणे सर्वनाशनम्॥१७॥**

नक्षत्रान्त में पुत्रनाश, मासान्त में धनक्षय, वर्षान्त में वर्ग का नाश तथा ग्रहण में सर्वनाश होता है॥१७॥

**पश्चादुपप्लवादेव दोषः स्यान्नैव पूर्वतः।**
**गृहदाहादयो दोषा यथा स्युर्दहनात्परम्॥१८॥**

भूकम्पादि उत्पात पहले हो जाएं तो उपर्युक्त दोष नहीं होते परन्तु बाद में होने पर यह दोष मान्य होते हैं। जैसे घर जलने का दोष जलने के पश्चात् ही माने जाते हैं॥१८॥

**महाशूलयोग**

**प्रतिपद्बुधवारे च सूर्यवारे च सप्तमी।**
**महाशूलाह्वयो योगो वर्जनीयो शुभे सदा॥१९॥**

बुधवार प्रतिपदा तिथि, रविवार को सप्तमी तिथि हो तो महाशूल संज्ञकयोग होता है। इसमें समस्त शुभकार्यों का त्याग करना चाहिए॥१९॥

**दुष्टयोग**

**त्रिपूर्वावह्निरौद्राहि याम्यपौरन्दरेन्दुषु।**
**पापवारेषु युक्तेषु दुष्टयोगाः प्रकीर्तिताः॥२०॥**

तीनों पूर्वा (पूर्वा फाल्गुनी, पू. षा. पू. भा.) कृत्तिका, आर्द्रा, आश्लेषा, भरणी नक्षत्रों में यदि पापग्रहों के वार हों तो दुष्टयोग कहा जाता है॥२०॥

**दुष्टयोग फल**

**दुष्टयोगे कृतं कर्म त्वचिरादेव नश्यति।**
**तस्माच्छुभेषु कार्येषु वर्जनीयाः प्रयत्नतः॥२१॥**

दुष्टयोग में किया हुआ कार्य शीघ्र ही नष्ट होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक शुभ कार्यों में इस योग का त्याग करना चाहिए।।२१।।

### संकटयोग

**जीवस्थानात्तु शीतांशुर्निधनान्त्यारिसंस्थितः।**
**योगोऽयं सङ्कटो नाम शोभने निधनप्रदः।।२२।।**

बृहस्पति के स्थान से चन्द्रमा यदि अष्टम, द्वादश या छठे स्थान में हो तो यह योग संकट नामक कहलाता है। यह योग शुभ कार्यों में मृत्युप्रद होता है।।२२।।

### अशनियोग

**यममैत्रादिति भाजपादरुद्र त्वाष्ट्रविष्णुषु।**
**सत्स्वर्कादिषु वारेषु मृत्युदस्त्वशनिः शुभे।।२३।।**

भरणी, अनुराधा, पुनर्वसु, पूर्वाभाद्रपदा, आर्द्रा, चित्रा और श्रवण रविवारादि क्रम से हों तो यह अशनि संज्ञक योग सर्वदा शुभ कार्यों में मृत्युप्रद होता है।।२३।।

### अशनियोगचक्र

| वार | सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र | शनि |
|---|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | भर. | अनु. | पुन. | पू. भा. | आर्द्रा | चित्रा | श्रवण |

### प्रलयकाल सदृशयोग

**यदा वक्रौ गुरुसितौ परस्परनिरीक्षितौ।**
**सप्तमस्थौ तदा दोषः साक्षादस्तमयः समः।।२४।।**

यदि बृहस्पति एवं शुक्र वक्री होकर परस्पर देखें, एक-दूसरे से सातवें स्थान में हों तो यह दोष साक्षात् प्रलयकाल के सदृश होता है।।२४।।

### कुलिकदोष

**दिवसस्याष्टमे भागे वारेशाद्याः क्रमाद् ग्रहाः।**
**शन्यंशः कुलिको दोषो वारेशः पुनरष्टमः।।२५।।**

दिन के आठवें भाग में वारेशादि ग्रह क्रमशः शनि के अंश से कुलिकदोष और पुनः आठवां वारेश दोषः—।।२५।।

### मृत्युयोग

**मृगेन्द्रसंस्थिते जीवे मध्यदेशे करग्रहे।**
**मृत्युयोगो मृत्युदः स्याद्दम्पत्योः पञ्चवर्षतः।।२६।।**

तथा सिंहस्थ बृहस्पति मध्य देश में विवाह होने पर मृत्युयोग कहलाता है। इस योग में पति-पत्नी के लिए पाँच वर्ष में मृत्यु कही है।।२६।।

### कालमृत्युयोग

**सिंहे सिंहांशके जीवे कलिङ्गे गौडगुर्ज्जरे।**
**कालमृत्युरयं योगो दम्पत्योर्निधनप्रदः॥२७॥**

सिंह राशि एवं सिंह नवाशं में बृहस्पति हो तो कलिङ्ग, गौड़ और गुर्जर देशों में यह योग कालमृत्यु नाम से जानना। यह योग दम्पति के लिये निधनप्रद होता है॥२७॥

**मृगेन्द्रमध्यमांशस्थे जीवे योगोऽशनिस्त्वयम्।**
**गौतमीयाम्यभागे तु दम्पत्योर्निधनप्रदः॥२८॥**

सिंह राशि के मध्यांश में स्थित गुरु हो तो यह अशनि नामक योग होता है। गोतमी (गोदावरी) नदी के दक्षिण तट पर (जिनका विवाह हुआ हो) दम्पत्तियों के लिए निधनप्रद होता है॥२८॥

**योगत्रयं वर्जनीयं चोक्तदेशेषु सर्वदा।**
**उद्वाहेष्यन्यदेशेषु चात्यर्थं मङ्गलप्रदम्॥२९॥**

इन तीन योगों का उक्त देशों में सर्वदा त्याग करना; किन्तु अन्य देशों में विवाहादि मङ्गलप्रद होते हैं॥२९॥

### हालाहलयोग

**अर्कवारेऽग्निपञ्चम्योः सोमे चित्राद्वितीययोः।**
**कुजे पूर्णेन्दुरोहिण्योः सप्तमीयाम्ययोर्बुधे॥३०॥**

रविवार कृत्तिका नक्षत्र एवं पञ्चमी तिथि, सोमवार चित्रा नक्षत्र एवं द्वितीया तिथि, मङ्गलवार रोहिणी नक्षत्र एवं पूर्णिमा तिथि, बुधवार भरणी नक्षत्र एवं सप्तमी तिथि—॥३०॥

**क्रमागतः–**

**बृहस्पतिः—**

अर्काग्न्योः पञ्चमीयुक्ता षष्ठी श्रवणभार्गवे।
बुधे तु सप्तमी याम्यं शनौ पौष्णाष्टमी युता॥
सोमे द्वितीया चित्रा च कुजे पूर्णेन्दुरोहिणी।
गुरौ त्रयोदशी मैत्रं विषां हालाहलोपमाः॥
एतेषु विषयोगेषु न कुर्याच्छोभनान्बुधः।
शस्त्रभारादि कुर्वीत शापव्रतसमाप्तिकान्॥

*—(बृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १२७-२९)*

**गुरौ मित्रत्रयोदश्योः षष्ठश्रवणयोः सिते।**
**पौष्णाष्टम्यां शनियुते योगा हालाहलभिधाः॥३१॥**

गुरुवार अनुराधा नक्षत्र तथा त्रयोदशी तिथि, शुक्रवार श्रवण नक्षत्र एवं षष्ठीतिथि, शनिवार रेवती नक्षत्र एवं अष्टमी तिथि हो तो यह हालाहल संज्ञक योग बनता है॥३१॥

हालाहल योगचक्र

| वार | सूर्य | चन्द्र | मंगल | बुध | बृहस्पति | शुक्र |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | कृत्तिका | चित्रा | रोहिणी | भरणी | अनु० | श्रवण |
| तिथि | पंचमी | द्वितीया | पूर्णिमा | सप्तमी | त्रयोदशी | षष्ठी |

**एषु योगेषु कर्त्तव्यं मारणं शत्रुसंज्ञके।**
**विवाहादिषु कार्येषु नियतं निधनप्रदम्॥३२॥**

इन योगों में शत्रुओं के लिये मारण प्रयोग करना चाहिए। इन योगों में विवाहादि कार्य करने से निश्चित ही मृत्यु होती है॥३२॥

नक्षत्र लांछितयोग

**प्रतिपद्यम्बु नक्षत्रे पञ्चम्यां वह्निभे सति।**
**अष्टम्यामजपाद्धिष्ण्ये दशम्यां ब्रह्मभे यदि॥३३॥**

प्रतिपदा तिथि को पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र, पञ्चमी तिथि को कृत्तिका नक्षत्र, अष्टमी तिथि को पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र, दशमी को रोहिणी नक्षत्र—॥३३॥

**द्वादश्यां सार्प नक्षत्रे त्रयोदश्यर्यमर्क्षयोः।**
**नक्षत्र लांछितो योगो देवानामपि नाशदः॥३४॥**

द्वादशी को आश्लेषा नक्षत्र, त्रयोदशी को उत्तरा फाल्गुनी हो तो इन योगों को नक्षत्र लांछित योग कहा जाता है। यह योग देवताओं का भी नाश करता है॥३४॥

नक्षत्र लांछित योग चक्र

| तिथि | प्रतिपदा | पंचमी | अष्टमी | दशमी | द्वादशी | त्रयोदशी |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | पू.षा. | कृ. | पू. भा. | रोहि. | आश्ले. | उ. फा. |

पक्षछिद्रतिथियां

**चतुर्दशी चतुर्थी च अष्टमी नवमी तथा।**
**षष्ठी च द्वादशी चैव पक्षच्छिद्राह्वयाः क्रमात्॥३५॥**

चतुर्दशी, चतुर्थी, अष्टमी, नवमी, षष्ठी और द्वादशी तिथियां क्रमशः पक्षछिद्र संज्ञक कही है॥३५॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

अष्टमी द्वादशी षष्ठी चतुर्थी च चतुर्दशी।
तिथयः पक्षरन्ध्राख्या दुष्टास्ता अतिनिन्दिताः।।
"चतुर्थमनुरन्ध्राङ्कतत्वसंज्ञास्तु नाडिकाः"

—(ज्यो. नि. ३५ पृ. १६-१७ श्लोक)

**कश्यपः–**

"अष्टमी द्वादशी षष्ठी पक्षरन्ध्रास्तु तासु च।
मङ्गले सर्वदा त्याज्या नूनं हि दश नाड़िकाः।।

—(मु. चि. १ प्र० ३६ श्लोक पी. टी.)

**क्रमादेतासु तिथिषु वर्जनीयाश्च नाडिकाः।**
**भूताष्टमनुतत्वांकदश शेषास्तु शोभनाः।।३६।।**

क्रमशः इन तिथियों में पांच, आठ, चौदह, पांच, नौ एवं दश नाड़ियों का सदैव त्याग करें। शेष नाड़ियां शुभफलप्रद कही है।।३६।।

### दूषित नाड़ियों का फल

**दोषनाड़ीषु यत्कर्म शुभं सर्वं विनश्यति।**
**विवाहे विधवा नारी व्रात्यः स्याच्चोपनायने।।३७।।**

इन दूषित नाड़ियों में जो शुभकार्य किये जाते हैं, वे सभी कार्य विनाश को प्राप्त होते हैं। विवाह में नारी विधवा, उपनयन में वटुक व्रात्य हो जाता है—।।३७।।

**सीमन्ते गर्भनाशः स्यात्प्राशने मरणं ध्रुवम्।**
**अग्निना दह्यते क्षिप्रं गृहारम्भे विशेषतः।।३८।।**

सीमन्त संस्कार में गर्भनाश, अन्नप्राशन में निश्चित मरण, गृहारम्भ इन नाड़ियों में किया जाये तो शीघ्र ही विशेषरूप से घर अग्नि द्वारा जल जाता है।।३८।।

**राजराष्ट्रविनाशः स्यात्प्रतिष्ठायां न संशयः।**
**किमत्र बहुनोक्तेन कृतं कर्म विनश्यति।।३९।।**

यदि प्रतिष्ठा (मूर्ति प्रतिष्ठा, गृहप्रतिष्ठा इत्यादि) की जाए तो राज्य एवं राष्ट्र विनाश हो जाता है, इसमें संशय नहीं। इस सन्दर्भ में अत्याधिक क्या कहा जाये? जो भी कार्य इन नाड़ियों में किये जाते हैं, वे नष्ट हो जाते हैं।।३९।।

### सूर्यवार में वर्जितनक्षत्र

**द्विदैवमित्र-चान्द्रेन्द्र-वह्निसार्पभतारकाः।**
**रविवारेण सञ्युक्ता वर्जनीयाः प्रयत्नतः।।४०।।**

विशाखा, अनुराधा, मृगशिरा, ज्येष्ठा, कृत्तिका तथा आश्लेषा नक्षत्र रविवार से संयुक्त हों तो प्रयत्नपूर्वक वर्जित करने चाहिए।।४०।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

ऐन्द्रं चान्द्रं तथा पैत्रं विशाखा याम्येवच।
अनुराधां गते सूर्ये वारे वर्ज्याः शुभासदा।।

*—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०३)*

**सोमवार में वर्जित नक्षत्र**

**आषाढद्वयवह्नीज्यद्विदैवपितृतारकाः ।**
**सोमवारेण सञ्युक्ताः शुभकर्म विनाशदाः।।४१।।**

पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, कृत्तिका, पुष्य, विशाखा एवं मघा नक्षत्रों का योग सोमवार से हो तो शुभकर्मों का विनाश होता है।।४१।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

सविशाखा मघा ज्ञेया आषाढद्वयमैत्रकम्।
सोमवारेण संयुक्ता सर्वशोभननाशना।।

*—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०४)*

**मङ्गलवार में वर्जित नक्षत्र**

**ज्येष्ठाजपादश्रवण धनिष्ठार्द्राहितोयपाः।**
**भौमवारेण सञ्युक्ताः सर्वमङ्गलनाशदाः।।४२।।**

ज्येष्ठा, पूर्वाभाद्रपदा, श्रवण, धनिष्ठा, आर्द्रा, आश्लेषा तथा शतभिषा नक्षत्रों का मङ्गल से सम्बन्ध हो तो सभी मङ्गल कार्यों का नाश होता है।।४२।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

भौमे चार्द्रा धनिष्ठा च पूर्वाभाद्रपदाह्वयाः।
शतभिषक्चोत्तराषाढ़ा सर्वकर्मसु वर्जयेत्।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०५)

**बुधवार में वर्जित नक्षत्र**

**अश्विनी भरणी मूल पौष्णवस्वार्द्रा तारकाः।**
**बुधवारेण सञ्युक्ताः सर्वशोभननाशदाः।।४३।।**

अश्विनी, भरणी, मूल, रेवती, धनिष्ठा तथा आर्द्रा नक्षत्रों का बुधवार से संयोग हो तो समस्त शुभ कामों का नाश होता है।।४३।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

बुधेन मूलं पौष्णं च भरणी अश्विनी तथा।
अजैकपाच्छ्रविष्ठां च सर्वकर्मसु वर्जयेत्।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०६)

गुरुवार में वर्जित नक्षत्र

**अर्यमारोहिणी त्वाष्ट्र धातृचन्द्राख्य तारकाः।**
**गुरुवारेण सञ्युक्ताः शोभने निधनप्रदाः।।४४।।**

उत्तराफाल्गुनी, रोहिणी, चित्रा, श्रवण एवं मृगशिरा नक्षत्रों का योग गुरुवार से हो तो शुभ कार्यों में निधनप्रद होता है।।४४।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

बृहस्पति दिने त्वाष्ट्रं चान्द्रं चोत्तरफाल्गुनी।
रोहिणी वारुणं चैव सर्वकर्मसु वर्जयेत्।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०७)

शुक्रवार में वर्जित नक्षत्र

**सार्पद्विदैवमित्रेन्दुरोहिणी पितृतारकाः।**
**शुक्रवारेण सञ्युक्ता वर्जनीयाश्च मङ्गले।।४५।।**

आश्लेषा, विशाखा, अनुराधा, मृगशिरा, रोहिणी एवं मघा नक्षत्रों का योग शुक्रवार से हो तो मङ्गलकार्यों को वर्जित करना चाहिए।।४५।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

विशाखा सार्पमैत्राणि धनिष्ठातिष्यरोहिणी।
चित्रा च पितृदैवत्यं शुक्रवारेण वर्जयेत्।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०८)

शनिवार में वर्जित नक्षत्र

**उत्तराफाल्गुनी पौष्णभेज्यादित्यार्कवैष्णवाः।**
**शनिवारेण सञ्युक्ताः सर्वशोभनगर्हिताः।।४६।।**

उत्तरा फाल्गुनी, रेवती, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त एवं श्रवण नक्षत्रों का योग शनिवार से हो तो सभी शुभकार्यों में निन्दित होता है।।४६।।

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

पुनर्वसुस्तथाचार्यो रेवत्युत्तराफाल्गुनी।
सावित्रं श्रवणं चापि मन्दवारेण वर्जयेत्।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १०९)

तत्फलम्

**एषु योगेषु तत्सर्वं कृतं कर्म विनश्यति।**
**विवाहे विधवा नारी व्रती पातककृद्भवेत्।।४७।।**

इन योगों में किया हुआ कार्य विनाश को प्राप्त होता है, विवाह में नारी विधवा हो जाती है और उपनयनादि संस्कार में वटुक पातकी अर्थात् पाप करने में तत्पर हो जाता है।।४७।।

**वारेशे बलसञ्युक्ते योगास्त्वेते बलप्रदाः।**
**न किञ्चिद्दोषदास्तस्मिन्बलहीने न संशयः।।४८।।**

वार के स्वामी बलवान हों तो ये योग बल देने वाले होते हैं अपितु कुछ भी दोष देने वाले नहीं होते यदि बलहीन हो जाएं तो। इसमें संशय नहीं।।४८।।

**हस्तवासवयोराद्यं विशाखार्द्राद्वितीयकम्।**
**तृतीयकमहिंर्बुध्न्ये चान्त्यांशं यममूलयोः।।४९।।**

हस्त और धनिष्ठा नक्षत्र का प्रथम, विशाखा और आर्द्रा का दूसरा, उत्तराभाद्रपदा तीसरा तथा भरणी और मूल के अन्तिम अंश—।।४९।।

**दिवा मृत्युप्रदाः पादा दोषास्त्वेते न रात्रिषु।**
**शुभकार्य्ये प्रसूतौ च सर्वदा परिवर्जयेत्।।५०।।**

दिन में इनका प्रथम भाग मृत्युप्रद; किन्तु रात्रि में दोषप्रद नहीं होता। अतः शुभ कार्यों में उत्पन्न इन दोषों को सदैव वर्जित करना चाहिए।।५०।।

नक्षत्रों के छिद्रसंज्ञक पाद

**अश्विसार्पभयोराद्यं द्वितीयं यममूलयोः।**
**तृतीयं त्र्युत्तराहर्य्योर्वाछिद्रोरन्त्यपादकः।।५१।।**

अश्विनी एवं आश्लेषा नक्षत्रों की प्रथम, भरणी और मूल का दूसरा, तीनों उत्तरा और श्रवण नक्षत्रों का तीसरा तथा अन्तिम पाद छिद्रसंज्ञक कहा है।।५१।।

**दिवायोगा इति ख्याताः शोभने रोगदाः सदा।**
**दिवारोगप्रदास्त्वेते न तु रात्रौ कदाचन।।५२।।**

दिवा योग जो कहे हैं शुभकार्यों में सर्वदा रोगप्रद होते हैं। ये योग दिन मे ही रोगप्रद होते हैं। रात्रिकाल में रोगप्रद नहीं होते अर्थात् रात्रिकाल में शुभ होते हैं।।५२।।

**तस्माद्दिवैव सन्त्याज्या रोगमृत्यु प्रदायकाः।**
**दिवाऽपि दोषदा नैव रवीन्दोर्बलयुक्तयोः।।५३।।**

अतः दिन में ही रोग एवं मृत्यु देने वाले योगों का त्याग करना चाहिए। दिवाकाल में भी दोषकारक नहीं होते। यदि सूर्य, चन्द्रमा बलशाली हों तो।।५३।।

**वारानर्कादितस्त्रिघ्नाः शोधयेच्चक्र धिष्ण्यतः।**
**ततो भवार्कषट्तारा क्रमात्काणान्धबाधिराः॥५४॥**

सूर्यादिवारों को तीन से गुणा करें तथा नक्षत्र चक्र से शोधन करें ऐसी अवस्था में ग्यारह, बारह एवं छठवीं तारा क्रमशः काण, अन्ध एवं वधिर कहलाती हैं॥५४॥

हालाहलयोग

**द्विदैवधातृवह्न्यर्कवसुदैवत पैतृकाः।**
**अर्कवारेण सञ्युक्ता हालाहल विषोपमाः॥५५॥**

विशाखा, रोहिणी, कृत्तिका, हस्त, धनिष्ठा तथा मघा नक्षत्र यदि रविवार से सञ्युक्त हों तो इस योग की हालाहल उपमा दी गई है॥५५॥

**क्रमागतः–**

पैत्रमैत्राश्विदेवेज्यविशाखावसुदेवता ।
यद्यर्कवारसंयुक्ता दोषा हालाहलोपमाः॥

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११०)

कालकूट विषयोग

**उत्तरात्रयचित्राख्य द्विदैवाह्वयतारकाः।**
**सोमवारेण सञ्युक्ताः कालकूटविषोपमाः॥५६॥**

उत्तरात्रय, चित्रा, विशाखा नक्षत्र यदि सोमवार से सञ्युक्त हों तो इस योग की कालकूट विष की उपमा दी है॥५६॥

**क्रमागतः–**

त्रीण्युत्तराणि चित्रा च विशाखा इन्दुवारगाः।
कालकूटोपमा दोषाः शुभकर्मविनाशनाः॥

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक १११)

गुणघ्नायोग

**शतताराद्विदैवार्द्रा उत्तराषाढातारकाः।**
**आरवारेण सञ्युक्ता गुणघ्ना विषसंज्ञकाः॥५७॥**

शतभिषा, विशाखा, आर्द्रा, उत्तराषाढ़ा यदि मङ्गलवार से युक्त हों तो यह योग गुणघ्ना (गुणों को नाश करने वाला) विषसंज्ञक कहा है॥५७॥

**क्रमागतः–**

विशाखा शततारार्द्रा विश्वे चैवारवारगाः।
महादोषो भवन्त्येते गुणाहालाहलोपमाः॥

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११२)

अमीयोग

**अश्विनीभरणी वह्निवसुमूलाद्यतारकाः।**
**बुधवारेण सञ्युक्ता दोषाः सर्वाह्वयास्त्वमी।।५८।।**

अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, धनिष्ठा, मूलादि नक्षत्र बुधवार से युत हों तो यह समस्त कार्यों को नष्ट करने वाला अमी योग होता है।।५८।।

**क्रमागतः—**

पूर्वादित्रितयं मूलवसुभं बुधवारगम्।
दोषानेव वदन्त्येते सदा गुणविघस्मराः।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११३)

मङ्गलकार्यनाशकयोग

**भचतुष्कं वह्निधिष्ण्याद् वरुणार्यम तारकाः।**
**गुरुवारेण सञ्युक्ता दोषा मङ्गलनाशदाः।।५९।।**

कृत्तिका से आर्द्रा नक्षत्र तक, शतभिषा एवं उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र यदि गुरुवार से सञ्युक्त हो तो ऐसा दोष मङ्गल कार्यों का नाश करता है।।५९।।

**क्रमागतः—**

ताराचतुष्क भाग्प्रेज्या वारुणा यमतारका।
गुरुवारयुता षड्भिः दोषा लोकजिघांसवः।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११४)

महादोष

**शक्रसार्पमघावह्निद्विदैवालुप्ततारकाः ।**
**शुक्रवारेण सञ्युक्ता महादोषाह्वयास्त्वमी।।६०।।**

ज्येष्ठा, आश्लेषा, मघा, कृत्तिका, विशाखा एवं अलुप्त नक्षत्र शुक्रवार से युत हों तो यह महादोष संज्ञक होता है।।६०।।

**क्रमागतः—**

शाक्रेन्द्राग्निमघाश्लेषा रोहिण्युशनवारगाः।
महादोषास्तथा ह्येते महागुणविनाशनाः।।

—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११५)

गुणनाशकयोग

**अर्य्यमादिति पौष्णार्क विश्वाषाढाख्य तारकाः।**
**शनिवारेण सञ्युक्ता दोषा गुणविमर्दनाः।।६१।।**

उत्तराफाल्गुनी, पुनर्वसु, रेवती हस्त, उत्तराषाढ़ा इत्यादि नक्षत्र यदि शनिवार से युत हों तो यह दोष गुणों का नाश करता है।।६१।।

क्रमागतः–

पुष्यादित्यर्यमाहस्तविश्वायाषाढ़तारकाः ।
शनिवारयुतः सर्वदोषा गुणविमर्दकाः।।
—(वृ. दै. र. प्र० ३७ श्लोक ११६)

धूमनामक योग

**त्रयोदशलवैर्युक्तः सूर्यो राशिचतुष्टयः।**
**तदा धूमाह्वयो योगः सर्वशोभननाशदः।।६२।।**

तेरह अंशों से युक्त सूर्य यदि चतुष्पद राशियों में हो तो यह धूम नामक योग कहा है। यह योग सभी शुभ कार्यों को नाश करता है।।६२।।

परिवेषक योग

**धूमे मण्डलतः शुद्धे व्यतीपातोऽपरोविषः।**
**व्यतीपाते च षड्राशियुक्तोऽसौ परिवेषकः।।६३।।**

धूममण्डल से शुद्धि में व्यतीपात एवं दूसरा विष हो तथा व्यतीपात में छः राशियां युक्त हों तो इसको परिवेषक नामक योग कहा जाता है।।६३।।

**परिवेषे चक्रयुक्ते विषदोषो धनुर्द्धरः।**
**अत्यष्टिभागयुक्तेऽस्मिन्केतुसंज्ञोऽपरो विषः।।६४।।**

परिवेष में चक्रयुक्त होने पर विषसंज्ञक दोष होता है। धनु राशि के अष्टांश युक्त होने पर केतु संज्ञक कहा है। दूसरा विष सदृश होता है।।६४।।

ब्रह्मा द्वारा कथित पंचयोग

**एवं पञ्चार्कदोषाः स्युश्चतुर्मुखमुखोदिताः।**
**पञ्चदोषेषु सञ्युक्तेष्विनेन्दूदयराशिषु।।६५।।**

इस प्रकार सूर्य के पाँच दोष होते हैं। ऐसा श्रीब्रह्मा जी ने कहा है। पञ्च दोषों से युत होने पर सूर्य एवं चन्द्रमा उदयराशि से गिने जाते हैं।।६५।।

तत्फलम्

**विवाहे विधवा नारी प्रतिष्ठायां कुलक्षयः।**
**द्वितीये जन्मनि व्रात्यः सीमन्ते गर्भनाशनम्।।६६।।**

इन दोषों में विवाह में नारी विधवा, प्रतिष्ठा की जाये तो कुलक्षय, द्वितीय जन्म अर्थात् उपनयन संस्कार किया जाये तो इन दोषों में वटुक व्रात्यदोष युक्त हो जाता है तथा सीमन्त संस्कार किया जाये तो गर्भ का नाश होता है।।६६।।

पुनः तत्फलम्

**नवान्नभोजने मृत्युश्चौले व्याधिर्भवेत्तदा।**
**तस्मात्पञ्चार्कदोषास्ते वर्जनीयाश्च मङ्गले।।६७।।**

इन योगों में नया अन्न बालक को खिलाया जाये तो मृत्युप्रद, चौल (मुण्डन) कर्म होने पर रोग होता है। अतः पाँच प्रकार के सूर्य दोषों में मङ्गल कार्य वर्जित करने चाहिए।।६७।।

### मृत्युकारकयोग

**जीवराशिर्द्वितीयायां चतुर्थ्यां घटतावुरी।**
**षष्ठ्यां च मेषसिंहाख्यावष्टम्यां बुधसद्मनि।।६८।।**

बृहस्पति की राशियां धनु एवं मीन द्वितीया तिथि में हों, कुंभ और वृष राशि चतुर्थी में हो, मेष तथा सिंह राशि में षष्ठी हो और मिथुन एवं कन्या राशि अष्टमी तिथि में हो—।।६८।।

**दशम्यां सिंह कीटाख्यौ द्वादश्यां मृगजूकभे।**
**एते मृत्युप्रदा योगाः शोभनेष्वतिगर्हिताः।।६९।।**

दशमी तिथि में सिंह और वृश्चिक राशि हो, द्वादशी तिथि में मकर और तुलाराशि हो तो ये सभी योग मृत्युकारक कहे हैं। ये योग शुभ कार्यों में निन्दित कहे हैं।।६९।।

**मृगसिंहौ तृतीयायां प्रथमायां तुलामृगौ।**
**पञ्चम्यां बुधराशौ द्वौ सप्तम्यां चाप चन्द्रभे।।७०।।**

मकर एवं सिंह तृतीया तिथि में, प्रतिपदा तिथि में तुला एवं मकर हों, पञ्चमी तिथि में मिथुन एवं कन्या राशि हो तथा सप्तमी तिथि में धनु एवं कर्क राशि हो—।।७०।।

### राशियों की दग्धसंज्ञा

**नवम्यां सिंह कीटाख्यावेकादश्यां गुरो गृहे।**
**वृषमीनौ त्रयोदश्यां दग्धसंज्ञास्त्वमी गृहाः।।७१।।**

नवमी में सिंह एवं वृश्चिक राशि हो, एकादशी में धनु एवं मीन राशि हो, त्रयोदशी में वृष एवं मीन राशि हो तो इन राशियों की दग्ध संज्ञा होती है।।७१।।

### तत्फलम्

**दग्धसद्मनि यत्कर्म कृतं सर्वं विनश्यति।**
**तस्माद्दग्धा गृहास्त्याज्याः शोभनेष्वखिलेष्वपि।।७२।।**

दग्ध राशि में जो भी कार्य किये जाते हैं। वे सभी नष्ट होते हैं; इसलिए दग्धा तिथियों का सभी शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिए।।७२।।

### कुलविनाशक योग

**महागणितमार्गस्थो व्यतीपातोऽत्र दोषदः।**
**बलवद्गणसम्पन्नोऽप्यसौ कुल विनाशदः।।७३।।**

महागणपति मार्ग में स्थित व्यतीपात नाम योग दोष देने वाला होता है। बलवान गणों से सम्पन्न होने पर यह योग कुल विनाशक होता है।।७३।।

### शून्यसंज्ञक नक्षत्र

**अश्विनी रोहिणी चैत्रे शून्यभे परिकीर्तिते।**
**चित्रास्वाती च वैशाखे ज्येष्ठे विश्वाख्य तारकाः॥७४॥**

अश्विनी एवं रोहिणी नक्षत्र चैत्रमास में। चित्रा एवं स्वाती नक्षत्र वैशाख में तथा ज्येष्ठ मास में उत्तराषाढ़ा नक्षत्र शून्य संज्ञक कहे हैं॥७४॥

### शून्यसंज्ञक नक्षत्र

**भगवासवमाषाढे श्रावणे हरिविश्वभम्।**
**नभस्ये वारुणान्त्यर्क्षमजपादश्वयुज्यपि॥७५॥**

पूर्वाफाल्गुनी एवं धनिष्ठा नक्षत्र आषाढ़ मास में, श्रावणमास में श्रवण एवं उत्तराषाढ़ा नक्षत्र, भाद्रपद मास में शतभिषा एवं रेवती नक्षत्र, क्वार (आश्विन) मास में पूर्वाभाद्रपदा एवं अश्विनी नक्षत्र—॥७५॥

**कार्तिके पितृवस्वृक्षे सौम्ये चित्रादिदैवते।**
**पौषे दस्रकरार्द्राः स्युर्माघे मूलं च विष्णुभम्॥७६॥**

कार्त्तिक मास में मघा एवं धनिष्ठा नक्षत्र, मार्गशीर्ष मास में चित्रा एवं विशाखा, पौषमास में अश्विनी, हस्त एवं आर्द्रा, माघ मास में मूल एवं श्रवण नक्षत्र—॥७६॥

**तपस्ये शक्रभरणी शून्यभान्याहुरग्रजाः।**
**एषु येन कृत कर्म धनैः सह विनश्यति॥७७॥**

फाल्गुन मास में ज्येष्ठा एवं भरणी नक्षत्र ये शून्य संज्ञक नक्षत्र ब्राह्मणों द्वारा कहे हैं। इन शून्य नक्षत्रों में जो भी कार्य किया जाता है, वह धन सहित नष्ट हो जाता है॥७७॥

**शून्यसंज्ञक नक्षत्र बोधक चक्र**

| मास | चैत्र | वैशाख | ज्येष्ठ | आषाढ़ | श्रावण | भाद्रपद |
|---|---|---|---|---|---|---|
| नक्षत्र | अश्वि.<br>रोहि. | चित्र<br>स्वा. | उ.षा. | पू.फा.<br>धनि. | श्र.<br>उ.षा. | शत.<br>रे. |
| मास | आश्वि | का. | मार्ग | पौष | माघ | फा. |
| नक्षत्र | पू.भा.<br>अश्वि. | मघा<br>धनि. | चित्रा<br>विशा. | अश्वि.<br>हस्त<br>आर्द्रा | मूल<br>श्रवण | ज्ये.<br>भर. |

त्याज्य तिथियां

**अष्टमी नवमी चैत्रे पक्षयोरुभयोरपि।**
**माधवे द्वादशी त्याज्या पीयोरुभयोरपि।।७८।।**

चैत्र मास के दोनों पक्षों (शुक्ल-कृष्ण) की अष्टमी एवं नवमी तिथि, वैशाख मास के दोनों पक्षों की द्वादशी त्याज्य कही है।।७८।।

**ज्येष्ठे त्रयोदशी निंद्या सिते कृष्णे चतुर्दशी।**
**आषाढ़े कृष्णपक्षे च षष्ठी सप्तम्यसत्प्रदा।।७९।।**

ज्येष्ठमास में त्रयोदशी तिथि शुक्लपक्ष में, कृष्णपक्ष में चतुर्दशी तिथि निन्दित कही है। आषाढ़ मास में कृष्णपक्ष की षष्ठी एवं सप्तमी अशुभफलप्रद होती है।।७९।।

**द्वितीया च तृतीया च श्रावणे सितकृष्णयोः।**
**प्रथमा च द्वितीया च नभस्ये मासि निन्दिता।।८०।।**

द्वितीया एवं तृतीया तिथि श्रावण शुक्ल एवं कृष्णपक्ष में, प्रतिपदा एवं द्वितीया भाद्रपद मास में निन्दित कही है।।८०।।

**दशम्येकादशी निन्द्या मासीषे शुक्लकृष्णयोः।**
**ऊर्जे चतुर्दशी शुक्लकृष्णपक्षे च पञ्चमी।।८१।।**

दशमी और एकादशी आश्विन मास के शुक्ल एवं कृष्णपक्ष दोनों में, कार्त्तिक मास के शुक्लपक्ष में चतुर्दशी तथा कृष्णपक्ष की पञ्चमी तिथि निन्दित कही हैं।।८१।।

**सप्तमी चाऽष्टमी सौम्ये पक्षयोरुभयोरपि।**
**पौषे पक्षद्वये चैव चतुर्थी पञ्चमी तथा।।८२।।**

सप्तमी और अष्टमी मार्गशीर्ष मास के दोनों पक्षों (शुक्ल-कृष्ण) में, पौषमास के दोनों पक्षों में चतुर्थी, पञ्चमी निन्दित कही हैं।।८२।।

**माघे तु पञ्चमी षष्ठी शुक्ल कृष्णे यथाक्रमात्।**
**तृतीया च चतुर्थी च फाल्गुने सितकृष्णयोः।।८३।।**

माघ मास में पञ्चमी एवं षष्ठी शुक्ल-कृष्णपक्ष क्रम में, फाल्गुन मास में तृतीया और चतुर्थी शुक्ल-कृष्ण पक्षों में निन्दत कही हैं।।८३।।

**तिथयो मासशून्याख्याः शुभकर्मविनाशदाः।**
**आसु श्राद्धादि कुर्वीत नैव मङ्गलमाचरेत्।।८४।।**

ये निन्दित तिथियां एवं शून्यमास शुभ कर्मों का विनाश करते हैं। इन योगों में श्राद्ध इत्यादि करने चाहिए और शुभ मङ्गल कार्य कभी भी नहीं करने चाहिए।।८४।।

### मास शून्य राशियों तथा उनका फल

**घटमत्स्यवृषा युग्ममेषकन्याः स वृश्चिकाः।**
**तुला चापकुलीराख्य मृगसिंहाख्यराशयः॥८५॥**

कुम्भ, मीन, वृष, मिथुन, मेष, कन्या, वृश्चिक, तुला, धनु, कर्क, मकर और सिंह ये राशियां—॥८५॥

**चैत्राद्या मासशून्याख्या वंशवित्तविनाशदाः।**
**तस्मात्तान्सम्परित्यज्य शोभनं कारयेत्सुधीः॥८६॥**

चैत्रादि मासों में क्रमशः मास शून्य कही है। ये मास शून्य राशियां वंश एवं धन का नाश करती हैं; इसलिये इन मास शून्य राशियों को त्याग करके ही बुद्धिजीवी लोगों को शुभ कार्य करने चाहिए॥८६॥

मास शून्यराशिचक्र

| मास | चैत्र | वैशाख | ज्येष्ठ | आषाढ़ | श्रावण | भाद्रपद |
|---|---|---|---|---|---|---|
| राशियां | कुंभ | मीन | वृष | मिथुन | मेष | कन्या |
| मास | आश्विन | का. | मार्ग. | पौष | माघ | फा. |
| राशियां | वृश्चिक | तुला | धनु | कर्क | मकर | सिहं |

### उत्पातों में नक्षत्रों का त्याग

**दिव्यान्तरिक्ष भौमाश्च उत्पाताः त्रिविधाः स्मृताः।**
**षण्मासं तदुडु त्याज्यं सप्ताहं च तदादितः॥८७॥**

दिव्य, अन्तरिक्ष एवं भौम—ये तीन प्रकार के उत्पात कहे हैं। इन उत्पातों से युक्त नक्षत्रों को आरम्भ सप्ताह से लेकर छः मास पर्यन्त त्याग करना चाहिए॥८७॥

**उत्पातदिनं संत्याज्यं नवमं च विशेषतः।**
**तयोः कृतं शुभं कर्म नाशमाप्नोति शीघ्रतः॥८८॥**

उत्पात दिन, विशेष रूप से उत्पात से नवमा दिन त्याग करना चाहिए। इन दिनों में किया गया शुभकार्य शीघ्र ही नाश हो जाता है॥८८॥

**त्रिद्युस्पृग्दिवसं त्याज्यमवमं च विशेषतः।**
**तयोः कृतं शुभं सर्वं नाशमाप्नोति शीघ्रतः॥८९॥**

तीन प्रकार के उत्पातों के दिन एवं उत्पात से नवम दिन विशेष करके त्याग देना चाहिए। इन दिनों में किये हुए सभी शुभ कर्म शीघ्र ही नाश हो जाते हैं॥८९॥

**राजा-संन्यासी इत्यादि मरने पर शुभकर्मों का त्याग**

**नृपसंन्यासि विद्वांसो यज्ञकृद्दैववित्तमाः।**
**एतेषां मरणे त्याज्यं त्रिदिनं शोभनेषु च॥९०॥**

राजा, संन्यासी, विद्वान, यज्ञ करवाने वाले वैदिक विद्वान इनके मरने के पश्चात् तीन दिन तक शुभकर्मों का त्याग करना चाहिए॥९०॥

**तीन प्रकार के वर्षों में शुभकर्म त्याग**

**अब्दास्तु त्रिविधा जीवसौरचन्द्राह्वयाः सदा।**
**तेषामादौ तथा चान्ते त्रिदिनं वर्जयेच्छुभे॥९१॥**

तीन प्रकार के वर्ष होते हैं—गुरुवर्ष, सूर्यवर्ष एवं चान्द्रवर्ष। इन तीनों वर्षों के प्रारम्भ और अन्त में तीन दिनों का शुभ कार्यों में त्याग करना चाहिए॥९१॥

**दूषित नाड़ियों में शुभकर्म त्याग**

**पूर्वतः परतः सूर्य सङ्क्रान्तेश्च विवर्जयेत्।**
**मङ्गलेषु सदा दुष्टा नाड्यः षोडश षोडश॥९२॥**

सूर्य सङ्क्रान्ति से पूर्व एवं पश्चात् सोलह-सोलह नाड़ियां जो कि दूषित होती हैं सदैव उनका शुभ मङ्गल कार्यों में त्याग करना चाहिए॥९२॥

**दिनमेकं सदा त्याज्यमयने विषुवद्द्वये।**
**सङ्क्रान्तिदिनमप्येवं ज्ञातव्यं मङ्गलेष्वपि॥९३॥**

अयन संक्रान्ति, विषुवद् संक्रान्ति इन दोनों संक्रान्तियों में एक दिन का त्याग करना चाहिए। इस प्रकार संक्रान्ति दिवस पर माङ्गलिक कार्यों का त्याग करना चाहिए॥९३॥

**महापातौ वैधृतिश्च उपरागसमः सदा।**
**तस्माद्दिनत्रयं त्याज्यं तच्च पूर्वापरं दिनम्॥९४॥**

व्यतीपात एवं वैधृति योग सदैव सूर्यचन्द्रग्रहण के समान होते हैं; इसलिए तीन दिनों का त्याग करना चाहिए अर्थात् एक दिन पूर्व एवं एक दिन पश्चात् और योग वाला दिन अशुभ होता है॥९४॥

**उपग्रहमहादोषा भूमिकंपादयश्च ते।**
**मङ्गलेषु सदा त्याज्याः कालकूट विषोपमाः॥९५॥**

उपग्रहादि महादोष, भूकम्पादि दोष ये सभी मङ्गल कार्यों में सदैव त्याज्य हैं; क्योंकि इन दोषों की उपमा कालकूट विष से की है॥९५॥

**कम्पं कम्पयति स्थानमुल्कां दहति तत्कुलम्।**
**दण्डे स्वामिविनाशः स्याध्वजः सर्वविनाशकृत्॥96॥**

भूकम्प से स्थान कम्पित होता है, उल्का से कुल का दहन, दण्ड से स्वामी का विनाश और ध्वज सबका विनाश करता है॥९६॥

**ग्रहण को दोष**

**ग्रहणं द्युनिशोर्मध्ये सन्ध्योर्वा भवेद्यदि।**
**उभयत्रापि दोषः स्यात्पश्चादेव न तत्र तु॥९७॥**

ग्रहण दो रात्रियों के मध्य में अथवा दो सन्ध्याओं के बीच में हो तो दोनों ओर दोष होता है अर्थात् पूर्व-पश्चात् दोनों में दोष होता है॥९७॥

**कण्टक नामक महादोष**

**अर्कारसितसौम्यार्यमन्दा यद्येकराशिगाः।**
**कण्टकाख्यो महादोषः सर्वकर्मविनाशकृत्॥९८॥**

सूर्य, मङ्गल, शुक्र, बुध, गुरु, और शनि यदि एक राशि में हों तो यह सभी कार्यों को विनाश करने वाला कण्टक नामक महादोष होता है॥९८॥

**अकालवृष्टिनीहारपरिवेष शरासनाः।**
**लत्तापातादयो दोषाः शुभकार्य विनाशदाः॥९९॥**

असमय वर्षा, कुहराधुन्ध, सूर्यमण्डल, चन्द्रमण्डल या इन्द्रधनुष दिखना, लत्तापातादि दोष शुभ कार्यों का विनाश करते हैं॥९९॥

**रूपादिबलसम्पूर्णा ग्रहेन्द्रा बलिनः सदा।**
**शीघ्रगाश्चाग्रगाःभानो रश्मिभिर्बलवत्तराः॥१००॥**

रूपादि बल सम्पूर्ण गृहस्वामी सदैव बलवान होते हैं। सूर्य से अधिक गति वाले अग्रगामी ग्रह सूर्य किरणों के द्वारा बलशाली हो जाते हैं॥१००॥

**पृष्ठतो रश्मिहीनाः स्युर्व्यत्ययान्मन्दचारिणः।**
**शशितो बलवान्सूर्य्यः सर्वकार्येषु सर्वदा॥१०१॥**

सूर्य से पीछे चलने वाले ग्रह रश्मि रहित और आगे जाने पर मन्दचारी हो जाते हैं। सभी कार्यों में सदैव चन्द्रमा से सूर्य बलशाली होता है॥१०१॥

**भस्मसंज्ञक एवं धूमसंज्ञकयोग**

**सूर्य्यस्य राशिर्ज्वलितो भस्मसंज्ञं तु पृष्ठभम्।**
**अग्रभं धूमसंज्ञं तु तस्माद् भत्रितयं त्यजेत्॥१०२॥**

सूर्य की राशि से ज्वलित पीछे के नक्षत्र को भस्मसंज्ञक तथा आगे वाले नक्षत्र को धूमसंज्ञक कहा गया है। अतः शुभकार्यों में सूर्य नक्षत्र एवं उस नक्षत्र से एक पूर्व नक्षत्र दूसरा पश्चात् नक्षत्र अर्थात् तीनों नक्षत्रों का त्याग करना चाहिए॥१०२॥

**यत्तद्राक्षिकृतं यत्तच्छुभं सर्वं विनश्यति।**

**भस्मधूमाह्वयं राशिद्वयं श्रेष्ठं शुभैर्युतम्॥१०३॥**

जो भी उस राशि में किये हुए शुभ कर्म हैं, उन सभी शुभ कर्मों का विनाश हो जाता है। भस्म एवं धूमसंज्ञक राशियां शुभ ग्रहों से युक्त हो तो ही श्रेष्ठ होती हैं॥१०३॥

**शून्याधिमासद्वितयं गण्डान्तं त्रिविधं सदा।**

**महापातत्रयं दुष्टं भसन्धित्रितयं भृशम्॥१०४॥**

शून्यमास, अधिमास दोनों की, त्रिविध गण्डान्त नक्षत्रों की, तीन महापात दोषों की, नक्षत्रों या राशियों की तीन सन्धियों को सदैव त्याज्य करना चाहिए॥१०४॥

**संग्रह, कर्त्तरी इत्यादि २१ दोष**

**संग्रहः कर्त्तरी सूर्य सङ्क्रान्ति विषनाडिकाः।**

**ग्रहणोभयतो दोषो दुःक्षणः कुनवांशकः॥१०५॥**

संग्रह, कर्त्तरी, सूर्यसङ्क्रान्ति, विषनाड़ी, ग्रहण के दोनों ओर दोष, बुरे क्षण तथा कुनवांश (बुरे नवांश)—॥१०५॥

**पापविद्धाधिष्ठितभं खार्जूरिक समांत्रिभम्।**

**कुजाष्टमः सितारिस्थः चन्द्रः षष्ठाष्टरिःफगः॥१०६॥**

पापग्रह से विद्ध अधिष्ठित नक्षत्र, खार्जूरिक, नक्षत्र के समान चरण, आठवें मङ्गल, छठे शुक्र, छठे, आठवें एवं बारहवें चन्द्रमा—॥१०६॥

**पञ्चाङ्गशुद्धिरहितश्चोत्पाताकालवृष्टिजाः।**

**एकविंशन्महादोषास्त्वन्ते ब्रह्ममुखोदिताः॥१०७॥**

पञ्चाङ्ग शुद्धि रहित, उत्पात, अकालवृष्टि ये सभी २१ प्रकार के दोषों को ब्रह्मा ने कहा है॥१०७॥

**२१ दोषों का फल**

**कदाचिन्नैव सीदन्ति गुणानां कोटि कोटिभिः।**

**तस्मादेतेषु दोषेषु कदाचिन्नाचरेच्छुभम्॥१०८॥**

ये २१ प्रकार के दोष कभी भी कोटि-कोटि गुणों से प्रसन्न नहीं होते अतः इन दोषों में शुभ कार्यों को कभी भी नहीं करना चाहिए॥१०८॥

**विवाहे विधवा नारी मरणं व्रतबन्धने।**

**ग्रामनाशः प्रतिष्ठायां सीमन्ते गर्भनाशनम्॥१०९॥**

इन दोषों के रहते विवाह में नारी विधवा, व्रतबन्धन (जनेऊ) में वटुक का मरण, प्राण-प्रतिष्ठा में ग्रामनाश तथा सीमन्तसंस्कार होने पर गर्भनाश होता है॥१०९॥

**नवान्नभोजने मृत्युः कृषौ तत्फल नाशनम्।**
**कर्तृनाशो गृहारम्भे प्रवेश पतिनाशनम्॥११०॥**

नवीन अन्न भोजन में मृत्यु, हलप्रवहन में कृषि सम्बन्धी फलों का नाश, मकान बनाने से कर्त्ता का नाश और गृहप्रवेश में पति का नाश होता है॥११०॥

**यात्रायां कर्त्तृनाशः स्याद्युद्धयाने विशेषतः।**
**लभ्यते सुमहापुण्यमेषु श्राद्धादि कर्मभिः॥१११॥**

सामान्य यात्रा अथवा विशेष रूप में युद्ध सम्बन्धी यात्रा में, यात्रा करने वाले का नाश होता है; परन्तु इन योगों में श्राद्धादि कर्म किये जायें तो अत्याधिक पुण्य प्राप्त होता है॥१११॥

### ज्येष्ठादि नक्षत्रों का फल

**ज्येष्ठं ज्येष्ठाद्यजो हन्ति द्वितीयेऽप्यथ सोदरम्।**
**तृतीये मातरं हन्ति स्वयं जातश्चतुर्थके॥११२॥**

ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथमपाद में उत्पन्न बालक अपने बड़े भाई का नाश करता है। दूसरे में सहोदर नाश, तृतीयपाद में अपनी माता को, चौथे पाद में स्वयं का नाश करता है॥११२॥

**ज्येष्ठर्क्षे कन्यका जाता हन्ति शीघ्रं धवाग्रजम्।**
**ज्येष्ठान्त्यपादजातस्तु पितृनाशाय जायते॥११३॥**

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के बड़े भाई को शीघ्र ही नष्ट करती है, जबकि ज्येष्ठा के अन्तिम (चतुर्थ) चरण में उत्पन्न कन्या पिता को नाश करती है॥११३॥

**ज्येष्ठं ज्येष्ठाद्यपादे तु हन्ति वालो न बालिका।**
**सा बालिका तु मूलर्क्षे पितरं मातरं तथा॥११४॥**

ज्येष्ठा नक्षत्र के प्रथम पाद में उत्पन्न बालक ही अपने बड़े भाई का नाश करता है बालिका नहीं। यदि बालिका मूल नक्षत्र में उत्पन्न हो तो माता-पिता का नाश करती है॥११४॥

**वासवे प्रथमे पादे द्वितीये च तृतीयके।**
**स्वल्पदोष इति प्रोक्तं पितरं हन्ति तुर्यके॥११५॥**

धनिष्ठा नक्षत्र के प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय चरण में उत्पन्न बालक थोड़ा दोषकारक होता है; परन्तु धनिष्ठा चतुर्थपाद में जातक पिता का नाश करता है॥११५॥

**वासवर्क्षचतुर्थांशे पुत्री पुत्रस्तु जायते।**
**पीडारिष्ट निवृत्यर्थं शान्तिं कुर्याच्च मूलवत्॥११६॥**

धनिष्ठा नक्षत्र के चतुर्थ पाद में यदि पुत्र वा पुत्री उत्पन्न हो तो पीड़ा एवं अरिष्ट निवारण के लिये मूल नक्षत्रवत् शान्ति करनी चाहिए॥११६॥

**नैर्ऋत्यभोद्भूतसुतः सुता वा क्षिप्रं त्ववश्यं श्वसुरं निहन्ति।**
**तदन्त्यपादाज्जनिता निहन्ति नैवोत्क्रमेणाहि भयः कलत्रम्॥११७॥**

मूल नक्षत्र में उत्पन्न पुत्र वा पुत्री शीघ्र ही अपने श्वसुर का नाश करते हैं। मूल नक्षत्र के अन्तिम चरण में उत्पन्न बालक-बालिका नष्ट नहीं करते। इस प्रकार विपरीत क्रम से आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न कन्याओं के लिए विचार करना। (मूल नक्षत्र का चतुर्थपाद दोषकारक नहीं कहा, परन्तु आश्लेषा का प्रथमपाद कष्टप्रद होता है।)॥११७॥

**सर्पेशताराजनिता धवाग्रजं द्विदैवताराजनिता तु देवरम्।**
**पुरन्दरर्क्षाज्जनितः सुतस्तदा स्वस्याग्रजं हन्ति न पुत्रिका यदि॥११८॥**

आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न कन्या अपने पति के बड़े भाई को (ज्येष्ठ को), विशाखा में उत्पन्न कन्या अपने देवर को, ज्येष्ठा में उत्पन्न बालक बड़े भाई को, परन्तु ज्येष्ठा में उत्पन्न कन्या अपने बड़े भाई को नहीं मारती॥११८॥

**हन्ति ज्येष्ठान्त्य पादोत्थः स्वज्येष्ठं नैव कन्यका।**
**विप्रेभ्यो गोत्रयं दद्यात्तद्दोष शमनाय वै।**
**''अशक्तो गोद्वयं दद्याद् गामेकां वापि भक्तितः''॥११९॥**

ज्येष्ठ अन्तिम पाद में उत्पन्न बालक अपने ज्येष्ठ का नाश करता है; परन्तु कन्या ऐसा नहीं करती। इस दोष की शान्त्यर्थ ब्राह्मणों को तीन गाय दान देनी चाहिए। अशक्त होने पर दो गाय या फिर भक्तिभाव से एक गाय का दान करना चाहिए॥११९॥

**भौजङ्ग पौरन्दरपौष्णभानां तदग्रभानां च यदन्तरालम्।**
**अभुक्तसंज्ञं प्रहरप्रमाणं त्यजेत्सुतं तत्र भवां सुतां च॥१२०॥**

आश्लेषा नक्षत्र, ज्येष्ठा नक्षत्र एवं रेवती नक्षत्र यदि अपने अग्रिम नक्षत्रों की सन्धि में हों तो अभुक्तसंज्ञक नक्षत्र में एक प्रहर में उत्पन्न पुत्र वा पुत्री का त्याग करना चाहिए॥१२०॥

### मूल-आश्लेषा नक्षत्रों का फल

**मूलाद्यपादजनितः पितरं निहन्ति।**
**द्वितीयतः स्वजननीं त्रिपदोऽर्थवृन्दम्।**
**तुरीयज शुभकरः फलमेतदेव-**
**वैलोमतो भुजगधिष्ण्यभवस्य सर्वम्॥१२१॥**

मूल नक्षत्र के प्रथमपाद में उत्पन्न जातक पिता का नाश, द्वितीय पाद में अपनी माता का नाश, तृतीय पाद में धनधान्य का नाश और चौथा पाद शुभ हो जाता

हैं; परन्तु आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न जातक का सम्पूर्ण फल मूल नक्षत्र से विपरीत हो जाता है॥१२१॥

| | | |
|---|---|---|
| मूल १ पाद | पितानाश | आश्लेषा ४ पाद |
| मूल २ पाद | मातृनाश | आश्लेषा ३ पाद |
| मूल ३ पाद | अर्थनाश | आश्लेषा २ पाद |
| मूल ४ पाद | पूज्यःशुभः | आश्लेषा १ पाद |

**नैर्ऋत्यभौजङ्गमगण्डदोषनिवारणायाभ्युदयाय नूनम्।**
**पितामहोक्तां रुचिरां च शान्तिं प्रवच्मि दैवज्ञहिताय सम्यक्॥१२२॥**

मूल, आश्लेषा तथा गण्डादि दोष निवृत्ति के लिए तथा जातक की उन्नति के लिए श्री ब्रह्मा द्वारा कही गई श्रेष्ठ शान्ति विधान दैवज्ञों के हित के लिए सम्यग्तया कहता हूँ॥१२२॥

**चित्राद्यर्द्धेपुष्यमध्ये द्विपादे पूर्वाषाढ़ाधिष्ण्यपादे तृतीये।**
**जातः पुत्रश्चोत्तराद्ये विद्यते मातापित्रोर्भ्रातरं चात्मनाशम्॥१२३॥**

चित्रा नक्षत्र का पूर्वार्द्ध, पुष्य नक्षत्र के मध्य द्वितीयपाद, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का तृतीय पाद तथा उत्तराषाढ़ा के प्रथम पाद में उत्पन्न बालक क्रम से माता, पिता, भाई तथा अपना नाश करता है॥१२३॥

**द्विमासस्योत्तरादोषः पुष्ये चैव त्रिमासकः।**
**पूर्वापाढ़ाष्टमे मासि चित्राषाण्मासिकं फलम्॥१२४॥**

दो मास तक उत्तराषाढ़ा नक्षत्र का दोष, पुष्य नक्षत्र का तीन मास तक, पूर्वाषाढ़ा नक्षत्र का दोष आठ मास तक तथा चित्रा नक्षत्र का दोष छः मास में अपना फल करता है॥१२४॥

### गण्डान्त नक्षत्रों का समयानुसार फल

**नवमासं तथाश्लेषां मूले चाष्टमवर्षके।**
**ज्येष्ठा पञ्चदशे मासि पुत्रदर्शनवर्जिताः॥१२५॥**

नौ मास में आश्लेषा नक्षत्र, मूल नक्षत्र आठ वर्ष में, ज्येष्ठा नक्षत्र पन्द्रह मास में दोष देता है। इन दोषों के रहते पुत्र दर्शन वर्जित है॥१२५॥

*(यदि पुत्र दर्शन न करें तो दोष नही होता ऐसा व्यवहार में आता है।)*

**ज्येष्ठान्त्यपादघटिकामितमेव केचिन्।**
**मूलं ह्यभुक्तमपरे पुनरामनन्ति।**
**मूलाद्यपादघटिकाद्वितयेन सार्द्धम्।**
**अष्टौ समा परिहरेदिह जन्मभाजम्॥१२६॥**

कुछ विद्वानों का मत है कि ज्येष्ठान्त की एक घटी मूल के प्रथम पाद को अभुक्त मूल होते हैं। मूल नक्षत्र के प्रथमपाद की ढाई घटी तक अभुक्तमूल कहा जाता है। आठ वर्ष पर्यन्त अभुक्तमूल में उत्पन्न बालक-बालिका का त्याग करना चाहिए॥१२६॥

**अभुक्तमूलव्यतिरिक्तगण्डदोषेषु**
**शान्तिं विदधीत् धीमान्।**
**शास्त्रोक्तरीत्या खलु सूतकान्ते**
**मासे तृतीयेऽप्यथ वत्सरान्ते॥१२७॥**

अभुक्तमूल को त्याग कर अन्य गण्डदोषों में बुद्धिमान व्यक्ति को शान्ति करवानी चाहिए। शास्त्रोक्त रीति सूतकान्त में, तीसरेमास में या वर्षान्त तक अवश्य करवानी चाहिए॥१२७॥

**मातृगण्डसुते ताते सूतकान्ते विचक्षणाः।**
**कुर्याच्छान्तिं तादृशे वा तद्दोषस्यापनुत्तये॥१२८॥**

मातृगण्ड में उत्पन्न बालक की शान्ति बुद्धिमान् व्यक्तियों को दोष निवृत्यर्थ सूतक के अन्त में करनी चाहिए॥१२८॥

### मूलनक्षत्र का विस्तृत फल

**मूलाद्यपादो दिवसे यदि स्यात्तज्जः पितुर्नाशनकारणं स्यात्।**
**द्वितीयपादो यदि रात्रिभागे तदुद्भवो मातृविनाशकः स्यात्॥१२९॥**

मूल नक्षत्र के प्रथमपाद में दिन में उत्पन्न बालक पिता के नाश का कारण बनता है। मूल नक्षत्र के दूसरे पाद में रात्रिकाल में बालक का जन्म हो तो माता का नाश होता है॥१२९॥

**मूलाद्यपादो यदि रात्रिभागे तदात्मनो नास्ति पितुर्विनाशः।**
**द्वितीयपादो दिनगो यदि स्नान्न मातुरल्पोऽपि तदास्ति दोषः॥१३०॥**

मूल नक्षत्र प्रथमपाद यदि रात्रि में हो तो बालक पिता का नाश न करके अपना नाश करता है। मूल नक्षत्र द्वितीय पाद यदि दिन में हो तो माता को सामान्य दोष भी नहीं करता॥१३०॥

### अथगण्डदोष शान्तिविधिः

**ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि कल्पयेत्।**
**मण्डपं चाष्यभिर्हस्तैश्चतुभिर्वासमन्ततः॥१३१॥**

ईशानकोण अथवा पूरब या उत्तर दिशा में आठ हस्त प्रमाण अथवा चार हस्त प्रमाण चौकोर मण्डप का निर्माण करें॥१३१॥

**कदली स्तम्भसञ्युक्तमाम्रपल्लवराजितम्।**
**पुष्पमालायुतं सम्यक् तूर्यघोषनिनादितम्॥१३२॥**

केले के खम्भे से युक्त, आम के पत्तों से शोभित, फूलमालाओं से युक्त भलीभाँति वाद्यादि बजवायें॥१३२॥

**चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैरलङ्कृतम्।**
**पिष्टेन कल्पयेत्सर्वं तथा गोमयमण्डले॥१३३॥**

चार द्वारों से युक्त तोरण इत्यादि से अलङ्कृत करके, आटे से सभी चौक कल्पित करके, गाय के गोबर से मण्डप का लेप करें॥१३३॥

**कुण्डं च तद्बहिः कार्य्यं ग्रहयज्ञोक्तमार्गतः।**
**पञ्चामृतं पञ्चगव्यं पञ्चत्वक्पल्लवानि च॥१३४॥**

कुण्ड का निर्माण बाहर ग्रहयज्ञ के लिए कहे गये मार्ग से करे तथा पञ्चामृत, पञ्चगव्य, पञ्चछाला, पञ्चपल्लव इत्यादि के द्वारा—॥१३४॥

**रोचनं कुंकुमं शङ्खं गजदन्तं च गुग्गुलम्।**
**सद्बीजाश्च शतौषध्यः सुगन्धसप्तमृत्तिकाः॥१३५॥**

रोली, हल्दी, शंख, हाथीदान्त, गुग्गुल, सत्बीज, शतौषधी, सुगन्धित गन्ध, धूपवर्त्तिका तथा सात प्रकार की मिट्टी (तुलसी मिट्टी) तीर्थों की मिट्टी इत्यादि के द्वारा—॥१३५॥

**शतच्छिद्रं बृहत्कुम्भं शिरोदेशे च धारयेत्।**
**ततो राज्याभिषेकं च कुर्य्यादाचार्य कोविदः॥१३६॥**

सौ छिद्रों से युक्त बड़ा कुम्भ शिर पर धारण करके कुशल विद्वान आचार्य द्वारा राज्याभिषेक करवाये॥१३६॥

**आदाय चतुरः कुम्भानाचार्यो वेदपारगः।**
**निनयेयुर्बृहत्कुम्भब्लिंगैर्जलमन्त्रकैः ॥१३७॥**

चार कलशों को लेकर वेद में पारङ्गत आचार्य बड़े कुम्भ के द्वारा अब्लिङ्ग तथा जलमन्त्रों द्वारा—॥१३७॥

**स्नातुर्नीराजनं कुर्य्याच्चित्रान्नैर्दीपमालिकैः।**
**कुम्कुमं माल्याम्बरौ दत्त्वा प्रार्थयेन्निर्ऋतिं द्विजान्॥१३८॥**

आमन्त्रित करके स्नान करवाये तथा अनेक विचित्र दीपमालिका के द्वारा स्नान किये हुए की आरती करवाएं। पुनः कुमकुम, माला, वस्त्रयुगल दे करके नैर्ऋत्य देवता एवं ब्राह्मणों से प्रार्थना करें॥१३८॥

**अनेन सुकृतेनैव निर्ऋतिः प्रीयतामिति।**
**गृहीत्वा सुकृतं तेभ्य पूजाहोम जपादिकम्॥१३९॥**

ऐसे पुण्य कृत्य से नैर्ऋत्य देवता प्रसन्न करके, पुण्य ग्रहण करके, पूजा-हवन तथा जपादि कर्म करें॥१३९॥

**आचार्याय वृषं दद्याल्लोहपिण्डं सदक्षिणम्।**
**प्रतिमां वस्त्र सञ्युक्तां बीजान् शक्त्यनुसारतः॥१४०॥**

पूजा करवाने वाले आचार्य को लोह कडाह दक्षिणा में दे तथा वस्त्र युक्त मूर्ति बीजों सहित शक्ति के अनुसार—॥१४०॥

**आचार्य्येभ्यो ब्राह्मणेभ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः।**
**द्वाराङ्गजापकेभ्यश्च भयलोभविवर्जितः॥१४१॥**

आचार्य एवं ब्राह्मणों को अपने धन के अनुसार धन देना चाहिए। जापक ब्राह्मणां एवं सहायक आचार्यों को भय एवं लोभ विवर्जित होकर दक्षिणा दे॥१४१॥

**श्रोत्रियाय विशिष्टाय ब्राह्मणाय कुटुम्बिने।**
**वस्त्रालङ्कारसञ्युक्तां धेनुं दद्यात्सदक्षिणाम्॥१४२॥**

श्रोत्रिय ब्राह्मण के लिए विशेष दक्षिणा, उसके परिवार के लिए वस्त्र-आभूषणों से युक्त गाय दक्षिणा सहित देनी चाहिए॥१४२॥

**ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चादाशीर्वादपुरःसरम्।**
**एवं यः कुरुते शान्तिं गण्डदोषात्प्रमुच्यते॥१४१॥**

ब्राह्मणों को बाद में भोजन करवाकर तथा उनका आशीर्वाद ग्रहण करते हुए जो गण्डदोष शान्तिकर्म करता है, वो गण्डदोष से सदैव मुक्त हो जाता है॥१४३॥

**एतत्सर्वं सार्पभेऽपि समानं किञ्चिदुच्यते।**
**सार्पेभ्यः स्वाहेति मन्त्रमुखान्ते जुहुयात्ततः॥१४४॥**

ये सभी शान्ति विधान आश्लेषा इत्यादि नक्षत्रों में उत्पन्न जातकों के लिए समान विधि से करवाने चाहिए। सार्पेभ्यः स्वाहा इस मन्त्र के द्वारा अग्नि मुख में अन्त में होम करें॥१४४॥

**आश्लेषाभ्याः स्वाहा दंदशूकेभ्यः स्वाहेति॥ "उपहोममन्त्रौ"**
**इदं सर्पेभ्य ऋषि वाक्यै पूर्ववदष्टभिः॥१४५॥**

**आश्लेषाभ्यः स्वाहा, दंशशूकेभ्यः स्वाहा** इन उपहोममन्त्रों द्वारा होम करें, तथा इदं सर्पेभ्यः ऋषि वाक्यों से पूर्व में कहे हुए आठ मन्त्रों से भी होम करे॥१४५॥

**एषामास्तीकऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य देवताः।**
**नमोऽस्तु सर्पेभ्य इत्युपचाराश्च पूर्ववत्॥१४६॥**

इन मन्त्रों के आस्तीक ऋषि हैं त्रिष्टुप् छन्द और देवता सर्प हैं। **''नमोऽस्तु सर्पेभ्यः''** इस मन्त्र के द्वारा पूर्ववत् पूजा करें॥१४६॥

**अस्य मंन्त्रस्य बृहतीछन्दः सर्पाधिदेवता।**
**आस्तीकऋषिमन्त्रोऽयं सर्वदुःखविनाशदः॥१४७॥**

इस मन्त्र का बृहतीछन्द, अधिदेव सर्प, आस्तीक ऋषि हैं। **''नमोऽस्तुसर्पेभ्यः''** यह मन्त्र सभी दुःखों का विनाश करता है॥१४७॥

**पितामहानुसारेण चोक्तं दोषनिरूपणम्।**
**गुणापवादमधुना कथ्यते च पृथक् पृथक्॥१४८॥**

**इति श्रीब्रह्मवृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां दोष-निरूपणाध्यायो द्वाचत्वारिंशः।।४२।।**

श्री ब्रह्मा के मतानुसार दोषनिरूपण अध्याय कहा है। अब गुण एवं अपवादों को भिन्न-भिन्न कहेंगे॥१४८॥

वृद्ध वसिष्ठ संहिता के ''**दोष निरूपणाध्याय**'' की
''**नारायणी**'' हिन्दी टीका समाप्त॥४२॥

***

**पाठान्तरम्**

०२. (अ) ज१-पार्थेन्दु, ज.मो. भाज्येन्दु (—वाग्विदु)
०३. (ब) ज१-प्रकीर्तता, ज. मो. प्रकिर्तिना (—प्रकीर्तिताः)
०४. (ब) ज१-मद्रातिथ्या (—भद्रातिथौ)
ज१-कोणयोगाः ज. मो. कालयोगाः (—काणयोगाः)
०५. (अ) ज१-पितृद्रुषु, ज.मो. पित्रुडुषु (—पितृडुषु)
०६. (अ) ज१-शतवष्टा, ज. मो. शतवष्ट्ट (—शत्वाष्ट्र)
०९. (अ) ज. मो.-नगादिष (—नगारिषु)
१०. (अ) ज१-विनस्य (—विनश्यति)
(ब) ज. मो.-मंगलेषु (–मङ्गलेष्वपि)
१२. (अ) ज१-मदाचक्र (—गदायोगा)
(ब) ज१-प्रदायका, ज. मो. प्रदायकः (—प्रदायकाः)
१३. (अ) ज१-शसिनि (—शशिनि)
ज१-मन्द (–मन्दे)
१५. (ब) ज१-विषोपमा (—विषोपमाः)
१६. (ब) ज१-वंर्णाति (—वर्षान्ते)
१७. (ब) ज१-वंर्षति (—वर्षान्ते)

१९. (ब) ज१-वर्जनीया (—वर्जनीयो)
२०. (ब) ज१-तिस्रः पूर्वादि (—त्रिपूर्वावह्नि)
२१. (ब) ज१-तस्मात्तुशुभ (—तस्माच्छुभेषु)
२२. (ब) ज१-शकटो (—सङ्कटो)
२४. (ब) ज१-शमः (—समः)
२५. (अ) ज१-वाराशाथाः (—वारेशाद्याः)
२६. (अ) ज१-मध्येदस (—मध्यदेशे)
३०. (ब) ज१-कुज (—कुजे)
३१. (ब) ज१-मित्रत्र्यादश्या (—मित्रत्रयोदश्योः)
ज१-ष्टोश्रवणयो (—षष्टश्रवणयोः)
(ब) ज१-शनावेते (–शनियुते)
ज१-हालाहलाद्वयाः ज. मो.-हालाहलाह्वयाः (—हालाहलभिधाः)
३२. ऐषु योगेषु कर्त्तव्यः शत्रूच्चाटनमारणम्।
विवाहादि कार्येषु निश्चितं निधनप्रदम्।।
—(वृ. दै. र. प्र. ३७, श्लोक १३२ पाटेभेदः)
३३. (अ) ज१-प्रतिपथंबुधक्षेत्रे (—प्रतिपद्यम्बुनक्षत्रे)
ज१-वह्निमेशति (—वह्निभेसति)
३६. (ब) ज१-शुभोमना, ज. मो. सुशोभनाः (—शोभनाः)
३७. (ब) ज. मो.-पतितश्चोपनायते (—व्रात्यः स्याच्चोपनायने)
४२. (ब) ज१-सर्वशोभनननासदाः (—सर्वमङ्गलनाशदाः)
४८. (अ) ज१-वारेसे (—वारेशे)
४९. (अ) ज१-हस्तावासरयोराद्यं (—हस्तवासवयोराद्यं)
ज१-विशाषा (—विशाखा)
५१. (अ) ज१-अस्वि (—अश्वि)
(ब) मु. पु. क्ष्त्रिदो (—छिद्रो)
५२. (अ) ज१-दिवारोगाः (—दिवायोगा)
(ब) ज१-शनिस्याताः (—इति ख्याताः)
५३. (अ) ज१-तस्माद्विदैव (—तस्माद्दिवैव)
५४. (ब) ज१-वार्क (—भवार्क)
५६. (अ) विश्वाख्य (—चित्राख्य)
(ब) ज१-द्विद्ववाद्वय (—द्विदैवाहय)
६२. (अ) ज१-सूर्येरासि (—सूर्योराशि)
(ब) ज१-दोषा (—योगः)
६३. (अ) ज१-व्यतिपातः परोविषः (—व्यतीपातोऽपरोविषः)

६४. (अ) ज१-चक्रहीने (—चक्रयुक्तें)
ज१-धनुहरे (—धनुर्द्धरः)
(ब) ज१-संज्ञोपरी (—संज्ञोऽपरो)
६५. (ब) ज१-संयुतेब्दिनेहदपराशिषु (—सञ्युक्तेष्विनेन्दूदयराशिषु)
६६. (ब) ज१-द्वितीय (—द्वितीये)
ज१-सीमन्तो (—सीमन्ते)
६८. (ब) ज१-मेषकर्काख्योवष्टम्यां (—मेषसिंहाख्यावष्टभ्यां)
६९. (ब) ज१-शोभनेष्टनिगर्हिता (—शोभनेष्वतिगर्हिताः)
७३. (ब) ज१-क्लविनासदः (—कुलविनाशदः)
७४. (ब) ज१-चित्रारेवनी (—चित्रास्वाती)
७६. (अ) ज१-वदमर्क्षे (—वस्वृक्षे)
ज१-चित्रद्विदैवतं (—चित्रादिदैवते)
(ब) ज१-विशुमं (—विष्णुभम्)
७७. (अ) ज१-तपस्थे (—तपस्ये)
(ब) ज१-यत्कृतं (—येनकृतं)
७८. (अ) ज१-चोभयोपक्षयोपरि (—पक्षयोरुभयोरपि)
७९. (अ) ज१-नीधा (—निंद्या)
८०. (ब) ज१-निंदिते (—निन्दिता)
८१. (अ) ज१-निधे (—निन्द्या)
ज१-मार्गशीर्ष (—मासीषे)
(ब) ज१-उर्ज्ज (—ऊर्जे)
८२. (अ) ज१-पक्षयोरुभयोसदाः (—पक्षयोरुभयोरपि)
८४. (अ) ज१-विनासदा (—विनाशदाः)
(ब) ज१-मंगलकर्मयत् (—मङ्गलमाचरेत्)
८९. (ब) ज१-शुभकर्म (—शुभंसर्वं)
९१. (अ) ज१-अब्दाःस्यु (—अब्दास्तु)
९३. (ब) ज१-वतदयनं (—दिनमप्येवं)
९४. (अ) ज१-महापातो व्यतीपातो वैधृतिश्चसमसदा (—महापातौ वैधृतिश्च उपरागसमः सदा)
९६. (अ) ज१-कंपः कंपयते (—कम्पं कम्पयति)
९७. (अ) ज१-मु. पु. नाकुलम् (—तत्कुलम्)
९८. (ब) ज१-कंडकात्यो (—कण्टकाख्यो)
ज१-विनासकृत् (—विनाशकृत्)
९९. (अ) ज१-सदासनाः (—शरासनाः)

(ब) ज१-विनोसदा: (—विनाशदा:)
१०४. (ब) ज१-महायति (—महायात)
ज१-तृतयं (—त्रितयं)
१०५. (ब) ज१-दुषण: (—दु:क्षण:)
ज१-कुतवांसक: (—कुनवांशक:)
१०६. (अ) ज१-खार्दूरसमाधिमं (—खार्जूरिकसमांत्रिभम्)
(ब) ज१-कुजोष्टम: (—कुजाष्टम:)
ज१-सितोरिस्थ: (—सितारिस्थ:)
ज१-षष्टारिष्फग: (—षष्ठाष्ठरि:फग:)
१०८. (ब) ज१-कदाचिन्नाचरेशुभं (—कदाचिन्नाचरेच्छुभम्)
१०९. (ब) ज१-ग्रामवास: (—ग्रामनाश:)
ज१-सीमन्तो (—सीमन्ते)
११०. (अ) ज१-कृष्णोतफलनासनं (—कृषौ तन्फलनाशनम्)
१११. ज१-पाठोनास्ति
११३. (अ) ज१-ज्येष्टंज्येष्टाद्यर्क्षे (—ज्येष्टर्क्षे)
११४. (ब) ज१-साषाकलिकानु (—सा बालिकातु)
११५. (अ) ज१-द्वितीय च तृतीयकं (—द्वितीये च तृतीयके)
(ब) ज१-तुचतुर्थगे (—हन्तितुर्यके)
११६. (अ) ज१-वासववर्ष (—वासवर्क्ष)
११७. (ब) ज१-पाक्षजनिता (—पादाज्जनिता)
११८. (अ) ज१-सुरेशतारा (—सर्पेशतारा)
१२१. (स) ज१-तोरीयज: (—तुरीयज:)
१२२. (अ) ज१-नृणां (—नूनम्)
(ब) ज१-लोकस्य (—दैवज्ञ)
१२३. (ब) ज१-च पादे (—विद्यते)
१२४. (अ) ज१-पुष्यं (—पुष्ये)
१२५. (ब) ज१-पंचदशंमासं (—पंचदशेमासि)
ज१-वर्जयेपुत्रदर्शनं (—पुत्रदर्शनवर्जिता:)
१२६-१२९. ज१-पाठोनास्ति
१३०. (अ) ज१-तदामवोनस्ति (—तदात्मनोनास्ति)
(ब) ज१-मानुलरोल्पोपि (—मातुरल्पोऽपि)
१३१. (ब) ज१-शमंतत: (—समन्तत:)
१३४. (अ) पी.यू.धा.टी., कुर्यात् (—कार्य्यं)
१३५. (ब) ज१-सद्वीजानि (—सद्वीजाश्च)

जश-सुगन्थः (—सुगन्ध)
मु. पु. कलमृत्तिकाः (—सप्तमृत्तिकाः)
१३६. (ब) जश-तदवाराभिश्नाभिषेकं (—ततोराज्याभिषेकं)
जश-कोद्विजः (—कोविदः)
१३९. (अ) जश-पृथतामिति (—प्रीयतामिति)
१४०. (ब) जश-मु. पु. वसुसंयुक्तां (—वस्त्रसञ्युक्तां)
जश-विद्धिजान् (—बीजान्)
१४१. (अ) जश-आचार्यादि (—आचार्य्येभ्यो)
१४२. (अ) जश-कुटंविते (—कुटुम्बिने)
१४४. (ब) जश-मुख्याते (—मुखान्ते)
१४५. मु. पु. इति वाक्यैः (—ऋषिवाक्यैः)
मु. पु. पूर्वदष्टभिः (—पूर्ववदष्टभिः)
१४६. (अ) जश-स्ष्टुश्सर्वाश्च (—स्त्रिष्टुप्छन्दोऽस्य)
१४८. (अ) जश-चोक्ता (—चोक्तं)

**पुष्पिका :** जश-इति श्रीवृद्धवसिष्ट ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां दोषनिरूपणाध्यायः॥४२॥

***

## ४३

# अथ दोषापवादाध्यायः

### उत्पातयोग

अथातः संप्रवक्ष्यामि दोषाणामपवादकम्।
अध्यायं तं हितार्थाय दैवज्ञानां च सुन्दरम्॥१॥

### नारायणी टीका

अब इसके बाद दोषों का अपवाद नामक अध्याय जो ज्योतिषियों के लिए हितकारक एवं सुन्दर है, को कहते हैं॥१॥

अधर्मेण जितो धर्मः पुण्यं पापचयेन च।
यद्वत्कलियुगे तद्वद्दोषेण गुणसञ्चयम्॥२॥

अधर्म से धर्म जीता जाता है और पापसमूह से पुण्य। जिस प्रकार कलियुग में होता है, उसी प्रकार दोषों के द्वारा गुणसमूह नष्ट हो जाते हैं॥२॥

नामनिर्देशतो यत्र चैव दोषस्त्विदं गुणम्।
हन्ति तत्रैव सान्यत्र प्रशंसां परमस्य वै॥३॥

जहाँ नाम निर्देश मात्र से ही दोष गुण को नष्ट करते हैं तथा अन्यत्र वे दोष निश्चित तौर पर प्रशंसा को प्राप्त करते हैं॥३॥

वारयोगगुण हन्ति योगश्चोत्पातसंज्ञितः।
अतिसर्वगुणोपेतमाधिकार्यं यथा तथा॥४॥

वार योग गुण को नष्ट करता है तथा योग ही उत्पात सज्ञक होते हैं! अत्यन्त सर्व्वगुणों से सम्पन्न बड़े कार्यों को जैसे-तैसे कहा गया है॥४॥

### श्रेष्ठयोग का फल

श्रेष्ठं योगं यथा हन्ति मृत्युयोगोमहाबलः।
सम्पूर्णगुणिनं यद्वत्सर्पस्तु मूषकं यथा॥५॥

सम्पूर्ण गुण सम्पन्न श्रेष्ठ योग को अत्यन्त बलशाली मृत्यु योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सर्प चूहे को॥५॥

### शुभयोग का फल

शुभयोगं निहन्त्याशु त्वघयोगो महाबलः।
यथा कृष्णमृगं साधु शार्दूलस्त्वतिगर्वितः॥६॥

शुभ योग महाबलशाली पाप योगों को वैसे ही नष्ट करता हैं, जैसे श्रेष्ठ काले हिरण को अत्यन्त गर्वित शेर नष्ट करता है॥६॥

कल्याणसंज्ञक योग

**हन्ति कल्याण योगाख्यं काणयोगो महाबलः।**
**प्रभञ्जनो यथा तूलराशिं पटतरस्तथा॥७॥**

कल्याणसंज्ञक योग महाबली काण योग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वायु सम्पूर्ण रुई समूह तथा वस्त्र को॥७॥

वर्द्धमान योग

**वर्द्धमानाह्वयं योगं पङ्गुयोगो निहन्ति वै।**
**अन्नं सुगुणसम्पन्नमुग्रा विषलवा यथा॥८॥**

वर्द्धमान नामक योग को पङ्गु नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सुन्दरगुणों से सम्पन्न अन्न को प्रचण्ड विषकण नष्ट करते हैं॥८॥

सुधायोग

**सुधायोगान्निहन्त्येव बधिरो योग चञ्चलः।**
**वृकोऽजसमितिं यद्वत्तद्वदेवाचिराद्भृशम्॥९॥**

सुधायोग चंचल वधिरयोग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भेड़िया बकरियों के समूह को नष्ट करता है। इसी प्रकार शीघ्र ही—॥९॥

दग्धयोग

**बलिनं गुणसम्पन्नं महायोगं निहन्ति वै।**
**दग्धयोगो यथा मेहः शरीरमचिराद्भृशम्॥१०॥**

बलशाली गुण सम्पन्न महायोग की दग्धयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे प्रमेह रोग शीघ्र ही शरीर को नष्ट करता है॥१०॥

अथ शान्तिविधानम्

**सुवर्णगन्धपुष्पाणि रक्तगन्धोदकानि च।**
**सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः॥११॥**

सुवर्ण, गन्ध, पुष्प, रक्तगन्ध जल सुवर्ण प्रमाण से, उसके आधे पुन: आधे से —॥११॥

**निर्ऋतिप्रतिमां कुर्य्याद्वित्तशाठ्य विवर्जितः।**
**वस्त्राणि षोडशाष्टौ वा शुक्लसूक्ष्माण्य तंद्रितः॥१२॥**

नैर्ऋत्य देवता की मूर्ति धन की कंजूसी के विना बनवानी चाहिए। आलस्य के वगैर श्वेत सूक्ष्म वस्त्रों के द्वारा सोलह या आठ—॥१२॥

**ब्राह्मणान्वरयेत्पश्चात्स्वस्तिवाचनपूर्वकम् ।**
**प्रधानाचार्यमेतेषां श्रेष्ठं तत्प्रतिमार्चने॥१३॥**

ब्राह्मणों का वरण करके स्वस्तिवाचक पूर्वक प्रधान आचार्य को श्रेष्ठमूर्ति पूजा-अर्चना में—॥१३॥

**ईशाना दिषु कोणेषु चतुरः कलशार्चने।**
**एवं पृथक् पृथग्वापि मधुपर्क समन्वितान्॥१४॥**

ईशानादि चारों कोणों में कलशों की पूजा अलग-अलग मधुपर्क सहित—॥१४॥

**द्वारेषु जापकानष्टौ पूर्ववच्चाङ्गजापकान्।**
**ईशानादिषु कोणेषु कलशाञ्जल पूरितान्॥१५॥**

दरवाजों में आठ जापक, पहले की तरह अङ्गजापकों को ईशानादि कोणों में कलशों को जलपूरित करके—॥१५॥

**पूर्वोक्तद्रव्यसञ्युक्ताञ्धुक्लवर्णान्सुशोभनान्।**
**तण्डुलोपरि संस्थाप्य चोपचारैः प्रपूजयेत्॥ १६॥**

पहले बताई गई सामग्री सहित सफेद सुशोभित चावलों के ऊपर स्थापना करके सर्वोपचार (सामग्री इत्यादि के द्वारा) पूजा करनी चाहिए॥१६॥

**अब्लिङ्गैर्वारुणैर्मन्त्रैः शुक्लपुष्पाक्षतादिभिः।**
**ततः कुम्भजलं स्पृष्ट्वा कुशकूर्च्चैर्जपादिकान्॥१७॥**

अब्लिङ्ग वारुण मन्त्रों के द्वारा सफेद फूल, चावल इत्यादि से, फिर कलश के जल को स्पर्श कर कुशा के कूर्चों के द्वारा जप करने वालों को—॥१७॥

**भद्रभक्तं च भद्राग्नेरानो भद्रा इति क्रमात्।**
**पुरुषसूक्तं च तन्मन्त्रैर्देवान्ध्यात्वाप्य तन्द्रितः॥१८॥**

श्रेष्ठभक्तों को और श्रेष्ठाग्नि को "आनोभद्रा" इत्यादि मन्त्रों के क्रम से पुरुष सूक्त तथा अन्य देवताओं के मन्त्रों द्वारा आलस्यरहित होकर ध्यान करें॥१८॥

**प्रसिद्धा रुद्रसूक्तस्य ऋषिश्छन्दोऽधिदेवता।**
**भद्राग्ने इति सूक्तस्य आद्यर्चौ द्वे जपोत्यकौ॥१९॥**

प्रसिद्धरुद्र सूक्त के ऋषि, छन्द तथा अधिदेवता भद्राग्नि इस सूक्त के प्रथम दो आचार्यों तथा दो जप करने वालों को—॥१९॥

**ततो दशर्चानुष्टुभो वामदेवोऽग्निदेवता।**
**आनो भद्राम्य सूक्तस्य आद्याः पञ्च च सप्त च॥20॥**

पुनः दस ऋचाओं में अनुष्टुप् छन्द वामदेव, अग्निदेव, आनोभद्रा इस सूक्त के द्वारा पहले पाँच या सात पाठ करें॥२०॥

**जगत्यश्च विराट् चैव शेषास्तिस्त्रस्त्वनुष्टुभः।**
**राहुगणसुतश्चैव गौतमश्च ऋषी स्मृतौ॥२१॥**

जगती, विराट् और शेष तीन अनुष्टुप्मन्त्रों से राहुगण के पुत्र और गौतम ऋषि की स्मृति में—॥२१॥

**देवताश्च तथा विश्वेदेवताश्च प्रकीर्तिताः।**
**चतुर्दशानुष्टुभास्तु पुरुषसूक्तस्य चोदिताः॥२२॥**

देवता तथा विश्वेदेवा कहे गये हैं। चौदह अनुष्टुप् पुरुष सूक्त के मन्त्र कहे हैं॥२२॥

**ऋचौ द्वे त्रिष्टुभौ ज्ञेयो ऋषिर्नारायणः स्वयम्।**
**सूक्तं नारायणः साक्षाद्देवतापरपूजकः॥२३॥**

दो ऋचाओं को त्रिष्टुप् जानना, ऋषि स्वयं नारायण हैं, ऐसे साक्षात् नारायण सूक्त के द्वारा देवताओं का पूजन करना चाहिए॥२३॥

**शतच्छिद्र बृहत्कुम्भं स्थापयेन्मध्यतस्ततः।**
**तत्पश्चान्निर्ऋतिदेवमर्चयेत्पश्चिमामुखम्॥२४॥**

सौ छिद्रयुक्त बड़े कुम्भ को मध्य में स्थापित करके इसके बाद नैर्ऋत्य देवता की पश्चिम की ओर मुख करके अर्चना करें॥२४॥

**मोषुणस्वितिमन्त्रेण शुक्लवस्त्राक्षतादिभिः।**
**मोषुणस्त्विति मन्त्रस्य ऋषिः प्रस्कण्वसंज्ञकः॥२५॥**

**'मोषुण'** इस मन्त्र के द्वारा सफेद वस्त्र, सफेद चावल इत्यादि मोषुण इस मन्त्र के ऋषि प्रस्कण्व संज्ञक—॥२५॥

**निर्ऋतिर्देवताछन्दो गायत्री क्लेशनाशिनी।**
**करालवदनं कृष्णं खड्गचर्मधरं तनुम्॥२६॥**

निर्ऋति देवता, छन्द गायत्री कष्टों का नाश करने वाली, भयङ्कर काले शरीर, खड्ग और चमड़े को तन में धारण करने वाली है॥२६॥

**ऋग्यजुः सामवेदांश्च जपेद्द्वारेषु पूर्वतः।**
**अथर्वणं तथोदीच्यां नियतात्मा ह्यतन्द्रितः॥२७॥**

ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेदों के द्वारा पूर्व द्वार से दक्षिण एवं पश्चिम में तथा अथर्ववेद के द्वारा उत्तर दिशा में जितेन्द्रिय, आलस्यरहित होकर जप करे॥२७॥

षडङ्गजापकस्तत्र तत्तन्मन्त्रं जपेत्ततः।
तत्तन्मन्त्रैर्ग्रहान्सर्वान्लोकपालान्समर्चयेत्॥२८॥

षडङ्ग जापकों को वहाँ उन-उन मन्त्रों का जप करना चाहिए तथा उन्हीं मन्त्रों से सभी ग्रहों का एवं लोकपालों की पूजा-अर्चना करनी चाहिए॥२८॥

अष्टोत्तरसहस्रं वा शतं वा नियतात्मवान्।
मूलं प्रजामिति मन्त्रद्वयस्य प्रस्कण्वको ऋषिः॥२९॥

एक सौ आठ हजार अथवा एक सौ आठ सौ अथवा जितेन्द्रिय को मूल प्रजामिति दो मन्त्रों के प्रस्कण्व ऋषि—॥२९॥

निर्ऋतिदेवता त्रिष्टुप्छन्दः पापविमोचनम्।
मूलं प्रजामित्यष्टौ वाक्येनार्चयेद्विनियोगतः॥३०॥

निर्ऋति देवता, त्रिष्टुप्छन्द पाप से मुक्त करता है। मूल की प्रजामिति आठ वाक्यों द्वारा विनियोग पूर्वक पूजा करनी चाहिए॥३०॥

स्वगृह्योक्त विधानेन कुण्डेऽग्निं स्थापयेत्ततः।
प्रजापतये स्वाहेति मुखान्ते जुहुयाच्चरूम्॥३१॥

अपने गृह्यसूत्रों में कहे हुए विधान के अनुसार कुण्ड में अग्नि स्थापन करें और चरू (होमसामग्री) से प्रजापतये स्वाहाकार से अग्नि में होम करें॥३१॥

मूलाय स्वाहा प्रजापतये स्वाहेत्युपहोममन्त्रौ।
पायससमिदाज्येन चरुणामष्टसहस्रकम्॥३२॥

मूलाय स्वाहा, प्रजापतये स्वाहा इस उपहोम के दो मन्त्रों से खीर, समिधा तथा घी से युक्त चरु से आठ हजार—॥३२॥

अथवाष्टोत्तरशतं प्रत्येकं जहुयात्ततः।
मूलं प्रजामित्यष्टभिर्वाक्यैर्मन्त्रद्वयेन च॥३३॥

अथवा अष्टोत्तर शत (१०८) बार प्रत्येक मन्त्र से होम करना चाहिए। मूल प्रजामिति आठ वाक्यों के द्वारा या दो मन्त्रों से—॥३३॥

सावित्र सौम्यनैर्ऋत्यमन्त्रैरश्वत्थ सम्भवैः।
समिद्भिश्च तिलव्रीहीन्हुत्वा व्याहृतिभिस्ततः॥३४।

सूर्य, चन्द्रमा तथा नैर्ऋत्य सम्बन्धित मन्त्रों के द्वारा पीपल वृक्ष से उत्पन्न समिधाओं से चावलों और तिलों का व्याहृतियों द्वारा होम—३४॥

जपादींश्च ततः कर्त्ता भक्त्या पूर्णाहुतिं स्वयम्।
ततो मङ्गलघोषैश्च स्नानकर्म समाचरेत्॥३५॥

करने वाला जपादि के पश्चात् भक्ति सहित स्वयं पूर्णाहुति करके मङ्गल वाद्यों द्वारा स्नान कर्म का आचरण करें॥३५॥

**आद्यपादे पितृगण्डे त्रयाणामभिषेचनम्।**
**इतरत्र शिशोर्मातुरभिषेकं समाचरेत्॥३६॥**

गण्डान्त मघा नक्षत्र के प्रथम चरण में तीनों का अभिषेक तथा इसके अतिरिक्त बालक का माता के साथ अभिषेक करना चाहिए॥३६॥

**ग्रहजन्मभयोगोऽयं पूर्णयोगं निहन्ति हि।**
**यथा गोसमितिं व्याघ्रश्चोद्धतः खलसञ्युतः॥३७॥**

जन्मनक्षत्र का यह योग पूर्णराजयोग का नष्ट करता है, जैसे गायों के समूह को उद्धत क्रूरता से युक्त व्याघ्र (बाघ) नष्ट कर देता है॥३७॥

**शंखयोग का फल**

**अचिकित्सगदायोगः शङ्खयोगं निहन्ति वै।**
**यथा काकः पुरोडाशं तथैव तमशोभनम्॥३८॥**

विना चिकित्सा के बीमारी के योग को शंखयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे कौवा यज्ञ के लिए प्रस्तुत की गई आहुति को स्पर्श से अशोभन कर देता है॥३८॥

**अमृतसंज्ञक योग**

**ग्रहैः कृतो मृत्युयोगो निहन्त्यमृतसंज्ञकम्।**
**योगो गुणान्महानन्यान्पावको विपिनं यथा॥३९॥**

ग्रहों के द्वारा बनाए हुए मृत्युयोग को महान गुणों से सम्पन्न अमृत संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अग्निदेव बहुत बड़े जङ्गल को नष्ट करता है॥३९॥

**पद्मयोग का फल**

**अग्निजिह्वाह्वयो योगः पद्मयोगश्च तद्गुणान्।**
**अन्यान्हन्त्यचिरादेव नकुलः पन्नगं यथा॥४०॥**

अग्निजिह्वा नामक योग को पद्म योग के गुण शीघ्र ही नष्ट कर देते हैं। जैसे नेवला सांप को करता है॥४०॥

**आनन्दसंज्ञक योग**

**विषयोगो निहन्त्याशु योगं त्वानन्दसंज्ञकम्।**
**लग्नोद्भवान्गुणानन्यान्व्याघ्र कृष्णमृगं यथा॥४१॥**

विष योग के दोषों को शीघ्र ही आनन्द संज्ञक योग नष्ट करता है तथा लग्न से उत्पन्न गुणों को उस प्रकार नष्ट करता है, जैसे बाघ काले हिरण को करता है॥४१॥

### दोष निर्णय

**अर्द्धयामभांतराल तद्वद्योगान्तरात्मकम्।**
**मासान्ते त्रिदिनं दोषमब्दन्ति पक्षमेव च॥४२॥**

नक्षत्र अन्तराल में आधा प्रहर, उसी प्रकार योगान्तरात्मक होता है, मासान्त में तीन दिन का, अब्दान्त दोष पक्ष तक—॥४२॥

**योगान्तरालदोषो यः सहस्त्रं गुणसञ्चयम्।**
**ऋक्षान्तरालदोषो यस्त्वयुतं गुणसञ्चयम्॥४३॥**

योगान्तराल का जो दोष है, वह हजार गुणसञ्चय को, नक्षत्रान्तरालदोष दस हजार गुण समूहों को—॥४३॥

**मासान्तदोषस्त्वचिराद्गुणकोटिं निहन्त्यथ।**
**गुणानामयुतं हन्ति वर्षान्ते पक्षदोषकः॥४४॥**

मासान्त दोष शीघ्र ही कोटि गुणों को नष्ट करता है। यद्यपि वर्षान्त में पक्ष दोष दस हजार गुणों को नष्ट करता है॥४४॥

**उपप्लवभवो दोषो हन्त्यत्र गुणसञ्चयम्।**
**तद्धिष्ण्योत्पातजो दोषः कर्तुरर्थविनाशदः॥४५॥**

भूकम्पजन्य दोष यहाँ गुणसञ्चय को नष्ट करता है। नक्षत्र द्वारा उत्पन्न दोष कर्त्ता के धन का नाश करता है॥४५॥

### महाशूल संज्ञकयोग

**महाशूलाह्वयो योगः सिद्धियोगं निहन्ति वै।**
**स्वर्भानुर्बलसम्पन्नः शशाङ्कं बलिनं यथा॥४६॥**

महाशूल संज्ञक योग सिद्धियोग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बलसम्पन्न राहु बलवान चन्द्रमा को॥४६॥

### दुष्टयोग

**यथा पीयूषयोगाख्यं दुष्टयोगो बलाधिकः।**
**दावाग्निर्विपिनं सर्वं नानातरुविमन्डितम्॥४७॥**

जैसे पीयूष नामक योग को अधिक बल वाला दुष्ट योग ऐसे नष्ट करता है, जैसे नाना प्रकार वृक्षों से सुशोभित जङ्गल को दावाग्नि नष्ट करती है॥४७॥

### कपिल नामक महायोग

**कपिलाख्यं महायोगं बलिनं दोषकम्पनम्।**
**हन्त्येव शकटो योगस्त्वनृतं सुकृतं यथा॥४८॥**

कपिल नामक महायोग, दोषों को कम्पित करने वाले शकट योग उसी प्रकार नष्ट करता है, जैसे पाप पुण्य को करता है॥४८॥

### अशनि संज्ञकयोग

**अशनिर्नामयोगो यः समुद्रं योगवल्लभम्।**
**राघवाग्निशरो यद्वदुदधेः शम्बरं यथा॥४९॥**

अशनि नामक योग समुद्र योग वल्लभ को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् राम का अग्निबाण समुद्र जल को॥४९॥

### मूढ़ समदोष

**समसप्तकयोर्जीव शुक्रयोश्च परस्परम्।**
**तदा मूढसमो दोषः शुभकार्य्यविनाशदः॥५०॥**

बृहस्पति एवं शुक्र का आपस में समसप्तक योग हो तो यह मूढसमदोष शुभ कार्यों का विनाश करता है॥५०॥

### मूढसमदोष परिहार

**तुङ्गमित्रस्वर्क्षगयोस्तयोर्वा तत्तदंशयोः।**
**तदा मूढसमो दोषो नाशं याति न संशयः॥५१॥**

उच्चस्थ, मित्रराशि, स्वक्षेत्र में अथवा अपने नवांश में गये हुए शुक्र एवं बृहस्पति हों तो मूढ़सम दोष का नाश हो जाता है। इसमें संशय नहीं॥५१॥

### महाकुलिक योग

**महाकुलिकयोगश्च वापी योगं निहन्ति हि।**
**अन्यान्महागुणांश्चापि पावकस्त्विन्धनं यथा॥५२॥**

महाकुलिक योग, वापी योग तथा अन्यान्य महागुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अग्नि ईन्धन को नष्ट करती है॥५२॥

### हालाहल योग

**हन्ति योगं मौसलाख्यं योगो हालाहलाह्वयः।**
**लग्नोद्भवान्गुणानन्यान्कितवोऽष्टापदं यथा॥५३॥**

मौसल नामक योग तथा लग्न से उत्पन्न होने वाले अन्यान्य गुणों को हालाहल नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे धन सम्पन्न व्यक्ति को जुआ नष्ट कर देता है॥५३॥

### नक्षत्र लांछितयोग

**नक्षत्रलांछितो योगः स्वयोगं हन्ति सर्वदा।**
**अन्यान्हन्ति गुणानुग्रान्स्वैरिणी स्वकुलं यथा॥५४॥**

नक्षत्र लांछित योग सदैव स्वयोग को तथा अन्यान्य गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे स्वेच्छा चारिणी स्त्री अपने कुल का नाश करती है॥५४॥

**पुण्डरीक संज्ञकयोग**

**पुण्डरीकं महायोगं पक्षच्छिद्रोत्थनाडिका।**
**हन्ति पक्षिगणं श्येनो यद्वद्वन्न संशयः॥५५॥**

पुण्डरीक नामक महायोग पक्षछिद्र से उत्पन्न नाड़ी दोषों को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे पक्षीसमूह को बाज पक्षी। इसमें कोई भी संशय नहीं॥५५॥

**गुणशेखरसंज्ञक योग**

**गुणशेखरयोगाख्यं भानुवारादिसम्भवाः।**
**पापयोगा यथा घ्नन्ति पुरुषं स्त्रीरजस्तथा॥५६॥**

गुणशेखर नामक योग रविवारादि संयोग से उत्पन्न पाप योगों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पुरुष को स्त्रीरज करता है॥५६॥

**धूर्जटि संज्ञकयोग**

**दिवैव मृत्युदो मृत्युयोगोऽयं न च रात्रिषु।**
**हन्ति धूर्जटियोगं तु सन्निपातोयथा नरम्॥५७॥**

मृत्युयोग दिन में ही मृत्युप्रद होता है, रात्रिकाल में नहीं। इसे धूर्जटि नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सन्निपात रोग मनुष्य को नष्ट करता है॥५७॥

**गुणभास्कर योग**

**गुणभास्करयोगं तु दिवारोगप्रदो हि यः।**
**हन्ति रोगाह्वयो योगः स्त्रीसङ्गो मेहरोगिणम्॥५८॥**

गुणभास्करयोग दिन में ही रोगप्रद होता है। यह रोग योग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे प्रमेह रोगी को स्त्रीसङ्ग॥५८॥

**गुणपार्श्व महायोग**

**गुणपार्श्वमहायोगं महाहालाहलो यथा।**
**हन्ति तारापतिं नूनं सैंहिकेयो महाबली॥५९॥**

गुणपार्श्व महायोग को महाहालाहल योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे तारापति चन्द्रमा को निश्चय से महाबली राहु ग्रस लेता है॥५९॥

**महाकाण, अन्ध एवं बधिर योग**

**तं चन्द्रशेखरं योगं महाकाणान्धबाधिराः।**
**घ्नन्ति योगा यथा मेघचयं चण्डमहानिलः॥६०॥**

चन्द्रशेखर नामक योग को महाकाण, अन्ध एवं बधिर योग उसी प्रकार नष्ट करते हैं, जैसे मेघसमूह को प्रचण्ड वायु वेग करता है।।६०।।

### गुणमर्दनयोग

**गुणमर्दन योगोऽयं योगं श्रीवत्ससंज्ञकम्।**
**हन्ति यद्वद्विप्रनिन्दा स्वार्जितं धर्मसञ्चयम्।।६१।।**

गुणमर्दन योग श्रीवत्स नामक योग को वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे विप्रनिन्दा अपने अर्जित धर्मसञ्चय को नष्ट करती है।।६१।।

### कालकूटयोग

**अर्कादिवारसम्भूताः कालकूटविषाह्वयाः।**
**घ्नन्ति योगाः सिंहयोगं गुरुनिन्देव जीवितम्।।६२।।**

सूर्यादिवारों से सम्भव कालकूट नामक विषयोग सिंहयोग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे गुरु की निन्दा जीवन को नष्ट कर देती है।।६२।।

### शार्दूल योग

**हन्ति शार्दूलयोगाख्यं धूमयोगो निकृष्टवान्।**
**क्रोधो हन्ति तपोराशिं चिरकालमुपार्ज्जितम्।।६३।।**

शार्दूल संज्ञक योग निकृष्ट धूमयोग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे चिरकाल से अर्जित तपराशि को क्रोध नष्ट कर देता है।।६३।।

### व्यतीपात अन्तराल दोष

**व्यतीपातेन्तरे दोषस्त्विन्द्रयोगं निहन्ति वै।**
**लग्नोद्भवान्गुणानन्यान्पांशुला स्वकुलं यथा।।६४।।**

व्यतीपात अन्तराल से सम्भव दोष इन्द्रयोग को तथा लग्न से उत्पन्न अन्यान्य गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पांशुला (वेश्या) अपने कुल को नष्ट करती है।।६४।।

### परिवेध नामक योग

**रत्नमालाह्वयं योगं परिवेधोऽतिभीषणः।**
**हन्ति लग्नगुणानन्यान्गाव्यं मद्यलवोयथा।।६५।।**

रत्नमाला नामक योग को अत्यन्त भयङ्कर परिवेध नामक योग तथा लग्न से उत्पन्न अन्यान्य योगों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पञ्चगव्य को एक बून्द मदिरा करती है।।६५।।

### इन्द्रधनुष योग

**गुणकल्पतरुं हन्ति दोषस्त्विन्द्रधनुस्तथा।**
**अश्मरी च महारोगस्त्वचिरात्तु शरीरिणाम्।।६६।।**

कल्पतरु गुणों को इन्द्रधनुष योग का दोष वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अश्मरी (पथरी) रोग शीघ्र ही शरीर को नष्ट करता है॥६६॥

केतुसंज्ञक महायोग

**केतुसंज्ञो महायोगो योगं गुणमणिं सदा।**
**भगन्दरो महारोगो हन्ति द्राग्देहधारिणम्॥६७॥**

केतु संज्ञक महायोग गुणमणियोग को सदैव वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगन्दर (फोड़ा) महारोग शीघ्र ही देहधारियों (मनुष्यों) का नाश करता है॥६७॥

निर्घातसंज्ञकयोग

**गुणार्णवं महायोगं हन्ति निर्घातसंज्ञकः।**
**योगो विभीषणाकारो मेहरोगो यथा नरम्॥६८॥**

गुणार्णव-गुणों का समुद्र महायोग को निर्घात संज्ञक योग अपनी भयङ्कर आकृतियों से वैसे ही नष्ट करता है, जैसे मनुष्य को प्रमेह रोग करता है॥६८॥

मेघदोष

**सुदर्शनं महायोगं मेघदोषो निहन्ति वै।**
**अजीर्णरोगस्त्वत्यर्थमचिरान्मनुजोत्तमम्॥६९॥**

सुदर्शन नामक महायोग को मेघदोष वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अजीर्ण रोग (उदर रोग) शीघ्र ही श्रेष्ठ मनुष्यों को नष्ट करता है॥६९॥

कुलिक संज्ञक योग

**गुणसागरयोगाख्यं योगः कुलिकसंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वद्वयो दोषः सर्वधातुचयं महत्॥७०॥**

गुणसागर योग को कुलिक संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वृद्धत्व दोष सभी धातु सञ्चय को नष्ट कर देता है॥७०॥

उल्का योग

**उल्कायोगो निहन्त्याशु पुण्ययोगं महाबलम्।**
**स्नुहिवृक्षक्षीरलवः शरीरमिव निर्मलम्॥७१॥**

उल्कायोग महाबलशाली पुण्ययोग को शीघ्र ही वैसे नष्ट कर देता है, जैसे स्नुहि वृक्ष (दूधवाला वृक्ष) की एक बूँद ही निर्मल शरीर को नष्ट कर देती है॥७१॥

विद्युतसंज्ञक योग

**शुभयोगं निहन्त्याशु विद्युद्दोषो महाबलः।**
**गुणानां निचयं वान्यं शुद्धान्नं लशुनं यथा॥७२॥**

शुभयोग को तथा अन्यान्य गुणों को विद्युत नामक महाबलशाली दोष वैसे ही नष्ट करता है, जैसे शुद्ध अन्न को लहसुन करता है॥७२॥

पातचण्डीशयोग

**सिद्धां तिथिं हन्ति सम्यक् पातश्चण्डीशसम्भवः।**
**महानन्याननुणान्सर्वान्यथा श्वा हव्यसञ्चयम्॥७३॥**

सिद्धा तिथि को पातचण्डीश से सम्भव होने वाले दोष तथा अन्यान्य समस्त गुणों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे हवन की सामग्रियों को कुत्ता कर देता है॥७३॥

लत्ता दोष

**विजयाख्यं महायोगं लत्तादोषो निहन्त्यलम्।**
**लग्नोद्भवान्गुणानन्यानांत्र वृद्धिर्यथा तनुम्॥७४॥**

विजय नामक महायोग को तथा लग्न से उत्पन्न अन्यान्य गुणों को लत्ता दोष वैसे ही नष्ट करता है, जैसे आँतों की वृद्धि शरीर को नष्ट करती है॥७४॥

निर्घात संज्ञकयोग

**ब्रह्मदण्डं महायोगं योगो निर्घातसंज्ञकः।**
**गुणानन्यान्निहन्त्याशु क्षीरं मद्यलवो यथा॥७५॥**

ब्रह्मदण्ड महायोग को तथा अन्यान्य गुणों को निर्घात संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे मदिरा की एक बूँद दूध को नष्ट करती है॥७५॥

क्षेपयोग

**कामधेनु महायोगं क्षेपयोगो निहन्ति वै।**
**क्षयरोगो यथा नूनं शरीरं विपुलं शुभम्॥७६॥**

कामधेनु महायोग को क्षेप योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे क्षयरोग निश्चित ही सुन्दर विशाल शरीर को नष्ट करता है॥७६॥

पुनः निर्घात योग

**ब्रह्मदण्डं महायोगं योगो निर्घातसंज्ञकः।**
**यथा हन्ति गुणान्सर्वान्पिशुनः स्नेहसञ्चयम्॥७७॥**

ब्रह्मदण्ड महायोग को तथा समस्त गुणों को निर्घात संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे स्नेह सञ्चय को चुगलखोर व्यक्ति नष्ट करता है॥७७॥

संवर्त्तसंज्ञक योग

**प्रभञ्जनं महायोगं योगः संवर्त्तसंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वन्महावृक्षं कोटरस्थोऽनलो यथा॥७८॥**

प्रभञ्जन महायोग को संवर्त्तसंज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बड़े वृक्ष की कोटर (वृक्ष की खोखर) में स्थित अग्नि करती है॥७८॥

### कालदण्डयोग

**इन्द्रदण्डं महायोगं कालदण्डो महाबलः।**
**हन्ति यद्वत्कफो रोगः शरीरं वज्रसन्निभम्॥७९॥**

इन्द्रदण्डयोग को कालदण्ड नामक महाबलशाली योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पत्थर की भाँति कठोर शरीर को कफ रोग करता है॥७९॥

### एकार्गल योग

**इन्द्रदण्डं महायोगं योगास्त्वेकार्गलाह्वयः।**
**हन्ति यद्वत्पूर्णगर्भं सन्निपातज्वरो यथा॥८०॥**

इन्द्रदण्ड महायोग को एकार्गल नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पूर्णगर्भ को सन्निपात बुखार करता है॥८०॥

### गण्डान्त योग

**अभिजित्संज्ञकं योगं गण्डान्तयोगसंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वन्मृगव्याधः पक्षिसङ्घमिवाखिलम्॥८१॥**

अभिजित् संज्ञक योग को गण्डान्त संज्ञकयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे समस्त पक्षी समूह को शिकारी करता है॥८१॥

### विद्धदोष

**क्रूरग्रहैर्विद्धदोषो हन्ति गोधूलिकं शुभम्।**
**यद्वन्महोदरो रोगः कायं दृढतरं भृशम्॥८२॥**

क्रूरग्रहों के द्वारा विद्धदोष शुभसंज्ञक गोधूलि समय को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे दृढ़ शरीर को महोदर नामक रोग करता है॥८२॥

### अवमसंज्ञक तिथि का फल

**अवमाख्या तिथिर्हन्ति सौम्यग्रहकृतं शुभम्।**
**लग्नलग्नांशक गुणान् राजयक्ष्मेव सत्तनुम्॥८३॥**

### अवम संज्ञक तिथि का फल

**अवमाख्या तिथिर्हन्ति सौम्यग्रहकृतं शुभम्।**
**लग्नलग्नांशक गुणान् राजयक्ष्मेव सत्तनुम्॥८३॥**

अवम संज्ञक तिथि शुभग्रहों द्वारा किये गये शुभफल तथा लग्न और लग्न के नवांश से उत्पन्न गुणों को वैसे ही नष्ट करती है, जैसे सुन्दर शरीर को क्षय रोग (टी. बी.)॥८३॥

### ग्रहजन्म नामक दोष

**ग्रहजन्माह्वयो दोषो गुरुलग्नस्थितं शुभम्।**
**हन्ति तारापतिं यद्वत्सैंहिकेयो महाबलः॥८४॥**

ग्रहजन्म नामक दोष लग्न में स्थित शुभ बृहस्पति की शुभता को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाबल वाला राहु चन्द्रमा को॥८४॥

### प्रतिसूर्य नामक दोष

**प्रतिसूर्यो निहन्त्याशु यच्छुभग्रहजं शुभम्।**
**लग्नलग्नांशसम्भूतं कुठारो विटपं यथा॥८५॥**

प्रतिसूर्य नामक दोष तथा लग्न-लग्नांश से उत्पन्न शुभग्रहों का शुभयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे कुल्हाड़ी वृक्ष को नष्ट करती है॥८५॥

### प्रतिचन्द्रमा संज्ञक योग

**प्रतिचन्द्रो निहन्त्याशु प्रतिशुक्रकृतं शुभम्।**
**लग्नषड्वर्गसम्भूतं मेघसंघमिवानिलः॥८६॥**

प्रतिचन्द्रमा प्रतिशुक्र के द्वारा किये गये शुभफल, लग्न एवं षड्वर्ग से सम्भव शुभ फलों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बादलों के समूह को वायु करता है॥८६॥

### परिवेष नामक योग

**परिवेषो निहन्त्याशु लग्नलग्नांशजं गुणम्।**
**शुभग्रहकृतं सर्वं मक्षिका भोजनं यथाः॥८७॥**

परिवेष नामक योग लग्न, लग्नांश द्वारा उत्पन्न गुण तथा शुभग्रहकृत समस्त शुभफलों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे मक्खी भोजन को॥८७॥

### नीहार दोष

**नीहारदोषो हन्त्याशु सौम्यग्रहकृतं शुभम्।**
**अपि लग्नकृतं श्राद्धं वृषलीपुत्रको यथा॥८८॥**

नीहार नामक दोष शीघ्र ही शुभ ग्रहों द्वारा किये गये शुभफलों को तथा लग्नकृत शुभफलों को भी वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वृषली (सद्योजात बच्चे की माता) पुत्र श्राद्ध को नष्ट करता है॥८८॥

### अकालवृष्टियोग

**अकालवृष्टिजो दोषः सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्ति यद्वत्पांशुलाख्या नितरां स्वकुलं महत्॥८९॥**

अकालवृष्टि से उत्पन्न दोष समस्त गुणसमूहों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे वैश्या अपने बड़े सम्पूर्ण कुल को नष्ट करती है॥८९॥

**अकालगर्जितदोष**

**अकालगर्जितो दोषः सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्ति यद्वन्मेघवृन्दं तारकामण्डलं यथा॥९०॥**

अकाल गर्जित दोष समस्त गुण समूहों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे तारामण्डल को बादलों का समुदाय करता है॥९०॥

**दिग्धूमदोष**

**दिग्धूमदोषो हन्त्याशु सकलं गुणसञ्चयम्।**
**यथा दुर्वासनः शापः सुरेन्द्रमिव गर्वितम्॥९१॥**

दिग्धूमदोष समस्त गुणसञ्चय को शीघ्र ही वैसे ही नष्ट करता है, जैसे दुर्वासा ऋषि का श्राप अभिमानी इन्द्र को॥९१॥

**दग्धलग्नदोष**

**दग्धलग्नोद्भवो दोषः सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्तियद्वन्महावह्निरिन्धनानां च सञ्चयम्॥९२॥**

दग्धलग्न से उत्पन्न दोष समस्त गुणसञ्चय को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाअग्नि ईंधन समूह को नष्ट करती है॥९२॥

**शून्यनक्षत्रदोष**

**शून्यधिष्ण्योद् भवो दोषः सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्ति यद्वन्महावृष्टिः सकलं भूतसञ्चयम्॥९३॥**

शून्यनक्षत्र से उत्पन्न दोष समस्त गुण समुदाय को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महावृष्टि समस्त प्राणियों के समूह को॥९३॥

**शून्यतिथिदोष**

**दोषः शून्यतिथेर्जातः सकलं गुणसञ्चयम्।**
**हन्ति यद्वद्वैनतेयः सर्वं सर्पकुलं महत्॥९४॥**

शून्यतिथि से उत्पन्न दोष समस्त गुणसमूह को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे गरुड भगवान् साँपों के बड़े कुल को नष्ट करते हैं॥९४॥

**दोषापवाद् कथन**

**ये मण्डनाध्याय गुणापवादा**
**दोषाश्च सर्वेत्विह चिन्तनीयाः।**

गुणापवादं निखिलं समुक्त्वा
दोषापवादं त्वधुनाऽभिधास्ये ॥९५॥

यहाँ मण्डनाध्याय में गुण, अपवाद और दोष हैं, उन सबका विचार करना चाहिए। समस्त गुण और अपवादों को भलीभाँति कहकर दोषों के अपवादों को अब कहता हूँ॥९५॥

प्रबला अपि दोषास्ते सीदन्त्येव कलौ युगे।
पापरूपा यतो दोषाः पुण्यरूपा सदागुणाः॥९६॥

प्रबलदोष भी कलियुग में भयभीत होते हैं; क्योंकि दोष पापरूप और गुण सर्वदा पुण्यरूप होते हैं॥९६॥

एकं मृगं मृगीसूते पञ्चसूते वृकान्वृकी।
अतारो विलयं याति घनमाला यथा तथा॥९७॥

हरिणी प्रसूता होने पर एक हरिण को पैदा करती है, जबकि मादा भेड़ियां पाँच भेड़ियों को पैदा करती हैं, तारों से रहित मेघमाला विलय को प्राप्त हो जाती है॥९७॥

आलस्योपहतः पादः पादः पाखण्डमाश्रितः।
राजानं सेवते पादः पादः कृषिमुपाश्रितः॥९८॥

आलस्य में उपहत (क्षतविक्षत) पाद, पाखण्ड पर आश्रित पाद, राजा के सेवक चरण और कृषि पर आश्रित पाद—॥९८॥

एकपादं त्रयः पादा भक्षयन्ति दिने दिने।
तथापि वर्द्धते पादः क्षीणं याति पदत्रयम्॥९९॥

एक पाद को तीन पाद प्रत्येक भक्षण करते हैं, तब भी एक पाद वृद्धि प्राप्त करता है और तीन पाद क्षीण हो जाते हैं॥९९॥

यथा दैत्या हता देवैस्तथा दोषो हतागुणैः।
विविधैर्योगजैः सौम्यखेटजैर्लग्नवर्गजैः॥१००॥

जैसे राक्षस देवताओं के द्वारा मारे जाते हैं, वैसे ही अनेक प्रकार के योगों से उत्पन्न, शुभग्रहों से उत्पन्न, लग्न तथा षड्वर्ग से उत्पन्न गुणों के द्वारा समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं॥१००॥

निर्देशान्नामतो यत्र वामं दोषमयं गुणैः।
तत्रैव हन्ति नान्यत्र प्रशंसाऽत्र परस्य च॥१०१॥

यहाँ नाम के निर्देश से ही गुणों के विपरीत दोषों को नष्ट करने की चर्चा है अन्यत्र नहीं, जबकि यहाँ दूसरे की प्रशंसा की जा रही है॥१०१॥

चरयोग

उत्पातयोगजं दोषं चरयोगो निहन्ति वै।
मत्तेभेन्द्रचयं यद्वत्पञ्चवक्त्रो महाबलः॥१०२॥

उत्पात योग के द्वारा उत्पन्न दोषों को चरयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे हाथियों के समूह को महाबलशाली शेर नष्ट करता है॥१०२॥

श्रेष्ठयोग

निहन्ति मृत्युयोगं तु श्रेष्ठयोगो महाबलः।
यथान्धकारं निविडं भास्करस्योदयो यथा॥१०३॥

मृत्यु योग को महाबलशाली श्रेष्ठयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे घने अन्धकार को सूर्योदय॥१०३॥

शुभयोग

अन्धयोगकृतं दोषं शुभयोगो निहन्ति वै।
यथा हरिकथालापः पापं जन्मशतोद्भवम्॥१०४॥

अन्धयोग के द्वारा किये गये दोष को शुभयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे हरिकथा वार्ता सैंकड़ों जन्मों से उत्पन्न पापों को दूर करती है॥१०४॥

कल्याणसंज्ञकयोग

काणयोगकृतं दोषं हन्ति कल्याणसंज्ञकः।
स योगः शार्दूलमिव सर्वदा मृगसंहतिः॥१०५॥

काणयोग के द्वारा किये गये दोष को कल्याण संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे हरिणों के समूह को वाघ सदैव नष्ट करता है॥१०५॥

वर्द्धमानकयोग

पङ्गुयोगं निहन्त्याशु योगो वै वर्द्धमानकः।
काकानां संहतिं यद्वत्तद्वच्छ्येनो महाबलः॥१०६॥

पङ्गुयोग को वर्द्धमानक नामक योग शीघ्र ही वैसे नष्ट करता है, जैसे कौवों के समूह को महाबलशाली बाजपक्षी करता है॥१०६॥

सुधायोग

सुधायोगो निहन्त्याशु योगं बधिरसंज्ञकम्।
भुजङ्गसंहतिं यद्वद्वैनतेयो महाबलः॥१०७॥

बधिरसंज्ञक योग को सुधा नामक योग शीघ्र ही वैसे नष्ट करता है, जैसे साँपों के समूह को महाबलशाली गरुड़ नष्ट करते हैं॥१०७॥

### महायोग

**महायोगो निहन्त्याशु योगं तु राक्षसाह्वयम्।**
**दैत्यानां संहतिं यद्वच्छरो दाशरथेर्यथा॥१०८॥**

राक्षस नामक योग को महायोग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे राक्षसों के समूहों को दशरथ पुत्र श्रीराम के बाण नष्ट करते हैं॥१०८॥

### महाबलवान योग

**दग्धयोगं निहन्त्याशु महायोगो महाबलः।**
**पञ्चाक्षरी महापापं कोटिजन्मकृतं तु यत्॥१०९॥**

दग्धयोग को महाबलवान महायोग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे करोड़ों जन्मों से किये गए महापापों को पञ्चाक्षरी (ॐ रां रामाय) मन्त्र नष्ट करता है॥१०९॥

### पूर्णयोग

**ग्रहजन्मकृतं दोषं पूर्णयोगो निहन्ति वै।**
**महादावानलो यद्वद्विस्तृतं विपिनं भृशम्॥११०॥**

जन्मकृतग्रहदोष का पूर्णयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे जङ्गल की आग्न बहुत बड़े जङ्गल को नष्ट करती है॥११०॥

### शंखयोग

**गदायोगं निहन्त्याशु शङ्खयोगो महाबलः।**
**आखूनां संहतिं यद्वन्मार्जारोऽमितविक्रमः॥१११॥**

गदायोगको महाबलवान शंख योग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे अत्यन्त पराक्रमी बिल्ली चूहों के समूह को नष्ट करती है॥१११॥

### अमृतयोग

**ग्रहैः कृतं मृत्युयोगं योगाश्चामृतसंज्ञकः।**
**सञ्जीवको गारुडाख्यो हन्तियद्वद्विषोल्बणम्॥११२॥**

ग्रहों द्वारा बनाये गये मृत्यु योग को अमृतसंज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सञ्जीवक गरुड़ नामक विष समूह को नष्ट करता है॥११२॥

### पद्मयोग

**अग्निजिह्वद्वयं योगं पद्मयोगो निहन्ति वै।**
**अधनमबलसम्पन्नो गुरुः सर्वकुलं यथा॥११३॥**

अग्निजिह्वद्वय नामक योग को पद्मयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे धन से रहित तथा बल एवं सम्पन्नता से रहित गुरु समस्त कुल को॥११३॥

### आनन्दयोग

**विषयोगं निहन्त्याशु योगश्चानन्दसंज्ञकः।**
**एकादशीव्रत यद्वत्पापं जन्मशतोद्भवम्॥११४॥**

विष योग को आनन्द संज्ञक योग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे एकादशी व्रत सैकड़ों जन्मों से उत्पन्न पाप दूर करता है॥११४॥

### सिद्धियोग

**भान्तरालकृतं दोषं सिद्धियोगो निहन्ति वै।**
**जीमूतसञ्चयं यद्वदनिलश्चोद्धतो भृशम्॥११५॥**

नक्षत्र के अन्तराल में किये गये दोषों को सिद्धि योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बादलों के समूह को उद्धत वायु॥११५॥

### सिद्धातिथियोग

**योगान्तरालकं दोषं हन्ति सिद्धातिथिः स्वयम्।**
**भागीरथीजलं यद्वदघं जन्मशतोद्भम्॥११६॥**

योगान्तराल में किये गये दोष का सिद्धातिथि स्वयं वैसे ही नष्ट करती है, जैसे शतजन्मों से उत्पन्न पापों को गङ्गाजी का जल॥११६॥

### मासान्त, वर्षान्तादि दोष

**मासान्ते त्रिदिनं दोषो न नष्टो गुणकोटिभिः।**
**वर्षान्ते पक्षदोषोऽपि तद्वदेव न सीदति॥११७॥**

मासान्त के तीन दिनों में किये गए दोषों को करोड़ों गुणों के द्वारा नष्ट नहीं किया जा सकता, इसी प्रकार वर्षान्त दोष तथा पक्ष दोष भी बहुत से गुणों से ठीक नहीं होते॥११७॥

### भूकम्पादि नक्षत्र दोष

**उपप्लवर्क्षजो दोषश्चोत्पातर्क्षभवस्तथा।**
**पापविद्धर्क्षजः पापसंस्थभदोषसञ्चयः॥११८॥**

भूकम्प के नक्षत्र से उत्पन्न दोष, उत्पात नक्षत्र से उत्पन्न दोष, पापग्रह विद्ध नक्षत्र दोष तथा पापस्थ नक्षत्र दोष समूहों—॥११८॥

**एते दोषाश्च चत्वारो महाबलतरास्त्वमी।**
**सर्वदा नैव सीदन्ति गुणानां कोटिकोटिभिः॥११९॥**

के चार दोषों को अत्यन्त बलवान कहा है। इन चार दोषों को करोड़ों-करोड़ों गुणों से भी ठीक नहीं किया जा सकता॥११९॥

सिद्धियोग प्रशंसा

**महाशूलाह्वयं योगं सिद्धियोगो निहन्ति वै।**
**कृष्णाष्टमीव्रतं यद्वत्पापं जन्मशतोद्भवम्॥१२०॥**

महाशूल संज्ञक योग को सिद्धियोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सौ जन्मों के किये हुए पापों को श्रीकृष्णजन्माष्टमी व्रत नष्ट करता है॥१२०॥

पीयूषयोगप्रशंसा

**दुष्टयोगं निहन्त्याशु योगः पीयूषसंज्ञकः।**
**सुदर्शनं महाचक्रं करोति दनुजक्षयम्॥१२१॥**

दुष्ट योग को पीयूषसंज्ञक योग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सुदर्शन महाचक्र राक्षसों का क्षय करता है॥१२१॥

कपिलनामक योग

**शकटाख्यं महायोगं कपिलो नामयोगराट्।**
**हन्ति मत्स्यध्वजं यद्वद्भवनेत्रोद्भवोऽनलः॥१२२॥**

शकट संज्ञक महायोग के दोषों को कपिल नामक योग सम्राट वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् शङ्कर की तीसरी आँख से उत्पन्न अग्नि कामदेव को भस्म करती है॥१२२॥

समुद्र नामक योग

**समुद्रसंज्ञको योगो योगंत्वनिलसंज्ञकम्।**
**हन्ति यद्वन्महावायुर्वारिवाहचयं महत्॥१२३॥**

अनिलसंज्ञक योग को समुद्र संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महावायु बादलों के समूहों को नष्ट करती है॥१२३॥

देवगुरु, दैत्यगुरु प्रशंसा

**मृत्युतुल्यं महादोषं विनाशं कुरुते सदा।**
**तुङ्गमित्रस्वर्क्षसंस्थौ देवदैत्येन्द्रपूजितौ॥१२४॥**

देवगुरु बृहस्पति एवं दैत्यगुरु शुक्र अपने उच्च, मित्रराशि तथा अपनी राशि में हों तो मृत्युतुल्य महादोष को सदैव नाश करते हैं॥१२४॥

वापीयोग

**महाकुलिक योगं तु वापीयोगो निहन्ति वै।**
**सर्पाणां संहतिं यद्वन्महानकुलसंहतिः॥१२५॥**

महाकुलिक योग को वापीयोग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सर्पों के समूह का बड़ा नेवला नाश करता है॥१२५॥

### अमृतयोग

**हालाहलाह्वयं नामामृतयोगो निहन्ति वै।**
**भागीरथी यथा स्नानं पापं जन्मशतोद्भवम्॥१२६॥**

हालाहल योग को अमृत संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे सौ जन्मों से उत्पन्न पापों को गङ्गा जी का स्नान करता है॥१२६॥

### पुंडरीक योग

**पक्षच्छिद्रोक्तनाडीनां दोषं हन्ति सदा तथा।**
**पुंडरीकाह्वयो योगः पिनाकी त्रिपुरं यथा॥१२७॥**

पक्षच्छिद्र में कहे गये नाड़ी दोषों को पुंडरीक नामक योग वैसे नष्ट करता है, जैसे त्रिपुरासुर को भगवान् शङ्कर॥१२७॥

### गुणशेखरयोग

**भानुवारादिसम्भूतान्पापयोगान्निहन्ति वै।**
**गुणशेखरयोगोऽयं राघवो रावणं यथा॥१२८॥**

सूर्यवारादि क्रम से सम्भव पापयोगों को गुणशेखर नामक योग वैसे नष्ट करता है, जैसे श्रीराम रावन को॥१२८॥

### धूर्जटी योग

**दिवैव मृत्युदं योगं हन्ति योगो महाबली।**
**धूर्जटी नाम योगोऽयं त्विंधनं पावको यथा॥१२९॥**

दिवाकाल में मृत्यु देने वाले योग को महाबली धूर्जटी नामक योग ऐसे नष्ट करता है, जैसे अग्नि ईंधन समूह को॥१२९॥

### गुणभास्कर योग

**दिवैवं रोगदं योगं रोगं हन्ति महाबली।**
**गुणभास्करयोगोऽयं विपिनं पावको यथा॥१३०॥**

दिवाकाल में ही रोग देने वाले योग के रोग को महाबली गुणभास्कर योग वैसे नष्ट करता है, जैसे बड़े जङ्गल को अग्नि नष्ट करती है॥१३०॥

**महाहालाहलं योगं गुणभास्करसंज्ञकः।**
**योगो हन्ति यथा तद्वत्कुमारस्तारकासुरम्॥१३१॥**

महाहालाहल योग को गुणभास्कर संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे तारकासुर को स्वामी कार्त्तिकेय॥१३१॥

चन्द्रशेखरयोग

**चन्द्रशेखरयोगोऽयं महाकाणान्धबाधिरान्।**
**दोषान्हन्ति यथा तद्वद्वालिनं राघवो यथा॥१३२॥**

यह चन्द्रशेखर योग महाकाण, अन्ध एवं वधिर योगों के दोषों को वैसे नष्ट करता है, जैसे बाली को भगवान् श्रीराम॥१३२॥

श्रीवत्सयोग

**गुणमर्द्दनयोगाख्यं योगः श्रीवत्ससंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वन्महावृक्षान्प्रचण्डः प्रबलोऽनिलः॥१३३॥**

गुणमर्दन संज्ञक योग के दोषों को श्रीवत्ससंज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे बड़े-बड़े वृक्षों को प्रचण्ड एवं प्रबल वायु नष्ट करती है॥१३३॥

सिंहसंज्ञक योग

**अर्कादिवारसम्भूतान्कालकूटाख्ययोगकान्।**
**हन्ति यद्वत्सिंहयोगः पापं पञ्चाक्षरी यथा॥१३४॥**

सूर्यादिवारों से सम्भव कालकूट नामक योग के दोषों को सिंह नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पापों को पञ्चाक्षरी जप॥१३४॥

शार्दूलयोग

**धूम्रयोगं निहन्त्याशु योगः शार्दूलसंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वद्द्विप्रमुख्यं पापः पातक संज्ञकः॥१३५॥**

धूमयोग को शार्दूल संज्ञक योग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पातक संज्ञक पापों को श्रेष्ठ ब्राह्मण॥१३५॥

सिद्धियोग

**उपग्रहाह्वयं दोषं सिद्धियोगो निहन्ति वै।**
**मर्दयतो बलातैलं वातरोगं यथा तथा॥१३६॥**

उपग्रह संज्ञक दोष को सिद्धियोग वैसे नष्ट करता है, जैसे बला नामक तेल की मालिश से वात रोग नष्ट होता है॥१३६॥

इन्द्रयोग

**इन्द्रयोगो निहन्त्याशु व्यतीपाताह्वयं सदा।**
**योगं यद्वद्ब्रह्मवादी द्वन्द्वसंसारिकं सुखम्॥१३७॥**

इन्द्र नामक योग व्यतीपात के दोषों को शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे ब्रह्मवादी संसारिक द्वन्द्व सुखों को॥१३७॥

रत्नमालायोग

**परिवेषाह्वयं योगं हन्ति यद्वन्महाबलम्।**
**रत्नमालाह्वयो योगः पिनाकी त्रिपुरं यथा॥१३८॥**

परिवेष नामक योग के दोषों को महाबलवान रत्नमाला योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे त्रिपुरासुर को भगवान् श्री शङ्कर॥१३८॥

गुणकल्पतरुयोग

**गुणकल्पतरुर्योगः कुपुत्रः स्वकुलं यथा।**
**हन्तीन्द्रधनुषं योगं महाबलवत्तरं शरम्॥१३९॥**

गुणकल्पतरु नामक योग इन्द्रधनुष योग को तथा महाबलशाली बाणों के दोष को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे कुपुत्र अपने कुल को॥१३९॥

गुणमणियोग

**वातसंज्ञं महादोषं हन्ति यद्वन्महाबली।**
**योगो गुणमणिः सर्वं प्रणवः पापसञ्चयम्॥१४०॥**

वातसंज्ञक महादोष को महाबलवान गुणमणि योग वैसे नष्ट करता है, जैसे पाप सञ्चय को ॐ का उच्चारण॥१४०॥

गुणार्णवमहायोग

**गुणार्णवमहायोगो हन्ति निर्घातसंज्ञकम्।**
**योगं यद्वन्पापचयं निरन्तरहरिस्मृतिः॥१४१॥**

गुणार्णव महायोग निर्घात संज्ञक योग द्वारा उत्पन्न दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पाप समूहों को लगातार भगवान् श्रीहरि की स्मृति नष्ट करती है॥१४१॥

सुदर्शनमहायोग

**सुदर्शनमहायोगो हन्ति निर्घातसंज्ञकम्।**
**हन्ति यद्वद्गुल्मचयं प्रणाममिव शूलिनि॥१४२॥**

सुदर्शन महायोग निर्घात संज्ञक दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे पापों का समूह भगवान् शङ्कर को प्रणाम करने से दूर हो जाता है॥१४२॥

गुणसागर योग

**गुणसागरयोगोऽयं योगं कुलिकसंज्ञकम्।**
**हन्ति यद्वन्महारोगं हिंग्वादिको महान्तु वै॥१४३॥**

यह गुणसागर योग कुलिक संज्ञक योग के दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महारोगों को हिंग्वादिक चूर्ण नष्ट करता है॥१४३॥

### पुष्ययोग

**उल्कायोगं निहन्त्याशु पुण्ययोगो महाबलः।**
**अश्मरीसंज्ञकं रोगं यद्वच्छ्वेतार्कमूलकम्॥१४४॥**

उल्का योग को महाबली पुण्ययोग शीघ्र ही वैसे नष्ट करता है, जैसे अश्मरी (पत्थरी) संज्ञक रोग को सफेद अर्क वृक्ष के मूल नष्ट करते हैं॥१४४॥

### शुभयोग

**शुभयोगो निहन्त्याशु विधुदोषं महाबलम्।**
**महोदरव्याधिचयं स्नुहिक्षीरं यथा तथा॥१४५॥**

महाबलवान चन्द्रमा के दोषों को शुभयोग शीघ्र वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाउदर व्याधि समूह को स्नुहि (दुधारीवृक्ष) का दूध करता है॥१४५॥

### सिद्धातिथियोग

**चण्डायुधं सचण्डीशं हन्ति सिद्धातिथिर्यथा।**
**आन्त्रवृद्धिर्यथा कायं निखिलं सुदृढं यथा॥१४६॥**

चण्डायुध तथा चण्डीश योगों को सिद्धातिथि वैसे ही नष्ट करती है, जैसे सम्पूर्ण दृढ़ शरीर को आँतों की वृद्धि नष्ट करती है॥१४६॥

### विजय योग

**विजयाख्यो महायोगो लाक्षादोषं निहन्ति वै।**
**यथा नयनजं पुष्पं शिग्रुमूलं यथा बली॥१४७॥**

विजयसंज्ञक महायोग लाक्षा दोष को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाबली शिग्रूमूल नयनों में उत्पन्न पुष्प को नष्ट करता है॥१४७॥

### ब्रह्मदण्डयोग

**ब्रह्मदण्डाह्वयो योगो दोषं निर्घातसंज्ञकम्।**
**हन्ति यद्वन्नेत्ररोगं मलजं वीरसञ्युतम्॥१४८॥**

ब्रह्मदण्ड संज्ञक योग निर्घात संज्ञक दोषों को वैसे नष्ट करता है, जैसे वीरयुक्त व्यक्ति मल से उत्पन्न नेत्ररोगों को नष्ट करता है॥१४८॥

### कामधेनुयोग

**कामधेनुमहायोगो धूम्रयोगं निहन्ति वै।**
**उन्मादरोगं कल्याणघृतं यद्वन्महाबलम्॥१४९॥**

कामधेनु नामक महायोग धूम्रयोग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाबली कल्याणघृत उन्माद रोगों को दूर करता है॥१४९॥

### पुनः ब्रह्मदण्डयोग

**ब्रह्मदण्डाह्वयो योगो योगं क्रकचसंज्ञकम्।**
**हन्ति तद्वद्राज रोगं यद्वद् गण्डीरसंज्ञकम्॥१५०॥**

ब्रह्मदण्ड संज्ञक योग क्रकचसंज्ञक योग को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे गण्डीरसंज्ञक औषधी राजरोग अर्थात् क्षय रोग (टी. बी.) को नष्ट करती है॥१५०॥

### प्रभंजनयोग

**प्रभंजनो महायोगो योगं संवर्त्तसंज्ञकम्।**
**शतावरीघृतं हन्ति मूत्रकृच्छ्रं यथातथा॥१५१॥**

प्रभंजन नामक महायोग संवर्त्तसंज्ञक योगों के दोषों को वैसे ही नाश करता है, जैसे शतावरी घृत मूत्रकृच्छ्र रोग को नष्ट करता है॥१५१॥

### इन्द्रदण्डमहायोग

**इन्द्रदण्डोमहायोगो कालदण्डं महाबलम्।**
**हन्ति यद्वत्त्रिकटुकं कासश्वासं महाबलम्॥१५२॥**

इन्द्रदण्डमहायोग महाबलवान कालदण्ड के दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे महाबली खांसी तथा दमा रोग को त्रिकुटक नामक औषधि करती है॥१५२॥

**एकार्गलं महादोषं इन्द्रदण्डो निहन्ति वै।**
**कालकूटं विषं यद्वत्तद्वदेवेन्दुशेखरः॥१५३॥**

एकार्गल महादोष को इन्द्रदण्ड नामक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे कालकूट विष को भगवान् इन्दुशेखर (शिवजी)॥१५३॥

### अभिजित् योग

**गण्डान्त दोषमखिलमभिजित् योगसंज्ञकः।**
**हन्ति यद्वत्सर्वपापान्राजसूयपरो नृपः॥१५४॥**

समस्त गण्डमूल दोषों को अभिजित् संज्ञक योग वैसे ही नष्ट करता है, जैसे राजाओं द्वारा किया राजसूय यज्ञ सभी पापों को दूर करता है॥१५४॥

### गोधूलि महायोग

**गोधूलिको महायोगो विद्धभं पापखेचरैः।**
**हन्ति यद्वत्पापराशिं यथा लक्ष्मीपतेः स्मृतिः॥१५५॥**

गोधूलि महायोग पापग्रहों से विद्ध नक्षत्र के दोषों को वैसे ही नष्ट करता है, जैसे समस्त पापों को लक्ष्मीपति श्रीविष्णु की स्मृति करती है॥१५५॥

### केन्द्रस्थ बृहस्पति योग

**अवमाख्यातिर्थेदोषं केन्द्रगो देवपूजितः।**
**हन्ति यद्वत्पापचयं द्वित्रिषड्वार्षिकं व्रतम्॥१५६॥**

अवम संज्ञक तिथि दोष को केन्द्र में गया हुआ देवपूजित बृहस्पति वैसे ही नष्ट करता है, जैसे दो, तीन तथा छः वर्षों का व्रत समस्त पापों को दूर करता है॥१५६॥

### केन्द्रस्थ शुभग्रहों का योग

**ग्रहजन्माह्वयं योगं शुभः केन्द्रगतो यथा।**
**हन्ति पापचयं भक्त्या प्रणाममिव शङ्करे॥१५७॥**

ग्रहजन्म नामक योग के दोषों को केन्द्र में गये हुए शुभग्रह वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे भक्तिपूर्वक भगवान् शङ्कर को किया हुआ प्रणाम पाप समूह को नष्ट करता है॥१५७॥

### केन्द्रस्थ शुभग्रहों का फल

**त्रिद्युस्पृग्यामदोषं यः शुभः केन्द्रगतः सदा।**
**हन्ति यद्वत्पापचयमशून्यशयनव्रतम्॥१५८॥**

त्रिद्युस्पृग्याम दोष को जो भी शुभ ग्रह केन्द्रगत हो ऐसे ही सदैव नष्ट करता है, जैसे पापसमूह को अशून्य शयन व्रत करता है॥१५८॥

### प्रतिसूर्य दोष निवारण

**प्रतिसूर्य्याह्वयं दोषं केन्द्रगः शुभखेचरः।**
**निहन्ति यद्वन्पिशुनः सकलं स्नेहसञ्चयम्॥१५९॥**

प्रतिसूर्य नामक दोष को केन्द्र में गये हुए शुभग्रह वैसे ही नष्ट करते हैं, जैसे चुगलखोर सारे स्नेह समूह को नष्ट करता है॥१५९॥

### प्रतिचन्द्रकृतदोष निवारण

**प्रतिचन्द्रकृतं दोषं लाभगः पूर्णचन्द्रमाः।**
**हन्ति यद्वत्पापचयं सुलब्धाध्यापको द्विजः॥१६०॥**

प्रतिचन्द्र कृत दोष को लाभ स्थान में स्थित पूर्णचन्द्रमा वैसे ही नष्ट कर देता है, जैसे पाप समूह को सुलभ श्रेष्ठ ब्राह्मण अध्यापक॥१६०॥

### नीहार दोष निवारण

**नीहारदोषं हन्त्याशु त्रिषडायगतो रविः।**
**हन्ति यद्वत्क्षीरचयं सद्यस्त्वम्लरसो यथा॥१६१॥**

नीहार दोष (मलमूत्र त्याग दोष) को तृतीय, षष्ठ तथा लाभस्थान में स्थित सूर्य शीघ्र ही वैसे नष्ट करता है, जैसे अम्लरस शीघ्र ही दूध समूह को नष्ट कर देता है॥१६१॥

### अकालवृष्टि दोष निवारण

**अकालगर्जितं दोषं केन्द्रगः शुभखेचरः।**
**हन्ति यद्वत्पाशुपतमंधकं नाम राक्षसम्॥१६२॥**

अकाल गर्जित (अकालवृष्टि) दोष को केन्द्र में गये हुए शुभग्रह वैसे ही नष्ट करते हैं। जैसे भगवान् शङ्कर का पाशुपत अस्त्र अन्धक नामक राक्षस को नष्ट किया है॥१६२॥

**अकालवृष्टिजं दोषं गुरुरेको महाबली।**
**हन्ति यद्वद् रामशरः खरनामासुरं भृशम्॥१६३॥**

अकालवृष्टि से उत्पन्न दोष एक ही महाबलशाली बृहस्पति वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् श्रीराम का बाण खर नामक राक्षस को करता है॥१६३॥

### दिग्धूमदोष निवारण

**दिग्धूमदोषं हन्त्याशु लाभस्थानगतः शुभः।**
**हन्ति यद्वत्पापचयं हरेः पादोदकं महत्॥१६४॥**

दिग्धूम दोष को लाभस्थान में गया हुआ शुभग्रह वैसे ही नष्ट करता है, जैसे भगवान् विष्णु का चरणामृत सारे पाप समूह को नष्ट करता है॥१६४॥

### परिवेषकृतदोष निवारण

**परिवेषकृतं दोषं षड्वर्गः शुभखेटजः।**
**निहन्ति यद्वद् व्रतिनं चन्द्रः पापांशसंस्थितः॥१६५॥**

परिवेषकृत कृत (सूर्यमण्डल या चन्द्रमण्डल) दोष को षड्वर्ग में शुभग्रह वैसे नष्ट करता है, जैसे पापांश में स्थित चन्द्रमा के दोष को व्रती नष्ट करता है॥१६५॥

### महाप्रभञ्जन दोष निवारण

**महाप्रभञ्जनं दोषं दशमायगतः शशी।**
**हन्ति यद्वत्पापचयं शिवरात्रिव्रतं महत्॥१६६॥**

महाप्रभञ्जन दोष को दशम-एकादश में स्थित चन्द्रमा वैसे नष्ट करता है, जैसे पाप समूह को शिवरात्रि व्रत॥१६६॥

### दग्धलग्नोत्पन्नदोष निवारण

**दग्धलग्नोद्भवं दोषं लाभगः क्षितिनन्दनः।**
**हन्ति यद्वन्महापापं कृष्णाष्टमीव्रतं यथा॥१६७॥**

दग्धलग्न से उत्पन्न दोष को लाभ स्थान में स्थित मङ्गल वैसे नष्ट करता है, जैसे महापाप को कृष्णजन्माष्टमी व्रत करता है॥१६७॥

### शून्यसंज्ञक नक्षत्रोत्पन्नदोष निवारण

**शून्यधिष्ण्योद्भवं दोषं रिपुस्थानगतः कुजः।**
**हन्ति यद्वन्महापापं तप्तकृच्छ्रव्रतं यथा॥१६८॥**

शून्यसंज्ञक नक्षत्र से उत्पन्न दोष को षष्ठ स्थान में स्थित मङ्गल वैसे ही नष्ट करता है, जैसे तप्तकृच्छ्र व्रत महापापों को नष्ट करता है॥१६८॥

### शून्यतिथिदोष निवारण

**दोषं शून्यतिथेर्जातं लाभगः सौम्यखेचरः।**
**हन्ति यद्वन्महापापं कृच्छ्रसांतपनं यथा॥१६९॥**

शून्य तिथि द्वारा उत्पन्न दोष को लाभ स्थान में शुभग्रह वैसे ही दूर करता है, जैसे महापापों को कृच्छ्रसांतपन व्रत नष्ट करता है॥१६९॥

### त्रिद्युस्पृग् दोष निवारण

**त्रिद्युस्पृगाख्यदोषं च हन्ति सिद्धातिथिः स्वयम्।**
**दावानलो यथा सर्वं निखिल विपिनं भृशम्॥१७०॥**

त्रिद्युस्पृग् नामक दोष को स्वयं सिद्धातिथि वैसे ही नष्ट करती है, जैसे दावानल समस्त जङ्गल को नष्ट कर देती है॥१७०॥

**अपवादे समं यान्ति दोषाश्चैव तथा गुणाः।**
**न यान्ति ते महादोषाः कदाचिद् गुणकोटिभिः॥१७१॥**

अपवाद के द्वारा दोषों और गुणों का शमन हो जाता है, परन्तु कदाचित् करोड़ों गुणों से भी महादोषों का शमन नहीं होता॥१७१॥

**गुणांश्च दोषांश्च गुणापवादान्।**
**दोषापवादांश्च विचिन्त्य सम्यक्।**
**गुणाधिकं दैवविदल्पदोषम्।**
**कालं वदेत्तं खलु मङ्गलेषु॥१७२॥**

इति श्रीब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठ विरचितायां महासंहितायां
गुणदोषापवादाध्यायस्त्रिचत्वारिंशः॥४३॥

गुणों, दोषों, गुणापवादों तथा दोषापवादों को भलीभाँति विचार करके दैवविद् (ज्योतिषियों) को सर्वदा मङ्गल कार्यों में अल्पदोष और गुणाधिक समय को बतलाना चाहिए॥१७२॥

वृद्धवसिष्ठ संहिता के गुणदोषापवादाध्याय की "नारायणी" हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥४३॥

***

**पाठान्तरम्**

०२. (ब) ज१-गुणसंचय: (—गुणसञ्चयम्)
०३. (अ) ज१-नामनिदेशना (—नामनिर्देशतो)
(ब) ज१-प्रत्ससापरमस्थवैः (—प्रशंसांपरमस्यवै)
०४. (अ) ज१-संज्ञक: (—संज्ञित:)
(ब) ज१-अपिसर्ववलोपेत: (—अतिसर्वगुणोपेतम्)
०५. (अ) ज१-मृत्युयोग (—मृत्युयोगो)
(ब) ज१-संर्पस्तं (—सर्पस्तु)
०६. (अ) ज१-महवल: (—महाबल:)
०७. (ब) ज१-प्रमंडनो (—प्रभञ्जनो)
०८. (अ) ज१-वद्धममाद्वयं (—वर्द्धमानाह्वयं)
(ब) ज१-संपत्रमगा (—सम्पन्नमुग्रा)
०९. (अ) ज१-वरूधिरो (--बधिरो)
१०. (अ) ज१-महायोगो (—महायोगं)
श्लोक संख्या १२ त:; ३६ पर्यन्तं ज१-हस्तलेखे-पाटोनास्ति॥
१९. (अ) मु. पु.-श्लन्दो (—च्छन्दो)
३७. (अ) ज१-पूर्णयोगो (—पूर्णयोगं)
३८. (ब) ज१-तानशोभनम् (—तमशोभनम्)
४२. (अ) ज१-तद्वद्योगांतरालकं (—तद्वद्योगान्तरात्मकम्)
४४. (अ) ज१-निहन्त्यर्था (—निहन्त्यथ)
(ब) ज१-गुणनामृतितं (—गुणानामयुतं)
४५. (ब) ज१-कर्तुरर्था (—कर्तुरर्थ)
४६. (ब) ज१-कुक्कुर्स्वल (—स्वर्भानुर्बल)
५०. (ब) ज१-शुभकार्ये (—शुभकार्य्य)
५६. (अ) ज१-गुणाशेषर (—गुणशेखर)
५७. (अ) ज१-दिनेव (—दिवैव)
५८. (ब) ज१-संयोगौ (—स्त्रीसङ्गो)
५९. (ब) ज१-सहिकेयौ (—सैंहिकेयो)

६०. (अ) ज१-सेषरंयोग (—शेखरंयोगं)
(ब) ज१-मेधक्यं (—मेघचयं)
ज१-चन्दमहनिलः (—चण्डमहानिलः)
६५. (अ) ज१-परिवेषोति (—परिवेधोऽतिभीषणः)
६७. (अ) ज१-महादोषो (—महायोगो)
७०. (ब) ज१-महान् (—महत्)
७१. (अ) ज१-महाबलः (—महाबलम्)
७२. (ब) ज१-चान्यं (—वान्यं)
७३. (अ) ज१-चंडांसंसंज्ञकः (—चण्डीशसम्भवः)
७४. (अ) ज१-विजयाक्षं (—विजयाख्यं)
८०. (अ) ज१-स्त्वेकार्गलद्भूयः (—स्त्वेकार्गलाह्वयः)
८३. (ब) ज१-क्ततनु (—सत्तनुम्)
८४. (ब) ज१-यद्वत्सौहियोगकेयौ (—यद्वत्सैंहिकेयो)
८५. (अ) ज१-षछुभ (—यच्छुभ)
(ब) ज१-कुटागः, कटकं (—कुठारो विटपं)
८६. (अ) ज१-शुकार्यज्ञकृतं (—प्रतिशुक्रकृतं)
(ब) ज१-मघसंघमिवानिलः (—मेघसंघमिवानिलः)
८८. (अ) ज१-ग्रहगतं (—ग्रहकृतं)
८९. (ब) ज१-यत्वत्पांसुलास्थः (—यद्वत्पांशुलाख्या)
९०. (ब) ज१-महत् (—यथा)
९२. (अ) ज१-गुरुसंचयं (—गुणसञ्चयम्)
९५. (अ) ज१-सर्वोत्वि (—सर्वेत्विह)
(ब) ज१-गुणापदं (—गुणापवादं)
ज१-समुक्ता (—समुक्त्वा)
९८. (अ) ज१-पाषंडसात्रातः (—पाखण्डश्रितः)
(ब) ज१-सज्जनमेवते (—राजानं सेवते)
९९. (अ) ज१-एकपापं (—एकपादं)
१०१. (अ) ज१-वामुं (—वामं) गुणाः (—गुणैः)
(ब) ज१-प्रशंसा परमस्य (—प्रशंसाऽत्रपरस्य च)
१०२. (अ) ज१-उत्पातयोगदं (—उत्पातयोगजं)
ज१-परियोगो (—चरयोगो)
१०५. (ब) ज१-मृगसंहिता (—मृगसंहतिः)
१०६. (ब) ज१-संहिति (—संहतिं)
१०८. (ब) ज१-राक्षशां (—दैत्यानां)
११३. (ब) ज१-लंवसम्पन्नौ (—अधमबलसम्पन्नो)

१२०. (अ) ज१-दोषं (—योगं)

१२१. (ब) ज१-यथाचक्रं (—महाचक्रं)

१२३. (अ) ज१-त्वशनिसंज्ञकं (—योगंत्वनिलसंज्ञकम्)

(ब) ज१-महतः (—महत्)

१२४. (अ) ज१-मूढसंज्ञ (—मृत्युतुल्यं)

ज१-विनासंकुरूतः (—विनाशं कुरूते)

१२८. (ब) मु. पु. खरयागुणरोगोऽयं (—गुणशंखरयोगोऽयं)

१२९. (ब) ज१-पापको (—पावको)

१३०. (अ) ज१-महाबलः (—महाबली)

१३१. (अ) ज१-गुणपार्श्वेतिसंज्ञकः (—गुणभास्करसंज्ञकः)

(ब) ज१-तारकाश्वरं (—तारकासुरम्)

१३२. (ब) ज१-चन्द्रशेषर (—चन्द्रशेखर)

१३४. (अ) ज१-योगकः (—योगकान्)

१३५. (ब) ज१-पापं (—पापः)

ज१-नाशनः (—संज्ञकः)

१३७. (ब) ज१-मुखं (—सुखम्)

१३९. (अ) ज१-गुणकल्पतरोर्यागः (—गुणकल्पतरुयोंगः)

(ब) ज१-हतेन्द्रधनुषां (—हन्तीन्द्रधनुषं)

ज१-महाबलयरंपरं (—महाबलवत्तरं)

१४०. (अ) ज१-केतुसंज्ञं (—वातसंज्ञं)

१४४. (ब) मु. पु. योगं (—रोगं)

१४८. (ब) मु. पु. नलजं (—मलजं)

१५६. (ब) ज१-द्विषड्वार्षिक यथा (—द्वित्रिषड्वार्षिकं व्रतम्)

१५७. (ब) ज१-प्रणामइव (—प्रणाममिव)

१५८. (अ) ज१-त्रियुस्पृहागाद्वयं (—त्रिद्युस्पृग्यामदोषं)

(ब) ज१-शूननशतव्रते (—अशून्यशयनव्रतम्)

१६५. (अ) मु. पु. परिवेश (—परिवेष)

१६७. (ब) ज१-सकृत (—यथा)

१६८. (ब) ज१-परं (—यथा)

१६९. (ब) ज१-महत् (—यथा)

१७०. (अ) ज१-त्रिद्युस्पृखाद्वयं दोषंति(—त्रिद्युस्पृगाख्यदोषं च हन्ति)

(ब) मु. पु. कालानलो (—दावानलो)

पुष्पिका : ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रंह्मऋषिविरचितायां महासंहितायां गुणदोषापवादाध्यायः॥४३॥

***

# ४४

# अथ वस्त्रपरिधानाध्यायः

**वस्त्रपरिधान**

**सन्मानायतनुं नवाम्बरधृतिः सत्कीर्तिसौभाग्यदा।**
**शत्रूणां दमना सुहृत्प्रियकरी सद्भाषणा कान्तिदा।**
**विद्यानां तिलका सभासु जयदा त्रैलोक्यवश्यंकरी।**
**तस्मात्तत्फलमृक्षवारवशतो वक्ष्ये शुभं चोत्तरम्।।१।।**

## नारायणी टीका

नवीन वस्त्र धारण करना मनुष्य के लिए सम्मान, सौन्दर्य के चिह्नस्वरूप, सुन्दर यशाप्ति, सौभाग्यप्रद, शत्रुओं का दमन, मित्रों का प्रिय, सद्भाषण, कान्तिप्रद, विद्याओं का शिरोमणि, सभाओं में विजयप्रद, तीनों लोकों को वश में करने वाला है। अत: नये वस्त्र धारण करने के फल को नक्षत्र एवं वार के अनुसार समस्त शुभफलादेशों को कहूँगा।।१।।

**क्रमशः अश्विन्यादि नक्षत्रों में वस्त्र धारण का फल**

**नबवस्त्रभृतः क्रमशो भवतिफलं दस्त्रधिष्ण्यतो नियतम्।**
**सतत त्वम्बरलाभं त्वतिविपुलं क्लेशमर्थहानिश्च।।२।।**

नवीन वस्त्र धारण करना अश्विन्यादि नक्षत्रों के क्रम से फलप्रद होता है। निरन्तर वस्त्रलाभ, अत्यधिक क्लेश तथा अर्थ हानि होती है।।२।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि नव वस्त्रसूयलक्षणम्।
वस्त्रलाभो वस्त्रहोनिर्वाह्नदाहो धनागमः।।
आसुभीतिर्मृतिर्लक्ष्मीरर्थ लाभो महागदः।
मृत्युर्नृपभयं सम्पत् कर्मसिद्धिररिक्षयः।।
सुभोजनं राजपूजा मित्राप्तिर्युवतिच्युतिः।
जलप्लुती रोगभीतिर्मिष्ठान्नं नयनामयः।।
धान्यं विषभयं तोयभीतिः सम्पद्धनागमः।
प्रतिधिष्ण्यं फलं प्रोक्तं नवाम्बरधृतोऽश्विभात्।।

—(क. सं. अ. ४१, श्लोक १-४)

**क्षितपतिपूजानियतं स्वजनविरोधः स्वमित्रतो हानिः।**
**स्थलजलकनकप्राप्तिर्विपुला कीर्तिर्विरोधमखिलजनैः॥३॥**

राजा की पूजा में निश्चित, स्वजनों का विरोधी, अपने मित्रों से हानि, स्थल, जल और स्वर्ण प्राप्ति, अधिक यश तथा लोग में विरोध—॥३॥

**क्रमागतः–**
**कश्यपः–**

काष्ठाद्यैः स्फुटितं दग्धं दन्तच्छेदनमम्बरे।
नवांशुकं समंकृत्वा चिन्तयेत्तच्छुभाशुभम्॥
वसन्तिदेवाः कोणेषु चान्त्यमध्यद्वये नराः।
मध्यांश त्रितये दैत्याश्चैवं शय्यासनादिषु॥
अर्थप्राप्तिर्देवांशे पुत्रवृद्धिर्नरांशके॥
हानिःपीडा पिशाचांशे सर्वप्रान्त्यैवशोभनम्॥
शंख चक्राम्बुजछत्रध्वजतोरण सन्निभः।
श्रीवत्ससर्वतोभद्र नन्द्यावर्त्त गृहोपमाः॥
वर्धमानः स्वस्तिकेनमृग कूर्म झषाकृतिः।
छेदा कृतिर्दैत्यभागेऽप्यायुरर्थप्रदा नृणाम्॥

—(क. सं. अ. ४१, श्लोक ५-९)

**क्रमागतः–**
**कश्यपः–**

खरोष्टोलूक काकाऽहि जम्बुकर्क्ष वृकोपमाः।
त्रिकोणाशूर्यकृतयो देवभागेऽप्यशोभनाः॥
निन्दितं वसनंदद्याद्द्विजेभ्यः स्वर्णसंयुतम्।
आशिषो वाचनं कृत्वा ध्वन्यद्वस्त्रं च धारयेत्॥
प्रीत्याक्ष्मापालदत्तं यद्विप्रादेशात्करग्रहे।
निन्द्यवासर धिष्ण्येऽपि धारयेन्नूतनाम्बरम्॥

—(क. सं. अ. ४१, श्लोक १०-१२)

**वह्निभयं सुतहानिर्विरोधलाभः स्वबन्धुजनपूजा।**
**स्थितिमखिलं लाभः पशुलाभो भूषणलाभश्च॥४॥**

अग्नि का भय, पुत्र की हानि, विरोध, लाभ तथा अपने भाई-बन्धुओं से पूजित, सबका पालन पौषण, लाभ (यश, धन, लाभ इत्यादि) पशु लाभ और आभूषण लाभ—॥४॥

**धनधान्यहानिरतुला स्वजनविरोध; कलत्रकलहः स्यात्।**
**भूसुरपूजाहानिर्बहुविधरोगः समस्तगुणलाभः॥५॥**

धनधान्य की बृहद् हानि, स्वजनों का विरोध, स्त्री से कलह, देवी-देवताओं की पूजा, हानि, अनेक प्रकार के रोग तथा समस्त गुणों का लाभ—॥५॥

**कदन्नाशनलाभः सतत विदेशगमनं शत्रुतो भीत्याः।**
**परवनिताजनलाभः प्रभूतमणिकनक वस्तुलाभः स्यात्॥६॥**

बुरे भोजन का लाभ, लगातार विदेश जाना, शत्रु से भय, परस्त्रीलाभ, अत्याधिक मणि, स्वर्ण तथा वस्तु इत्यादि का लाभ होता है॥६॥

**नक्षत्रानुसार नवीनवस्त्र धारण फलबोधक चक्र**

| नक्षत्र | अश्विनी | भरणी | कृत्तिका | रोहिणी | मृग. | आर्द्रा | पुनर्वसु | पुष्य | आश्ले. |
|---|---|---|---|---|---|---|---|---|---|
| फल | निर. व लाभ | क्लेश धनहानि | राजा से पूजित | स्वजन विरोध | मित्रों से हानि | स्थल, जल, स्वर्ण प्राप्ति | यश | लोगों से विरोध | अग्नि भय |
| नक्षत्र | मघा | पू.फा. | उ.फा. | हस्त | चित्रा | स्वाति | विशा. | अनु. | ज्येष्ठा |
| फल | पुत्रहानि | भाईयों से पूजित | सबका पालन पोषण | लाभ | पशु लाभ | आभूषण लाभ | धन-धान्य हानि | स्वजन विरोध | स्त्री कलह |
| नक्षत्र | मू. | पू.षा. | उ.षा. | श्रवण | धनिष्ठा | शत. | पू.भा. | उ.भा. | रेवती |
| फल | देवपूजा | हानि | रोग उत्पत्ति | समस्त गुणों का लाभ | कुत्सित अन्न-भोजन | विदेश गमन | शत्रु से भय | परस्त्री लाभ | मणि, सोना वस्तु लाभ |

**अनलोपहतेर्मूषककाष्ठादिलोहप्रसङ्गहतेः　।**
**हरिद्रारससूत्रेण नवधाभिहते शुभाशुभं चिन्त्यम्॥७॥**

अग्नि से आहत, मूषक, काष्ठादि लोह द्वारा हत वस्त्र को, हल्दी के रस सूत्र से नौ खण्ड में विभक्त करके शुभाशुभ फलों का विचार करना चाहिए॥७॥

**अम्बरकोणेष्वमरा निवसन्ति तदन्त्यमध्ययोर्मनुजाः।**
**परत्रितये दनुजाः शुभाशुभं चिन्तयेन् नवांशेषु॥८॥**

नवीन वस्त्र के कोणों में देवता निवास करते हैं, वस्त्र के अन्त एवं मध्य में मनुष्य तथा शेष तीन जगहों में राक्षस निवास करते हैं। इस प्रकार वस्त्र के नौ भागों का शुभाशुभ फल समझना॥८॥

**धनलाभं त्वमरांशे मनुजांशे पुत्रपौत्रधनलाभः।**
**रोगभयं दनुजांशे प्रान्ते सर्वांशके नेष्टफलम्॥९॥**

देवताओं के अंश में धनलाभ, मनुष्यों के अंश में पुत्र-पौत्र तथा धन-लाभ, राक्षसों के अंश में रोग भय और सभी के अंशों में हो तो नेष्ट फल होता है॥९॥

**नवाम्बरं सम्भृतमाशु जीर्णं तिग्मांशुवारांशक लग्नवर्गे।**
**निशापतेरम्बुभिरार्द्रमेतत्कुजस्य वर्गे भयमेव वह्नेः॥१०॥**

सूर्यवार, सूर्यांश, सूर्य राशि लग्न में या वर्ग में नया वस्त्र धारण करने से शीघ्र ही नया वस्त्र जीर्ण हो जाता है। चन्द्रवार, चन्द्रांश, चन्द्र राशि लग्न या वर्ग में नवीन वस्त्र धारण करने से वस्त्र सदैव गीला रहता है। मंगल के वर्ग में अग्नि का भय—॥१०॥

**लाभप्रदं सोमसुतस्य वर्गे गुरोर्बुद्धिदयासुरेज्ये।**
**दुःखप्रद सूर्यसुतस्य वर्गे तस्मिन्क्षणे वा फलमेतदेव॥११॥**

चन्द्रमा पुत्र बुध के वर्ग में लाभप्रद, बृहस्पति के वार वर्गादि में बुद्धि में वृद्धि, शुक्रवार वर्गादि में दया की वृद्धि, शनि के वार वर्गादि में दुःख होता है। वस्त्र धारण करने का परिणाम उसी क्षण प्राप्त होता है॥११॥

**छत्रध्वजस्वस्तिकवर्द्धमानश्रीवत्समत्स्याम्बुजतोरणानाम्।**
**च्छेदाकृतीराक्षसभागगोऽपि लक्ष्मी समृद्धिं कुरुते तदानीम्॥१२॥**

छत्र, ध्वज, स्वस्तिक, वर्द्धमान, श्रीवत्स, मत्स्य, कमल, तोरणादि का नवीन वस्त्र के राक्षस भाग में चिह्न स्थापित करने से उसी समय लक्ष्मी समृद्धि होती है॥१२॥

**कपोतकंकोष्ट्रश्रृगालकाकक्रव्यादगोमायुकबन्धरूपाः।**
**च्छेदाकृतिर्देवतभागगोऽपि करोति दुःखं भयमाशु नूनम्॥१३॥**

**इति श्रीब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठ विरचितायां संहितायां**
**वस्त्रपरिधानाध्यायश्चतुचत्वारिंशः।।४४।।**

कबूतर, कंक, ऊँट, सियार, कौवा, माँस, अग्नि, मेंढक या गीदड़, मनुष्य का शिर रहित शरीर (कबन्ध) इत्यादि की आकृति बना कर नवीन वस्त्र के देवभाग में स्थापित करने से निश्चित ही भय एवं दुःख प्राप्त होता है॥१३॥

वृद्ध वसिष्ठा संहिता के वस्त्रपरिधानाध्याय की "नारायणी"
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥४४॥

**पाठान्तरम्**

०१. (ब) ज१-सद्भूषणा (—सद्भाषणा)
(स) ज१-वस्वंकरा (—वश्यंकरी)
(द) ज१-रक्सतोवक्षे (—वशतोवक्ष्ये)
०२. (अ) ज१-नवस्त्रमृत: (—नववस्त्रभृत:)
ज१-क्रमसो (—क्रमशो)
०३. (ब) मु. पु. विरोधमाखिलनै: (—विरोधमलिखजनै:)
०५. (ब) ज१-भूशुर (—भूसुर)
ज१-वुहुविरोधरोग: (—बहुविधरोग:)
०६. (अ) ज१-कदशनलाभ: (—कदन्नानलाभ:)
ज१-भीति: (—भीत्या:)
०७. (अ) ज१-प्रशृंगहते (—प्रसङ्गहत:)
०९. (अ) ज१-मनुजासे (—मनुजांशे)
१०. (अ) ज१-लग्नवर्ग (—लग्नवर्गे)
(ब) ज१-चदभे: (—वह्ने:)
१२. (ब) ज१-छेदावृती (—च्छेदाकृती)
ज१-भागगापि (—भागगोऽपि)
१३. (अ) ज१-मृगाल (—शृगाल)
(ब) ज१-छेदाकृति (—च्छेदाकृति)
ज१-भागगापि (—भागगोऽपि)

पुष्पिका : इति श्रीवृद्धवसिष्ठऋषि विरचितायां
महासंहितायां वस्त्र प्रकरणाध्याय:।।४४।

***

# ४५

# अथोत्पाताध्यायः

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि उत्पाताध्यायमुत्तमम्।
अन्यत्वं प्रकृतेः यत्तदसावुत्पात संज्ञकम्॥१॥

अब इसके बाद मैं (वसिष्ठ ऋषि) उत्पात नामक उत्तम अध्याय को कहता हूँ। प्रकृति से अन्यत्व अर्थात् विपरीत होना उत्पात संज्ञक कहा गया है॥१॥

**विशेष :** भूमिजन्य, आकाशीय और दिव्य—ये तीन प्रकार के उत्पात प्रकृति बदलने पर होते हैं। जब प्रकृति में उपद्रव होना प्रारम्भ होता है तो ऐसे उपद्रवों को ऋषियों ने उत्पात संज्ञा दी है॥१॥

अधर्मतस्त्वसत्याच्च नास्तिक्यादतिलोभतः।
अनाचारान्नृणां नित्यमुपसर्गःप्रजापतेः॥२॥

अधर्म, असत्य, नास्तिकता, लोभ आधिक्य, मनुष्यों में अनाचार इत्यादि से प्रतिदिन उत्पात उत्पन्न होते हैं॥२॥

**उत्पातों की संज्ञा**

तद्वशास्त्रिविधोत्पाता जायन्ते शोक दुःखदाः।
दिव्यान्तरिक्ष-क्षितिज-विकारा घोररूपिणः॥३॥

उपद्रवों के वश में तीन प्रकार के शोक एवं दुःखप्रद उत्पात उत्पन्न होते हैं। ये दिव्य, अन्तरिक्ष तथा भूमिजन्य भयङ्कर रूपी विकार होते हैं॥३॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

उत्पातास्त्रिविधा लोके दिवि भौमान्तरिक्षजाः।
तेषां नामानि शान्तिं च सम्यक्वक्ष्ये पृथक् पृथक्॥

—(क. सं. अ. ३८, श्लोक १)

**कश्यपः–**

उत्पात्तनिखिलालोके दिव्यभौमान्तरिक्षजः।
तत्त्वस्थानि नामानि शान्तिं वक्ष्ये पृथक् पृथक्॥

—(क. सं. अ. ४४, श्लोक १)

ग्रहर्क्षजा केतवश्च उत्पाता दिव्यसंज्ञकाः।
निर्घातपरिवेषोल्का पुरन्दरधनुर्ध्वजाः॥४॥

ग्रहों नक्षत्रों से उत्पन्न तथा केतुओं से उत्पन्न विकार दिव्य संज्ञक, निर्घात, परिवेष, उल्का, इन्द्रधनुष एवं ध्वज—॥४॥

**लोहितैरावतोष्ट्राश्वकबन्धपरिघादयः ।**
**एवमाद्या महोत्पातास्त्वन्तरिक्षाह्वयास्त्वमी॥५॥**

लोहित, ऐरावत, ऊँट, अश्व कबन्ध तथा परिघ इत्यादि द्वारा उत्पन्न हुए बड़े-बड़े उत्पात अन्तरिक्ष संज्ञक—॥५॥

**उत्पद्यते क्षितौ यच्च स्थावरं वाथ जङ्गमम्।**
**तदेकदेशिकं भौममुत्पातं परिकीर्तिम्॥६॥**

पृथिवी के चलायमान होने से तथा चर वस्तु स्थिर एवं स्थिर वस्तु चर होने पर पृथ्वी के एकभाग को भूमि सम्बन्धी उत्पात संज्ञक कहा है॥६॥

**भौमास्तु तुच्छफलदास्त्वन्तरिक्षास्तु मध्यमाः।**
**सम्पूर्णफलदा दिव्या वर्षादर्द्धात्तदर्द्धतः॥७॥**

भौम उत्पात तुच्छ अर्थात् थोड़े फल देने वाले, अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम फल देने वाले; किन्तु दिव्य उत्पात सम्पूर्ण फलप्रद होते हैं। ये उत्पात तीन मास, छः मास अथवा एक वर्ष में फलप्रद हो जाते हैं॥७॥

**भौमं शान्त्या शमं याति मार्दवं त्वन्तरिक्षजम्।**
**दिव्यं होमान्नगोभूमिदानैस्तत्कोटिहोमतः॥८॥**

भूमि सम्बन्धी उत्पात शान्ति करवाने से शान्त हो जाते हैं, जबकि अन्तरिक्ष उत्पात मध्यम हो जाते हैं और दिव्य उत्पात हवन, अन्न, गाय, भूमि दान से कोटि होम से—॥८॥

**महोपहारादरुद्रस्य गोदोहात्तत्पुरःसरम्।**
**अलङ्कृते क्षितितले यावत्क्षीरप्लवं भवेत्॥९॥**

भगवान् रुद्र के नानाविध पूजन से, भगवान् रुद्र के सामने गोदोहन पूर्वक पृथ्वी का अलङ्कार, तब तक करें, जब तक दूध की धारा बहने न लगे—॥९॥

**अपि दिव्यं शमं याति किं पुनस्त्वितरद्वयम्।**
**अकृत्वा शान्तिकं राजा दुखाम्भोधौ निमज्जति॥१०॥**

तो दिव्य उत्पात भी शान्त हो जाते हैं पुनः इसके अतिरिक्त भूमि एवं अन्तरिक्ष उत्पात स्वयं ही शान्त हो जाते हैं। राजा यदि इन उत्पातों की शान्ति न करे तो वह दुःख रूपी समुद्र में डूब जाता है॥१०॥

### आठ प्रकार के उत्पात

**पुरे जनपदे कोशे वाहनेषु पुरोहिते।**
**स्त्रीपुत्रात्मनि भूपस्य पच्यते दैवमष्टभिः॥११॥**

नगर, ग्राम, कोष, वाहन, पुरोहित, स्त्री, पुत्र एवं स्वयं (राजा) इन आठ प्रकार के उत्पातों से पीड़ित होता है॥११॥

### यज्ञमण्डपनिर्माण

**हस्तैः षोडशभिः कार्य्यं चतुरस्त्रं समन्ततः।**
**मण्डपं याज्ञिकैर्वृक्षैरथवा वनदारुभिः॥१२॥**

सोलह हाथ का चारों तरफ से चकोणा मण्डप याज्ञिक वृक्षों अथवा जंगली वृक्षों से बनवाना चाहिए॥१२॥

**चतुर्द्वारसमायुक्तं तोरणाद्यैलङ्कृतम्।**
**हस्तैश्चतुर्भिस्तन्मध्ये कुण्डं कार्यं समन्ततः॥१३॥**

चार द्वारों से युक्त, तोरणादि द्वारा अलङ्कृत चारों तरफ से चार हाथों के मध्य में कुण्ड बनाना चाहिए॥१३॥

**खातं हस्तचतुर्भिश्च वप्रत्रयसमन्वितम्।**
**षडंगुलोन्नतस्त्वाद्यो द्वादशांगुल विस्तृतः॥१४॥**

तीनों तरफ से मिट्टी की परत से युक्त चार हाथ प्रमाण खात करे, जिसका छः अङ्गुल ऊँचा और बारह अङ्गुल विस्तार बनावें॥१४॥

**दशांगुलोन्नतो मध्यो ह्यष्टाङ्गुल सुविस्तृतः।**
**चतुर्दशाङ्गुलोत्सेधश्चतुरङ्गुल विस्तृतः॥१५॥**

दस अङ्गुल मध्य से ऊँचा, आठ अङ्गुल विस्तृत, चौदह अङ्गुल चौकोर तथा चार अङ्गुल विस्तृत करें—॥१५॥

**तृतीयवप्रः कर्त्तव्यो योनिश्चैका तु पश्चिमे।**
**चतुर्दशांगुलैर्दीर्घा चोन्नता षोडशाङ्गुलैः॥१६॥**

फिर तीसरी दीवार बनाकर पश्चिम दिशा में एक योनि का निर्माण करें। चौदह अङ्गुल दीर्घ तथा सोलह अङ्गुल उन्नत—॥१६॥

**हीनाधिका न कर्त्तव्या विस्तारः षड्भिरङ्गुलैः।**
**कुण्डस्य लक्षणं त्वेवं कोटि होमे तु सर्वदा॥१७॥**

कम या अधिक वेदिका न बनाकर इसका विस्तार छः अङ्गुल का होना चाहिए। एकमात्र कुण्ड का यही लक्षण है। इसमें कोटि होम किया जा सकता है॥१७॥

**ईशान्यां वेदिका कार्या सार्द्धहस्तप्रमाणतः।**
**उन्नता विस्तृता कार्या प्रागुदक्प्रवहा शुभा॥१८॥**

ईशान कोण में डेढ़ हाथ प्रमाण से वेदिका का निर्माण ऊँचा और विस्तृत होना चाहिए। पूर्व और उत्तर दिशा में ढाल शुभ होती है॥१८॥

**सर्वदेवमयी त्वाद्या शिवपूजापुरःसरम्।**
**ग्रहांस्तानर्चयेत्तत्र पूर्वोक्तविधिना ततः॥१९॥**

सबसे पहले सर्वदेवमयी भगवान् शङ्कर की पूजा पूर्वक पूर्वोक्त विधि से नवग्रहों की पूजा करनी चाहिए।।१९।।

**पलाशसमिदाज्यान्नैर्मुखान्तेऽष्टशतं पृथक्।**
**अघोरमन्त्रेण ततो ग्रहहोमं च कारयेत्।।२०।।**

पलाश की समिधा, घी, अन्न के द्वारा अन्त में आठ सौ अलग-अलग अघोर मन्त्रों से हवन कर पुनः ग्रहों का होम करना चाहिए।।२०।।

**तिलहोमं व्याहृतिभिर्घृताक्तं जुहुयात्ततः।**
**द्वारे हि जापकैः स्वस्ववेदपारायणं क्रमात्।।२१।।**

व्याहृतियों से तिल होम में घृत युक्त होम करे तत्पश्चात् क्रम से प्रत्येक द्वार पर जापकों तथा अपने-अपने वेद पारङ्गत विद्वानों द्वारा—।।२१।।

**चमकं नमकं सूक्तपुरुषोक्ताङ्गजापकैः।**
**होमं नवभिराचार्यैः कार्यं तद् ब्रह्मणा सह।।२२।।**

चमक नमक विधि से पुरुष सूक्त अङ्ग जापकों के साथ नौ आचार्यों द्वारा तथा ब्रह्मा सहित होम करना चाहिए।।२२।।

**शिवविष्णोः कथालापैर्दिनशेषं नयेत्ततः।**
**एवं यावत्कोटि होमस्तावत्कार्यमतंद्रिभिः।।२३।।**

तत्पश्चात् भगवान् शङ्कर एवं भगवान् विष्णु की कथा सुनने-सुनाने में शेष दिन को बिताते हुए। इस प्रकार आलस्य त्याग कर कोटि हवन पूरा करना चाहिए।।२३।।

**नैवेद्यान्ते ततः पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्।**
**ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत बन्धुभिः।।२४।।**

नैवेद्य के अन्त में फिर से शान्त वाचन पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करवा कर स्वयं भी भाई-बन्धुओं सहित भोजन करें।।२४।।

**तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा लक्षहोममथापि वा।**
**कार्य्यं दोषानुसारेण वित्तशाठ्यविवर्जितः।।२५।।**

लक्षहोम या पचास हजार या फिर पच्चीस हजार अथ एक लाख दोष के अनुसार धन की कंजूसी त्याग करता हुआ हवन करवाये।।२५।।

**होमान्ते दक्षिणां दद्याच्चतुर्विंशति ऋत्विजान्।**
**प्रतिद्विजमलङ्कारं सार्द्धनिष्कशतद्वयम्।।२६।।**

होम के पश्चात् चौबीस ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए। प्रत्येक ब्राह्मण को ढाई सौ निष्क तथा अलङ्कारों से सम्मानित करें।।२६।।

**तदर्द्धं वा तदर्द्धं वा दोषवित्तानुसारतः।**
**एवमेव यशः कामैर्नृपैः कुर्याच्च भक्तितः॥२७॥**

उसका आधा, फिर उसका आधा अथवा दोष तथा धन के अनुसार यश की कामना करने वाले राजा के द्वारा भक्तिपूर्वक यज्ञ करवाना चाहिए॥२७॥

**ब्रीहिभिश्चायुरर्थी चेत्सर्वकामी तिलैश्च सः।**
**उक्ता साधारणा शान्तिरुत्पाता नामतः परम्॥२८॥**

आयु की चाहना रखने वाले व्यक्ति को चावल से तथा सभी इच्छाओं की पूर्ति के लिये तिल होम करना चाहिए। अभी तक साधारण शान्ति विधान को कहा। अब इसके आगे उत्पात नाम शान्ति कहता हूँ॥२८॥

### उत्पात एवं शान्तिविधान

**उत्पातश्चैव शान्तिश्च वक्ष्यतेऽत्र पृथक् पृथक्।**
**मन्त्रद्रव्यमनुष्ठानं भक्त्या कार्यमतन्द्रितैः॥२९॥**

उत्पात एवं शान्ति विधाओं को अलग-अलग कहेंगे! मन्त्र, द्रव्य एवं अनुष्ठान को आलस्यरहित होकर भक्ति पूर्वक करना चाहिए॥२९॥

**अर्चाः प्रनृत्यन्ति पतन्ति यद्वा चलन्ति रोदन्ति हसन्ति यत्र।**
**पचन्ति जल्पन्ति चेष्टयन्ति स्थानान्तरं वाप्यथवा व्रजन्ति॥३०॥**

यहाँ मूर्तियां नाचने लगे, गिरने लगें या फिर चलने लगें, रोने या हँसने लगें, पचाने लगें, बड़बड़ करने लगें, चेष्टा करें, एक स्थान से दूसरे स्थान पर जायें—॥३०॥

**क्रमागतः–**

**नारदः–**

देवता यत्र नृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति च।
मुहू रूदन्ति गायन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति च॥
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयोजलम्॥
अधोमुखाश्च तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति च।
एवमाद्या हि दृश्यन्ते विकाराः प्रतिमासु च॥

—(ना. सं. अ. ३७, श्लोक १-२)

### प्रतिष्ठित मूर्तियों में विकार होने पर फल

**वमन्ति धूमानलरक्ततोयं स्नेहं दधिक्षीरसुराक्षतादि।**
**अङ्गारकार्पासतुषास्थिरोमकबन्धपाषाणकरोदनादि॥३१॥**

ऊल्टी करे, धुँआ, अग्नि, रक्त, जल, स्नेह, दही, दूध, सुरा अक्षत इत्यादि, अङ्गार, कपास, भूसा, हड्डी, रोम, धड़, पत्थर, रोना इत्यादि—॥३१॥

क्रमागतः–
कश्यपः–

देवतार्चाः प्रनृत्यन्ति पतन्ति प्रज्वलन्ति च।
मुहुर्गायन्ति रोदन्ति प्रस्विद्यन्ति हसन्ति वा।।
वमन्त्यग्निं तथा धूमं स्नेहं रक्तं पयोजलम्।
अधोमुखं वा तिष्ठन्ति स्थानात्स्थानं व्रजन्ति वा।।
एवमाद्याविकारात्तं दृश्यन्ते प्रतिमासु च।
गन्धर्वं नगरं चैव दिवानक्षत्रदर्शनम्।।
महोल्कापतनं काष्ठतृणरक्तप्रवर्षणम्।
दिव्यगन्धर्व दिग्धर्मभूमिकम्पं दिवो निशि।।

—(क. सं. अ. ४५, श्लोक १-४)

एवमाद्या विकारास्ते दृश्यन्ते प्रतिमासु च।
राज्ञां जनपदानां च नाशाय द्राग्भवन्ति हि।।३२।।

इस प्रकार से जो विकार मूर्तियों में दिखाई दें तो राजा तथा जनपदों के लि, शीघ्र ही विनाशकारक होते हैं।।३२।।

क्रमागतः–
कश्यपः–

अनग्नौ विस्फुलिङ्गाःस्युर्ज्वलनं च विनेन्धनम्।
निशीन्द्र चापमण्डूकशिखिरं श्वेतवायसम्।।
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गाश्चगोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः।
प्रजायन्ते नृपषु जन्तवो द्वित्रिमस्तकाः।।
प्रतिसूर्याश्चचतुर्दिक्षु दृश्यन्ते युगपद रवेः।
जम्बुक्रो ग्राम संसर्गे केतूनांच प्रदर्शनम्।।
काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवो यदि।
एवमाद्यामहोत्पाता मृत्युदाः स्थान नाशदाः।।
शत्रुभ्यो भयदा राज्ञामथवा वित्तनाशदाः।
उत्पात दोषनाशायशान्तिं पूर्ववदाचरेत्।।

—(क. सं. अ. ४५, श्लोक ५-९)

ऋषिब्रह्मजं पितृजं द्विजानामेव वै कृतम्।
शिवोत्थं लोकपालोत्थं शिशूनां नृपतेश्च तत्।।३३।।

ऋषि ब्रह्म से उत्पन्न, पितरों से उत्पन्न, ब्राह्मणों द्वारा किये हुए, शिव से उत्पन्न, लोकपालों से उत्पन्न, बच्चों अथवा राजा के लिए—।।३३।।

**लोकानां विष्णुसम्भूतं ग्रहोत्थं तत्पुरोधसाम्।**
**स्कन्दोत्थं मण्डलीकानां विशाखोत्थं क्षमाभुजाम्॥३४॥**

उन लोकों के लिए विष्णु से उत्पन्न, ग्रह से उत्पन्न पुरोहित के लिए, स्कन्द से उत्पन्न माण्डलीक राजाओं के लिए, शिवजी से उत्पन्न राजाओं के लिए—॥३४॥

**गणेशोत्थं च भूपस्य व्यासोत्थं तच्च भूपतेः।**
**अन्योत्थं यद्विकारं तल्लोकाभावाय सर्वदा॥३५॥**

श्रीगणेश से उत्पन्न राजा तथा व्यास ऋषि से उत्पन्न राजा अथवा अन्य देवी-देवताओं से उत्पन्न राजा में विकार सदैव लोक भय के लिए होते हैं॥३५॥

### उत्पातों का फल समय निर्देश

**फलपाको भवेदष्टमासैस्तद्वत्सरेण वा।**
**उत्पातानामथैतेषां शान्तिं वक्ष्ये प्रयत्नतः॥३६॥**

उत्पातों का फल आठ महीनों में अथवा एक साल में होता है। अतः अब उन उत्पातों के शान्ति विधान को प्रयत्नपूर्वक कहूँगा॥३६॥

### उत्पात शान्ति उपाय

**दृष्ट्वा दैवविकारं तद्दिनत्रयमुपोषितः।**
**पुरोहितः शुद्धमनाः शुद्धभावो जितेन्द्रियः॥३७॥**

दैव विकार को देखकर तीन दिन प्रयत्नपूर्वक उपवास करता हुआ राजा शुद्धचित्त, शुद्धभावयुक्त, जितेन्द्रिय पुरोहित सहित—॥३७॥

**चतुर्थदिवसे गत्वा दीपैः सार्घं शिवालयम्।**
**सहस्रकलशस्नानं कुर्यात्सङ्कल्पपूर्वकम्॥३८॥**

चौथे दिन शिवालय में जाकर दीप, अर्घ सहित सहस्र कलशों से सङ्कल्पपूर्वक स्नान करवाना चाहिए॥३८॥

**तल्लिङ्गमन्त्रेणगन्धाद्यैर्वस्त्रैर्देवं समर्चयेत्।**
**घृतोपहारवित्तान्नैर्भक्त्या चैव समर्चयेत्॥३९॥**

उस लिङ्गमन्त्र द्वारा गन्ध, वस्त्र इत्यादि से शिवजी का घी, उपहार, धन, अन्न इत्यादि से भक्तिपूर्वक पूजन करना चाहिए॥३९॥

**ग्रहशान्त्यामुक्तकुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।**
**पालाशसमिधाज्यान्नैस्तल्लिङ्गैर्वेदमन्त्रकैः॥४०॥**

ग्रहशान्ति में उक्त कुण्ड में अग्नि स्थापन करके पलाश समिधा, घी, अन्न तथा लिङ्ग वेदमन्त्रों के द्वारा—॥४०॥

**अष्टोत्तरसहस्त्रं वा पृथगष्टोत्तरं शतम्।**
**तिलहोमादिकं सर्वं शेषं पूर्ववदाचरेत्।।४१।।**

एक हजार आठ अथवा एक सौ आठ बार तिल होम करें शेष कार्य पूर्ववत करते हुए—।।।४१।।

**रात्रौ जागरणं कुर्यान्नृत्यगीतादिभिः सह।**
**आसप्तरात्रात्कृत्वैवमथवा पञ्चरात्रकम्।।४२।।**

रात्रि जागरण, नाच-गान इत्यादि सहित करें। ऐसा सात रात्रि या पाँच रात्रि पर्यन्त करके—।।४२।।

### उत्पातों के लक्षण

**एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।**
**अनग्नौ दृश्यते ज्वाला काष्ठायुक्तो न दीप्यते।।४३।।**

जो विधिपूर्वक अनुष्ठन करता है, वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। अग्नि के विना अग्नि दिखे और अग्नि काष्ठयुक्त होकर न जले—।।४३।।

**बन्धुक्षतोपि नृपतेः पीडाजनपदस्य च।**
**यस्मिन्पुरे जनपदे धूमोऽनग्नौ महद्रजः।।४४।।**

तो बन्धुसहित राजा को पीड़ा, जनपद निवासियों को पीड़ा होती है। जिस नगर, जनपद में अग्नि के विना धुआँ अथवा अत्यधिक धूल दिन में दिखाई दे—।।४४।।

**दिवान्धकारो वृक्षाणां राजनाशो भवेत्तदा।**
**रात्रावदर्शन व्यभ्रे तेषमग्निश्च निष्प्रभः।।४५।।**

और वृक्षों का दिन में अन्धकार युक्त होना, रात्रिकाल में नक्षत्रों का न दिखाई देना और अग्नि का कान्तिरहित होना दिखे तो राजा का नाश होता है।।४५।।

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

गन्धर्वनगरं चैव दिवा नक्षत्रदर्शनम्।
महोल्कापतनं काष्ठतृगरक्त प्रवर्षणम्।।
गन्धर्वगेहे दिग्धूमं भूमिकम्पं दिवा निशि।।
अनग्नौ च स्फुलिङ्गाश्च ज्वलनं च विनेन्धनम्।
निशीन्द्रचाप मण्डूकशिखरं श्वेतवायसः।।
दृश्यन्ते विस्फुलिङ्गाश्च गोगजाश्वोष्ट्रगात्रतः।
जन्तवो द्वित्रिशिरसो जायन्ते वा वियोनिषु।।

—(क. सं. अ. ३७, श्लोक ३-६)

**तदधीशस्य राष्ट्रस्य दुःखशोक भयप्रदः।**
**शयनासनवस्त्राणां पादुकेभ्यो नृगात्रतः॥४६॥**

तथा राष्ट्राध्यक्ष (राजा) को दुःख, शोक एवं भयप्रद होता है। चारपाई, वस्त्र तथा जूते इत्यादि से मनुष्य के शरीर से—॥४६॥

**महिषोष्ट्राश्वगोहस्तिपशुकेशेषु गात्रतः।**
**धूमाग्निविस्फुलिङ्गा वा दृश्यन्ते च जलादिषु॥४७॥**

भैंसा, ऊँट, घोड़ा, गाय, हाथी तथा अन्य पशुओं के बालों में तथा शरीर में धुआँ, अग्नि, चिङ्गारी इत्यादि दिखाई पड़े अथवा जलमध्य में—॥४७॥

**राजराष्ट्रविनाशः स्याच्छत्रुतोऽग्नेर्भयं भवेत्।**
**आयुधानि प्रज्वलन्ति कोशेभ्यो निर्गतानि च॥४८॥**

दिखाई पड़े तो राजा और राष्ट्र का विनाश या शत्रु से अग्नि का भय होता है। जब शस्त्र-अस्त्र जलते हुए दिखाई पड़े अथवा अपने म्यान से स्वयं ही निकलने लगें—॥४८॥

**वेपमानानि यदि वा जल्पन्त्यथ रुदन्ति वा।**
**हसन्ति तुमुलं युद्धमत्यन्तनिकटं वदेत्॥४९॥**

और अस्त्र-शस्त्रों में कम्पन हो, बड़बड़ करें या रोने लगें, हंसने लगें तो निकट भविष्य में भयङ्कर युद्ध होने वाला है, ऐसा कहना चाहिए॥४९॥

### उत्पातों का शान्तिविधान एवं फल

**उत्पातानामथोक्तानां शान्तिं वक्ष्ये विधानतः।**
**रुद्राभिषेकं रुद्रेण नैवेद्यान्तं प्रपूजयेत्॥५०॥**

पूर्व कहे गये उत्पातों की विधिपूर्वक शान्ति विधान कह रहा हूँ। भगवान् रुद्र का रुद्राऽभिषेक करके, नैवेद्य अर्पित करके पूजा करनी चाहिए॥५०॥

**पूर्वोक्तलक्षणे कुण्डे स्थापयेच्च हुताशनम्।**
**मुखान्ते जुहुयादग्निं मन्त्रैरष्टसहस्त्रकम्॥५१॥**

पहले कहे गये लक्षणों से युक्त कुण्ड में अग्नि स्थापन करके मुखान्त में आठ हजार मन्त्रों द्वारा अग्नि में आहुति देनी चाहिए॥५१॥

**क्षीरवृक्षसमिद्भिश्च सर्षपैश्च पृथक् पृथक्।**
**तिलहोमं व्याहृतिभिर्ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः॥५२॥**

दूध वाले वृक्षों की समिधा से तथा पीली सरसों से या तिलों से अलग-अलग व्याहृतियों के द्वारा होम करने के पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए॥५२॥

एवं यः कुरुते भक्त्या तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।
ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याद्वित्तशाठ्यविवर्जितः॥५३॥

ऐसा जो भक्तिपूर्वक पूजा-होम करता है, वह इस दोष से मुक्त हो जाता है। ऋत्विजों को धन की कंजूसी त्यागकर दक्षिणा देनी चाहिए॥५३॥

एकरात्रं त्रिरात्रं वा शेषं पूर्ववदाचरेत्।
अकस्मादेव वृक्षाणां शाखाभङ्गो भवेद्यदि॥५४॥

एक रात्रि या तीन रात्रि तक शेष कार्यों को पूर्ववत करना चाहिए। यदि अकस्मात् वृक्षों की शाखा टूट जाए—॥५४॥

राष्ट्रभङ्गं वदेच्छीघ्रं हसन्ते देशनाशनम्।
रुदितो व्याधितो भीतिः कम्पने ग्रामकम्पनम्॥५५॥

तो शीघ्र ही राष्ट्रभङ्ग कहना, हंसने पर देश का नाश, रोने पर व्याधिभय, कम्पन पर ग्राम का काँपना समझना॥५५॥

विस्फुलिङ्गेऽथवा धूमे ज्वलिते वह्नितो भयम्।
फलपुष्पोद्गमे काले वृक्षाणां यदि शीघ्रतः॥५६॥

अग्नि जलने पर चिङ्गारी अथवा धुआँ दिखाई दे तो अग्निभय होता है। वृक्षों के फलपुष्प निकलने के समय यही स्थिति हो तो शीघ्रता से—॥५६॥

राष्ट्रविद्रावणं बालवृक्षेषु कुसुमेऽथवा।
शिशुहानिर्भवेत्क्षीरस्त्रवणे द्रव्यनाशनम्॥५७॥

राष्ट्र का विनाश होता है। छोटे पौधों में ही फूल निकलें तो बच्चों की हानि, दूध निकलने पर धन का नाश होता है॥५७॥

मद्ये वाहननाशः स्याच्छोणिते युद्धमादिशेत्।
स्नेहस्त्रावेऽनर्घभयं जलस्त्रावे महद्भयम्॥५८॥

मदिरा बहने पर वाहनों का नाश, रक्त निकले तो युद्ध होगा ऐसा निर्देश करे। तेल स्त्रवित हो तो महँगाई का भय तथा जल स्त्रवित होने पर बहुत बड़ा भय होता है॥५८॥

क्षौद्रद्रावो भवेद्यत्र रोगशोकभयं भवेत्।
शुष्कवृक्षे चाङ्कुरिते वृक्षहानिस्त्वनर्घता॥५९॥

छोटा घाव दिखे तो रोग, शोक एवं भय जानना। सूखे वृक्ष में अङ्कुर दिखें तो वृक्षों की हानि तथा महँगाई होती है॥५९॥

अकस्माच्छोषिते वृक्षे तदेव फलमिष्यते।
पतिते स्वयमास्थने भयं देवकृतं भवेत्॥६०॥

अकस्मात् वृक्ष सूख जाये और उसमें फल दिखाई पड़े अथवा विना स्थान के अपने आप गिर जाये तो देवताओं द्वारा भय होता है॥६०॥

**जल्पने चलने वृक्षे राजराष्ट्रविनाशनम्।**
**कृत्वाभिषेकं वृक्षस्य यावच्छक्यं प्रयत्नतः॥६१॥**

वृक्षों के जल्प (वादविवाद, गप्प) करने पर या चलने पर राजा एवं राष्ट्र का विनाश होता है। अतएव प्रयत्नपूर्वक वृक्षों का अभिषेक करना चाहिए॥६१॥

**अर्चयेद्गन्धपुष्पस्रग्वस्त्रच्छत्रोपहारकैः।**
**तत्पश्चादष्टभिर्हस्तैश्चतुर्भिर्वाथ मण्डपम्॥६२॥**

गन्ध, पुष्प, माला, वस्त्र, छत्र तथा उपहार देकर पूजा अर्चना करनी चाहिए। तत्पश्चात् आठ हाथों से अथवा चार हाथ प्रमाण से मण्डप का निर्माण करना चाहिए॥६२॥

**कृत्वाथ कुण्डं तन्मध्ये सम्यक्तत्पूर्ववत्ततः।**
**द्वादशकृत्वो नमकं चमकं च भवेदितः॥६३॥**

मण्डप मे मध्य में कुण्ड निर्माण करके पहले की तरह भलीभाँति बारह वार नमक चमक विधि से रुद्राऽभिषेक करना चाहिए॥६३॥

**अग्निसंस्थापनं कृत्वा मुखान्ते जुहुयाच्चरूम्।**
**रुद्राय स्वाहेत्यनेन मन्त्रेण च सकृद्हुतम्॥६४॥**

तत्पश्चात् अग्नि स्थापना करके उसके मुखभाग में चरु का हवन करना चाहिए। 'रुद्राय स्वाहा' इस मन्त्र के साथ-साथ हवन करना चाहिए॥६४॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

अनैश्वर्यं चान्नहानिरूत्पातभयमादिशेत्।
देवालये स्वगेहे वा ईशान्यां पूर्वतोऽपि वा॥
कुण्डं लक्षणंसयुक्तं कल्पयेन्मेखलायुतम्।
गृह्योक्त विधिना तत्र स्थापयित्वा हुताशनम्॥
जुहुयादाज्यभागान्तं पृथगष्टोत्तरं शतम्।
यत् इन्द्रभयामहे स्वस्तिदाघोरमन्त्रकैः॥
समिदाज्यं चरूर्व्रिहितिलै व्याहृतिभिस्तथा।
कोटिहोमं तदर्धं च लक्षहोममथाऽपि वा॥

—(ना. सं. अ. ३७, श्लोक ११-१४)

**पृथगष्टशतं भक्त्या तिलव्याहृतिभिस्ततः।**
**ऋत्विग्भ्यो दक्षिणां दद्याच्छेषं पूर्ववदाचरेत्॥६५॥**

अलग से आठ सौ तिल की व्याहृतियों द्वारा भक्तिपूर्वक होम करे तत्पश्चात् ऋत्विजों को दक्षिणा देनी चाहिए और शेष कार्य पूर्ववत करना चाहिए।।६५।।

**विप्रान्सन्तोषयेद् भक्त्या घृतपायस भोजनैः।**
**उत्पातानां वृक्षजानां शान्तिमेषां प्रकल्पयेत्।।६६।।**

भक्तिपूर्वक घी, खीर तथा भोजन देकर ब्राह्मणों को सन्तुष्ट करना चाहिए। इस प्रकार वृक्षों से उत्पन्न उत्पातों की शान्ति विधान की परिकल्पना करनी चाहिए।।६६।।

**एवं यः कुरुते शान्तिं तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।**
**नालेऽस्मिन्सर्वसस्यानामेकस्मिन् द्वित्रिसंभवे।।६७।।**

जो इस प्रकार शान्ति करता है, वह सभी दोषों से विमुक्त हो जाता है। सभी फ़सलों में यदि एक नाल में दो या तीन कौम्पलें निकलें तो—६७।।

**मरणं तत्तदीशानां युग्मे पुष्पफले सति।**
**वृक्षस्य सुलतादीनामतिवृद्धि फलानि च।।६८।।**

उस स्थानाधिपति राजा इत्यादि की मृत्यु होती है। जोड़े फूल या फलों की उत्पत्ति वाले वृक्ष, सुन्दर वेल इत्यादि फसलों में हों तो फलों की वृद्धि होती है।।६८।।

**शत्रोरागमनं भाव्यमचिरान्नियमेन वा।**
**उक्ततैलाधिकं हीनं तिलेभ्यो वा भवेद्यदा।।६९।।**

यदि तिल प्रमाण से आधा तेल का प्रमाण हो अथवा तेल न निकले या अधिक तेल निकले तो शीघ्र ही नियमों में विरुद्धता होने पर शत्रु का आगमन होता है।।६९।।

**तैलं तदान्नतो भीतरैरण्डाद्यमथापि वा।**
**विकारैः फलपुष्पाद्यैः सौम्येन वरुणादिभिः।।७०।।**

तैल या अन्न से भय, एरण्डादि तैलीय वृक्षों में विकार से युक्त फल-पुष्पों को सौम्य देव तथा वरुणादि देवताओं के लिए—।।७०।।

**जुहुयात्सौम्यमन्त्रेण पशुनिर्वापणाच्छुचिः।**
**सस्ये विकारे तत्क्षेत्रं दत्त्वा विप्राय तत्र वै।।७१।।**

सौम्य मन्त्रों के द्वारा होम करके पशु को शुद्धचित्त से गाँव से बाहर निकालना चाहिए। यदि फसलों में विकार हो जाये तो तत्सम्बन्धी क्षेत्र को ब्राह्मण को दान देकर—।।७१।।

**मन्त्रेण च चरुं हुत्वा तस्माद् दोषात्प्रमुच्यते।**
**अतिवृष्टावनावृष्टौ क्षुद्भयः शत्रुतो भयम्।।७२।।**

मन्त्र के द्वारा चरू से होम करे तो दोष से विमुक्त हो जाता है। अत्यन्त वर्षा या वर्षा की कमी होने पर दुर्भिक्ष एवं शत्रु से भय होता है।।७२।।

अनृतौ चेद् रोगभयमनृते भूभुजां बधः।
सम्प्रवृत्तेषु ऋतुषु शीतोष्णं तद्विपर्ययत्॥७३॥

वर्षा ऋतु के अतिरिक्त अन्य ऋतु में वर्षा हो तो भय, रोग तथा राजाओं का वध होता है। सर्दी और गर्मी में व्यत्यय होने से अर्थात् गर्मी के समय सर्दी और सर्दी के समय गर्मी हो तो—॥७३॥

षण्मासाद्राष्ट्र भीतिः स्यादथवा रोगदुःखतः।
अकाले सततं वृष्टिः सप्ताहं नृपतेर्वधः॥७४॥

छः मास के उपरान्त राष्ट्रभय हो अथवा रोग से दुःख, असमय निरन्तर एक सप्ताह तक वर्षा हो तो राजा का वध हो जाता है॥७४॥

रक्तवृष्टौ रणोद्योगो मांसवृष्टौ महद्रणम्।
मरणं स्यादस्थिवृष्टौ वसावृष्टौ हि तत्फलम्॥७५॥

रक्त की वर्षा हो तो युद्ध के लिए उद्योग, मांस की वर्षा हो तो बहुत बड़ा युद्ध, अस्थियों की वर्षा हो तो मृत्यु, चर्बी की वर्षा हो तो भी मृत्यु होती है॥७५॥

क्षौद्रवर्षे राष्ट्रनाशस्त्वङ्गारैः पशुभिर्गदा।
धान्याकफलपुष्पाद्यैर्लोहैः स्तेयैर्महद्भयम्॥७६॥

शहद या धूल-कणों की वर्षा में राष्ट्र का नाश, अंगारे तथा पशुओं में बीमारी, धान्य, फल, पुष्प, लोहे इत्यादि की वृष्टि हो तो चोरों का बहुत भय होता है॥७६॥

पर्णैस्तृणैः काष्ठवर्षैस्तदेव फलमादिशेत्।
पाषाणवृष्टिरभ्रेषु प्राणिवृष्टिरथापि वा॥७७॥

इसी प्रकार यदि पत्ते, तृण, काष्ठ इत्यादि की वर्षा में भी पूर्ववत् वही फल होता है! बादलो के न होने पर पाषाण (ओला) वृष्टि हो या जीव-जन्तुओं की वृष्टि हो तो—॥७७॥

चित्रवृष्टिर्यदि भवेत्सस्यानामीतिकारणम्।
आकाशे निर्मले भानोर्यदा छाया न दृश्यते॥७८॥

या विचित्र वृष्टि हो तो फसलों के लिए षड़ ईति (अनावृष्टि, अतिवृष्टि टिड्डी इत्यादि का) कारण बनता है। आकाश के निर्मल होने पर सूर्य की छाया (वृक्षादि की छाया) दिखाई न दे तो—॥७८॥

दृश्यते वा प्रतीपा सा तदा क्षुद्भयमादिशेत्।
रवीन्दुवायुपर्जन्ययोगः कार्यस्त्ववग्रहे॥७९॥

अथवा उल्टा दिखाई दे तो दुर्भिक्ष होगा ऐसा कहना चाहिए। सूर्य, चन्द्रमा, वायु, मेघ इत्यादि उत्पातों में यज्ञ करना चाहिए॥७९॥

**पूर्ववत्स्वर्णगोदानै रत्नैर्दोषात् प्रमुच्यते।**
**समीपस्था नदी यत्र नगराद् दूरगा यदि॥८०॥**

पूर्ववत सोना, गोदान, रत्नदान करने से दोष से विमुक्त हो जाता है। नगर के समीप में बहती हुई नहीं दूर चली जाये—॥८०॥

**तत्पुरं कुरुते शून्यं यदि नासौ प्रतीपगा।**
**रक्तमांसकृमिस्नेहवहनं शत्रुतो भयम्॥८१॥**

उस पुर अथवा स्थान को शून्य कर देता है। यदि इसमें विरुद्धता न हो। यदि नदियों में रक्त, मांस, कीड़े, चर्बी वहने लगे तो शत्रु का भय होता है॥८१॥

**अशोषिते प्रवाहादौ शोषितेऽपि च तत्फलम्।**
**गीतं प्रजल्पनं ज्वाला धूमः क्वाथोऽप्यरोदनम्॥८२॥**

नदियां सूखें नहीं या सूख भी जाए तो वैसा ही फल होता है। गीत, बड़बडाना, अग्नि, धूम, जल में गन्ध अथवा रसादि गुणों का अभाव—॥८२॥

**एवमादीनि कूपेषु जनानां निधनाय वै।**
**अखाते सलिले जाते खातेऽम्बुन्यगुणे यदि॥८३॥**

इस प्रकार कूपादि जल स्थानों की स्थिति मनुष्यों के लिए मृत्युसूचक होती है। विना खुदाई के जल पैदा होना, खात में जल के गुण परिवर्तन होना—॥८३॥

**तोयाशये वापि कृतौ शाखिनः शत्रुतो भयम्।**
**विकारे च तथा कुर्यात्तन्मन्त्रैर्वरुणस्य च॥८४॥**

जलाशयों में विकार, अग्नि या शत्रु से भय होता है। जल में विकार होने पर वरुण मन्त्रों से—॥८४॥

**पूजा होमं यथा पूर्वमरिष्टं याति तच्छमम्।**
**हीनकालेऽधिके तस्य देशस्य च कुलस्य च॥८५॥**

पूजा होम करने से पूर्व कथित अरिष्टों का शमन हो जाता है। कम या अधिक समय में उस देश या कुल के लिए—॥८५॥

**हीनकालेऽधिके काले प्रसवे सति योषिताम्।**
**असंख्यदिवसे युग्मप्रसवे चापि नाशनः॥८६॥**

समय से बहुत पहले या बहुत बाद में स्त्रियों के प्रसव होने पर असंख्य दिवसों में जुड़वे प्रसवों में भी नाश ही कहनो चाहिए॥८६॥

**अमानुषानि बीजानि जायते चाण्डजानि च।**
**हीनाङ्गस्त्वधिकांगश्च अनङ्गाः सम्भवन्ति हि॥८७॥**

अमानुष बीजों की उत्पत्ति पक्षियों से हो तो हीनाङ्ग या अधिकाङ्ग, अनङ्ग अर्थात् विना अङ्ग वाले उत्पन्न हों—॥८७॥

**विशिरो द्वित्रिशिरसो विमुखाः पक्षिसन्निभाः।**
**विनाशं तस्य देशस्य राष्ट्रस्य च विनिर्दिशेत्॥८८॥**

अथवा शिर से रहित, दो-तीन शिरों वाले, विना मुख वाले, पक्षियों के सदृश कान्ति वाले यदि उत्पन्न हों तो उस देश या राष्ट्र का विनाश कहना चाहिए॥८८॥

**हस्तिनी वडवा गौर्वा युग्मं यत्र प्रसूयते।**
**विजात्यं वा विकारं वा मासैः षड्भिर्नृपक्षयम्॥८९॥**

हथिनी, घोड़ी या गाय इत्यादि पशु दो, दो बच्चे उत्पन्न करें अथवा विजाती या विकारयुक्त पैदा करें तो छः मास के भीतर राजा की मृत्यु हो जाती है॥८९॥

**उष्ट्रमहिष्यो चेत्यादि प्रसवे कलहगमः।**
**उक्तानां च विकाराणां शान्तिं वक्ष्ये प्रयत्नतः॥९०॥**

ऊँटनी या भैंस यदि पूर्व कथित प्रकार से प्रसव करें तो झगड़े का आगमन होता है। अतः प्रयत्नपूर्वक उपर्युक्त विकारों की शान्ति विधान कहते हैं॥९०॥

**त्यक्तव्या परदेशेषु नार्यस्तः सहितार्थिना।**
**द्विजान्संतर्पयेदन्नैर्ग्रहशान्तिं च कारयेत्॥९१॥**

उन स्त्रियों को जिन्होंने प्रसव दिया है, उनके चाहने वालों के सहित दूसरे देशों में त्याग देना चाहिए। ब्राह्मणों को तर्पणादि करके अन्न देकर ग्रहों की शान्ति करनी चाहिए॥९१॥

**चतुष्पादाश्च यूथेभ्यस्त्यक्तव्या परभूमिषु।**
**नगरं स्वामिनं यूथमन्यथा तु विनाशयेत्॥९२॥**

चौपाये पशुओं को समूह से भिन्न किसी दूसरे स्थान पर छोड़ देना चाहिए। अन्यथा ऐसे पशु नगर एवं नगर के स्वामी की समूह सहित विनाश करते हैं॥९२॥

**गोगजाश्वोष्ट्रमहिष-नरपश्वादयो यथा।**
**रमन्ते चेद्वियोनौ तु पक्षिणोर्वान्यजन्तुषु॥९३॥**

गाय, हाथी, अश्व, ऊँट, भैंस, नर पशु इत्यादि वियोनि के साथ रमण करें अर्थात् एक जाति के पशु दूसरी जाति के पशु के साथ रमण करें, मैथुन करें। इसी प्रकार पक्षी भी अन्य जाति से रमण करें तो—॥९३॥

**धेनुर्धेनुं पिवेद्यद्वा अनड्वाननडुहं प्रति।**
**श्वानो वापि पिवेद् धेनुं धेनुः श्वानमथापि वा॥९४॥**

गाय परस्पर एक-दूसरे का स्तनपान करे, बैल बैल के प्रति, कुत्ता कुत्ते के प्रति परस्पर स्तनपान करें—॥९४॥

**एवमादिविकारा ये प्राणिनां प्रभवन्ति चेत्।**
**मासत्रयान्तरे नूनं परचक्रागमं वदेत्॥९५॥**

यदि इस प्रकार से अन्य विकार प्राणियों में उत्पन्न हों तो तीन महीने के भीतर निश्चय ही परमचक्रागम अर्थात् दूसरे देश के राजा का आक्रमण होगा ऐसा कहना चाहिए॥९५॥

**त्यक्त्वा विवासनं होमं पूर्ववत्कारयेज्जपम्।**
**प्राजापत्येन मन्त्रेण समिदाज्यचरुं क्रमात्॥९६॥**

विकारयुक्त पशुओं का त्याग करके अथवा दूसरे स्थान पर पहुँचाने पर, पूर्व कथित प्रकार से जप-होमादि प्राजापत्य मन्त्र के द्वारा समिधा, घी और चरु से क्रमशः—॥९६॥

**हुत्वा च तर्पयेद् विप्रान्बहुस्वर्णसुभोजनैः।**
**एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते॥९७॥**

होम करके ब्राह्मणों को तर्पणपूर्वक बहुत स्वर्ण और स्वादिष्ट भोजन से तृप्त करके इस प्रकार जो भलीभाँति शान्ति करता है, वह इन दोषों से विमुक्त हो जाता है॥९७॥

**अकृत्वा नास्तिको लोभादश्नुते सर्वसङ्कटात्।**
**आरोहकं विना यत्र वाहनं यदि गच्छति॥९८॥**

जो नास्तिक लोभ के वश में आकार शान्ति विधान नहीं करता, वह सभी संकटों को प्राप्त करता है। आरोहक अर्थात् सारथी या ड्राइवर के वगैर वाहन यदि चले ऐसा नहीं हो सकता॥९८॥

**आरोहके विद्यमाने न व्रजेद्वाहनं यदा।**
**अकस्माद्रथचक्राणि पादभङ्गो भवेद्यदि॥९९॥**

सारथी या ड्राइवर के होते हुए भी वाहन न चलें, जमीन में धसने लगे, अचानक रथ का पहिया पादङ्ग हो जाए तो—॥९९॥

**परचक्रागमं तत्र वदेत्वत्सरतो भृशम्।**
**अताडिते तूर्य्यनादस्ताडिते नादवर्जिते॥१००॥**

परचक्रागम अर्थात् दूसरे देश के शत्रु राजा का युद्ध के लिए आगमन एक वर्ष के भीतर होगा ऐसा कहें। बिना ताड़ना के वाद्यादि से ध्वनि हो या फिर ताड़न करने पर भी वाद्य से ध्वनि न हो—॥१००॥

**अथ नानाविधा नादा राजराष्ट्रविनाशनम्।**
**तूर्यादिनादा नभसि श्रूयन्ते वापि निःस्वनाः॥१०१॥**

इस प्रकार अनेक प्रकार की ध्वनियां हों तो राजा और राष्ट्र का विनाश होता है। आकाश में बाजे इत्यादि की ध्वनि सुनाई दे या विना बाजे वाली ध्वनि अथवा वेसुरी ध्वनि सुनाई दे तो—॥१०१॥

**परैरभिभवस्तत्राप्यथवा महती गदा।**
**स्वलाङ्गूलेन स्वतनुं धेनुर्यदि सुवेष्ठिता॥१०२॥**

दूसरों के द्वारा पराभव (हार, असफलता, मानभङ्ग, मानमर्दन इत्यादि) अथवा बहुत बड़े रोग की सम्भावना होती है। यदि गौमाता अपनी पूँछ को अपने शरीर पर लपेट ले—१०२॥

**नादाकारं शूर्पनिभं दर्वीरूपमथापि वा।**
**मुसलोलूखलं रूपं विकारं वा भवेद्यदि॥१०३॥**

तो ध्वनि के आकार में शूर्प (छज्ज) की भाँति, दर्वी (कड़छी, चमच) की भाँति अथवा मसूर, ओखली इत्यादि रूपों में विकार उत्पन्न हो जाये—॥१०३॥

**शृगालसदृशे नादे विकारे वाथ जल्पिते।**
**हसिते रोदने वापि भयं भवति शीघ्रतः॥१०४॥**

शृगाल सदृश ध्वनि या बड़बडाने का विकार दिखाई दे। हंसने अथवा रोने की ध्वनि हो तो शीघ्र ही भय होता है॥१०४॥

**अथवा राजनाशः स्यादचिकित्सो गदो भवेत्।**
**उत्पातेष्वेषु वायव्येषूत्तमं सक्तुभिर्यजेत्॥१०५॥**

अथवा राजनाश या दवाई से ठीक न होने वाला रोग होता है। इन उत्पातों में वायव्य कोण से उत्पन्न उत्पात हो तो शान्ति के लिए सत्तू (जौ को भूनकर फिर पीस कर बनाया गया आटा) से वायु देवता की पूजा करनी चाहिए॥१०५॥

**वायुं पूज्य शमीष्वत्र होमं कुर्य्याच्च पूर्ववत्।**
**आवायो भूप इत्याद्या ऋग्भिः पञ्चभिरेव च॥१०६॥**

वायुदेवता की पूजा करके सभी समिधाओं (जण्ड समिधा) से पहले की भाँति होम करें "आवायोः भूप इति" इन पाँच ऋचाओं द्वारा जप होम करना चाहिए॥१०६॥

**बह्वन्नस्वर्णदानैश्च तद्दोषं शान्तिमाप्नुयात्।**
**अकस्माद्विपिने यत्र चरन्ति ग्रामपक्षिणः॥१०७॥**

बहुत अन्न, स्वर्णादि दान करने से उस दोष की शान्ति करनी चाहिए। अचानक यदि जङ्गल में ग्राम पक्षी विचरण करे तो—॥१०७॥

**ग्रामेषु यदि वा वन्या निर्भयाद्वा विशन्ति हि।**
**रात्रौ भवन्ति काकाश्च दिवसे कौशिकादयः॥१०८॥**

यदि ग्राम में वसने वाले पक्षी जङ्गल में और जङ्गली पक्षी ग्राम में विना किसी भी डर के प्रवेश करें अथवा रात्रिकाल में कौवे और दिवा काल में उल्लू इत्यादि—॥१०८॥

**शृगालो विशति ग्रामं शशो वाप्यथवा निशि।**
**मृगाः पक्षिगणा वापि चुक्रोशन्ति च सन्ध्ययोः॥१०९॥**

या सियार ग्राम में प्रवेश करे, खरगोश रात्रिकाल में प्रवेश करें, हिरण या पक्षी समूह दोनों सन्ध्यायों में चिल्लाएं अथवा जोर-जोर से शब्द करें—॥१०९॥

**ग्रामस्य निकटे नूनं दीप्तायां शत्रुतो भयम्।**
**कपोतो विशति ग्राममारोहेद्वा विशेद्गृहम्॥११०॥**

गाँव के समीप में निश्चित तौर पर प्रकाश में कबूतर गाँव में प्रवेश करें या घर में घुसे तो शत्रु से भय होता है॥११०॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

काकानामाकुलं रात्रौ कपोतानां दिवा यदि।
अकाले पुष्पिता, वृक्षा दृश्यन्ते फलिता यदि॥
कार्यं तच्छेदनं तत्र ततः शान्तिर्मनीषिभिः।
एवमाद्या महोत्पाता बहवः स्थाननाशदाः॥
केचिन्मृत्युप्रदाः केचिच्छत्रुभ्यश्च भयप्रदाः।
मध्याद्भयं पशोर्मृत्युः क्षयोऽकीर्तिः सुखासुखम॥

—(ना. सं. अ. ३७, श्लोक ८-१०)

**श्येनगृध्रादयो व्योम्नि भ्रमन्तो वा प्रदक्षिणम्।**
**गृहस्य प्राङ्गणे यस्य हेमचक्षुः स्वरो भवेत्।**
**"एवमादिविकारस्ते पक्षिणां चेद्भवन्ति हिः"॥१११॥**

बाज और गिद्ध आदि पक्षी आकाश में घूमते हुए प्रदक्षिण क्रम से घर के आँगन में सुनहरी आँखों वाले पक्षी का स्वर हो। इस प्रकार से ऐसे और भी विकार पक्षियों के दिखाई दें—॥१११॥

**मधुवल्मीकजच्छत्रपत्रांकुर विरूपका:।**
**गृहेषु यदि जायन्ते कर्त्तृनाशो गृहस्य च॥११२॥**

शहद का छत्ता, दीमक, छत्र पत्रांकुर रूप रहित हो जायें और घर में यदि उत्पन्न हों तो घर के निर्माता का नाश होता है॥११२॥

**शवार्द्राङ्गं गृहीत्वा श्वा यदि वा मन्दिरं नयेत्।**
**तत्स्वामिनाशनं क्षिप्रं गवाङ्गं चेद्रणे मृति:॥११३॥**

शव के गीले अङ्गों अर्थात् शीघ्र ही मृत शरीर के ताजे अङ्ग को ग्रहण करके कुत्ता यदि घर में घुसे तो उस घर के स्वामी का नाश शीघ्र ही होता है अथवा कुत्ते के पास गावाङ्ग हो तो रणभूमि में मृत्यु होती है॥११३॥

**मृगपक्षिविकारेषु कुर्य्याद् होमं जपादिकम्।**
**देवा: कपोत इत्यादि जप्तव्या: पञ्चभिर्द्विजै:॥११४॥**

मृग, पक्षी इत्यादि में पूर्वोक्त विकार उत्पन्न होने पर जप होमादि करना चाहिए। "देवा: कपोत" इत्यादि मन्त्रों का पाँच ब्राह्मणों द्वारा जप करवाना॥११४॥

**क्रमागत:-**

**कश्यप:-**

देवा: कपोत इत्यादि ऋत्विग्भि: पञ्चभिर्जपम्।
अष्टोत्तरशतं कुर्याद् दक्षिणाश्च यथाविधि॥
आचार्याय सवत्सां गामेकां दद्यान्ष्कि संयुताम्।
ब्रह्मणे जापकेभ्यश्च दद्यात्तस्यार्धं दक्षिणाम्।
वित्तानुसारतो वापि तस्माद् दोषात्प्रमुच्यते।
पिङ्गलस्य तथा प्रोक्तामधुवल्मीकयोरपि॥
प्रासादेषु पुरद्वारे प्राकारेषु वीथिषु।
तत्फलं ग्रामस्यैव सीम्नि सीमाधिपस्य च॥

*(क. सं. अ. ४४, श्लोक ३-६)*

**सुदेव इति मन्त्रं च जपेच्छाकुनिकं च यत्।**
**अथर्वणशिरा यस्य जप्तव्या: पापनुत्तये॥११५॥**

सुदेव इत्यादि मन्त्र का जप तथा शाकुनिक सूक्त द्वारा या अथर्वणशिरा (वेदशिरांसि) मन्त्रों का पाप निवृत्ति के लिए जप करना चाहिए॥११५॥

**गोभूस्वर्णान्नदानेन सर्वपापं विनश्यति।**
**तस्मादतिप्रयत्नेन शान्तिकर्म समाचरेत्॥११६॥**

गो, भूमि, स्वर्ण तथा अन्नदान से सभी पाप नष्ट होते हैं। अत: अत्यन्त प्रयत्न से शान्ति विधान करना चाहिए॥११६॥

**इन्द्रद्वारार्गलस्त्विन्द्रध्वजो वा नगरं यदि।**
**दृश्यतेत्विन्द्रदण्डो वा तदा नृपवधं वदेत्॥११७॥**

इन्द्रद्वार, इन्द्र अर्गला, इन्द्रध्वज तथा इन्द्रदण्ड नगर में दिखाई दे तो राजा का वध होगा ऐसा कहना चाहिए॥११७॥

**गृहस्तम्भद्वारदारुकपाटपतनं यदि।**
**आस्फोटनं चैव तेषां तदा गृहपतेर्वधः॥११८॥**

घर का स्तम्भद्वार तथा लकड़ी के किवाड़ यदि गिर जायें या इनमें विस्फोट हो जाये, तब घर के स्वामी का वध समझें॥११८॥

**सन्ध्याद्वयेऽनले दीप्ते धूमो वा यदि कानने।**
**अच्छिद्रे वा भुविच्छिद्रं भूकम्पो वा भयप्रदः॥११९॥**

दोनों सन्ध्याओं में यदि अग्नि प्रदीप्त हो या धुआँ जङ्गल में दिखाई दे, पृथ्वी में छिद्र व अछिद्र दोनों दिखाई दें अथवा पृथ्वी में कम्पन्न हो तो भयप्रद होता है॥११९॥

**वेदाचारं परित्यज्य वेदवाह्यं समाचरेत्।**
**असाधुशीलो नृपतिः सराष्ट्रेण विनश्यति॥१२०॥**

वेदों का आचरण त्याग करके वेदों के विपरीत आचरण होने लगे, राजा लोग अशिष्ट चरित्र वाले हो जायें तो राजा राष्ट्र सहित विनाश को प्राप्त होता है॥१२०॥

**शिशवश्चोद्धता यत्र नगरे कृत्रिमायुधाः।**
**छिन्धिभिन्धीव्युक्तवन्तस्तदा चेद्युद्धमादिशेत्॥१२१॥**

बच्चे निरर्थक अभिमानी हो जायें, बनावटी अस्त्र-शस्त्र लेकर काटों, तोड़ो इत्यादि वचन बोलते हुए एक-दूसरे पर प्रहार करने लगें तो शीघ्र ही युद्ध होगा, ऐसा कहना चाहिए॥१२१॥

**भूतप्रेतपिशाचेषु दृष्टेषु सदनेषु च।**
**तेषां हानिभयं कार्या शान्तिर्दोषापनुत्तये॥१२२॥**

भूत-प्रेत-पिशाचादि घरों में दिखाई दें तो उनके द्वारा हानि एवं भय होता है। अतः दोषों की शान्ति के लिये उपाय करना चाहिए॥१२२॥

**शचीं शचीपतीं पूज्य तन्मन्त्रैर्जुहुयाद्हविः।**
**भूमिस्वर्णान्नदानैश्च बलिभिः शान्तिमाचरेत्॥१२३॥**

इन्द्राणी एवं इन्द्र की पूजा करके उनके मन्त्रों द्वारा होम करें। भूमि, स्वर्ण, अन्न दान तथा बलि के द्वारा शान्ति विधान करवाना चाहिए॥१२३॥

राजराष्ट्र विनाशाय केतूनामुदयः सदा।
वज्राशनिमहीकम्पसन्ध्यानिर्घातनिस्वनाः ॥१२४॥

राज एवं राष्ट्र के लिये केतुओं का उदय सदैव विनाश कारक होता है। वज्र (बिजली) पत्थरों की वर्षा या उल्कापतन, भूकम्प, दोनों सन्ध्याओं में हवा की सनसनाहट, गरीबी—॥१२४॥

परिवेषरजोधूमरक्तार्कास्तमयोद्याः।
द्रुमेभ्योऽन्नरसस्नेहमधुपुष्परसोद्गमाः॥१२५॥

सूर्यबिम्ब एवं चन्द्रबिम्ब का परिवेष धूलि, धुआँ, लाल वर्णात्मक सूर्य का उदयास्त, वृक्षों से अन्न, रस, तरल पदार्थ, मधुर पुष्प रसादि का उद्गम—॥१२५॥

पक्षावर्कविकारा या शिवायमधुमाधवे।
वातोल्कापात कलुषं कपिलार्केन्दुमण्डलम्॥१२६॥

पक्षियों और सूर्य में ये सभी विकार चैत्र एवं वैशाख मास में कल्याणप्रद होते हैं। वायु तथा उल्कापात से मलिन आकाश एवं भूरे रङ्ग का सूर्य-चन्द्रमण्डल—॥१२६॥

अनग्निज्वलनास्फोटसमरेष्वनिलाहतम् ।
रक्तपद्मारुणां सन्ध्या नभः क्षुब्धार्णवोपमम्॥१२७॥

और अग्नि के विना ज्वाला शब्द, युद्ध में वायु से आहत, लाल कमल पुष्प सदृश सन्ध्या तथा चञ्चल उछलते हुए समुद्र भी भाँति आकाश—॥११७॥

सरितां वाम्बुसंशोषं दृष्ट्वा ग्रीष्मे शुभं वदेत्।
शक्रायुधं परिवेषं विद्युच्छुष्कविरोहणम्॥१२८॥

नदियों में जल सूखना ये उत्पात ग्रीष्मऋतु में देखकर शुभ कहना चाहिए। इन्द्रधनुष, सूर्य-चन्द्र परिवेष बिजली, सूखे वृक्षो में अङ्कुर आना—॥१२८॥

कूपोद्वर्त्तनवैकृत्यं रसनं दारणं क्षितेः।
नदोदपानसरसां विद्युच्चोत्तरणं प्लवः॥१२९॥

कुएं के जल में उछाल, रस पदार्थों में बदलाव, शब्द होना या फटना, सरोवर, नदी, नालों के जल में वृद्धि, बिजली तथा जल का आधिक्य—॥१२९॥

शरणं चाद्रिगेहानां वर्षासु न भयावहम्।
दिव्यस्त्रीभूतगन्धर्वविमानाद्भुतदर्शनम्॥१३०॥

घरों और पर्वतों का चलायमान होना वर्षाऋतु में भयप्रद नहीं होता अर्थात् शुभ होता है। दिव्यस्त्री, प्राणी, देवविमान, आश्चर्य करने वाली चीजों का दर्शन—॥१३०॥

**ग्रहनक्षत्रताराणां दर्शनं तु दिवाम्बरे।**
**गीतवादित्रनिर्घोषवनोपवनसानुषु॥१३१॥**

ग्रह नक्षत्र तारादि का दिन में आकाश में दर्शन, वन, उपवन तथा पर्वतों की चोटी पर गीत-वाद्यादि ध्वनि होना—॥१३१॥

**सस्यवृद्धिरपांहानिरपापाः शरदि स्मृताः।**
**शीतानिलतुषारत्वनर्त्तनं मृगपक्षिणाम्॥१३२॥**

फसलों की वृद्धि तथा जल की हानि ये सभी शरद्ऋतु में अपाप अर्थात् शुभ होते हैं। शीत तथा बर्फीली वायु से ठण्डापन, मृग् तथा पक्षियों का नाच—॥१३२॥

**रक्षोयक्षादिसत्वानां दर्शनं वागमानुषी।**
**दिशो धूमान्धकारश्च सनभो वनपर्वताः॥१३३॥**

राक्षस, यक्ष इत्यादि का दर्शन, मनुष्य की वाणी कृपा, दिशाओं में घना अन्धकार युक्त धुआँ, आकाश, वन, पर्वत—॥१३३॥

**उच्चैः सूर्योदयास्तौ च हेमन्ते शोभनाःस्मृताः।**
**हिमपातानिलोत्पातविरूपाद्भुतदर्शनम्॥१३४॥**

इत्यादि ऊँचे स्थान में सूर्योदयास्त होना हेमन्त ऋतु में शुभ कहे हैं। हिमपात, वायु सम्बन्धी उत्पात, आश्चर्य चकित करने वाले प्राणियों के दर्शन—॥१३४॥

**कृष्णाञ्जन समाकाशं तारोल्कापातपिंजरम्।**
**चित्रगर्भोद्भवः स्त्रीषु गजाश्वमृगपक्षिषु॥१३५॥**

काले सुरमे की भाँति आकाश, तारा उत्पात, उल्कापात, आकाश का खाकी भूरा रङ्ग, स्त्रियों के गर्भों से विचित्र उत्पत्ति, गज, घोड़ा, मृग् पक्षियों—॥१३५॥

**पत्राङ्कुरलतानां च विकाराः शिशिरे शुभाः।**
**उत्पातनखिलानुक्त्वा काकसङ्गममुच्यते॥१३६॥**

पत्रलताङ्कुरों में विकार दिखाई देना ये सभी शिशिर ऋतु में शुभ कहे हैं। समस्त उत्पातों को कहकर अब काक मैथुन को कहते हैं॥१३६॥

### काकमैथुनविचार एवं शान्तिविधानम्

**काकयोर्मैथुनं सर्वं दिवा वा निशि वा नरः।**
**स वै निधनमाप्नोति स्थाननाशमथापि वा॥१३७॥**

कौवों का मैथुन दिन में या रात्रि में किसी भी दिशा में मनुष्य देखे तो वह मृत्यु को प्राप्त करता है अथवा स्थान से च्युत हो जाता है॥१३७॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम्।
स नरो मृत्युमाप्नोति यदि वा स्थाननाशनम्॥

काकघातव्रतं चैव विदधीताथवत्सरम्।
पितृदेवद्विजान्भक्त्या प्रत्यहं चाभिवादनम्।।
जितेन्द्रियः शुद्धमनाः सत्यधर्म परायणः।
तद्दोष शमनायेत्थं शान्तिकर्म समाचरेत्।।
—(क. सं. अ. ३८, श्लोक ३-४)

**महारोगाभितप्तो वा शत्रुभिर्वा पराजितः।**
**तद्दोषशमनार्थाय शान्तिं यत्नात्समाचरेत्।।१३८।।**

बहुत बड़े रोग से पीड़ित या शत्रुओं के द्वारा पराजित होता है। काक मैथुन देखने का दोष दूर करने के लिए प्रयत्नपूर्वक शान्तिकर्म का आचरण करना चाहिए।।१३८।।

**काकमैथुनोत्पातशान्ति विधानम्**

**क्रमागतः—**

**कश्यपः—**

दिवा वा यदि वा रात्रौ यः पश्येत्काकमैथुनम्।
स नरो मृत्युमाप्नोति ह्यथवा स्थाननाशनम्।।
अकाकपातव्रतं यद् विदधीतार्धवत्सरम्।
पितृदेवद्विजान्भक्त्या प्रत्यहं तर्पयेत्ततः।।
जितेन्द्रियः शुद्धमनाः सत्यधर्मपरायणः।
तद्दोष शमनार्थाय तदा शान्तिं समाचरेत्।।
—(क. सं. अ. ४४, श्लोक २-४)

**कश्यपः—**

गृहस्येशान भागे तु होमं स्थानं प्रकल्पयेत्।
कुण्डंहस्त प्रमाणेन चतुरस्त्रं समन्ततः।।
सर्वं त्रिमेखलं कुण्डरवातं स चतुरङ्गुलम्।
हस्तं विप्रस्य शेषानामेकैकङ्गुलहीनतः।।
अष्टाङ्गुलोच्छ्रितो वप्रश्चतुरङ्गुलविस्तृतः।
चतुरङ्गुल विस्तीर्णा मेखलायोच्छ्रिता ततः।।
द्वादशाङ्गुलदैर्घ्येणयोनिः पश्चिमभागतः।
गजोष्ठाकार सदृशी विस्तीर्णा सा षड्ङ्गुला।।
शान्तिकर्मणि सर्वत्र कुण्डमेवं प्रकल्पयेत्।
ब्राह्मणान् वृणुयात्कर्ता स्वस्तिवाचनपूर्वकम्।।
ते षोडशद्वादशाष्टावपि वा वेदपारगाः।
तेषां मध्ये विशिष्टो यस्तमाचार्यं नियोजयेत्।।

गाणपत्यं च सावित्रं क्षैत्रं दुर्गाजपं च यत्।
रुद्रंश्रीसूक्ताख्य जपन् कुर्युर्द्विजोत्तमैः।।
स्वगृह्योक्त विधानेन प्रतिष्ठाप्य हुताशनम्।
मुखान्ते समिदाज्यान्नैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।।
यत इन्द्रःस्वस्तिदा च त्रियम्बकमिति त्रिभिः।
मन्त्रैः क्रमाच्च जुहुयादाचार्यो वाग्यतः शुचिः।।
तिलव्रीहि व्याहृतिभिः कर्त्ता पूर्णाहुतिं हुनेत।
तत्तत्पुण्यफलं तेभ्यो गृहीत्वा प्रार्थयेदिति।।
अनेनकृतेनैव दोषः शाम्यतु शीघ्रतः।
हेमशृङ्गी रौप्यखुरी कृष्णां धेनुं पयस्विनीम्।।
वस्त्रालङ्कारसंयुक्तां निष्कत्रयसमन्विताम्।
दोषापनुत्तयेदद्यादाचार्याय कुटुम्बिने।
वित्तोद्देशानुसारेण तन्न्यूनाधिक्य कल्पना।।
ब्राह्मणे जापको यश्च दद्यात् वित्तानुसारतः।
एवं यः कुरूते भक्त्या स तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।।
(इति काकसंभोगे क्षणोत्पात शान्ति विधानम्।।)

—(क. सं. अ. ४४, श्लोक )

**कुण्डं पूर्वोक्त विधिना कृत्वा होमं च कारयेत्।**
**यत इन्द्रं त्रिभिर्मन्त्रैः सम्यक् त्रैयम्बकेन वा।।१३९।।**

पूर्वोक्त विधि से कुण्डन स्थापना करके हवन करना चाहिए। जो इन्द्र का (यतइन्द्रं) तीन मन्त्रों के द्वारा अथवा भलीभाँति त्र्यम्बक मन्त्र (महामृत्युञ्जय) के द्वारा— ।।१३९।।

क्रमागतः–
नारदः–

गृहस्येशानकोणे तु होमस्थानं प्रकल्पयेत्।
स्वगृह्योक्तविधानेन तत्र स्थाप्यं हुताशनम्।।
मुखान्ते समिदाज्यान्नैर्होमशचाऽष्टोत्तरं शतम्।
प्रतिमन्त्रं त्र्यम्बकेन चाथ मृत्युञ्जयेन वा।।
व्याहृतिभिर्व्रिहि तिलैर्जपाद्यन्तं प्रकल्पयेत।
पूर्णाहुतिं च जुहुयात्कर्त्ता शुचिरलंकृतः।।

*—(ना. सं. अ. ३८, श्लोक ६-७)*

**पालाशसमिदाज्यान्नैः पृथगष्टोत्तरं शतम्।**
**एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।।१४०।।**

पलाश समिधा, घी, अन्न के द्वारा अलग-अलग १०८ मन्त्रों से सम्यक् रीति से हवन करता है, वह समस्त दोषों से मुक्त हो जाता है॥१४०॥

क्रमागतः—

नारदः—

स्वर्णशृङ्गीं रौप्यखुरीं कृष्णां धेनुं पयस्विनीम्।
वस्त्रालंकारसहितां निष्कद्वादश संयुताम्॥
तदर्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धेनाथवा पुनः।
यथा वित्तानुसारेण तन्यूनाधिककल्पना॥
आचार्याय श्रोत्रियाय गां च दद्यात्कटुम्बिने।
ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो यथाशक्ति च दक्षिणाम्॥
ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात् स्वस्तिवाचन पूर्वकम्।
एवं या कुरुते सम्यक् स तद्दोषात्प्रमुच्यते॥

*—(ना. सं. अ. ३८, श्लोक ८-११)*

## शिथिली विचार

**शिथिलीजायते यस्य तस्य हानिर्निवेशने।**
**दुःखशोकभयक्लेशं कुटुम्बकलहो भवेत्॥१४१॥**

गृह प्रवेशादि समय पर जिसे कमजोरी या सुस्ती अनुभव हो, उसे हानि, दुःख, शोक, भय, क्लेश तथा परिवार में कलह होती है॥१४१॥

**विशेष : शिथिली (—स्थानच्युति या परिभ्रंश) सुस्ती, ढीलापन**

**वह्निभीतिः शत्रुभीतिराधिव्याधिस्ततो भयम्।**
**तद्दोषशमनार्थाय शान्तिं वक्ष्ये यथाविधि॥१४२॥**

अग्निभय, शत्रुभय, मानसिक रोग तथा शारीरिक रोग से भय होता है। इन सभी दोषों के शमनार्थ यथाविधि शान्तिकर्म कहते हैं॥१४२॥

क्रमागतः—

नारदः—

शिथिलीजननं ग्रामे सेतौ वा देवतालये।
तत्फलं ग्रामपस्यैव सीम्नि सीमाधिपस्य च॥
शिथिली जनने हानिः सर्वस्थानेषु दिक्षु च।
तद्दोषशमनायैव शान्तिकर्म समाचरेत्॥

*—(ना. सं. अ. ४१, श्लोक २-३)*

**सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः।**
**प्रतिमां मृत्युरूपाणां कल्पयित्वा प्रयत्नतः॥१४३॥**

स्वर्ण के प्रमाण से, उसके आधे, पुनः आधे स्वर्ण से मृत्युरूपी मूर्ति प्रयत्नपूर्वक कल्पित करके—॥१४३॥

क्रमागतः-

नारदः-

स्वर्णेन मृत्युप्रतिमां कृत्वा वित्तानुसारतः।
रक्तवर्णं चर्मदण्डधरं महिषवाहनम्॥
नववस्त्रं च संवेष्ट्य तुण्डुलोपरि पूजयेत्।
तल्लिङ्गेन च मन्त्रेण नैवेद्यं तु यथाविधि॥
पूर्णकुम्भं तदीशान्यां रक्तवस्त्रेण वेष्टितम्।
पञ्चत्वक्पल्लवैर्युक्तं जलं मन्त्रैः समर्पयेत॥
अग्निसंस्थापनं प्राच्यां स्वगृह्योक्तविधानतः।
प्रत्येकमष्टोत्तरशतमघोरेणैव होमयेत्॥

—*(ना. सं. अ. ४१, श्लोक ४-७)*

**अपमृत्युमपक्षुधामिति मन्त्रद्वयेन च।**
**कृत्वोपचारान्निखिलान् स्नाप्य पञ्चामृतैः सह॥१४४॥**

अपमृत्यु तथा अपक्षुधाम इन दो मन्त्रों के द्वारा सम्पूर्ण सामग्री सहित पञ्चाऽमृत (दूध, दही, घी, मधु, शक्कर) स्नान करवाकर—॥१४४॥

**रक्तप्रावरणं वेष्ट्य नैवेद्यान्तं समर्पयेत्।**
**तदीशान्यां पूर्णकुम्भं पञ्चत्वक्पल्लवैर्युतम्॥१४५॥**

लालवस्त्र (लाल दुपट्टा) लपेटकर अन्त में नैवेद्य समर्पित करें। ईशान कोण में पूर्ण कलश को पञ्चशाल एवं पञ्च पल्लवों से सञ्युक्त करके—॥१४५॥

**अब्लिङ्गैर्वारिमन्त्रैश्च मन्त्रितं वस्त्रवेष्टितम्।**
**स्वर्णरत्नैश्च सञ्युक्तं स्थापयित्वार्चयेत्ततः॥१४६॥**

अब्लिङ्गवारि मन्त्रों से अभिमन्त्रित कर स्वर्ण-रत्नों से सञ्युक्त कलश को वस्त्र से लपेट कर स्थापना करके अर्चना करें॥१४६॥

**होमं च कारयेत्प्राच्यां कुण्डे वा स्थण्डलेऽपि वा।**
**पलाशसमिदाज्यान्नैरुक्तमन्त्रद्वये च॥१४७॥**

पूर्व दिशा में कुण्ड या स्थण्डल में हवन करें। पलाश समिधा, घी, अन्न से उक्त दो मन्त्रों से—॥१४७॥

**भक्त्याष्टशतं जुहुयादष्टाविंशतिमेव वा।**
**तिलहोमं व्याहृतिभिस्ततः पूर्णाहुतिं चरेत्॥१४८॥**

भक्तिपूर्वक १०८ या २८ बार हवन करना चाहिए। व्याहृतियों सहित तिल होम करके पूर्णाहुति करनी चाहिए॥१४८॥

**मृत्युवारुणसूक्तैश्च रुद्रसूक्तैस्त्र्यम्बकैः।**
**कुंभोदकेन वा स्नानमाचार्यः प्रार्थयेत्ततः॥१४९॥**

मृत्यु एवं वारुण सूक्तों, रुद्रसूक्तों तथा त्र्यम्बक मन्त्रों के साथ कलशों के जल से स्नान करके आचार्य को उसके बाद प्रार्थनापूर्वक—॥१४९॥

**आचार्यायैव तां दद्यात्प्रतिमां निष्कविंशतिः।**
**तदर्द्धेन तदर्द्धेन तदर्द्धार्द्धेन वा पुनः॥१५०॥**

आचार्य का ही वही मूर्ति बीस निष्कों सहित, उसका आधा, फिर आधा, फिर आधे से आधा—॥१५०॥

**ब्राह्मणेभ्यो विशिष्टेभ्यो दद्याद्वित्तानुसारतः।**
**ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाच्छान्तिवाचनपूर्वकम्॥१५१॥**

वशिष्ट ब्राह्मणों को धन के अनुसार दान देना चाहिए। उसके बाद शान्तिवाचन पूर्वक ब्राह्मणों को भोजन करवाना चाहिए॥१५१॥

**एवं यः कुरुते सम्यक्तस्माद्दोषान्प्रमुच्यते।**
**उक्ता साधारणी शान्तिर्द्रव्यमन्त्रफलैः सह॥१५२॥**

जो सम्यक् विधान से शान्तिकर्म करवाता है, वह सभी दोषों से मुक्त हो जाता है। द्रव्य, मन्त्र तथा फलों सहित साधारण शान्ति को कहा॥१५२॥

**क्रमागतः—**

**नारदः—**

मन्त्रेण समिदाज्यान्नैः शेषं पूर्ववदाचरेत्।
द्विजाय प्रतिमां दद्यात्सर्वदोषोपनुत्तये॥
जलमन्त्रेण सम्प्रोक्ष्य तत्स्थानं तीर्थवारिभिः।
एवं यः कुरुते सम्यक्सतु दोषात्प्रमुच्यते॥

*—(ना. सं. अ. ४१, श्लोक ८-९)*

**ब्रह्मादि दिक्षु प्रत्येकं द्रव्यमन्त्रफलैः क्रमात्।**
**शिथिली जायते मध्ये सप्ताहाच्च भवेच्छुभम्॥१५३॥**

ब्रह्मादि प्रत्येक दिशाओं (ईशान पूर्व के मध्य से) में क्रमशः द्रव्य, मन्त्र तथा फलों सहित कमजोरी आए तो सप्ताह के मध्य में शुभ होता है॥१५३॥

**अतः ऊर्ध्वं व्याधिभयं ब्रह्मा तत्राधिदेवता।**
**तन्मन्त्रेणैव जुहुयात्पलाशान्नेन सर्पिषा॥१५४॥**

इससे ऊपर शारीरिक कष्ट का भय होता है, उसके अधिदेवता ब्रह्मा हैं। उन्हीं के मन्त्रों के द्वारा पलाश समिधा, अन्न तथा पिघलाए हुए घी के द्वारा हवन करना चाहिए।।१५४।।

### दिशानुसार शिथिली विचार

**शिथिलीजायते प्राच्यां भयं स्यादष्ट वासरात्।**
**अत ऊर्ध्वं राजभयमिन्द्रस्तत्राधिदेवता।।१५५।।**

पूर्व दिशा में कमजोरी या सुस्ती अनुभव हो तो आठ दिनों में भय होता है इसके ऊपर राजभय होता है इसके अधिदेवता इन्द्र हैं।।१५५।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

प्राच्यामष्टदिनाल्लाभः पश्चाद्व्याधिस्तु तत्परे।
आग्नेय्या त्रिदिनाल्लाभः पश्चात्तस्करतो भयम्।।
याम्येऽष्टाहादिष्ट सिद्धिः ततः पत्नी विनाशनम्।
पंचाहानिनिरूतावर्थलाभः पश्चान्महारूजः।।
सप्ताहात्पश्चिमेधान्यलाभोऽथ नृपतेर्भयम्।
वायव्ये प्रीतिरष्टाहात्परतः पशुनाशनम्।।
सौम्ये त्रिरात्रतः शत्रुहानिः पश्चाद्धनक्षयः।
पंचहात्प्रीतिरीशाने परतः शुभनाशनम्।।
द्वारे विनाशः स्त्रीहानि पश्चात्तत्पशुनाशनम्।
प्रीतिस्त्रिरात्रातुर्यस्थानात्पत्नी विनाशनम्।।

*—(क. सं. अ. ४६, श्लोक १-६)*

**जुहुयात्खदिराज्यान्नं तन्मन्त्रेण च भक्तितः।**
**अग्निभागे यदि भवेत्पञ्चाहात्सुहृदागमः।।१५६।।**

उनके मन्त्रों के द्वारा भक्तिपूर्वक खदिर (खैर) समिधाओं से होम करना चाहिए। अग्निभाग अर्थात् पूर्वदक्षिण कोग में पाँच दिवसात्मक हो तो मित्र का आगमन होता है।।१५६।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

पशु स्थाने पशोर्हानिर्दासीनाशोऽम्बुभाण्डके।
सौवीरभाण्डे स्त्रीनाशस्त्वन्नभाण्डे तु हृन्मृतिः।।
कुकुम्बहा निस्तैलाज्यमध्वादीनां घटेषु च।
सेतौ देवालये विंद्याद् ग्राममध्ये च सीमनि।।

शिथिली जनने राज्यनाशो वा ग्रामनाशनम्।
तद्दोषशमनार्थाय शान्तिं कुर्यात्प्रयत्नतः।।
तद्रूपाणि सुवर्णेन कुर्याद्वित्तानुसारतः।
मृत्युमावाहयेत्तेषु रक्तमाल्याम्बरादिभिः।।

*—(क. सं. अ. ४६, श्लोक ७-१०)*

**अत ऊर्ध्वं सर्पभयमग्निस्तत्राधिदेवता।**
**औदुम्बराज्यचरुभिर्जुहुयादग्निमन्त्रतः।।१५७।।**

इसके ऊपर साँप का भय होता है। इसके अधिदेवता अग्निदेव हैं। उदुम्बर (रूम्बल) समिधा, घी और चरु के साथ अग्निमन्त्रों से हवन करना चाहिए।।१५७।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

अपमृत्युमितिद्वाभ्यां मन्त्राभ्यां शक्तितोऽर्चयेत्।
पश्चिमे पूर्णकुम्भस्यात्तल्लिङ्गैर्मन्त्रता वा।।
पञ्चत्वक् पल्लवोपेतं जलमन्त्रैः समर्चितम्।
तदीशान्यां स्थण्डिलेऽग्निं स्थापयेद् गृह्यमार्गतः।।
तद्दिक्योदित समिदा आज्यान्नैर्जुहुयात्पृथक्।
अष्टोत्तरशतं तद् दिङ्मन्त्रेनैवस्वभक्तितः।।
पलाशाश्वत्थखदिरास्त्वर्काः प्लक्षा ह्युदुम्बराः।
अपामार्गवटीविल्वाः समिधः मध्यतः क्रमात्।।
स्थानेष्वन्येषु सर्वेषु पलाशसमिधः स्मृताः।
नमोभिर्ब्राह्मणे यत् वद्धवाग्निं दूत त्र्यम्बकैः।।

*—(क. सं. अ. ४६, श्लोक ११-१५)*

**शिथिलीजायते याम्यामिष्टसिद्धिस्त्रिवासरात्।**
**भार्यानाशस्ततश्चोर्द्ध्वं यमस्तत्राधिदेवता।।१५८।।**

दक्षिण दिशा में शिथिली हो तो तीन दिन में मनोभिलिषित कार्य सिद्धि होती है। इसके ऊपर पत्नी का नाश होता है इसके अधिदेवता यमराज हैं।।१५८।।

**क्रमागतः–**

**कश्यपः–**

मानस्तोकेगणानान्तवा वायो ये सोमन्त्रकैः।
क्रमादघोरमन्त्रेण तत्पुरुषाय मन्त्रतः।।
तिलव्रीहि व्याहृतभिर्यजतां शान्तिवाचनम्।
कृत्वा कुम्भोदकेनाथ तत्स्थानं प्रोक्षयेत्ततः।।

मृत्युरूपं ततो दद्यादाचार्याय सदक्षिणम्।
शक्तितोदक्षिणां दद्याद् ब्राह्मणेभ्यः सभोजनम्।
एवं यः कुरुते सम्यक् तस्माद् दोषात्प्रमुच्यते।।
—(क. सं. अ. ४६, श्लोक १६-१८)

**घृतान्नप्लक्षसमिधयाम्यमन्त्रेण भक्तितः।**
**नैर्ऋत्यां वा यदि भवेद् धान्यलाभोऽष्टवासरात्।।१५९।।**

घी, अन्न तथा पलाश समिधाओं से भक्तिपूर्वक याम्य मन्त्र द्वारा पूजा करनी चाहिए। यदि नैर्ऋत्य (दक्षिण-पश्चिमकोण) में शिथिली हो तो आठ दिनों में धान्यादि लाभ होता है।।१५९।।

**अत ऊर्ध्वं चौरभयं जलेशस्तत्र देवता।**
**वटाज्यान्नेन जुहुयादृचा वरुणसंज्ञया।।१६०।।**

इसके ऊपर चोरभय होता है। इसके अधिदेवता वरुण हैं। वट समिधा, घी तथा अन्न से वरुण संज्ञक मन्त्रों के द्वारा होम करना चाहिए।।१६०।।

**शिथिली जायते वायौ पशुनाशस्त्रिवासरात्।**
**अत ऊर्ध्वं शत्रुभयं वायुस्तत्राधिदेवता।।१६१।।**

शिथिली यदि वायव्य (पश्चिम-उत्तरकोण) कोण में उत्पन्न हो तो तीन दिनों में पशु हानि होती है। इसके ऊपर शत्रु का भय, इसके अधिदेवता वायुदेव हैं।।१६१।।

**अपामार्गाज्यचरुभिः स्वयं वा जुहुयात्ततः।**
**शिथिली जायते सौम्ये स्वर्णलाभोऽष्टवासरात्।।१६२।।**

अपामार्ग (पुटखण्डा) घी तथा चरू से स्वयं होम करना चाहिए। उत्तर दिशा में शिथिली हो तो आठ दिनों में स्वर्णलाभ होता है।।१६२।।

**कुटुम्ब कलहः पश्चात्कुबेरस्तत्र देवता।**
**अश्वत्थसमिदाज्यान्नैः सौम्यमन्त्रेण भक्तितः।।१६३।।**

इसके पश्चात् पारिवारिक कलह होती है। इसके अधिदेवता कुबेर हैं। पीपल समिधा, घी तथा अन्न से भक्तिपूर्वक सौम्य मन्त्रों से होम करना चाहिए।।१६३।।

**शिथिली जायते रौद्रे स्वर्णलाभोऽष्टवासरात्।**
**अत ऊर्ध्वं तु निधनं रुद्रस्तत्राधिदेवता।।१६४।।**

यदि शिथिली रौद्र (ईशानकोण) दिशा में उत्पन्न हो तो आठ दिनों में स्वर्ण लाभ होता है इसके ऊपर मृत्यु होती है इसके अधिदेवता रुद्रदेव हैं।।१६४।।

**आज्यान्नार्कसमिद्भिश्च जुहुयात्तु तयो ऋचा।**
**देवहोमस्नानकूपभुजिस्थाने च तन्मृतिः।।१६५।।**

घी, अन्न तथा अर्क समिधाओं से रुद्र मन्त्रों व ऋचाओं से होम करना चाहिए। देव होम, कूप स्नान और भोजन स्थान पर शिथिली हो जाए तो मृत्यु होती है॥१६५॥

**अन्नभाण्डे चान्नहानिः स्नेहभाण्डे प्रजाक्षयः।**
**सर्वे च जलभाण्डे च पत्नीनाशस्तथा भवेत्॥१६६॥**

अन्न के बरतन में शिथिली हो तो अन्न हानि, तरल पदार्थ वाले बरतन में होने से सन्तान हानि, जलभाण्डों में होने पर पत्नी विनाश होता है॥१६६॥

**शयने कर्तृनिधनं कुण्डोपरि धनक्षयः।**
**आलवालं पटुस्थाने नृपाद्भवति वैभयम्॥१६७॥**

शयन में शिथिली होने पर कर्त्ता की मृत्यु, कुण्ड के ऊपर हो तो धन का क्षय, वृक्ष के नीचे पानी भरने के स्थान और सक्रिय व्यस्त स्थान पर हो तो राजा से निश्चित ही भय होता है॥१६७॥

**उलूखलेकुसूले च द्वारदेशे महारुजा।**
**प्राकारे प्राङ्गणेऽलिन्दे क्रीडास्थाने तनुक्षयः॥१६८॥**

ओखली, अन्नागार तथा दरवाजे पर शिथिली हो तो महाभयङ्कर रोग होता है। महल में, आङ्गन या बरामदे में या खेल के स्थान पर शिथिली हो तो शरीर में कमजोरी होती है॥१६८॥

**गवां स्थानेषु गोहानिःपशुस्थाने पशुक्षयः।**
**दधिभाण्डेषु तन्नाशः क्षीरभाण्डे शिशुक्षयः॥१६९॥**

गाय के स्थान पर गाय की हानि, पशुस्थान में पशुहानि, दही के बरतन में दही नाश, दुग्ध भाण्ड में छोटे बालक का क्षय होता है॥१६९॥

**आज्यभाण्डेऽन्नभीतिः स्यान्मधुभाण्डे तपःक्षयः।**
**सौवीरपक्वभाण्डे च लवणे कलहागमः॥१७०॥**

घी के भाण्ड में अन्न का भय, मधुभाण्ड में तप का क्षय, वेर फल के समीप पकवान के भाण्ड में और नमक के बरतन में होने पर झगड़ा हाता है॥१७०॥

**पेटिकायां वस्त्रहानिस्तरुपीठे रिपोर्भयम्।**
**गृहोपकरणे स्थाने क्षिप्रं तस्करतो भयम्॥१७१॥**

पेटिका (टरण्क) में होने से वस्त्र की हानि, वृक्षसमूह में हो तो शत्रु का भय, गृह सामग्री के स्थान पर हो तो शीघ्र ही चोरों से भय होता है॥१७१॥

**शाकिन्यारामखलपू सस्यक्षेत्रे फलक्षयः।**
**पुरीषमन्दिरे गोष्ठे वृषचिकित्सारूजां भवेत्॥१७२॥**

शाक वाले खेत में, बगीचे, खलिहान, धान वाले खेत में, होने पर फल का नाश, गोबर का स्थान अथवा शौचालय में, गौ शाला में, बैल के स्थान में शिथिली हो तो अचिकित्सा एवं रोग होता है॥१७२॥

**तुल्यस्थानानि सर्वेषामुक्तराज्ञां च कथ्यते।**
**शिथिलीजायते यत्र ग्रामे जनपदे पुरे॥१७३॥**

राजाओं के लिए सभी समान स्थानों में कहा गया है। शिथिली जिस गाँव, जनपद या नगर में—॥१७३॥

**चैत्ये देवालये सेतौ विपिने पर्वतेषु च।**
**नदीतीरे जले चाथ क्षुद्रदेवगृहेषु च॥१७४॥**

धर्मशाला, देवालय, पुल, जङ्गल, पर्वत, नदी कनारे, जल में, छोटे देव घरों में—॥१७४॥

**अश्वालये गजगृहे खरोष्ट्रमृगपक्षिणाम्।**
**विद्यालये शस्त्रगृहे राज्योपकरणालये॥१७५॥**

घुड़साल में, हाथी के स्थान में, गदहा, ऊँट, हरिण, पक्षियों के स्थान में, विद्यालय में, शस्त्रगृह में, राजा की सामग्रियों के स्थान में—॥१७५॥

**दासीदासगृहाद्येषु तत्तद्वर्गविनाशनम्।**
**साधारणेन शान्त्यैव एते दोषालयं ययुः॥**
**"तस्माच्छान्तिश्च कर्त्तव्या द्विजभोजनपूर्वकम्"॥१७६॥**

दासी-दासों के घर में, शिथिली हो तो उन-उन वर्गों का नाश होता है। इन स्थानों पर सामान्य शान्तिविधान से सभी दोष नष्ट हो जाते हैं; इसलिए ब्राह्मण भोजनपूर्वक शान्ति करनी चाहिए॥१७६॥

**कुड्याङ्गे मस्तकाद्यङ्गे पतिते फलमुच्यते।**
**मस्तके राज्यनाशः स्याद्भाले कर्णे च भूषणम्॥१७७॥**

अब पल्ली पतन फल कहते हैं! शारीरिक अङ्गों पर गिरने, माथे आदि के पल्ली गिरने के फल कहते हैं। पल्ली यदि मस्तक पर गिरे तो राज्यनाश, माथे तथा कान पर गिरने से आभूषण प्राप्ति—॥१७७॥

**क्रमागतः-**

**नारदः-**

**पल्लयाः प्रपतने पूर्वं फलमुक्तं शुभाशुभम्।**
**शीर्षे राज्यश्रियोऽवाप्तिर्मौलौत्वैश्‍र्यवर्धनम्॥**
**पल्लयाः प्रपतने चैव सरटस्य प्ररोहणे।**
**शुभाशुभं विजानीयात्तत्तत्स्थाने विशेषतः॥**

सव्ये भुजे जयः प्रोक्तो ह्यपसव्ये महद्भयम्।
कुक्षौ दक्षिणभागस्य धनलाभस्तथैव च॥

—*(ना. सं. अ. ३९, श्लोक १-३)*

**वक्षःस्थले तु सौभाग्यं हृदि प्रीतिविवर्द्धनम्।**
**पुत्रलाभस्तु कुक्षौ स्यान्नाभौ कीर्तिविवर्द्धनम्॥१७८॥**

छाती पर गिरे तो सौभाग्य, हृदय पर गिरे तो पति-पत्नी में परस्पर प्रीति की वृद्धि, कोख पर गिरे तो पुत्र लाभ, नाभि पर गिरे तो यश की वृद्धि होती है॥१७८॥

क्रमागतः-

नारदः-

वामकुक्षौ तु निधनं गदितं पूर्वसूरिभिः।
सव्यहस्ते मित्रलाभो वामहस्ते तु निःस्वता॥
उदरे सव्यभागे तु सुपुत्रावाप्तिरूच्यते।
वामभागे महारोगः कट्यां सव्ये महद्यशः॥
वामकट्यां तु निधनं मुनिभिस्तत्त्वदर्शिभिः।
जान्वोरेवं विजानीयात्सव्यपादे शुभावहम्॥
वामपादे तु गमनमिति प्राहुर्महर्षयः।
स्त्रीणां तु सरटश्चैव व्यस्तमेतत्फलं वदेत्॥

—*(ना. सं. अ. ३९, श्लोक ४-७)*

**नेत्रयोर्मित्रलाभः स्यात्सुगन्धं नासिकोपरि।**
**वक्त्रे तु भोजनं कण्ठे स्त्रीलाभः स्कन्धयोर्जयः॥१७९॥**

दोनों नेत्रों पर गिरे तो मित्र का लाभ, नाक पर गिरे तो सुगन्ध प्राप्ति, मुख पर गिरे तो भोजन प्राप्ति, गले पर गिरे तो स्त्रीलाभ, कन्धों पर गिरे तो जय प्राप्ति—॥१७९॥

क्रमागतः-

नारदः-

फल प्ररोहणे चैव सरटस्य प्रचारतः।
सर्वाङ्गेषु शुभम् विद्याच्छान्तिं कुर्यात्स्वशक्तितः॥
शुभस्थाने शुभावाप्तिरशुभे दोषशान्तये।
तत्स्वरूपं सुवर्णेन रुद्ररूपं तथैव च॥
मृत्युञ्जयेन मन्त्रेण वस्त्रादिभिरथार्चयेत्।
अग्निं तत्र प्रतिष्ठाप्य जुहुयात्तिलपायसैः॥

—*(ना. सं. अ. ३९, श्लोक ८-१०)*

हस्ते तेजोविवृद्धिः स्यादर्थवृद्धिः करद्वयोः।
अर्थलाभस्तु पृष्ठे स्यात्पार्श्वयोः सुहृदागमः॥१८०॥

हाथ पर गिरे तो तेज में वृद्धि, दोनों हाथों पर गिरे तो धन की वृद्धि, पीठ पर गिरे तो धन लाभ तथा बगल में गिरे तो मित्र का आगमन—॥१८०॥

क्रमागतः–

नारदः–

आचार्यो वारुणैः सूक्तैः कुर्यात्तत्राभिषेचनम्।
आज्यावलोकनं कृत्वा शक्त्या ब्राह्मणभोजनम्॥
गणेशक्षेत्रपालार्कदुर्गाक्षोण्यंगदेवताः ।
तासां प्रीत्यै जपः कार्यः शेषं पूर्ववदाचरेत्॥
ऋत्विग्भ्योदक्षिणां दद्यात्षोडशभ्यः स्वशक्तितः॥

—*(ना. सं. अ. ३९, श्लोक ११-१२)*

कटिस्थाने वस्त्रलाभो गुह्यस्थाने समागमः।
गुदे रोगविनाशः स्यादुरुजान्वोश्च वाहनम्॥१८१॥

कमर पर गिरे तो वस्त्रलाभ, गुह्य स्थान में गिरे तो समागम, गुदा पर रोग नाश, घुटने पर, ऊरु स्थल पर गिरे तो वाहन प्राप्ति—॥१८१॥

जङ्घयोः पादयोश्चैव सदा गमनमादिशेत्।
पादयोश्चोर्द्धगमनं कुर्यादामस्तकाद्यदि॥१८२॥

दोनों जांघों पर या दोनों पैरों पर गिरे तो सदैव यात्रा होगी ऐसा कहना चाहिय। दोनों पैरों के ऊपरी भाग में गिरे तो यात्रा, मस्तक तक जाये तो—॥१८२॥

गात्रप्रदक्षिणं वापि राज्यलाभो भवेत्तदा।
मस्तकात्पादपर्यन्तं यदि गच्छेत्तु कुड्यतः॥१८३॥

शरीर की परिक्रमा करे राज्य का लाभ होता है। मस्तक से पाद पर्यन्त जाती हुई पल्ली दीवार पर जाये तो—॥१८३॥

गात्रप्रदक्षिणं वापि हानिशोकं समादिशेत्।
सरटीपतने हानिः सर्वाङ्गेषु च सर्वदा॥१८४॥

शरीर प्रदक्षिणा करे तो हानि-शोक होगा ऐसा कहना चाहए। छिपकली के सभी अङ्गों पर गिरने से सर्वदा हानि ही होती है॥१८४॥

ऊर्ध्वङ्गच्छेत्तथा वापि कुटुम्बकलहागमः।
सरटीपतनादेध सचैलः स्नानमाचरेत्॥१८५॥

यदि ऊपर के अङ्गों की ओर जाये तो परिवार में कलह होती है। पल्ली पतन हो जाये तो पहने हुए वस्त्रों सहित स्नान करना चाहिए॥१८५॥

**व्याधिर्लक्ष्मीवह्निभयं बन्धुनाशधनक्षयः।**
**महद्यशः सुहृद्लाभः पुत्रहानिः क्षमाक्षयः॥१८६॥**

शारीरिक कष्ट, लक्ष्मी एवं अग्निभय, बन्धुनाश, धनक्षय, बड़ा यश, मित्र का लाभ, पुत्र की हानि तथा भूमि का क्षय होता है॥१८६॥

**मस्तके चेन्द्रलुप्ते तु ब्रह्मस्थानादि तत्फलम्।**
**मस्तके त्वग्निदाहः स्यान्मलप्रस्त्रवदूषिते॥१८७॥**

मस्तक से ब्रह्म स्थान तक यदि गिरे तो यही फल होता है, मस्तक पर अग्निदाह तथा प्रदूषित मल स्राव होता है॥१८७॥

**काकश्येनादिनिहते शुष्कनिष्ठीवदूषिते।**
**विनापि वपनं सम्यक् केशानां शुद्धिरिष्यते॥१८८॥**

बाज के द्वारा कौवें आदि पक्षी के मारे जाने पर सूखे कफ से दूषित होने पर विना मुण्डन करवाये ही बालों की शुद्धि हो जाती है॥१८८॥

**सपञ्चगव्यतैलेनाभ्यङ्गस्नानं समाचरेत्।**
**पश्चात्तुजलसम्पूर्ण नवकुम्भं प्रकल्पयेत्॥१८९॥**

पञ्चगव्य सहित तेल मालिश करके स्नान करना चाहिए और उसके बाद जल से पूर्ण नये कुम्भ की स्थापना करनी चाहिए॥१८९॥

**पञ्चत्वक्पल्लवोपेतं पञ्चामृतसमन्वितम्।**
**अष्टमृत्तिकसद्बीजस्वर्णरत्नसमन्वितम्॥१९०॥**

पञ्चशाल, पञ्चपल्लव से युक्त पञ्चाऽमृत सहित, अष्टमृत्तिका, शतबीज स्वर्ण रत्नादि से युक्त—॥१९०॥

**शतौषधिसमायुक्तं शुक्लवस्त्रसमन्वितम्।**
**अब्लिङ्गैर्वारुणैः सूक्तैर्मन्त्रितं समलङ्कृतम्॥१९१॥**

शतौषधी से युक्त, सफेद वस्त्र सहित अब्लिङ्गवारुण सूक्त से अभिमन्त्रित एवं अलङ्कृत—॥१९१॥

**धान्योपरि सुसंस्थाप्य चोपचारैः समर्चयेत्।**
**स्नात्वा तत्कुम्भतोयेन तिलहोमं समाचरेत्॥१९२॥**

धान्य के ऊपर भलीभाँति स्थापित करके यथोपचार से पूजा करे। उस कलश के जल से स्नान करके तिलहोम करना चाहिए॥१९२॥

**ब्राह्मणाय ततो दद्यात्कुम्भं वस्त्रं सदक्षिणम्।**
**ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चात्तस्माद्दोषात्प्रमुच्यते।।१९३।।**

**इति श्री ब्रह्मर्षिवृद्धवसिष्ठ विरचितायां महासंहितायामुत्पाताध्यायः पञ्चचत्वारिंशः।।४५।।**

ब्राह्मण के लिए कलश, वस्त्र एवं दक्षिणा सहित देना चाहिए और इसके पश्चात् ब्राह्मणों को भोजन करवाये तो समस्त दोषों से विमुक्त हो जाता है।।१९३।।

वृद्धवसिष्ठ संहिता के उत्पाताध्याय की ''नारायणी'' हिन्दी टीका सम्पूर्ण।।४५।।

***

**पाठान्तरम्**

०१. (अ-ब) ज१-पाठोनास्ति
०२. (ब) ज१-प्राजायते (—प्रजापते:)
०३. (अ) ज१-तद्वसा (—तद्वशा:)
(ब) ज१-योरूपिणा: (—घोररूपिण:)
०६. (ब) ज१-भौमउत्पात: (—भौममुत्पातं)
ज१-परिकीर्तित: (—परिकीर्तितम्)
०७. (अ) ज१-भौमांशु (—भौमास्तु)
०८. (अ) ज१-त्वंतरिक्ष (—त्वन्तरिक्षजम्)
०९. (अ) मु. पु. महोपहारादुद्रस्य (—महोपहाराद्रुद्रस्य)
(ब) ज१-श्रीरप्लवं (—क्षीरप्लवं)
१४. (ब) ज१-पुत्र्यसमन्विते (—वप्रत्रयसमन्वितम्)
१५. (अ) ज१-मध्य (—मध्यो)
१७. (ब) मु. पु. त्वेकं (—त्वेवं)
१८. (अ) ज१-वेदिकायां च (—वेदिकाकार्या)
१९. (अ) ज१-सर्वदेवमही (—सर्वदेवमयी)
२१. (ब) ज१-द्वारेपुर्जोपकै (—द्वारे हि जापकै:)
२३. (ब) ज१-तंदित: (—तंद्रिभि:)
२४. (अ) ज१-नैवघातं (—नैवेद्यान्ते)
२६. (ब) ज१-जन्ममलंकारं (—द्विजमलङ्कारं)
२७. (ब) ज१-कामीयोवै (—कामैर्नृपै:)
२८. (ब) ज१-कान्ति (—शान्ति)
३०. (अ) ज१-अर्घा: (—अर्चा:)
(ब) ज१-वेष्टयन्ति (—चेष्टयन्ति)
३१. (ब) ज१-धनादिकानि (—करोदनादि)
३२. (अ) ज१-प्रतिमाशु (—प्रतिमासु)

(ब) ज१-नाथाय (—नाशाय)
३४. (ब) मु. पु. विशाखोक्तं (—विशाखोत्थं)
३५. (अ) ज१-गणोनोत्थं (—गणेशोत्थं)
(अ) मु. पु. व्यासोक्तं (—व्यासोत्थं)
३७. (ब) ज१-शुद्धवासा (—शुद्धमनाः)
३८. (अ) मु. पु. सार्द्ध (—सार्घं)
४१. (ब) ज१-पूर्ववदाचयेत् (—पूर्ववदाचरेत्)
४२. (ब) ज१-त्रिरात्रकं (—पञ्चरात्रकम्)
४३. (ब) मु. पु. ज्याला (—ज्वाला)
व्यष्टयुक्ते (—काष्ठयुक्तो)
४४. (अ) मु.पु. सन्धुक्षतो (—बन्धुक्षतो)
(ब) ज१-मरुद्रजः (—महद्रजः)
४५. (ब) ज१-निःप्रभं (—निष्प्रभः)
४६. (ब) ज१-सपनासन (—श्यनासन)
मृगात्ततः (—नृगात्रतः)
४९. (ब) ज१-भवेत् (—वदेत्)
५३. (ब) ज१-वित्तसाठ (—वित्तशाठ्य)
५४. (ब) ज१-मार्गोभवेयति (—शाखाभङ्गो भवेद्यदि)
५५. (अ) ज१-रणायोगं (—राष्ट्रभङ्गं)
हसने (—हसन्ते) देसनासनं (—देशनाशनम्)
५७. (ब) ज१-सिशुहानि (—शिशुहानिः)
श्रवणे (—स्रवणे)
५८. (अ) ज१-वाहितनाशः (—वाहननाशः)
(ब) ज१-श्रावेनर्घं (—स्रावेऽनर्घभयं)
जलश्रावे (—जलस्रावे)
५९. (अ) ज१-क्षोभध्यापितेयत्र (—क्षौद्रद्रावोभवेद्यत्र)
६०. (अ) ज१-अकस्माद्योणिते (—अकस्माच्छोषिते)
६१. (अ) ज१-चलेवृक्षे (—चलनेवृक्षे)
(ब) ज१-कृत्वाभिलषकं (—कृत्वाभिषेकं)
६३. (ब) ज१-द्वादशकृत्वा (—द्वादशकृत्वो)
नामकं च नामकं (—नमकं चमकं च)
नपेदितः (—भवेदितः)
६४. (ब) ज१-सकृतधृतं (—सकृद्हुतम्)
६५. (ब) ज१-दद्यातछेयं (—दद्याच्छेषं)
६६. (अ) ज१-पश्चात् (—भक्त्या)

(ब) ज१-शान्तिमेव (—शान्तिमेषां)
६८. (अ) ज१-तत्तदशानां (—तत्तदीशानां)
ज१-पुष्पक्लसति (—पुष्पफलेसति)
६९. (अ) ज१-वाच्यं चिरान्नियमेव (—भाव्यमचिरान्नियमेन)
७०. (अ) ज१-भीतिऐरडीमधमथापि (—भीतिरैरण्डाद्यमथापि)
(ब) ज१-चरुणादिभि: (—वरुणादिभि:)
७१. (ब) ज१-पशुनिर्वाण छुचिं (—पशुनिर्वापणाच्छुचि:)
(ब) ज१-सस्यो (—सस्ये)
७२. (ब) ज१-अतिवृष्टा च वृष्टो (—अतिवृष्टावनावृष्टौ)
७३. (अ) ज१-अनृतोचेदोगभयंमनम्रे (—अवृतौचेद्रोगभयमनृते)
७४. (ब) ज१-शतवृष्टि: (—सततंवृष्टि:)
७५. (ब) ज१-मरक: (—मरणं)
स्यादास्य वर्षे (—स्यादस्थिवृष्टौ)
७६. (ब) ज१-क्षौद्रवर्षं (—क्षौद्रवर्षे)
पशुभिर्गद मु. पु. पशुभि:सदा (—पशुभिर्गदा)
(ब) ज१-स्तोघेर्मरुद्भयं—(स्तेयैमहद्भयम्)
७९. (अ) ज१-प्रावदेछन्नुतोभयं (—क्षुद्भयमादिशेत्)
८१. (अ) ज१-वासा (—नासौ)
(ब) ज१-वहनां मु. पु. वाहनी (—वहनं)
८२. (ब) ज१-प्रज्वालाधूम: (—प्रजल्पनं ज्वाला धूम:)
ज१-क्वाथोवरोधनं (—क्वाथोऽप्यरोदनम्)
८३. (ब) ज१-अत्याते (—अखाते)
८४. (अ) ज१-तोयासमे (—तोयाशये)
८६. (ब) ज१-प्रशवे (—प्रसवे)
ज१-वापिनाशनं (—चापिनाशन:)
८७. (अ) ज१-चांडातिजार्यते (—बीजानि जायते)
ज१-न्यांडानि च (—चाण्डजानि च)
८८. (ब) ज१-कुलस्य (—राष्ट्रस्य)
८९. (ब) ज१-षडिर्नृपक्षयय: (—षड्भिर्नृपक्षयम्)
९०. (ब) ज१-उष्टीमहीयौ (—उष्ट्रमहिष्यो)
ज१-चेदयादि, मु. पु. वेत्यादि (—चेत्यादि)
(ब) ज१-वदप्रयतनत: (—वक्ष्ये प्रयत्नत:)
९१. (अ) ज१-स्वाहितार्थिना (—सहितार्थिना)
९४. (अ) ज१-पिषेधत्रा (—पिवेद्यद्वा)
ज१-नद्रानड्हंयदि (—अनड्वाननडुहंप्रति)

९५. (ब) ज१-नमन्ति (—प्रभवन्ति)
(ब) ज१-परवक्रागमे (—परचक्रागमं)
९६. (अ) ज१-धिवासनं मु. पु. दिवाशनं (—विवासनं)
९७. (अ) ज१-शुभोजने (—सुभोजनैः)
९८. (अ) ज१-लोमादनुश्नुते (—लोभादश्नुते)
९९. (अ) ज१-आरोहकं (—आरोहके)
(ब) ज१-चक्राणां (—चक्राणि)
१००. (ब) ज१-क्देन्मसरता (—वदेत्वत्सरतो)
(ब) ज१-नादवजिता (—नादवर्जिते)
१०१. (ब) ज१-निश्वना (—निःस्वनाः)
१०२. (अ) ज१-परैःरविमवस्तत्र्यथवापि (—परैरभिभवस्तत्राप्यथवा)
ज१-महागदा (—महतीगदा)
(ब) ज१-खतनु (—स्वतनुं)
१०३. (अ) ज१-तदाकार (—नादाकारं)
सूर्यानिभं (—शूर्पनिभं)
१०४. (ब) ज१-हसने (—हसिते) शीतले (—शीघ्रतः)
१०५. (अ) ज१-राजनास (—राजनाशः)
ज१-चिकित्सारादा (—चिकित्सो गदो)
(ब) ज१-वाचव्यंसूक्तं (—वायव्येषूत्तमं)
ज१-शक्तुभिर्येत (—सक्तुभिर्यजेत्)
१०६. (अ) ज१-समित्सक्तु (—शमीष्वत्र)
(ब) मु. पु. आरायो (—आवायो)
१०७. (अ) ज१-वहुवस्त्रस्वर्णादातेश्च (—बह्वन्नस्वर्णदानैश्च)
१०८. (अ) ज१-न्याति (—वावन्या)
(ब) ज१-काकाद्या (—काकाश्च)
ज१-कौसिकादयः (—कौशिकादयः)
१०९. (अ) मु. पु. शुगालो (—शृगालो)
(अ) ज१-वसति (—विशति)
(ब) ज१-विक्रोशंति (—चुकोशन्ति)
११०. (ब) ज१-विशदगृहे (—विशद्गृहम्)
११२. (अ) ज१-मधुवाल्मीकजलछत्रांकुर (—मधुवल्मीकजच्छत्रपत्रांकुर)
(ब) ज१-क्तुरनाश (—कर्त्तृनाशो)
११३. (अ) ज१-सर्वाद्रांग (—शवार्द्राङ्गं)
११८. (ब) ज१-स्फोटनं (—आस्फोटनं)
११९. (अ) ज१-सन्ध्याद्वयेनल (—सन्ध्याद्वयेऽनले)

१२०. (अ) ज१-वदाचारं (—वेदाचारं)
(ब) ज१-असाध्वसीलो (—असाधुशीलो)
१२२. (अ) ज१-द्रष्टेषु च (—दृष्टेषु सदनेषु च)
१२३. (अ) ज१-सचीसचीपति (—शचीं शचीपतीं)
ज१-जुहुयाद्भविः (—जुहुयाद्हविः)
१२४. (ब) ज१-निश्चना (—निस्वनाः)
१२५. (ब) ज१-फलोद्गमा (—रसोद्गमाः)
१२६. (अ) ज१-गोपक्षार्क (—पक्षावर्क)
(ब) ज१-वातोल्कापात, मु. पु. तालोब्दापातकलुषं (—वातोल्कापातकलुषं)
ज१-मण्डनं (—मण्डलम्)
१२७. (अ) ज१-धूमरेवनिलाहनं (—समरेष्वनिलाहतम्)
१२८. (अ) मु. पु. ग्रामे (—ग्रीष्मे)
१२९. (अ) ज१-क्षितं (—क्षितेः)
१३०. (अ) ज१-वर्षाशु (—वर्षासु)
१३१. (ब) ज१-वनपर्वत (—वनोपवन)
१३२. (अ) मु. पु. हानिरपायाः (—हानिरपापाः)
ज१-सरदि —(शरदि)
१३५. (अ) ज१-कृशनां जनाममाशां (—कृष्णाञ्जनसमाकाशं)
१४१. (ब) ज१-क्लेस (—क्लेशं)
ज१-कुटंव (—कुटुम्ब)
१४३. (ब) ज१-मृत्युरूपांतो (—मृत्युरूपाणां
१४४. (ब) ज१-पंचामृते (—पञ्चामृतैः)
१४५. (अ) मु. पु. उक्तप्रावरणंवेश्म (—रक्तप्रावरणं वेष्ट्य)
१४६. (अ) ज१-अल्पिंगेर्वारुणोः मंत्रैतं (—अब्लिङ्गैर्वारिमन्त्रैश्च)
१४८. (ब) मु. पु. जपेत् (—चरेत्)
१४९. (अ) प्र. पाठ-रुद्रसूक्तैः (—वारुणसूक्तैश्च)
(अ) ज१-रुद्रंसूक्तस्त्रियम्वकै, मु. पु. ग्रहमन्त्रैस्त्रिपञ्चकैः (—रुद्रसूक्तैस्त्र्यम्बकैः)
१५२. (ब) ज१-साधारणं (—साधारणी)
१५३. (अ) ज१-सहः (—क्रमात्)
१५४. (अ) ज१-अतउर्ध्वे (—अतऊर्ध्वं)
(ब) ज१-सर्पि (—सर्पिषा)
१५७. (ब) ज१-औडुम्बरञ्च (—औदुम्बराज्य)
१५८. (अ) ज१-जनने (—जायते)
१५९. (अ) ज१-समिधो (—समिध)
१६०. (अ) ज१-नैवृत्तिस्तत्र (—जलेशस्तत्र)

१६२. (अ) ज१-स्वल्पा (—स्वयं वा)
१६६. (ब) ज१-सौवीर (—सर्वे च)
१६७. (ब) ज१-पटस्थाने (—पटुस्थाने)
(ब) ज१-नैऋतादभव्यं (—नृपाद्भवर्ति वैभयम्)
१६८. (अ) मु. पु. कुशूले (—कुसूले)
१७०. (ब) ज१-चलत्रांहानमः (—लवणे कलहागमः)
१७१. (ब) ज१-स्फुटिकायां (—पेटिकायां)
ज१-स्तंमपीरियोभयं (—तरूपीठे रिपोर्भयम्)
(ब) ज१-शीघ्रं (—क्षिप्रं)
१७२. (अ) ज१-ससिरयारामुखलकेसस्थक्षेत्रे (—शाकिन्यारामखलपूसस्यक्षेत्रे)
१७४. (ब) ज१-जलेवापि (—जले चाथ)
१७५. (अ) ज१-मृगपक्षिणो (—मृगपक्षिणाम्)
१७७. (अ) ज१-कुड्यमेमस्त कायंगे (—कुड्याङ्गेमस्तकाद्यङ्गे)
(ब) ज१-राज्यलाभः (राज्यनाशः)
१८०. (अ) ज१-अंसे (—हस्ते)
१८१. (ब) ज१-गुदेदेशे विनाश (—गुदे रोग विनाशः)
१८२. (ब) ज१-कुर्यादासस्तकायदि (—कुर्यादामस्तकाद्यदि)
१८३. (अ) मु. पु. प्रक्षिणं (—प्रदक्षिणं)
१८४. (ब) ज१-सरटापतने (—सरटीपतने)
१८५. (अ) मु. पु. ऊर्द्ध (—ऊर्ध्वङ्ग)
(अ) ज१-गछेदधोचापि (गच्छेन्तथा वापि)
(अ) ज१-कुटंवकलहोमया (कुटुम्बकलहागमः)
१८६. (अ) ज१-बन्धुनाशो (—बन्धुनाश)
१८७. (ब) ज१-तुविमलप्रस्व (—स्यान्मलप्रस्रव)
१८८. (अ) ज१-काकस्पर्शवादी (—काकश्येनादि)
ज१-वहूपिते (—वदूषिते)
१९१. (ब) ज१-अल्विगैर्वारुणैः (—अब्लिङ्गैर्वारुणैः)

पुष्पिका : इति श्रीवृद्धवसिष्ठ ब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां नानाविधोत्पाता षट्चत्वारोपरिध्यायः।।४५।।

***

# अथ रोगोत्पत्तिशान्त्यध्यायः

### रोगोत्पत्तिशान्तियोग

**रोगशान्तिं प्रवक्ष्यामि रोगार्त्तानां शरीरिणाम्।**
**बलिपूजाङ्गहोमैश्च जप-ब्राह्मणभोजनैः॥१॥**

### नारायणी टीका

बलि पूजा, पूजा के अङ्ग, होम, जप और ब्राह्मण भोजन इत्यादि उपायों से रोगों द्वारा पीड़ित शरीर वाले मनुष्यों के लिए शान्ति विधान को कहूँगा॥१॥

### नक्षत्राधियपूजनविधान

**यस्मिन्धिष्ण्ये यदा नृणां रोगः सञ्जायते सदा।**
**धिष्ण्यपूजा प्रकर्त्तव्या तदीश्वर सुतुष्टये॥२॥**

मनुष्यों को जिस नक्षत्र में जो रोग उत्पन्न हो, उस नक्षत्र के अधिपति देवता की सन्तुष्टि के लिए उसी नक्षत्र की पूजा करनी चाहिए॥२॥

**सुवर्णेन प्रमाणेन तदर्द्धेन च वा पुनः।**
**धिष्ण्येश प्रतिमां कल्प्य यथा वित्तानुसारतः॥३॥**

सोने के प्रमाण से या फिर उसके आधे भाग से पुनः नक्षत्र के अधिपति देवता की मूर्ति बनवाकर यथाशक्ति अपने वित्त के अनुसार—॥३॥

**ईशान्यामथवा प्राच्यामुदीच्यां दिशि संलिखेत्।**
**तण्डुलोपर्य्यष्टदलं पद्मं गोमयमण्डले॥४॥**

ईशानकोण अथवा पूर्वदिशा में या फिर उत्तर दिशा में गोमयमण्डल में चावलों पर अष्टदल कमल विधिपूर्वक लिखकर—॥४॥

**पञ्चाऽमृतैः सलेहैश्च तत्तन्मन्त्रैः पृथक् पृथक्।**
**स्नाप्य कल्पोक्तमन्त्रेण प्रतिमां स्थापयेत्ततः॥५॥**

पञ्चाऽमृत (दूध, दही, घी, मधु, शक्कर) और भोज्य पदार्थों सहित उन-उन मन्त्रों द्वारा (स्नान सम्बन्धी मन्त्रों द्वारा) मूर्ति को स्नान करवाकर कल्पोक्त मन्त्रों द्वारा मूर्ति स्थापना करें॥५॥

**कर्णिकायां सुसंस्थाप्य धृत्वा देवं समर्चयेत्।**
**तद्वर्णवस्त्रगन्धाद्यैरुक्तधूपोपहारकैः ॥६॥**

अष्टदल कमल की गोलध्रुवी में भलीभाँति स्थापित करके उसी में देवता को

बिठाकर पूजा अर्चना करनी चाहिए। उस देवता के वर्ण, वस्त्र और गन्धादि के द्वारा उपर्युक्त धूपादि उपहारों के द्वारा—॥६॥

**आरक्तवर्णं कुम्भं च पञ्चत्वक्पल्लवैर्युतम्।**
**शुक्लवस्त्रस्वर्ण रत्न शतौषधिसमन्वितम्॥७॥**

लाल वर्णात्मक कलश को पाँच त्वक्, पाँच पल्लवों से युक्त करके सफेद वस्त्र, स्वर्ण रत्न, शतौषधियों से युक्त करके—॥७॥

**मृत्पञ्चगव्यसद्बीजफलक्षौद्रकुशान्वितम् ।**
**देवस्य पूर्वतः स्थाप्य जलमन्त्रैःसमर्चयेत्॥८॥**

मिट्टी (तुलसी मिट्टी), पञ्चगव्य (दूध, दही, घी, गोमूत्र, गोबर), शतबीज (शतावरी), फल-शहद तथा कुशा से परिपूर्ण देवता के सामने स्थापित करके जलमन्त्रों के द्वारा भलीभाँति अर्चना करनी चाहिए॥८॥

**तत्प्राच्यां स्थण्डिले वह्निं विधिवत्स्थापयेत्ततः।**
**मुखान्ते जुहुयादुक्तद्रव्येणाष्टसहस्रकम्॥९॥**

और उसके पूर्व में स्थण्डल में विधिपूर्वक अग्नि स्थापना करके मुखान्त में उक्त कहे गये द्रव्यों से आठ हजार (८०००) मन्त्रों के द्वारा हवन करना चाहिए॥९॥

**तिलहोमव्याहृतिभिरष्टोत्तर सहस्रकम्।**
**पूर्णाहुतिं च जुहुयात्सम्यक् स्नायीत पूर्ववत्॥१०॥**

तिल होम व्याहृतियों के द्वारा १००८ मन्त्रों से होम करके पूर्णाहुति होम भलीभाँति करके पूर्ववत् अवभृथ स्नान करे॥१०॥

**ततः शुद्धोपविष्टस्य रोगिणः प्राङ्मुखस्य च।**
**मन्त्रपूतैः कुम्भजलैरब्लिङ्गैर्वारिमन्त्रकैः॥११॥**

इसके पश्चात् शुद्ध आसन पर बैठकर रोगी को पूर्वाभिमुख करके पवित्र मन्त्रों से कुम्भ के जल के द्वारा अब्लिङ्ग जलमन्त्रों से—॥११॥

**मार्जनं कारयेत्तस्य सम्यक् सङ्कल्पपूर्वकम्।**
**नीराजनं च शुद्धात्मा पूजास्थाने समागतः॥१२॥**

भलीभाँति सङ्कल्पपूर्वक उस रोगी का मार्जन करना चाहिए तत्पश्चात् शुद्धात्मा पूजा-स्थान में आकर आरती करें॥१२॥

**देवं हुताशनं भक्त्या प्रणम्य प्रार्थयेदिति।**
**अमृतोद्भवधिष्ण्येश यतस्त्वं सकारात्मकः॥१३॥**

अग्निदेव को भक्तिपूर्वक प्रणाम करके प्रार्थना करे। आप अमृत से उत्पन्न नक्षत्र के स्वामी हैं; क्योंकि आप तो सकारात्मक हैं॥१३॥

**रोगादस्माच्च मां रक्ष तव वश्याश्च धिष्ण्यपाः।**
**इति प्रार्थ्य ततो दद्यात्प्रतिमां वस्त्रसंयुताम्॥१४॥**

अतः इस रोग से मेरी रक्षा करें; क्योंकि हे नक्षत्राधिप! मैं आपके वश में हूँ ऐसी प्रार्थना करके वस्त्र से संयुक्त पूजित स्वर्णमूर्ति को देना चाहिए॥१४॥

**दक्षिणासहितां भक्त्या आचार्याय कुटुम्बिने।**
**ब्राह्मणेभ्यो यथा शक्त्या ब्राह्मणान्भोजयेत्ततः॥१५॥**

दक्षिणा से सहित पारिवारिक आचार्य को देना चाहिए और ब्राह्मण को यथाशक्ति दक्षिणा देने के पश्चात् भोजन करवाना चाहिए॥१५॥

**कृत्वा नक्षत्र पूजां च तिथिवासरयोरपि।**
**सर्वान्कामानवाप्नोति रोगी रोगात्प्रमुच्यते॥१६॥**

तिथि-वार तथा नक्षत्रादि की पूजा करने से रोगी की सभी कामनायें पूरी होती हैं तथा रोग से मुक्ति भी मिलती है॥१६॥

### अश्विनी नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**अश्विन्यामुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुच्यते।**
**देवस्यत्वेति मन्त्रेण गायत्री कश्यपोऽश्विनौ॥१७॥**

अश्विनी नक्षत्र में उत्पन्न रोग नौ रात्रियों के बाद छूटता है! **''देवस्यत्वा''** मन्त्र के द्वारा गायत्री, कश्यप और दोनों अश्विनी कुमारों की—॥१७॥

**श्वेतवर्णौ सुधापूर्णौ कुम्भाम्भोजधरौ पृथक्।**
**चन्दनोत्पलपुष्पाज्यगुग्गुलू च गुडप्रियौ॥१८॥**

सफेद रंग वाले अमृत से परिपूर्ण अलग-अलग कलश और कमलपुष्प को धारण किये हुए चन्दन, कमलपुष्प, घी, गुग्गुल और गुड़ को चाहने वाले—॥१८॥

**क्षीरलड्डूकभोक्तारौ समिधः क्षीरवृक्षजाः।**
**गुडोदनबलिं दद्याद्दीपैःसार्घं निशामुखे॥१९॥**

दूध और लड्डू खाने वाले, दूधारी वृक्षों से उत्पन्न समिधाओं से गुड़-चावल की बलि, दीपक अर्घ्य सहित सायंकाल में दे॥१९॥

### भरणीनक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**भरण्यामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः।**
**मासेन मुंचत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः॥२०॥**

भरणी नक्षत्र में रोग उत्पन्न हो तो रोगी की मृत्यु शीघ्र ही हो जाती है अथवा एक मास के उपरान्त रोग से मुक्ति होती है; क्योंकि देव की विचित्र गति है॥२०॥

त्र्यम्बकस्य तु मन्त्रस्य चोक्ता छन्दर्षिदेवता।
गन्धोऽगुरुः करवीरं पुष्पं धूपश्च गुग्गुलुः॥२१॥

त्र्यम्बक मन्त्र छन्द ऋषि और देवता का उक्त मन्त्र से गन्ध, अगुरु, करवीर (कनेर) पुष्प, धूप, गुग्गुलु—॥२१॥

आज्यदीपं च सर्वेषां नैवेद्यं च गुडोदनम्।
पाशदण्डधारी रक्तस्त्वाज्यमध्वाक्षतैर्हविः॥२२॥

घी, दीपक तथा सभी के लिये गुड़ और चावल का नैवेद्य, पाश और दण्ड को धारण करने वाले यमराज के लिये लाल फूल, घी, मधु और चावल से आहुति—॥२२॥

महिषीनायकारूढः कृशरान्नबलिं हरेत्।
वक्ष्यमाणेन मन्त्रेण बलिं सम्यक् प्रदापयेत्॥२३॥

भैंसे पर चढ़े हुए यम को खिचड़ी की बलि प्रदान करें, आगे कहे जाने वाले मन्त्र से भलीभाँति बलि को देना चाहिए॥२३॥

### कृत्तिकानक्षत्रोत्पन्न रोगशान्त्यर्थ विधान

कृत्तिकासूत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति।
स्रुक्स्रुवाभय वरदः स्ववर्गो मेषवाहनः॥२४॥

कृत्तिका नक्षत्र में उत्पन्न रोग दश रात्रि के बाद छूटता है! स्रुक-स्रुवा और अभय वरदान देने वाले, अपने वर्ग भेड़े के वाहन वाले—॥२४॥

मेधात्रृर्षिर्जगत्यग्निः पुनन्तु मामितस्य च।
चन्दनं यूथिका पुष्पं घृतदीपः सुगुग्गुलुः॥२५॥

मेधात्रृषि, जगती छन्द, अग्निदेवता मुझे यहाँ पवित्र करें। चन्दन, जूही पुष्प, घी का दीपक एवं गुग्गुल—॥२५॥

नैवद्यं तिलमाषान्नं चणकाद्येन सञ्युतम्।
गुडोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत्॥२६॥

तिल और माषान्न (माष की दाल), चने इत्यादि मिश्रित करके नैवेद्य देवें। गुड़ एवं चावल की आहुति से हवन करता हुआ खीर बलि दे॥२६॥

### रोहिणीनक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

रोहिण्यामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति।
नमो ब्रह्मण्यमन्त्रस्य गायत्री विधिरीश्वरः॥२७॥

रोहिणी नक्षत्र में उत्पन्न रोग दश रात्रि के बाद छूटता है। **''नमो ब्रह्मण्य''** इस मन्त्र का गायत्री छन्द और देवता ब्रह्मा हैं॥२७॥

**शुष्कः कमण्डलुधरस्त्वक्षसूत्राभयप्रदः।**
**चन्दनं कमलं पुष्पं सदशाङ्गं च गुग्गुलुम्॥२८॥**

खुशक कमण्डलु को धारण करने वाले अक्षमाला, सूत्र और अभयप्रद ब्रह्मा जी चन्दन, कमल के पुष्प, दशाङ्ग (झालरवाला वस्त्र) और गुग्गुलु—॥२८॥

**नैवेद्यं पायसं साज्यं सर्वदानैर्हविर्भवेत्।**
**दधिक्षीरघृतक्षौद्रशाल्यन्नेन बलिं हरेत्॥२९॥**

घीर-खीर सहित नैवेद्य को सभी प्रकार से प्रदान करते हुए आहुति दें। दही, दूध, घी, शहद, शाल्यन्न (नीवारपाकादि) के साथ बलिं को समर्पित करें॥२९॥

### मृगशिरा नक्षत्रोत्पन्नरोगशान्त्यर्थ विधान

**चन्द्रभे चोत्थितो व्याधिः पञ्चरात्रेण मुञ्चति।**
**गदावरदपाणिश्च श्वेतोऽसौ रथवाहनः॥३०॥**

मृग्शिरा नक्षत्र में उत्पन्न रोग पाँच रात्रियों के पश्चात् दूर हो जाता है। गदा से युक्त, वर देने में सामर्थ्य हाथों वाले, सफेद रंग वाले, रथ पर आरूढ़—॥३०॥

**नवो नवो भवत्यस्य गायत्री गौतमः शशी।**
**चन्दनं कुमुदं पुष्पं दशाङ्गे पायसोदनम्॥३१॥**

"नवोनवोभवति" (प्रतिदिन नूतन होने वाले) गायत्री छन्द, गौतम ऋषि और देवता चन्द्रमा है। चन्दन, कुमुदं (सफेद कुमुदिनी जो चन्द्रोदय समय खिलती है या लाल कमल) फूल, दशाङ्ग (झालर वाला वस्त्र) तथा खीर के द्वारा—॥३१॥

**नैवेद्यं मण्डकापूपं घृतक्षौद्रसमन्वितम्।**
**शर्करादधिमिश्रेण शुक्लान्नेन बलिं हरेत्॥३२॥**

तैयार पके हुए मालपुआ, घी, शहद से युक्त नैवेद्य, शर्करा और दही मिलाकर, विशुद्ध उज्जबल अन्न के द्वारा बलि पूजा करनी चाहिए॥३२॥

### आर्द्रानक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**आर्द्रायामुत्थितो व्याधिरचिरान्निधनप्रदः।**
**मासेन मुंच्यत्यथवा दैवस्य कुटिला गतिः॥३३॥**

आर्द्रा नक्षत्र में उत्पन्न रोग शीघ्र ही मृत्युप्रद होता है अथवा एक महीने में रोग निवृत्ति होती है; क्योंकि देव की कुटिल गति है॥३३॥

**शुद्धस्फटिकसंकाशः शूलखड्गाभयेष्टदः।**
**नमः शङ्करायेत्यस्य बृहतीशो विधी ऋषिः॥३४॥**

शुद्ध स्फटिक के समान कान्ति वाले, त्रिशूल, तलवार, अभय एवं आठ

प्रकार से अभय प्रदान करने वाले "नमः शङ्कराय:" मन्त्र, वृहतीछन्द, रुद्रदेवता तथा विधि ऋषि—॥३४॥

**चन्दनं सौरभं पुष्पं दशाङ्गं पायसोदनम्।**
**समिधाज्यं हविस्तत्र दध्योदनबलिं हरेत्॥३५॥**

चन्दन, सुगन्धितफूल, झालर वाला वस्त्र, खीर, भात, घीयुक्त समिधाओं से आहुति देकर दधिभात की बलि देनी चाहिए॥३५॥

पुनर्वसुनक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थविधान

**पुनर्वसुभवो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति।**
**कमण्डल्वक्षसूत्रेध्मदर्भस्रुक्स्रुवभृत्सदा॥३६॥**

पुनर्वसु में उत्पन्न व्याधि नौ रात्रियों के पश्चात दूर होती है। कमण्डलु, रुद्राक्षमाला, ताजी उगती हुई कुशा, स्रुक्-स्रुव से युक्त सदैव—॥३६॥

**अदितिर्द्यौश्च मन्त्रस्य त्रिष्टुपोद्रुहिणोऽदितिः।**
**हरिद्रा कुंकुमं गन्धं पुष्पसेवन्तिकादयः॥३७॥**

'आदितिद्यौ'-मन्त्र, त्रिष्टुप्छन्द, ब्रह्मा ऋषि और अदिति देवता हैं। हल्दी, कुमकुम, गन्ध तथा सेवन्तिकादि फूलों से—३७॥

**धूपो मलयजं पिष्टं घृतान्नं पीतवर्णकम्।**
**घृताक्तं तण्डुलं हविः पीतान्नेन बलिं हरेत्॥३८॥**

धूप, चन्दन, आटा, घी, अन्न, पीले वस्त्र, घी से युक्त चावलों से आहुति करके पीले अन्न के साथ बलि देनी चाहिए॥३८॥

पुष्यनक्षत्रोत्पन्नरोग शान्त्यर्थ विधान

**पुण्ये समुत्थितो व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति।**
**पीतो दण्डकमण्डल्वक्षसूत्राभयोद्यतः॥३९॥**

पुष्य नक्षत्र में उत्पन्न रोग सात रात्रियों के पश्चात छोड़ देता है। पीले दण्ड, कमण्डलु, अक्षमाला, जनेऊ (यज्ञोपवीत) तथा अभयमुद्रा में विराजमान—॥३९॥

**बृहस्पते अतीत्यस्य त्रिष्टुपो वाङ्गिराऋषिः।**
**कुंकुमं वारिजं पुष्पं नैवेद्यं घृतपायसम्॥४०॥**

"बृहस्पते अति" इस मन्त्र का त्रिष्टुप् छन्द, अङ्गिरा ऋषि देवता बृहस्पति हैं! कुमकुम, कमल का पुष्प, नैवेद्य, घी, खीर इत्यादि—॥४०॥

**मण्डकागुडसञ्युक्तमेतच्चैव हविर्भवेत्।**
**समण्डकघृतान्नेन बलिं तत्र प्रदापयेत्॥४१॥**

फुलका, पतली रोटी गुड़ से युक्त करके आहुति देकर पतली रोटी, घी तथा अन्न से बलि प्रदान करनी चाहिए।।४१।।

### आश्लेषानक्षत्रोत्पन्नरोगशान्त्यर्थ विधान

**आश्लेषामुत्थितो व्याधिः क्लेशान्मासेन मुञ्चति।**
**नमो अस्त्वितिमन्त्रस्य विरजाग्निश्च सर्पराट्।।४२।।**

आश्लेषा नक्षत्र में उत्पन्न व्याधि कष्टों के साथ एक मास में निवृत्त होती है "नमो अस्तित्व" इस मन्त्र का छन्द विराट्, ऋषि अग्नि और देवता सर्पराज हैं।।४२।।

**मधुपपर्क्य भोगयुक्तः खड्गचर्मधरः शुभः।**
**सुकुंकुमागरुगन्धं पुष्पं चागस्तिसंभवम्।।४३।।**

मधुपर्क का अधिकारी, भोगयुक्त, तलवार और चर्म को धारण करने वाले, शुभ कुमकुम सहित अगुरु, गन्ध तथा नक्षत्राधिपति से सम्भव—।।४३।।

**घृतगुग्गुलधूपोऽत्र नैवेद्यं सर्पिषः।**
**हविः साज्यं सुदध्यान्नं दध्योदनबलिं हरेत्।।४४।।**

घी, गुग्गुल, धूपादि से पूजा करें तथा दूध से निर्मित नैवेद्य अर्पित करें! घी, सुन्दर दही, अन्न से आहुति देकर दही-चावल की बलि प्रदान करें।।४४।।

### मघा नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**पितृभे चोत्थितो व्याधिः स चिरान्निधनप्रदः।**
**अथवा सार्द्धमासेन धूम्रो दण्डपवित्रधृक्।।४५।।**

मघा नक्षत्र में उत्पन्न रोग शीघ्र ही मृत्युप्रद होता है अथवा आधे महीने के बाद रोग छूटता है। धूम्रवर्ण पवित्र दण्ड को धारण किये हुए—।।४५।।

**आयन्तुनस्त्वितीवास्य जगती पितरोऽब्जजः।**
**चन्दनं चम्पकं पुष्पं धूपः सघृतगुग्गुलुः।।४६।।**

'आयन्तुन:' इस मन्त्र का जगती छन्द देवता पितर और ऋषि ब्रह्मा हैं। चन्दन, चम्पा के पुष्प, धूप, घी सहित गुग्गुलु—।।४६।।

**नैवेद्यं घृतपिष्टान्नं तिलान्नं सघृतं हविः।**
**सतिलान्नं च मुद्गन्नं बलिं च पितृतुष्टये।।४७।।**

नैवेद्य, घी, हलवा, तिल, अन्न घी सहित आहुति दें। तिल, अन्न एवं साबुत मूँग, अन्न पितरों की सन्तुष्टि के लिए बलि दें।।४७।।

### पूर्वाफाल्गुनीनक्षत्रोत्पन्नरोगशान्त्यर्थ विधान

**पूर्वाफाल्गुनिभे व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति।**
**भग एव भगवानित्यस्य जगती त्रिष्टुप्च गोविधिः।।४८।।**

पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न रोग आधे महीने में छोड़ता है। इसके देवता भग भगवान् हैं। 'भगवानेति' मन्त्र का जगती त्रिष्टुप् छन्द तथा ऋषि गोविधि हैं॥४८॥

**पद्माभयकरः पद्मवर्णः सिंहासने स्थितः।**
**चन्दनं मालतीपुष्पं विल्वधूपो घृतोदनम्॥४९॥**

हाथों में पद्म और अभय वर देने वाले कमल सदृश सिंहान पर विराजमान, चन्दन मालती पुष्प, विल्लफल, धूप, घी सहित भात—॥४९॥

**नैवेद्यं शर्करापूपलड्डुकाभिश्च सञ्युतम्।**
**घृतोदनं हविस्तत्र पायसेन बलिं हरेत्॥५०॥**

शक्कर, मालपूवा, लड्डू इत्यादि से युक्त नैवेद्य, घी और भात से आहुति देकर खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए॥५०॥

### उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रोत्पन्न रोगशान्त्यर्थ विधान

**अर्यमर्क्षे भवेद्व्याधिरर्द्धमासेन मुञ्चति।**
**पद्मवर्णः पद्मसंस्थः पद्मगर्भसमुद्यतः॥५१॥**

उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र में उत्पन्न रोग आधे महीने में छूटता है। कमलवर्ण कमल पर विराजमान और कमलगर्भ से उद्यत—॥५१॥

**अर्यमायानिमन्त्रस्य अर्यमात्रिभिरब्जजः।**
**कर्पूरं कुंकुमं गन्धं पुष्पं धूपकसंज्ञकम्॥५२॥**

'अर्यमायानि' के मन्त्र से अर्यम (सूर्यविशेष) मात्रिकाओं का कर्पूर, कुमकुम, गन्ध, पुष्प, धूप इत्यादि सामग्रियों से—॥५२॥

**घृतगुग्गुलुधूपोऽत्र नैवेद्यं घृतपायसम्।**
**होमद्रव्यं घृतान्नं स्याच्छाल्यन्नेन बलिं हरेत्॥५३॥**

घृत गुग्गुल, धूपादि से पूजा करके घी एवं खीर का नैवेद्य, घृत तथा अन्न से होम तथा भात से बलि प्रदान करें॥५३॥

### हस्त नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**हस्ते समुत्थितो व्याधिर्नवरात्रेण मुञ्चति।**
**उदुत्यमिति हिरण्यस्तु यो गायत्र्यदिती ज़पेत्॥५४॥**

हस्त नक्षत्र में उत्पन्न रोग नौ रात्रियों में छूट जाता है। **'उदुप्यमिति हिण्यस्तु'** इस मन्त्र का छन्द गायत्री और देवता आदित्य हैं॥५४॥

**रक्तगन्धं कुंकुमं च पुष्पं राजीवसंज्ञकम्।**
**सगन्धगुग्गुलुर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम्॥५५॥**

लाल गन्ध, कुमकुम (रोली) लाल रंग का कमलपुष्प, गन्धसहित गुग्गुलु, धूपादि से पूजित करके घी एवं खीर का नैवेद्य—।।५५।।

**मधुपुष्पतिलाज्यान्नं दूर्वाभिः संहितं हविः।**
**गुडशर्करमध्वाज्यपिष्टान्नेन बलिं हरेत्।।५६।।**

मधु, पुष्प, तिल, घी, अन्न और दूर्वाओं सहित आहुति देकर गुड, शर्करा, मधु, घी तथा आटादि से बलि देना चाहिए।।५६।।

### चित्रा नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**चित्रायामुत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति।**
**चित्रं देवानामित्यस्य त्वाष्टात्रिष्टुपपितामहः।।५७।।**

चित्रा में उत्पन्न रोग दश रात्रियों के बाद छोड़ देता है। "**चित्रं देवानामिति**" इस मन्त्र का त्वाष्टाऋषि, त्रिष्टुपछन्द एवं पितामह देवता हैं।।५७।।

**अक्षसूत्राजपकरस्त्विन्द्रं च पाशिनेरतः।**
**सकुम्कुमागुरुधूर्यः कुसमं चित्रवर्णकम्।।५८।।**

इन्द्र देवता और वरुण देवता का अक्षमाला से जप करता हुआ कुमकुम सहित अगुरु, धूप तथा विचित्र वर्ण वाले फूलों से—।।५८।।

**नैवेद्यं मोदकाज्यान्नं चित्रान्नं सघृतं हविः।**
**तदन्नेन बलिं दद्यात्सर्वरोगापनुत्तये।।५९।।**

नैवेद्य में लड्डु, घी तथा अन्न अथवा अनेक प्रकार के अन्न एवं घी सहित आहुति दे। उसी अन्न से बलि देने से सभी रोगों से मुक्ति मिल जाती है।।५९।।

### स्वातीनक्षत्रोत्पन्नरोगशान्त्यर्थ विधान

**स्वात्यर्क्षे चोत्थितो व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः।**
**एकद्वित्रिचतुःपञ्चमासैर्वापि विमुञ्चति।।६०।।**

स्वाती नक्षत्र में उत्पन्न रोग सदैव निधनप्रद ही होता है। कदाचित् एक-दो-तीन, चार या फिर पाँचवें महीने रोग से मुक्ति होती है।।६०।।

**सनः पितेति मन्त्रस्य गायत्रीमरुदङ्गिरा।**
**खड्गचर्मधरः कृष्णो गन्धकृष्णागुरुर्भृशम्।।६१।।**

'सन:पितेति' मन्त्र का गायत्री छन्द, मरूद् देवता और अङ्गिरा ऋषि हैं। तलवार चर्म को धारण करने वाले कृष्णगन्ध, कृष्ण अगुरु गन्ध से—।।६१।।

**पुष्पं दमनकं धूपं चन्दनागुरुगुग्गुलुः।**
**नैवेद्यं पायसं साज्यं हविस्तेन बलिं हरेत्।।६२।।**

दमनक का फूल, धूप, चन्दन, अगुरु, गुग्गुलु से पूजा—घी सहित खीर का नैवेद्य तथा आहुति और बलि देनी चाहिए॥६२॥

### विशाखानक्षत्रोत्पन्न रोगशान्त्यर्थविधान

**द्विदैवभे भवेद् व्याधिर्मासेनैकेन मुञ्चति।**
**इन्द्राग्नो आगतमिति गायत्री चास्य चैव वा॥६३॥**

विशाखा नक्षत्र में उत्पन्न रोग एक मास में मुक्ति देता है। "इन्द्राग्नो आगतमिति" इस मन्त्र का गायत्री छन्द—६३॥

**मधुच्छन्द ऋषींद्राग्नी तयोर्ध्यानं च पूर्ववत्।**
**श्रीखण्डं कुंकुमं गन्धं तयोः पुष्पं सरोरुहम्॥६४॥**

मधुच्छन्द ऋषि तथा इन्द्राग्नि देवता हैं। इन दोनों का ध्यान पहले की तरह करना चाहिए। श्रीखण्ड (चन्दन), कुमकुम, गन्ध तथा दोनों के लिए कमल का फूल—६४॥

**देवदारुतरोर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम्।**
**तदेवान्नं हविस्तत्र चित्रान्नेन बलिं हरेत्॥६५॥**

देवदारु वृक्ष की समिधाएं, धूप, नैवेद्य, घी, खीर तथा उसी नैवेद्यान्न से आहुति देकर विभिन्न प्रकार के अन्नों से बलि देनी चाहिए॥६५॥

### अनुराधा नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**मित्रभे चोत्थितो व्याधिदर्शरात्रेण मुञ्चति।**
**मित्रस्य चर्षिणीरिति गायत्री वास्य चैव हि॥६६॥**

अनुराधा नक्षत्र में उत्पन्न रोग दश रात्रियों में छूट जाता है। "मित्रस्यचर्षिणीरिति" मन्त्र का गायत्री छन्द-देवता मित्र हैं॥६६॥

**ऋषिर्हिरण्यस्तूपाख्यस्तत्र मित्रोऽधिदेवता।**
**द्विभुजः पद्मगर्भाख्यो पद्मभृत्पद्मसंस्थितः॥६७॥**

हिरण्यस्तूप ऋषि तथा अधिदेवता ही मित्र हैं। दो भुजाओं वाले, कमलगर्भ कहलाये जाने वाले, कमल धारण करने वाले कमल पर स्थित—॥६७॥

**कुंकुमं पुण्डरीकाख्यं पुष्पं धूपं च चन्दनम्।**
**नैवेद्यं पायसं साज्यं हविः कन्दमसूरिकम्॥६८॥**

कुमकुम, श्वेतकमल, फूल, धूप और चन्दन से पूजित, नैवेद्य में घी सहित खीर और आहुति कपूर एवं मसूर की दें॥६८॥

**बलिं तत्र प्रदातव्यं मधुशर्करपायसम्।**
**घृतपूरकमाषान्नं मुद्गगर्भैश्च सञ्युतम्॥६९॥**

मधु, शर्करा तथा खीर घृत से परिपूर्ण माषान्न और मूंगान्न मिलाकर बलि प्रदान करनी चाहिए॥६९॥

ज्येष्ठानक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**ज्येष्ठायामुत्थितो व्याधिर्मृत्युरेव न संशयः।**
**अथवा मासमेकं वा मुञ्चत्येव न संशयः॥७०॥**

ज्येष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न रोग मृत्यु ही होगी इसमें संशय नहीं अथवा एक महीने में रोग निवृत्ति हो इसमें भी संशय नहीं॥७०॥

**इन्द्रव इति मन्त्रस्य गायत्री चाङ्गिरा ऋषिः।**
**इन्द्रस्तु पूर्ववद्गन्धं चन्दनं कुसुमं शुभम्॥७१॥**

इन्द्रव इति मन्त्र का गायत्री छन्द, अङ्गिरा ऋषि और देवता इन्द्र हैं। पूर्ववत् गन्ध, चन्दन, शुभ फूल—॥७१॥

**कर्पूरधूपो नैवेद्यं चित्रान्नं सुमनोहरम्।**
**हविष्वासूरणं कन्दं मधुकन्दं सुपायसम्॥७२॥**

कर्पूर, धूपादि द्वारा पूजित, मनोहारी अनेक प्रकार के अन्नों से नैवेद्य, जमीकन्द, कपूर, मधुकपूर तथा सुन्दर मेवों से युक्त खीर की आहुति दें—॥७२॥

मूलानक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**विचित्रपुष्पगन्धेन दध्यन्नेन बलिं हरेत्।**
**मूलभे चोत्थितो व्याधिर्मासार्धेन विमुञ्चति॥७३॥**

और अनेक प्रकार के रंग-बिरंगे फूलों से, गन्ध से तथा दही अन्न से बलि प्रदान करें। मूल नक्षत्र में उत्पन्न रोग आधे महीने में मुक्ति देता है॥७३॥

**खड्गचर्मधरः कृष्णः करालवदनः प्रभुः।**
**पूषोषुणस्य च गायत्री घोरकण्ठोऽथ नैर्ऋतिः॥७४॥**

तलवार, चामर धारण करने वाले, काले भयानक शरीर वाले स्वामी—"पूषोषुणस्य" मन्त्र का गायत्री छन्द, घोरकण्ठ ऋषि और नैर्ऋति देवता हैं॥७४॥

**गन्धः कृष्णागुरुः पुष्पं पद्मनीलोत्पलं शुभम्।**
**धूपं कृष्णागुरुर्माषमिश्रितं चोपहारकम्॥७५॥**

गन्ध, काली अगुरु, शुभ नीले कमल का फूल, धूप, काली अगुरु माष मिश्रित पूजासामग्री—॥७५॥

पूर्वाषाढ़ा नक्षत्रोत्पन्न रोगशान्त्यर्थ विधान

**हविदेवान्नं हविस्तत्र माषान्नेन बलिं हरेत्।**
**वारिभे चोत्थितो व्याधी रोगिणो निधनप्रदः॥७६॥**

उसी देवान्न से आहुति देकर माषान्न से बलि दे। पूर्वाषाढ़ा में उत्पन्न रोग रोगी के लिए निधनप्रद होता है।।७६।।

**विमुञ्च्यथवा मासैर्द्वित्रिषट्पञ्चसप्तकैः।**
**आप्यायस्येति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो जलम्।।७७।।**

अथवा एक मास, दो मास, तीन, छह, पाँच या सात मासों में छोड़ता है! "**आप्यायस्येति**" मन्त्र का गायत्री छन्द, ब्रह्मा ऋषि और वरुण देवता हैं।।७७।।

**सुवर्णो द्विभुजः पद्मपाणिर्गन्धस्तु चन्दनम्।**
**पद्मशैलेयधूपोऽन्नं नैवेद्यं घृतपायसम्।।७८।।**

सुन्दर वर्ण, दो भुजाओं वाले, कमल हाथ में लिये हुए, चन्दन की गन्ध वाले, कमल, पर्वतीय गन्धद्रव्य, धूप अन्न से पूजित, नैवेद्य में घी खीर—।।७८।।

### उत्तराषाढ़ानक्षत्रोत्पन्नरोग शान्त्यर्थ विधान

**हविर्मसूरमिष्ठान्नं तदन्नेन बलिं हरेत्।**
**विश्वभे चोत्थितो व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति।।७९।।**

और आहुति मसूर तथा मिष्ठान्न से देकर उसी अन्न से बलि दें। उत्तराषाढ़ा में उत्पन्न रोग एक महीना, पन्द्रह दिनों में छोड़ता है।।७९।।

**विश्वेदेवा स इत्यस्य गायत्री विश्वदेवताः।**
**कमण्डल्वभयाम्भोजवरदश्च कुशासनः।।८०।।**

"विश्वेदेवा स इति" इस मन्त्र का गायत्री छन्द और देवता विश्वेदेव हैं। कमण्डलु, दोनों हाथों में कमल वरप्रद तथा कुशा के आसन पर विराजमान—।।८०।।

**चन्दनं कमलं पुष्पं धूपं सघृतगुग्गुलुः।**
**नैवेद्यं पायसाज्यान्नं हविरप्येतदेव हि।।८१।।**

चन्दन, कमल, फूल, धूप, घी सहित गुग्गुलु से पूजित, नैवेद्य में खीर, घी सहित अन्न तथा आहुति भी इसी से दें।।८१।।

### श्रवणनक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**समिद्भिर्निम्बुलैः सार्द्धं तदन्नेन बलिं हरेत्।**
**श्रवणे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति।।८२।।**

निम्बु वृक्ष की समिधाओं से आहुति करके उस अन्न के आधे भाग से बलि दें। श्रवण नक्षत्र में उत्पन्न रोग दश रात्रियों में समाप्त हो जाती है।।८२।।

**अतो देवेति मन्त्रस्य गायत्री पद्मजो हरिः।**
**पीताम्बरः कृष्णवर्णः शङ्खचक्रगदाम्बुजः।।८३।।**

"अतोदेवेति" मन्त्र का गायत्री छन्द, ऋषि ब्रह्मा तथा देवता श्री विष्णु हैं! पीले वस्त्रों को धारण करने वाला, कृष्णवर्ण शङ्ख, चक्र, गदा और कमल धारण करने वाले—॥८३॥

**चन्दनं मालती पुष्पं धूपः कर्पूर गुग्गुलुः।**
**शाल्यान्नं षड्रसोपेतं भक्षभोज्यादिभिः सह॥८४॥**

चन्दन, मालती पुष्प, धूप, कर्पूर, गुग्गुल, चावल, छह रसों से युक्त, भक्ष, भोज्यादि के साथ—॥८४॥ .

#### धनिष्ठा नक्षत्रोत्पन्नरोग शान्त्यर्थ विधान

**नैवेद्यं हविरप्येतत्पायसेन बलिं हरेत्।**
**वसुभे चोत्थितो व्याधिर्दशरात्रेण मुञ्चति॥८५॥**

नैवेद्य देना चाहिए और इसी के साथ आहुति देकर खीर के साथ बलि दें॥ धनिष्ठा नक्षत्र में उत्पन्न रोग दश रात्रियों में मुक्ति देता है॥८५॥

**त्रायन्तामिति मन्त्रस्यानुष्टुब्व्यासो वसुस्मृतः।**
**चापवाणधरः शुक्लगन्धः कर्पूरचन्दनम्॥८६॥**

"त्रायन्तमिति" मन्त्र का अनुष्टुप छन्द, व्यास ऋषि तथा वसु देवता हैं। धनुष एवं बाणों को धारण करने वाले, सफेदगन्ध (शुभगन्ध) कर्पूर, चन्दन—॥८६॥

**वारिजं गुग्गुलुर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम्।**
**हविश्चोदुम्बरसमिद्घृत पायससञ्युतम्॥८७॥**

कमल, गुग्गुलु धूपादि से पूजित नैवेद्य में घी, खीर, आहुति के लिए उदुम्बुर (रुम्बल) समिधाएं घी तथा खीर से सञ्युक्त—॥८७॥

#### शतभिषानक्षत्रोत्पन्न रोगशान्त्यर्थ विधान

**लड्डुकापूपमध्वाज्यतिलपिष्ट बलिं हरेत्।**
**वारुणे चोत्थितो व्याधिरष्टरात्रेण मुञ्चति॥८८।**

लड्डू, मालपुआ, मधु, घी, तिल, आटा इत्यादि से बलि करें। शतभिषा नक्षत्र में उत्पन्न रोग आठ रात्रियों में मुक्ति देता है॥८८॥

**इमं मे वरुण इत्यस्य गायत्री कपवचा ऋषिः।**
**नागपाशधरः श्रीमान्नवरत्नविभूषितः॥८९॥**

"**इमं मे वरुण इति**" मन्त्र का गायत्री छन्द, कपवचा ऋषि और देवता वरुण हैं नागपाश को धारण करने वाले, श्रीयुक्त तथा नवरत्नों से सुशोभित हो रहे हैं॥८९॥

**मकरस्थोगुरुर्गावः पुष्पं च कमलात्मकम्।**
**कर्पूरं चन्दनं धूपो नैवेद्यं घृतपोलिका॥९०॥**

मगरमच्छ पर विराजमान, बड़ी गाय तथा पुष्प और कमलपुष्प, कर्पूर, चन्दन, धूप, नैवेद्य, घी से बनी हुई आटे की पूरी—॥९०॥

पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**हविरश्वत्थसमिधश्चित्रान्नेन बलिं हरेत्।**
**अजपाद्भे भवेद् व्याधिः सर्वदा निधनप्रदः॥९१॥**

और पीपलवृक्ष की समिधा के साथ आहुति देकर विचित्र (अनेक प्रकार के) अन्न से बलि दें। पूर्वाभाद्रपदा नक्षत्र में उत्पन्न रोग सदैव मृत्युप्रद होता है॥९१॥

**अथवा बहुभिर्मासैर्दिवसैर्वा विमुञ्चति।**
**वामपादकरं भूम्यामाकाशे त्वधरद्वयम्॥९२॥**

अथवा बहुत दिनों या महीनों के पश्चात् रोग से निवृत्ति होती है। बायें पैर को हाथ से छूते हुए, भूमि एवं आकाश में दोनों अधरों को बिछाए हुए—॥९२॥

**प्रासार्य प्राञ्जलिः साक्षादीश्वरं चिन्तयन् स्थितः।**
**शतमग्निरित्यस्याजपाद्गायत्री चतुराननः॥९३॥**

अपने हस्ताञ्जलि को फैलाए हुए, साक्षात् ईश्वर का चिन्तन करते हुए ''शतमग्नि इति'' मन्त्र का अजपाद देवता, गायत्री छन्द एवं श्रीब्रह्मा ऋषि हैं॥९३॥

**कुंकुमं चन्दनं गन्धं पुष्पं श्वेतार्कसंज्ञकम्।**
**धूपः शतौषधीमूलं नैवेद्यं घृतपायसम्॥९४॥**

कुमकुम, चन्दन, गन्ध, पुष्प, सफेद अर्क, धूप, शतौषधी मूल संज्ञक वस्तुओं से पूजित करके नैवेद्य में घी खीर अर्पण करें॥९४॥

उत्तराभाद्रपदा नक्षत्रोत्पन्नरोग शान्त्यर्थ विधान

**हविः कूष्माण्डखण्डः स्याद्दध्यन्नेन बलिं हरेत्।**
**अहिर्बुध्न्ये भवेद् व्याधिः सार्द्धमासेन मुञ्चति॥९५॥**

और कूष्माण्ड (पेठा, कुम्हड़ा) से आहुति देकर दही अन्न से बलि दे। उत्तराभाद्रपदा में उत्पन्न रोग एक महीना पन्द्रह दिन में छोड़ता है॥९५॥

**नमस्तेरुद्र इत्यस्य सर्वं तत्रैव संस्थितम्।**
**गन्धचन्दनकर्पूराः पुष्पं पद्मोत्पलं शुभम्॥९६॥**

**''नमस्तेरुद्र इति''** सब कुछ वहीं पर स्थापित करके गन्ध, चन्दन, कर्पूर, फूल-शुभ कमलफूल—॥९६॥

**सविल्वं गुग्गुलुर्धूपो नैवेद्यं घृतपायसम्।**
**मुद्गमाषतिलान्नाज्ययवव्रीहिमयं हविः॥९७॥**

विल्व सहित, गुग्गुलु, धूप इत्यादि से पूजित नैवेद्य में घी खीर, मूंग, माष, तिल, अन्न, घी, जौ, चावल से निर्मित आहुति करें—॥९७॥

### रेवतीनक्षत्रोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**माषमुद्गतिलान्नेन सम्यक् तत्र बलिं हरेत्।**
**रेवत्यामुत्थितो व्याधिरष्टरात्रेणमुञ्चति॥९८॥**

माषान्न, मूँग अन्न तथा तिलान्न से विधिपूर्वक बलि प्रदान करें। रेवती नक्षत्र में उत्पन्न रोग आठ रात्रियों के पश्चात् छोड़ देता है॥९८॥

**हंसः शुचिषदित्यस्य जगती कश्यपो ऋषिः।**
**पूषा च देवताम्भोज वर्णाम्भोजधरः शुभः॥९९॥**

"**हंसाशुचिषदिति**" मन्त्र का जगती छन्द, कश्यप ऋषि और देवता पूषा हैं। कमलवर्ण सदृश, कमल को धारण करने वाले शुभ—॥९९॥

**रक्तचन्दनगन्धोऽत्र पुष्पमन्दारसम्भवम्।**
**धूपस्तु गुग्गुलुः साज्यं नैवेद्यं घृतपायसम्॥१००॥**

लालचन्दन, गन्ध, मन्दार से उत्पन्न पुष्प, धूप, गुग्गुलु, घी सहित पूजित नैवेद्य में घी खीर—॥१००॥

**हविस्तदेव सलिलं दध्यन्नेन बलिं हरेत्।**
**भूतेशानुचरो यस्माद्रोगनाथो महाज्वरः॥१०१॥**

तथा घी खीर की आहुति देकर जल, दही, अन्न की बलि करे। भगवान् शिव का अनुचर होने के कारण महाज्वर रोगों का स्वामी है॥१०१॥

### प्रतिपदातिथ्योत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**रोगादस्माच्च मां त्राहि तं गृहीत्वोत्तमं बलिम्।**
**प्रतिपत्सु भवेद्व्याधिः पञ्चरात्रेण मुञ्चति॥१०२॥**

आप रोग से मेरी रक्षा करें और इस उत्तमोत्तम बलि को ग्रहण करें। प्रतिपदा तिथि में यदि रोग उत्पन्न हो तो पाँच रात्रियों के पश्चात् छोड़ता है॥१०२॥

### तृतीया तिथि में उत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**ब्रह्मा तु देवता तत्र पायसेन बलिं हरेत्।**
**तृतीयायां भवेद् व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति॥१०३॥**

प्रतिपदा के देवता ब्रह्मा हैं, उन्हें खीर की बलि प्रदान करनी चाहिए। तृतीया तिथि में यदि रोग उत्पन्न हो तो सात रात्रियों के पश्चात् छोड़ता है॥१०३॥

चतुर्दशी तिथि में उत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**उमा तु देवता तत्र घृताक्ते न बलिं हरेत्।**
**चतुर्दश्यां भवेद् व्याधिर्मृत्युदो वा द्विमासकैः॥१०४॥**

उसकी देवी पार्वती जी हैं, उनके लिए घी सहित बलि प्रदान करें। चतुर्दशी में रोग उत्पन्न हो तो मृत्युकारक होता है अथवा दो महीने के पश्चात्—॥१०४॥

पूर्णिमा तिथि में उत्पन्न रोगाशान्त्यर्थ विधान

**मुञ्चन्ति देवताः सर्वाः पिष्टान्नेन बलिं हरेत्।**
**पौर्णिमायां भवेद् व्याधिस्त्रिरात्रेण विमुञ्चति॥१०५॥**

रोग से छूटता है इनके लिए सभी देवताओं को आटे की बलि देनी चाहिए। पूर्णिमा तिथि में रोग उत्पन्न हो तो तीन रात्रियों के पश्चात् छूट जाता है॥१०५॥

रविवारादि क्रमोत्पन्न रोग शान्त्यर्थ विधान

**चन्द्रस्तु देवता तत्र दध्योदनबलिं हरेत्।**
**सूर्यवारे भवेद् व्याधिः सोमवारे भवेत्तथा॥१०६॥**

चन्द्रमा इसके देवता हैं इनको दही भात की बलि देनी चाहिए। रविवार में उत्पन्न रोग या फिर सोमवार के दिन॥१०६॥

**भौमवारे भवेद् व्याधिः क्लेशाय मरणाय च।**
**कुजस्तु देवता तत्र रक्तान्नेन बलिं हरेत्॥१०७॥**

अथवा मङ्गलवार को रोग हो जाये तो अत्याधिक क्लेश और मृत्यु होती है। इसका मङ्गल देवता है। इसको लाल अन्न से बलि देनी चाहिए॥१०७॥

**बुधवारे भवेद् व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति।**
**बुधस्तु देवता तत्र मुद्गान्नेन बलिं हरेत॥१०८॥**

बुधवार में रोग हो जाए तो सात रात्रियों के पश्चात् छूटता है इसके देवता बुध हैं। उनको मूँग अन्न से बलि देनी चाहिए॥१०८॥

**गुरुवारे भवेद् व्याधिः पञ्चरात्रेण मुञ्चति।**
**गुरुस्तु देवता तत्र हरिद्रान्नबलिं हरेत्॥१०९॥**

गुरुवार में रोग हो जाये तो पाँच रात्रियों के पश्चात् छूटता है इसके देवता बृहस्पति हैं। इनको हल्दी एवं अन्न की बलि देनी चाहिए॥१०९॥

**भृगुवारे भवेद् व्याधिः सप्तरात्रेण मुञ्चति।**
**शुक्रस्तु देवता तत्र चित्रान्नेन बलिं हरेत्॥११०॥**

शुक्रवार यदि रोग हो जाए तो सात रात्रियों के पश्चात् मुक्ति देता है। इसके शुक्र देवता हैं इनको अनेक प्रकार के अन्नों से बलि देनी चाहिए॥११०॥

**शनिवारे भवेद् व्याधिर्मासार्द्धेन विमुञ्चति।**
**शनिस्तु देवता तत्र माषान्नेन बलिं हरेत्॥१११॥**

शनिवार रोग हो जाये तो आधे महीने में छोड़ता है। शनि इसके देवता हैं। उनको माषान्न से बलि देनी चाहिए॥१११॥

**एवं राश्यादिषु दुर्गाबलिं दद्यात्तदीश्वरे।**
**यो बलिं कुरुते सम्यग्रोगी रोगात्प्रमुच्यते॥११२॥**

इस प्रकार राश्यादि में भी दुर्गा अथवा उनके स्वामी को बलि देनी चाहिए। जो भलीभाँति बलि करता है, वह रोगी रोग से छूट जाता है॥११२॥

**आधाने निधने प्रत्यग्जन्माह्वयविपत्करे।**
**नक्षत्रजनिते व्याधौ क्लेशाय मरणाय च॥११३॥**

आधान नक्षत्र में, निधन नक्षत्र में, प्रत्यरि तारा में, जन्म नक्षत्र में, विपत्त तारा में, नक्षत्र में उत्पन्न रोग क्लेश और मृत्यु को देता है॥११३॥

**आश्लेषार्द्रा त्रिपूर्वायमवरुणमहच्छक्रतारानलाः स्यु-**
**र्द्वादश्यां स्कन्दरिक्तातिथिषु च रविजारार्कवारेषु योषाम्।**
**सञ्जाते तस्य रोगे यमपुरमचिरात्प्राप्नुवन्त्येव चन्द्रे।**
**जन्मन्यष्टाख्य बन्धुव्ययभवनगते मृत्युलग्ने च राशौ॥११४॥**

**इति श्री ब्रह्मर्षि वृद्धवसिष्ठविरचितायां संहितायां रोगोत्पत्ति-शान्त्यध्यायः षट्चत्वारिंशः।।४६।।**

आश्लेषा, आर्द्रा, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपदा, भरणी, शतभिषा, ज्येष्ठा, कृत्तिका नक्षत्र, द्वादशी, षष्ठी, चतुर्थी, नवमी, चतुर्दशी तिथियों में, शनि, मङ्गल, सूर्य वारों में स्त्रियों में रोग उत्पन्न हो जाये तो शीघ्र ही यमपुरी प्राप्त होती है। इसी प्रकार चन्द्रमा जन्मलग्न से अष्टम, चतुर्थ, द्वादश भावों में जाने पर अथवा मृत्यु लग्न और चरराशि में हो तो शीघ्र मृत्युकारक होता है॥११४॥

वृद्धवसिष्ठसंहिता के ''रोगोत्पत्तिशान्त्याध्याय'' की ''नारायणी''
हिन्दी टीका सम्पूर्ण॥४६॥

***

**पाठान्तरम्**

०१. (अ) ज१-सारिरिणां (—शरीरिणाम्)
०३. (ब) ज१-धिष्ण्येसाप्रतिमा (—धिष्ण्येशप्रतिमां)
०४. (अ) ज१-संलिषेत (—संलिखेत्)
०५. (अ) ज१-सलिलैश्च (—सलेहैश्च)

०६. (अ) ज१-ध्यात्वा (—धृत्वा)
०८. (अ) ज१-मृत्युं च गव्य (—मृत्पञ्चगव्य)
०९. (ब) ज१-सहस्रकैः (—सहस्रकम्)
१०. (ब) ज१-तापितापूर्वकं (—स्नायीत पूर्ववत्)
१२. (ब) ज१-पूजास्थानं (—पूजास्थाने)
१३. (ब) ज१-सकरात्मक, मु. पु. शङ्करात्मक: (—सकारात्मक:)
१४. (ब) ज१-वस्त्रसंयता (—वस्त्रसंयुताम्)
१५. (ब) मु. पु. ब्रह्मणे च (—ब्राह्मणेभ्यो)
मु. पु. भक्त्या (—शक्त्या)
१८. (अ) ज१-सुधापूर्णा (—सुधापूर्णौ)
१९. (ब) मु. पु. सार्द्धं (—सार्घं)
२१. (ब) ज१-गुग्गल: (—गुग्गुलु:)
२२. (ब) ज१-पासदंडधरा (—पाशदण्डधरी)
२४. (ब) मु. पु. स्ववर्णो (—स्ववर्गो)
२५. (अ) मु. पु. मेधातिथि: (—मेधात्त्रृषि:)
(ब) ज१-घृतधूप: (घृतदीप)
ज१-मामिन्यस्य (मामितंस्य च)
२६. (अ) ज१-वटकाधैन (—चणकाद्येन)
२८. (ब) ज१-भयवरप्रद: (—भयप्रद:)
३१. (ब) ज१-पापशोदनं (—पायसोदनम्)
३५. (अ) ज१-पापसोदनं (—पायसोदनम्)
(ब) मु. पु. समध्वाज्यं (—समिधाज्यं)
३६. (अ) ज१-पुनर्वसीमवे (—पुनर्वसुभवो)
३७. (अ) ज१-द्रुहिणोतिदिति (—द्रुहिणोऽदिति:)
(ब) ज१-सेछंतिकादय: (—सेवन्तिकादय:)
३८. (ब) मु. पु. तंदुलं (—तण्डुलं)
४०. (अ) ज१-पीत्यस्य (—अतीत्यस्य)
४१. (ब) ज१-समंर्कृघृतानेवं (—समण्डकघृतान्नेन)
४२. (अ) ज१-सर्पेसमत्थितो (—आश्लेषामुत्थितो)
४३. (अ) मु. पु. मधुपर्णो (—मधुपर्क्य)
(ब) ज१-अंगरुग्धि: (—अगरुगन्धं)
४६. (अ) ज१-पितरोव्रज: (—पितरोऽब्जज:)
(ब) ज१-गुग्गल: (—गुग्गुलु:)
४७. (ब) ज१-सतिलाज्यं (—सतिलान्नं)
ज१-पितृतृप्तये (—पितृतुष्टये)

४८. (अ) ज१-पूर्वाफाल्गुण्य (—पूर्वाफाल्गुनिभे)
(ब) ज१-त्रिष्टुपूभा (—त्रिष्टप्च्च)
५०. (अ) ज१-शर्कराधूयलङ्कैश्च (—शर्करापूपलड्डूकाभिश्च)
ज१-समन्वितं (—सञ्युतम्)
५१. (ब) ज१-समयुति (—समुद्यत:)
५२. (अ) ज१-अर्यमर्यातिमत्रस्य (—अर्यमायानिमन्त्रस्य)
ज१-अर्यमात्रिष्टुज्वल: (—अर्यमात्रिभिरब्जज:)
(ब) ज१-धूयकसंज्ञक: (—धूपकसंज्ञकम्)
५३. (ब) ज१-घृन्नं (—घृतान्नं)
५४. (अ) मु. पु. नैवेद्यते (—हस्ते)
(ब) मु. पु. उदुत्यमिति (—उदुप्यमिति)
५५. (अ) ज१-संज्ञसं (—संज्ञकम्)
५७. (ब) मु. पु. गायत्रीदितिजोरवि: (—त्वाष्टात्रिष्टुपपितामह:)
५८. (अ) मु. पु. पांशिलेरत: (—पाशिनेरत:)
ज१-अक्ष्यसूत्रममकर:श्चित्रवर्णा (—अक्षसूत्राजपकरस्त्विद्रं)
(ब) ज१-सकुंकुमाङ्गगन्ध: (—सकुम्कुमागुरुधूंप:)
६०. (अ) ज१-चोत्थ्रिते (—चोत्थितो)
६३. (ब) ज१-खास्य च् वहि (—चास्य चैव वा)
६४. (अ) ज१-तयोर्धानं (—तयोर्ध्यानं)
(ब) ज१-सरीरूहं, मु. पु. सरोहरूम् (—सरोरूहम्)
६७. (ब) ज१-पद्मगर्भाभ: (—पद्मगर्भाख्यो)
६८. (ब) ज१-मसूरकं (—मसूरिकम्)
७०. (ब) ज१-मेकमासं (—मासमेकं)
७१. (अ) ज१-द्रांगिरा (—चाङ्गिरा)
७२. (ब) ज१-मपायसम् (—सुपायसम्)
७४. (अ) मु. पु. खड्गवर्मधर: (—खड्गचर्मधर:)
(ब) ज१-मोषुणस्यगायत्रीश्रीयो: (—पूषोषुणस्यचगायत्री)
ज१-कण्योथनैत्रृति: (—घोरकण्ठोऽथनैत्रृति:)
७५. (ब) ज१-धूय: (—धूयं)
७६. (अ) ज१-तदेवान्नं (—हविदेवान्नं)
मखान्नेन (—माषान्नेम)
७७. (अ) ज१-सप्तभि (—सप्तकै:)
(ब) ज१-आधीपस्वेति (—आप्यायस्येति)
मु. प. पद्मभोजनम् (—पद्मजोजलम्)
७८. (अ) ज१-सुवर्ण (—सुवर्णो)

(ब) ज१-पद्मशूलेयधूपोत्र (—पद्मशैलेयधूपोऽन्नं)

७९. (अ) ज१-हविर्मशूरपिष्टान्नं (—हविर्मसूरमिष्टान्नं)

८१. (अ) ज१-गुग्गुलं (—गुग्गुलुः)

८२. (अ) ज१-समिद्‌भिर्नवलैं, मु. पु.-समिद्धिर्निचुलैः (—समिद्धनिम्बुलैः)

८५. (ब) ज१-वस्त्रभे (—वसुभे)

८६. (ब) ज१-शुवलगन्धः (—शुक्लगन्धः)

८८. (ब) ज१-वारुणभे (—वरुणे)

८९. (अ) ज१-करायवारियः (—कपवचात्रृषिः)

९०. (अ) ज१-गुरुर्गवः (—गुरुर्गावः)

९२. (ब) ज१-तुपरद्वयं (—त्वधरद्वयम्)

९४. (ब) ज१-दधिपायसं (—घृतपायसम्)

९५. (अ) ज१-हवि (—हविः)

९६. (ब) ज१-क्पूरो (—कर्पूराः)

९८. (अ) मु. पु. माषामद्र (—माषमुद्र)

(ब) ज१-रात्रादि (—रात्रेण)

९९. (अ) ज१-योत्रृषिः (—कश्यपोत्रृषिः)

१००. (अ) ज१-संज्ञकम् (—सम्भवम्)

१०१. (ब) ज१-भूतेसानुसरे (—भूतेशानुचरो)

ज१-यस्मद्रोगनाथा (—यस्माद्रोगनाथो)

१०२. (अ) ज१-द्वादशाहेन (—पञ्चरात्रेण)

११०. (ब) ज१-पाठोनास्ति

१११. (अ) ज१-पाठानास्ति

(ब) ज१-माखान्ने (—माषान्नेन)

११२. (अ) ज१-वर्गाद्वलिं (—दुर्गाबलिं)

११३. (अ) ज१-आघातनिधन (—आधानेनिधने)

(ब) ज१-नक्षत्रेउनिते (—नक्षत्रजनिते)

११४. ज१-पाठोनास्ति

पुष्पिका : ज१-इति श्रीवृद्धवसिष्ठब्रह्मऋषि विरचितायां महासंहितायां तिथिवार नक्षत्ररोगव्याप्तिसप्तचत्वारोत्तरध्याय:॥४६॥

(शुभं अस्तु सर्वजगतां शुभहरिओम्)

***

# ज्यौतिष सम्बन्धी स्वप्रकाशित महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ

**आर्यभटीयम्** । आर्यभटविरचितम् । श्रीसूर्यदेवयज्वप्रणीत 'प्रकाशिका' संस्कृत एवं सुरकान्त झा प्रणीत 'चिद्धर्षिणी' संस्कृत टीका एवं 'माया' नाम्नि हिन्दी टीका सहित। सम्पादक—डॉ0 सुरकान्त झा (बि. सं. सी. 15) H.B. 325.00
P.B. 200.00

**कुण्डली द्वारा आयु और रोग ज्ञान एवं निदान।**
जातक शास्त्र के प्रमुख ग्रन्थों के आधार पर जातककुण्डली द्वारा सटीक आयु, निश्चयात्मक रोग और उनके ठीक-ठीक उपचार-उपायों के साथ अचूक मन्त्रों तथा वास्तविक रत्नों और स्वाभाविक औषधियों का मार्गदर्शक, अनुपम व एक मात्र संग्रहणीय ग्रन्थ। लेखक—सुरकान्त झा (कृ. सं. सी. 223) H.B. 350.00
P.B. 275.00

**ग्रहलाघवम्** । श्रीगणेशदैवज्ञविरचितम् । 'मल्लारि' संस्कृत व्याख्या स्वोपज्ञया 'चन्द्रिका' नाम्नी हिन्दी व्याख्या च समलङ्कृत्या । सम्पादको व्याख्याकारश्च—प्रो. रामचन्द्र पाण्डेय H.B. 175.00 (ह. सं. सी. 309) P.B. 90.00

**जातक-दीपक** ( Astrological Science )।
नवग्रहों का फल-ज्योतिषशास्त्र सम्बन्धी अद्वितीय पुस्तक।
संकलनकर्त्ता पं. श्री बालमुकुन्द त्रिपाठी (कृ. सं. सी. 235) 650.00

**जातक पारिजातः**। दैवज्ञश्रीवैद्यनाथविरचितः। 'प्रज्ञावर्द्धिनी' संस्कृत-हिन्दी टीकाद्वय श्लोकानुक्रमणिका च संवलितः टीकाकारः सम्पादकश्च डॉ0 सत्येन्द्र मिश्रः (1-2 भाग) सजिल्द 1000.00 (चौ.सं.सी. 132) अजिल्द 600.00

**ज्योतिर्गणितम्** । स्वकृतव्याख्योदाहरणकोष्ठकादिभिः समलंकृतम्।
श्रीवेङ्कटेशरामकृष्णकेतकरैर्विरचितम्। सहसंशोधकौ श्री दत्तात्रेयवेङ्कटेशकेतकरः।
विज्ञप्ति लेखकः डॉ0 सुरकान्त झा (बि. सं. सी. १४) 425.00

**ज्योतिर्विज्ञानशब्दकोषः** सुरकान्तसंकलितः।
लेखन एवं सम्पादन डॉ0 सुरकान्त झा (कृ. सं. सी. 220) 400.00

**ज्योतिषसिद्धान्तपञ्चकम्** तत्र सोमसिद्धान्त-ब्रह्मसिद्धान्त-पितामहसिद्धान्त-वृद्धवशिष्ठसिद्धान्तश्च। सविमर्श हिन्दी टीका सहित।
संपा. + टीकाकार पं. सत्यदेव शर्मा (चौ.सं.सी. 158) 450.00

**( श्री रणवीर )ज्योतिर्महानिबन्ध।** मूल लेखक पं. महेशदत्त।
पुनर्लेखन एवं हिन्दी अनु. डॉ. धनीराम शास्त्री।
संशोधक संपा.–डॉ. पारसराम शास्त्री (कृ. सं. सी. 229) 700.00

**ज्योतिषदीपिका ( शुद्धिदीपिका )**। म. म. श्रीश्रीनिवासप्रणीता।
'अभया' हिन्दी टीका सहित। H.B. 275.00 P.B. 160.00
टीकाकार—महर्षि अभयकात्यायन। (कृ. सं. सी. 224)

**ज्योतिषवृत्तशतम्** । श्रीमहेश्वरोपाध्यायविरचितं। प्रयोजनं तु शुभाशुभनिरूपण ग्रहणग्रह-संक्रान्तियज्ञाध्ययनकर्मणां संस्कारविवाहयात्रा वास्तुकालादीनां निर्णय शास्त्रं स च 'मोहनवोधिनी'ख्य हिन्दी टीकोपेतम्। सम्पादकोनुवादकश्च डॉ. श्री कृष्ण 'जुगनू'
H.B. 175.00 (कृ. सं. सी. 227) P.B. 85.00

**नक्षत्र विज्ञान**। वेङ्कटेश बापूजी केतकर प्रणीत। आकाश दर्शन क्रम में ताराओं का ज्ञान, वर्गीकृत आकाशीय नक्सा तथा अनेक सारिणियों से युक्त; सभी वर्ग व स्तर के पाठकों के ज्ञान को विस्तार और उनको आत्मिक आनन्द प्रदान करने में सक्षम। अनुवाद मधुकर गोपाल नेने संशोधक एवं सम्पादक डॉ. सुरकान्त झा (ह.सं.सी. 363) 75.00

**Pañcasiddhāntikā** : The Astronomical Work of Varahmihira. The Text edited with an Original Sanskrit Commentary and English Translation. By G. Thibaut & M. M. Sudhakar Dwivedi
(C. S. St. 68) 225.00

**प्रश्नमार्गः**। (भारतीय ज्योतिषशास्त्र के संहिता स्कन्ध के सहित उसके होरा स्कन्ध सम्बन्धी जातक फल, प्रश्न, गोचर, स्वर, शकुन, वृष्टि, मूक व मुष्टि प्रश्न, ग्रह दोषों का निवारण आदि विषयों का सहज विवेचक ग्रन्थ)। व्याख्या एवं सम्पादन–डॉ0 सुरकान्त झा सम्पूर्ण 1-2 भाग
H.B. 650.00 (ह. सं. सी. 373) P.B. 400.00

**बृहज्ज्यौतिषसारम्**। जातक-वास्तु-सामुद्रक आदि विविध विशिष्ट विषयों की हिन्दी व्याख्या सहित । व्याख्याकार—डॉ. सुरकान्त झा (ह. सं. सी. 348) H.B. 250.00
P.B. 130.00

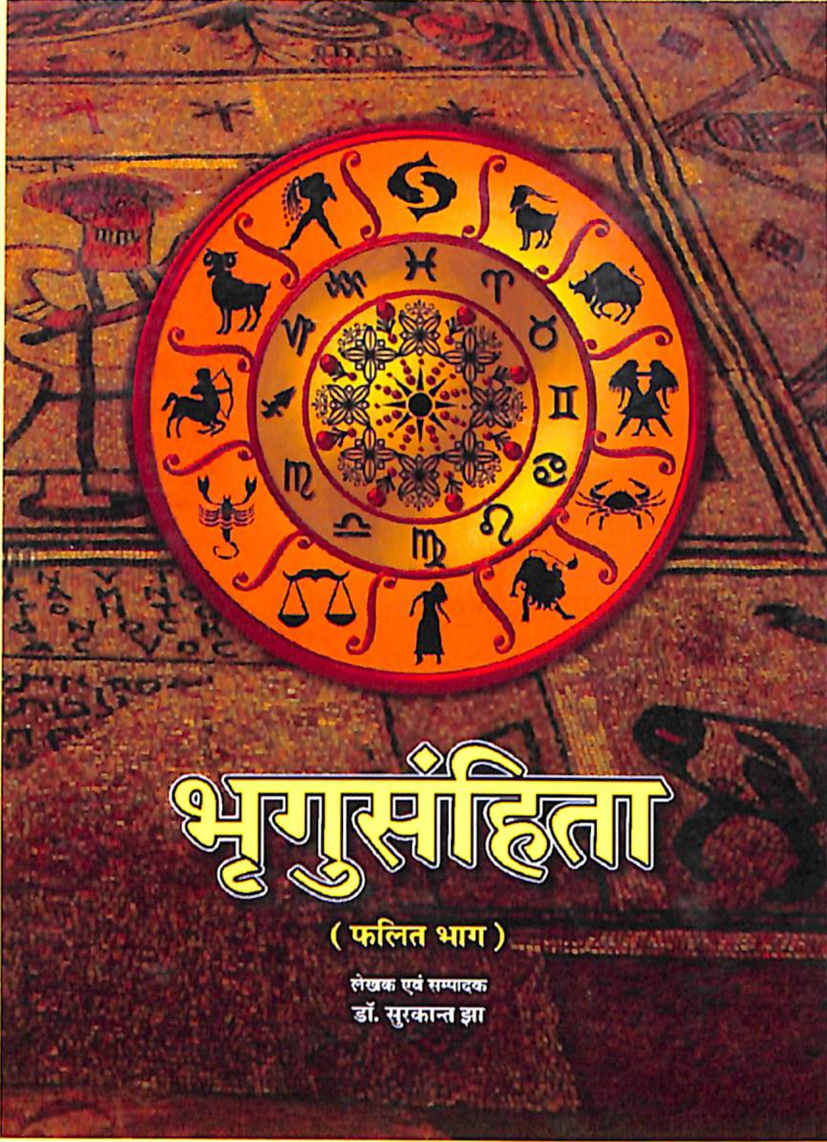
**बृहत्संहिता**। श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता। 'माया' नाम्नि हिन्दी व्याख्यया भट्टोत्पलविवृतया च सहिता। सम्पादकोव्याख्याकारश्च डॉ. सुरकान्त झा। सम्पूर्ण 1000.00 प्रथम भाग 500.00 (ह. सं. सी. 369) द्वितीय भाग 500.00

**बृहत्संहिता**। श्रीवराहमिहिराचार्यविरचिता। 'माया' नाम्नि हिन्दी व्याख्या सहित। सम्पादक एवं व्याख्याकार डॉ0 सुरकान्त झा (कृ. सं. सी. 222) P.B. 300.00

**(नवनीत) भारतीय कुण्डली विज्ञान**। (कुण्डली-रचनार्थ सरल विधि, उसका अकाट्य फलादेश, प्रश्नशास्त्रीय रोचक विषयों से युक्त एवं व्यवहार और अनुभव सिद्ध सिद्धान्तों से युक्त सम्पूर्ण ग्रन्थ। लेखन-संकलन एवं सम्पादन— डॉ0 सुरकान्त झा।
(चौ. सं. सी. 131) 425.00

**सिद्धान्तशेखर**। भट्टश्रीपतिप्रणीत। '**बृहस्पति**' हिन्दीभाष्य-विस्तृतटिप्पणी-श्लोकानुक्रमणिका सहित।संपा. + भाष्यकार पं. सत्यदेव शर्मा
(कृ.सं.सी. 251) 675.00

***




₹ 1500.00

designed by Shreyashi GRAPHICS, mo. 9839814784

. *Also can be had from :* **Chowkhamba Sanskrit Series Office, Varanasi.**

ISBN : 978-81-218-0389-2 (Vol. II), 978-81-218-0390-8 (Set) ₹ 450.00